कुमाऊँ का इतिहास

खस (मल्लराज्य) जाति के परिप्रेक्ष्य में

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

अल्मोड़ा बुक डिपो

दि माल, अल्मोड़ा-२६३६०१

कुमाऊँ का इतिहास

खस (कस्साइट) जाति के परिप्रेक्ष्य में

28151

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

मॉडर्न बुक स्टोर्स

दी माल, नैनीताल-२६३००१

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the Publisher.

© १९७७

रचियता : श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'
वैष्णव कुंज, नैनीताल (उ० प्र०)

संस्करण : प्रथम

प्रकाशक : माडर्न बुक स्टोर्स दी माल, नैनीताल

मुद्रक : भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स, चन्दौसी

निवेदन

28151

भारत के प्राचीन इतिहास के विश्वस्त और विस्तृत उपादान पश्चिम एशिया में उपलब्ध हैं। प्राचीन ईरान और भारत के मध्य कोई राजनीतिक सीमा नहीं थी। पाणिनि के समय में गान्धार ईरानी हखमनीश शासन की क्षत्रपी था। पश्चिम एशिया के प्राचीन इतिहास में गत डेढ़ दो सौ वर्षों के पुरातात्विक उत्खननों से अनेक नये अध्याय जुड़े हैं। वैसे तो भारत देश के किसी अंग के इतिहास का सर्वांगीण चित्र पश्चिम एशिया में उपलब्ध सामग्री के उपयोग किए बिना नहीं बन सकता तथापि आज के कुमाऊँ मंडल नाम से ख्यात भूखंड के लिए तो पश्चिम एशिया की उस विरासत का उपयोग नितांत आवश्यक है क्योंकि वर्तमान कुमाऊँ मंडल खस या कस्स (कस्साइट) कही गई पश्चिम एशियाई पर्वतीय जाति के विशाल लीला क्षेत्र का पूर्वी भाग था।

कुम (अक्कद भाषा में कुमु) एलबुर्ज पर्वत माला में कस्स जाति की मातृभूमि थी। कुमु देश विस्तार में लगभग ३१००० वर्ग किलो मीटर था तथा इस देश की समुद्र तल से औसत ऊँचाई ३००० से ४००० फिट तक थी। ईसा पूर्व की दूसरी सहस्राब्दी में कस्स लोग दक्षिण की ओर दजला-फुरात घाटी में लूटपाट करते थे। ईसा पूर्व सत्रहवीं सदी में इस उर्वराघाटी में हित्ती शासक ने आक्रमण किया किन्तु घरेलू झगड़ों के कारण हित्ती लूटपाट कर फिर उत्तर की ओर स्वदेश लौट गए। कस्स जाति समूह ने इस रिक्ति का लाभ उठाया और स्वयं दजला-फुरात घाटी पर अधिकार करके असुर नगर राज्यों के सम्राट् बन गए।

कस्स जाति ने असुर लोगों से विवाह सम्बन्ध किए, उनकी संस्कृति को आत्मसात किया। इन दोनों जाति समूहों के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में पश्चिम एशिया में सैकड़ों स्थलों पर अभिलिखित मृद्बटिकाँए या क्यूनीफार्म टैबलैट्स उपलब्ध हो गयी हैं। असुर बाण का ऐसी ही मृद् बटिका ग्रन्थों का पुस्तकालय उसकी राजधानी निनेवा के खण्डहरों के उत्खनन से उपलब्ध हुआ है। निनेवा को यहूदी बाइबिल (ओल्ड टैस्टामेंट) में 'द सिटी ऑफ ब्लड' कहकर शापित किया गया है। हरिवंश पुराण में असुर बाण की राजधानी को रुधिरपुर या शोणितपुर अभिहित किया गया है।

कुमू (काली कुमाऊँ) कस्स जाति समूह के पूर्व की ओर आने पर उनका उपनिवेश था। प्रस्तुत ग्रन्थ में कस्स जाति से सम्बन्धित सीमित सामग्री का उपयोग किया गया है जितना कि कुमाऊँ के इतिहास के संदर्भ में आवश्यक था। असुर जाति के अतीत के जिज्ञासु पाठकों को लेखक की पुस्तक 'असुर्या नाम ते लोकाः की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह पुस्तक लेखक के फर्ग्यूसन कालेज पूना के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष परम आदरणीय डॉ० विष्णु गोपाल परांजपे के अमूल्य निर्देशन का परिणाम है। उनकी भूमिका का एक अंश प्रस्तुत पुस्तक के आवरण पर दिया गया है।

अरबी में कैस्पियन सागर को बहरे-कस्सर कहा जाता है जिसका अर्थ है कस्स लोगों का सागर। इसी कस्स जाति के उपनिवेश कस्सीर को कालान्तर में कश्मीर नाम मिला। ये स्थल कस्स जाति के दजला-फुरात घाटी से बारहवीं सदी ईस्वी पूर्व असुर जाति द्वारा खदेड़ दिए जाने के पश्चात् पूर्व की ओर निष्क्रमण पर उनके द्वारा बसाए गये। वैदिक साहित्य में इस जाति को काशि कहा गया। असुरों से रक्त सम्मिश्रण होने के कारण ये लोग व्रात्य कहलाए। रामायण, महाभारत तथा अनेक पुराण ग्रन्थों में यह जाति खश या खस कही गई। मनुस्मृति में खस लोगों को धर्मच्युत माना गया है। खस जाति का उल्लेख रामचरित मानस की 'स्वपच, सबर, खस, जमन, जड़, पामर, कोल किरात" इस चौपाई में एक नीच जाति के रूप में मिलता है। कुमाऊँ में राजपूत काल में आप्रवासी जातियों ने खसों के संस्कार और उनकी भाषा खसकुरा को आत्मसात कर लिया। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ब्रिटिश शासकों ने कुमाऊँ गढ़वाल की आधी से अधिक जनसंख्या को खस या खसिय जाति मूलक कहा है।

ऐसी प्रभावशाली खस (कस्साइट) जाति का आधुनिक इतिहास ग्रन्थों में कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। यहाँ तक कि खस और खसकुरा शब्द कोशों से भी लोप होते जा रहे हैं। आप्टे रचित संस्कृत कोश में खस का अर्थ उत्तर भारत का एक देश दिया गया है। हिन्दी शब्द कोशों में या तो इस शब्द को दिया ही नहीं गया है या यह व्याख्या दी गई है—गढ़वाल के उत्तर का प्रदेश, उस प्रदेश का निवासी, नेपाल आदि में बसने वाली व्रात्य क्षत्रिय जाति, पोस्ते का पौधा।

खस इतिहास को लोप हो जाने से बचाने और खस शब्द के सम्बन्ध में उक्त भ्रामकताओं के निवारण के लिए मुझे अपने कहानी-उपन्यास के क्षेत्र से बाहर इतिहास के क्षेत्र में यह अनधिकार प्रवेश करना पड़ा है। इस ग्रन्थ में मैंने भारतीय पुराणों के असुर बाण, पार्थ, पणि, अर्जुन, असुर, यक्ष आदि नामों की यथा सम्भव प्रामाणिक, सुविस्तृत और वैज्ञानिक व्याख्या दी है। ये नाम भारत में मात्र पौराणिक अथवा

28151

कपोलकल्पित समझे जाते रहे हैं किन्तु ये विश्व इतिहास के वास्तविक ऐतिहासिक पात्र और विषय हैं।

कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में एक मात्र ग्रन्थ एटकिंसन का 'गजेटियर ऑफ हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स' सर्वथा दुष्प्राप्य होने के अतिरिक्त आधुनिक खोजों के फलस्वरूप उपयोगी नहीं रह गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन विद्वानों के लेखों और ग्रन्थों से सहायता और अनुभूति ली गई है उनकी सूची पुस्तक के अन्त में दी गई है। उन सबका लेखक हृदय से आभारी है।

कुमाऊँ लेखक की जन्मभूमि होने के कारण उसका इतिहास लेखक के लिए विद्यार्थी जीवन से ही जिज्ञासा का विषय रहा है। उस काल में भी लेखक को अपने अंग्रेजी के अध्यापक पादरी ई० एस० ओकली, शिक्षा निदेशक पावैल प्राइस, शिक्षा निरीक्षक श्री अशर्फी लाल आदि से इस विषय में जो प्रेरणा प्राप्त हुई थी, वे उसके ऐतिहासिक निबन्ध सन् १९४०-६० ई० के मध्य अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। सन् १९४२ से सन् १९४७ ई० तक लेखक देहरादून और गढ़वाल के जिलों में नियुक्त रहा तथा उसे, तब यातायात साधनों के न होने के कारण, गढ़वाल मंडल के वर्तमान पाँच जिलों के अन्तराल में गाँव गाँव में जाने का सुवसर प्राप्त हुआ। इन्हीं जिलों में सन् १९७१-७३ ई० में दूसरी बार नियुक्त होने पर लेखक को पहले से एकत्र ऐतिहासिक सामग्री को दोहराने का अवसर प्राप्त हो गया। कुमाऊँ मण्डल के जिलों में लेखक सन् १९४८ से १९५० ई०तक तथा दुबारा सन् १९६३ से ६६ ई०तक नियुक्त रहा। इस मंडल में भी इस प्रकार एक बार पैदल गाँव गाँव की यात्रा का सुअवसर मिला और दूसरी बार पिछली यात्रा में उपलब्ध सामग्री को संशोधित और परिवर्धित करने का अवसर प्राप्त हो गया।

पश्चिम एशिया के खस (कस्साइट) जाति के इतिहास के लिए लेखक ने दिल्ली स्थित पश्चिम एशियाई देशों के दूतावासों से सामग्री एकत्र की। बौद्ध और लामा धर्म से सम्बन्धित साहित्य के लिए गोरखपुर, पूना, दिल्ली तथा कुमाऊँ के विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों और आचार्यों से सहायता प्राप्त की। इसी बीच बी०बी०सी० द्वारा प्रसारित 'मनुष्य का उत्कर्ष' रूपक माला के तेरह रूपकों पर लेखक द्वारा जो टिप्पणी भेजी गई उसके सर्वोत्तम ६ में आने पर उसे बी० बी० सी० ने प्रो० जे० ब्रोनोव्स्की की पुस्तक 'दि एस्सेण्ट ऑफ मैन' पुरस्कार स्वरूप भेज दी। इस बहुमूल्य पुस्तक का उपयोग लेखक ने प्रस्तुत ग्रन्थ में 'मनुष्य के उत्कर्ष की विकास धारा में पर्वतीय लोग' शीर्षक ऐतिहासिक तालिका में किया है।

पुस्तक में सांस्कृतिक इतिहास शीर्षक भाग भी जोडा गया है। इसमें हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र के लोक धर्म और लोक साहित्य की सीमित सामग्री ही दी गई है। पर्वतीय भू-भाग की सांस्कृतिक निधि के अध्ययन के लिए, जिज्ञासु पाठक उसकी पुस्तक 'संस्कृति संगम उत्तरांचल' का अवलोकन कर सकते हैं।

पुस्तक के अन्त में अकारादि क्रम से विस्तृत वर्णानुक्रमिका दे दी गई है, जिसमें प्राचीन नामों के साथ साथ नये नामों और विषयों के संदर्भों का समावेश कर दिया गया है। आशा है कि यह पुस्तक भारत के शीर्ष स्थल और संस्कृति के उद्गम हिमालयी प्रदेश के इतिहास में रुचि लेने वाले पाठकों के साथ ही साथ शोध छात्रों, अध्यापकों एवं विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

नैनीताल
६-५-७७

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

अध्याय—१ नाम, स्थिति तथा विस्तार १

प्राकृतिक स्थिति, दारमा जोहार, दानपुर, गंगोली, अस्कोट, सीरा, सोर, काली कुमाऊँ, फल्दाकोट, रामगढ़, मल्ला छखाता, मल्ला कोटा, कोटा, चौगर्खा, बारा मण्डल, पाली पछाऊँ, भाबर, तराई, प्राचीन मार्ग, उत्तर के प्रवेश द्वार, अठारहवीं सदी, वर्तमान कुमाऊँ

अध्याय—२ प्राचीन कुमाऊँ के इतिहास के उपलब्ध स्रोत २८

धार्मिक ग्रन्थ, साहित्यिक ग्रन्थ, प्राचीन अभिलेख, प्राचीन स्मारक, शिल्प-शास्त्र, प्राचीन-स्थान नाम, यात्रा विवरण

अध्याय—३ कुमाऊँ गढ़वाल नामों की पृष्ठ भूमि ४२

काश्मीर का प्रांगण, खजुराहो, सरकार कुमाऊँ

अध्याय—४ खस जाति का पूर्व इतिहास ४७

एशियाई पहाड़ी लोग, असुर, एलाम, बाबेलु (बैबीलोन), चाल्डिया, दजला-फुरात नदियाँ, मैसोपोटामिया में खस (कस्साइट) संस्कृति का प्रभाव, मछली,बर्तन तथा आभूषण, भारतीय काशि, सिन्धु-सिडौन, साटन खस हखमनीश शासकों की उपाधि, अदम् कुरुस् खशयथिया हखमनीशिया

अध्याय—५ वैदिक दमूना तथा पणि ६२

फीनिसियन ही पणि, कनान, पूर्व के लोग, नगर राज्य, हिमालय सीमान्त के पणि, ऐपण, मनु अरूपा, परिव्रजन-आचारहीनता

अध्याय—६ पश्चिम एशिया की कस्स (कस्साइट) जातियाँ ७४

हिक्सौस अथवा यक्ष, महाशक, हिन्दू संस्कृति में सेमिटिक तत्व

अध्याय—७ पाणिनि के समय के जनपद ८५

किरात, असुरों का राक्षसी व्यवहार,असुर शासन का अन्त, कुमाऊँ में असुर, हखमनीश शासकों के जनपद और गण, कम्बोज, प्रावणव, गान्धार, सिन्धु अभिजन, सौबीर, ब्राह्मणक्,

पृष्ठ

अपकर, पारस्कर, कच्छ, केकय, मद्र, उषीनर, अम्बष्ट, त्रिगर्त, कालकूट, कुरु, साल्व, प्रत्यग्रथ, अजाद, रंकु, आत्रेय, कोसल, काशि, वृज्जि, मगध, कलिंग, सूरमास, अवन्ति, अश्मक, वर्बर, काश्मीर, पालि और बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित जनपद, रेणु राजा के सात प्रदेश

अध्याय—८ **उत्तर पंचाल देश का अंग—कुमाऊँ** ९८
कृवि या कृमि पश्चिम एशिया में, पंचाल और हिमालय, भावर और पंचाल, गोविषाण

अध्याय—९ **उत्तरापथ के हिन्द यवन शासक और कुमाऊँ** १०४
खस (कस्सी) सैनिक, हखमनीश धर्म, सिकन्दर का आक्रमण, सिकन्दर के उत्तराधिकारी, मिनिण्डर, मौर्य शासन पर यवन प्रभाव, स्थापत्य पर यवन प्रभाव, देवी नैना यवन आर्या देश भागदत्त अथवा अपोलोडोटस

अध्याय—१० **उत्तरापथ के अशोक के धर्म लेख** ११२
गांधार का नव आविष्कृत अभिलेख, सहर-इ-कुना, अभिलेख के ग्रीक पाठ का भाषान्तर, अभिलेख के आर्मीनी पाठ का भाषान्तर, अन्य नये प्राप्त अभिलेख, मौर्य वंश, हखमनीशों की अनुकृति, कालसी के शिलालेख

अध्याय—११ **कुमाऊँ में पार्थव, रोमन और कुषाण** ११८
कुषाणों के पूर्वज, कुषाण भारतीय शक, पार्थव, कदफिस

अध्याय—१२ **गरुड़ (अलमोड़ा) में पाये गये सिक्के** १२४
गोनन्द, सिक्कों की आकृति, अलमोड़ा सिक्के, लैन्सडाउन सिक्के, अमोघ भूति, नाग, मित्र राजवंश, नाग उर्वरता कर्म काण्ड में, भारतीय पुराणों में नाग, यौधेयों के सिक्के, बहु धान्यक तथा बधाण

अध्याय—१३ **गुप्त वंश के राजा तथा कुमाऊँ** १३१
घटोत्कच और कुमाऊँ, श्री गुप्त के पूर्वज व्रात्य, गुप्त राजधानी, कर्तृपुर (कत्यूर), चन्द्रगुप्त द्वितीय तोरमाण, फाहियान, लौहित्य देश, बाण भट्ट का 'हर्ष चरित' और कुमाऊँ, अन्तिम गुप्त राजा, हर्ष का सम्बन्धी, प्रभाकर वर्धन, प्राग्ज्योतिष का राजदूत

पृष्ठ

अध्याय—१४ हर्ष के समय में कुमाऊँ १४०
ह्वेनसांग, गोविषाण, अहिछत्रा, ब्रह्मपुर, स्त्रुघ्न, गंगा (भू-स्वर्ग), माटी पोलो, हरिद्वार, नैपाल, काशगर, ब्रह्मपुर त्रिपाठी के अनुसार, विनसर, ब्रह्मपुर राज्य, कीत्य और कत्यूर, गोविषाण की स्थिति

अध्याय—१५ कत्यूर (कार्तिकेयपुर) के शासक १५३
राजाओं की देव उपाधि, दूसरा ताम्र पत्र, तीसरा ताम्रपत्र, चौथा ताम्र पत्र, शिलालेख, तंगण परतंगण

अध्याय—१६ काश्मीर के कस (खस) और कुमाऊँ १६४
कश्यप, काश्मीर (कस्पीर) तथा काश्मीरी (कस्पीरोई), बौद्ध यात्री, कुषाण, अलबरूनी, यहूदी आप्रवासी, काश्मीर की राजधानी, राज तरंगिणी, कुनिन्द या गौनन्द वंश, कत्यूर काश्मीर का अंग. बौद्ध से इस्लाम, सिकन्दर बुत शिकन, कराचल या फराजल

अध्याय—१७ कुमाऊँ के राजा और जागेश्वर १७२
पन्त आप्रवासी, प्रथम आप्रवासी राज्य शासन, मल्ल शासन के मांडलिक, पक्षपात या प्रतिनिधि

अध्याय—१८ नैपाल और कुमाऊँ १८२
नैपाल (नेपाल), किरात वंश, खस तथा दमाई, थारु, मल्ल, मल्ल गुई सेप टुच्ची के अनुसार, शिलालेखों का जंगल, मल्ल खस थे, नायर या नैवारी, मल्ल दूसरी बार, गोरखा शासन, मल्ल जाति का विनाश, वन मानुष, कुमाऊँ नेपाल के आधीन, किरात राज्य का अन्त।

अध्याय—१९ चम्पावत के कुमू राजा १९३
खस विद्रोह, तैमूर का आक्रमण, कुमु राज्य का विस्तार, ढिकुली, ब्रह्मराजा, अस्कोट बारा मंडल पर अधिकार, फल्दाकोट

अध्याय—२० दिल्ली सल्तनत और कुमाऊँ २०२
आलमनगर की स्थापना, खवास खाँ, एक और शरणार्थी राजकुमार, मुगल काल में कुमाऊँ की शासन व्यवस्था

अध्याय—२१ राजा रुद्रचन्द और उसका सेना पति पुरुखू पंत २१०
जहाँगीर के संस्मरण, तराई भाबर, पुरुखू पंत बन्दी, बधाण

पृष्ठ

अध्याय—२२ **शक्ति गोसांई और सियार राजा** २१६
गढवाल, मुगल प्रभाव, कल्याण चन्द के अत्याचार, रुहेलों का राज्य, अवध के नवाब से झगड़ा, पानीपत का युद्ध

अध्याय—२३ **दीपचन्द और उसका राजप शिवदेव जोशी** २२२
बांसुली सेरा का युद्ध, काली कुमाऊँ के फर्त्याल, कुमाऊँ में गृह कलह, जोधासिंह, हाफिज रहमत खाँ, ताम्र पत्र शिवदेव जोशी के नाम

अध्याय—२४ **कूटनीतिज्ञ दीवान हरख देव जोशी** २२७
तीसरी मुक्ति, नागा साधुओं का आक्रमण, गढ़वाल पर आक्रमण, हरखदेव के कठपुतली राजा, चौथी मुक्ति, कुमाऊँ में गोरखा शासन, नैपाल में आपस में फूट, राजा गढ़वाल का वकील, पाँचवीं मुक्ति, साँच को आँच नहीं, कुमाऊँ पर आक्रमण, गोरखा युद्ध, गोरखा युद्ध का कुमाऊँनी मोर्चा, काली कुमाऊँ की ओर, अल्मोड़े की ओर, काली कुमाऊँ की ओर, अल्मोड़े की ओर, पश्चिम की ओरके युद्ध मोर्चे

अध्याय—२५ **कुमाऊँ में आरंभिक ब्रिटिश शासन** २४७
नैपाल से फिर युद्ध, आरम्भिक ब्रिटिश शासन, रामजी साहब, सन् १८५७ का स्वतन्त्रता आन्दोलन, रैमजे की सन् १८५७ सम्बन्धी रिपोर्ट, पुलिस व्यवस्था, कुली उतार, स्वतन्त्रता आन्दोलन

अध्याय—२६ **ऐतिहासिक तालिका** २५७
मनुष्य के उत्कर्ष की धारा में पहाड़ी लोग, भारत तथा शेष विश्व, कुमाऊँ और शेष विश्व की ऐतिहासिक तालिका
परिशिष्ट—कत्यूरी राजकर्मचारी

भाग—२ सांस्कृतिक इतिहास

अध्याय—२७ **त्यौहारों में लोकधर्म का स्वरूप** २६५
हरियाला, खस, बगवाल (दीपावली), काक पूजन, श्वान पूजा, टीका

अध्याय—२८ **पहाड़ी संस्कृति में मातृदेवी-नना या नैना** ३००
मातृ देवी की कल्पना, उर नगर की इष्ट देवी नन्ना, वैदिक

पृष्ठ

देवी नना, नना देवी की मूर्ति का अपहरण, नैनी और ननै, किरात संस्कार

अध्याय—२९ **कुमाऊँ में जाति और उपजातियों की रूढ़िवादिता** ३०६

अध्याय—३० **चन्दों के शासन में राजकर्मचारी, चन्द शासन में जाति और उपजातियाँ** ३१४

अध्याय—३१ **कुमाऊँ में बौद्ध धर्म का स्वरूप** ३२०

वज्रयान, दारुण, पौन, श्मशान साधक, भोट देश में पौन, गुई सेप टुच्ची की खोज, कुमाऊँ में तन्त्रवाद

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूचि ३२७

वर्णानुक्रमिका ३३०

चित्रों और मानचित्रों की सूची

१—हिमालय पर्वत शृंग पृष्ठ ४

२—(i) कत्यूरी स्थापत्य

(ii) डिकरे नन्दाष्टमी के अवसर पर केले के स्तम्भ से निर्मित नन्दादेवी की मुखाकृतियाँ पृष्ठ—५

३—बौरारौ घाटी में सोमेश्वर पृष्ठ—१२

४—बैजनाथ की उपास्य देवी पृष्ठ—१३

५ (i) वैजनाथ मन्दिर समूह पृष्ठ—३४

(ii) द्वाराहाट—कत्यूरी शिला शिल्प

६—जागेश्वर मन्दिर समूह पृष्ठ—३५

७—मेरीहुआना पौधा पृष्ठ—६४

८—उत्तरापथ के प्राचीन सिक्के पृष्ठ—६५

९—कुमाऊँ का मानचित्र पृष्ठ—७३

१०—असुर साम्राज्य का मानचित्र पृष्ठ—७४

११—(i) असुर देवता पृष्ठ—८०

(il) असुर धनुर्धर और उसका अंगरक्षक

(iii) असुर नासिरपाल

(iv) सारगोन–अक्कद का

(v) ऐसारहेद्दौन-बन्दी मिस्र के शासक के साथ

१२—(i) असुर शासक सूर्य की उपासना करते हुए — पृष्ठ— ८१

(ii) गिलगमिश महाकाव्य का एक फलकांश

(iii) कीलाक्षर लिपि में अभिलिखित स्वर्णपत्र फारसी, एलामी तथा अक्कद भाषा में

(iv) हित्ती देवता— तेशव, रुद्र (सूर्य) की प्रतिमा १२०० ई० पू०

१३—(i) अशोक का ग्रीक आर्मीनी-शिलालेख — पृष्ठ—१५४

(ii) गरुड़ (अलमोड़ा) में पाये गए सिक्के

१४—पांडुकेश्वर प्लेट—कत्यूरी ताम्रपत्र — पृष्ठ १५५

१५—कुमू, कत्यूर तथा खस राज्य — पृष्ठ—२२४

१६—(i) जागेश्वर—पौन राजा की मूर्ति — पृष्ठ—२२५

(ii) कुमाऊँ का सबसे प्राचीन बौद्धशैली का मन्दिर नव-दुर्गा जागेश्वर

(iii) गिलगमिश की वेलनाकार मुहर

(iv) वेलनाकार मुहर जिसमें सूर्य की आकृति है

(v) चम्पावत के एक मन्दिर की प्रतिमा

नाम, स्थिति तथा विस्तार

कुमू नाम अति प्राचीन[1] है। यह सोलहवीं सदी ईस्वी तक चम्पावत तथा उसके निकट के भूक्षेत्र का नाम था। अकबर के समय में मुगल साम्राज्य का सरकार (सूबा) कुमायू[2] सरकार (सूबा) बदायूँ से मिला हुआ पूर्वोत्तर सूबा था। उसमें वर्तमान कुमायूँ का तराई भावर क्षेत्र, बिजनौर-मुरादाबाद जिलों का नजीबाबाद सम्भल तक का उत्तर पूर्व क्षेत्र तथा कांठ व गोला अर्थात् शाहजहाँपुर तथा गोला गोकर्णनाथ तक का पहाड़ों से मिला भूभाग था। वर्तमान अल्मोड़ा, कत्यूर, धनिया-कोट, फल्दा कोट, तथा उत्तर में अस्कोट, सोर और सीरा सन् १५६३ ई० तक कुमायूँ या कुमाऊँ के अन्तरर्गत नहीं थे। गोरखा शासन (१७९०-१८१५ ई०) के समय शारदा (काली) नदी के उद्गम से खटीमा तक कुमाऊँ राज्य की पूर्वी सीमा थी। पश्चिम में नन्दादेवी, पश्चिमी त्रिशूल, पिंडर नदी का पूर्वी पनढर, ग्वालदम तथा पनुवाखाल-मेहलचौरी कुमाऊँ राज की सीमा थी। यही स्थिति अंग्रेजों के आने तक बनी रही।

अंग्रेजी शासनकाल के आरम्भ में कुमाऊँ प्रान्त में कुमाऊँ, गढ़वाल और तराई ये तीन प्रभाग थे। कुमाऊँ के 'प्राविन्स' का जिलाधिकारी 'सुपरिन्टेडेंट ऑफ कुमाऊँ,' कहलाता था। तराई का अधिकारी सीनियर असिस्टेंट कमिश्नर कहा जाता था तथा गढ़वाल[4] एक पृथक् जिला सन् १८३९ ई० में बना था। सन् १८८५ में जब प्रशासनिक सुविधा के लिए कुमाऊँ का एक पृथक आयुक्त मण्डल (कमिश्नरी) बना तो उसमें तराई, कुमाऊँ और गढ़वाल ये तीन जिले थे। सन् १८९१ में कुमाऊँ के छः परगनों और तराई-भाबर को मिलाकर नैनीताल नाम से एक नया जिला बनाया गया और उन छः परगनों के कट जाने से शेष रहे पूर्वोत्तर कुमाऊँ को अल्मोड़ा जिला नाम दिया गया। ये छः परगने थे छखाता, कोटा, धनियाकोट, रामगढ़, कोटुली तथा ध्यानिरौ (सरकारी विज्ञप्ति सं० २५३३/१-७२५ ए, दिनांक १३-१०-१८९१)।

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक कुमाऊँ आयुक्त मंडल में अल्मोड़ा, गढ़वाल तथा नैनीताल ये तीन जिले थे। सन् १९४८ में टिहरी गढ़वाल राज्य के विलय से कुमाऊँ आयुक्त मंडल के अंन्तर्गत टिहरी गढ़वाल चौथे जिले के रूप में सम्मिलित किया गया। इस प्रकार तब वर्तमान उत्तर प्रदेश का समूचा पहाड़ी प्रदेश, केवल देहरादून की मसूरी-चकराता पहाड़ियों को छोड़कर कुमाऊँ आयुक्त मंडल के अंन्तर्गत आ गया था। सन् १९६१ में चीन के साथ हुए संघर्ष के बाद कुमाऊँ आयुक्त मंडल की तिब्बती सीमांत से लगी पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तरकाशी तहसीलों को इसी नाम के तीन

पृथक जिलों का दर्जा मिला। इन तीनों नये जिलों को मिलाकर उत्तराखण्ड नामक एक नया आयुक्त मंडल निर्मित हुआ। चारों जिलों के शेष भाग कुमाऊँ आयुक्त मंडल के अन्तर्गत रहे। कुछ वर्ष उपरांत गढ़वाल और कुमाऊँ ये दो अलग-अलग आयुक्त मंडल बना दिए गए। इस प्रकार पूर्ववर्ती कुमाऊँ आयुक्त मंडल के स्थान पर तीन आयुक्त मंडलों की रचना हुई। इस त्रिवेणी में उत्तराखण्ड की स्थिति प्रयाग की त्रिवेणी की सरस्वती की भाँति है। उत्तराखण्ड का कोई पृथक आयुक्त नहीं है। कुमाऊँ मंडल में पिथौरागढ़, अलमोड़ा और नैनीताल ये तीन जिले हैं तथा शेष चार पहाड़ी जिले गढ़वाल मंडल में हैं। सन् १९७५ में देहरादून जिले को गढ़वाल मंडल के पाँचवे जिले के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। इसी वर्ष अलमोड़ा जिले की चम्पावत तहसील को भी पिथौरागढ़ जिले में मिला दिया गया। इस भाँति प्राचीन काली कुमू का क्षेत्र अब पिथौरागढ़ जिले का क्षेत्र है।

प्राकृतिक स्थिति—ईसापूर्व जो जातियाँ कुमाऊँ में बाहर से आईं वे सभी उत्तरी पहाड़ी मार्गों से आई थीं। काशि (कस्साइट), असुर (असीनियरन), शक (सीथियन) तथा हिन्द यवन जातियाँ उत्तर पश्चिम के पहाड़ी मार्गों से कुमाऊँ में समय समय पर आईं। मध्य काल में नैपाल की ओर से मल्ल शासकों ने कुमाऊँ पर अधिकार किया। वे भी पर्वतीय मार्गों से ही इन जिलों में आए। वास्तव में हरिद्वार से ब्रह्मदेव (टनकपुर) तक की कुमाऊँ की दक्षिणी सीमा पूर्वकाल में घने ज्वराक्रान्त जंगलों और दलदलों से भरी होने के कारण वाह्य आक्रमणकारी के लिए दुर्लंध्य, थीं। जाड़े की ऋतु में जब कुछ मास के लिए नदियों में जल कम हो जाता तो कोसी[५] रामगंगा या काली (शारदा) के भागों से पहाड़ों पर आना सम्भव हो सकता था। यही स्थिति उन्नीसवीं सदी के आरम्भ तक बनी रही। अंग्रेजों ने सन् १८१५ में जब कुमाऊँ की राजधानी अलमोड़ा पर आक्रमण किया तो एक टुकड़ी रामगंगा के किनारे किनारे रामपुर से चलकर मुरादाबाद काशीपुर मार्गसे ताड़ खेत (वर्तमान ताड़ीखेत), स्याहीदेवी की ओर से अलमोड़ा पहुँची और दूसरी शारदा नदी के मार्ग से चम्पावत। यह आक्रमण भी सन् १८१५ की जाड़े की ऋतु में ही हुआ। दक्षिण सीमा के विपरीत उत्तरी सीमा से कुमाऊँ में आने के अनेक हिम दर्रे अति प्राचीन काल से ही प्रयोग में आते रहे हैं। ऊँची हिमश्रेणियों के उत्तर पूर्व से पश्चिम की ओर आने जाने वाले हिम दर्रों को पाणिनि (पाँचवी सदी ईस्वी पूर्व) अजपथ[६] कहता है। इन मार्गों से हिमालय के आर-पार उत्तर दक्षिण भी कई घाट[७] (हिमदर्रे) थे जिनका वर्णन बैटन की कुमाऊँ की पहली वन्दोबस्त रिपोर्ट में किया गया है। इन हिमदर्रों से नमक, सुहागा, ऊन, रेशम और स्वर्णधूलि आती थी और कुमाऊँ से होकर अन्न तथा सूखे मेवे, चीनी, गुड़, कपड़ा आदि तिब्बत होकर मध्य एशिया में मंगोलिया, समरकंद तक तथा पूर्व में ल्हासा होकर कम्बोडिया तक जाता था।

पश्चिम की ओर मितुर, बुड़ा या शौक कहे गये कुमाऊँनी सीमान्त व्यापारियों[८] के काफिले बुखारा, दमिश्क तथा अन्तिओक (भूमध्य सागर) तक आते जाते थे।

वहुधा कहा जाता है कि भारत की उत्तरी सीमा पर हिम श्रेणियाँ पंक्तिबद्ध खड़ी तिब्बत की ठंडी हवाओं को ही नहीं रोकतीं वरन् उस ओर से आने वाले आक्रमणकारियों की भी वर्जना करती हैं। यह कथन आंशिक रूप से ही सत्य हैं। हिमालय की त्रिशूल, नन्दादेवी, नन्दाकोट और पंचचूली श्रेणियाँ जो उत्तर भारत के प्रायः सभी स्थानों से दिखाई देती हैं भारत की उत्तरी सीमा का निर्माण नहीं करती हैं। वास्तव में ये सभी श्रेणियों कुमाऊँ के मध्यवर्ती भाग में स्थित हैं। इन श्रेणियों के उपरान्त अपेक्षाकृत कम ऊँचा पर्याप्त लम्बा चौड़ा हिम प्रदेशीय भूभाग है। इस भूभाग में कुमाऊँ के दानपुर, जोहार, दारमा, व्यास तथा चौंदास के परगने हैं। इस भूभाग में ही कुमाऊँ की सबसे रमणीक गोरी गंगा की घाटी जोहार है। गोरी गंगा का उद्गम मिलम ग्लेशियर एशिया का सबसे बड़ा ग्लेशियर है। हिमालय की भारत स्थित सबसे ऊँची श्रेणी नन्दा देवी के बाद ही गोरी, दारमा और कुटी नदी घाटियों का विशाल भूखण्ड है जिसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई नन्दादेवी की आधी भी नहीं है। इस भूभाग में सीमान्त व्यापारियों के उक्त नदी घाटियों में बसे अनेक गाँव हैं। कुमाऊँ का अंग्रेजों के समय तक का सबसे बड़ा सबसे सम्पन्न गाँव मिलम (११२००′) इसी भूभाग में स्थित है। मिलम से कई पड़ाव के बाद उत्तर में ऊँटघूरा (१७६४०′) नामक हिम घाट है। जहाँ से कैलास मानसरोवर जाने का अति प्राचीन मार्ग था। मानसरोवर की यात्रा से लौटने के लिए दूसरा हिमघाट लिपूलेख है जो बिहंगम दूरी में मिलम से लगभग १२० किलोमीटर पूर्व में स्थित है।

राजनीतिक इतिहास के अध्ययन के लिये कुमाऊँ के विभिन्न भागों का जो भौगोलिक वर्णन अंग्रेज सर्वेक्षकों और अधिकारियों ने अपने शासन के आरम्भिक वर्षों में किया था वह आज भी महत्वपूर्ण है। बैटन की बन्दोबस्त रिपोर्ट (१८४१ ई०) के उद्धरण उन भूभागों की स्थिति के लिये यहाँ दिये जाते हैं।

दारमा-जोहार—"हिमालय के दक्षिण पनढर पर घाघरा नदी की घाटी में ११ बड़े बड़े गाँव हैं जिनकी समुद्रतल से ऊँचाई १००००′ से ११३००′ तक है। यह सभी ऊँची हिमश्रेणियों की पंक्ति के पीछे उत्तर की ओर हैं। इनके एक ओर वह पनढर है जिसमें भारत की ओर बहने वाली नदियाँ हैं और दूसरी ओर तिब्बत का पठार। इन गाँवों की स्थिति विचित्र है। यह स्थिति उन लोगों की समझ में नहीं आ सकती जो निचले मध्यवर्ती पहाड़ों से हिमालय की ओर देखते हैं और इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि प्रमुख नदियाँ हिमालय के इस ओर से नहीं निकलती हैं। ये गाँव वृहत्‌हिम शृंखला के पार हैं और ब्रिटिश भारत में हैं। मिलम से होकर हूण

देश[९] में जाने वाला घाट ऊँटधूरा कहलाता है। यद्यपि इसमें से होकर सबसे अधिक माल आता जाता है फिर भी इसे पार करना आसान नहीं है। सभी हिम घाट विशेषतः जौहार के गाँवों के उत्तर के हिमघाट बीहड़, ऊबड़-खाबड़ और खतरनाक भूभाग में स्थित है। गाँव तो अधिकांश खुली और सुगम जगहों में स्थित हैं किन्तु गाँवों के नीचे का चट्टानों को भेद कर बहती हुई नदी तट तक का मार्ग भी बड़ा कठिन है। इन मार्गों से नदी तक उतरना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। नदी की ओर के वनों में हरे-भरे वृक्ष हैं। मध्यवर्ती धौली या गौरी नदी की बर्फीली घाटी दारमा कहलाती है। पंचचूला[१०] हिमश्रेणी इस घाटी को पश्चिम की ओर स्थित जोहार घाटी से पृथक करती है। दारमा घाटी का सबसे पूर्वी भोट[११] महाल व्यास कहलाता है। व्यास घाटी में काली नदी के दो स्रोत हैं। कुटी (कुंटी) नदी का नाम इसी घाटी में बसे सबसे उत्तरी गाँव कुटी पर पड़ा है। काली और कुटी नदियों के उद्गम से होकर लौकप्या और लिपू नामक उत्तर की ओर के हिमघाटों तक जाने के मार्ग हैं।

"व्यास घाटी के बहुत से भोटिया, जो जोहार वाले अपने साथियों के समान सम्पन्न नहीं हैं, जाड़े के दिनों में ब्रह्मदेव और सनेह की बाजारों में घूमते व्यापार करते देखे जा सकते हैं। इन्हीं स्थानों पर उनकी पहाड़ी नदियाँ मैदानों में प्रवेश करती हैं। मुझे उनमें से कुछ प्रमुख व्यापारी अपने आढ़तियों से फर्रुखाबाद और बरेली से मिलकर लौटते हुए मिले।" (पृष्ठ ५७२)

दानपुर—"कुमाऊँ का दानपुर परगना गढ़वाल के नागपुर परगने के समान है। इसमें समूचे ब्रिटिश राज्य की सबसे ऊँची पर्वतश्रेणी नन्दीदेवी[१२] स्थित है। इसी 'दैत्याकार पूर्वी सितारे" के मूल से इसके पड़ौसी नन्दाकोट के पास तीन नदियाँ निकलती हैं। ये पिंडर, सरयू और पूर्वी रामगंगा हैं। इस परगने का पश्चिमी भाग गोमती और सरयू का पनढर है। सरयू और गोमती बागेश्वर नामक अतिप्राचीन स्थल पर मिलती हैं। बागेश्वर बैजनाथ के पहाड़ी राजाओं का पवित्र स्थल था। कहा जाता है कि जब हरिद्वार में गंगा का पुण्य समाप्त हो जायगा तो उसका यश शारदा को मिलेगा और सरयू तट पर स्थित बागेश्वर हरिद्वार के समान महात्म्य की प्राप्ति करेगा[१३]। बैजनाथ कत्यूर के पहाड़ी राजाओं की राजधानी रहा है। दानपुर और कत्यूर में सिंचाई की सुविधाएँ हैं किन्तु सरयू की घाटी के ऊपर की ओर बधान का जलवायु स्वास्थ्यप्रद नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ महामारी ज्वर का प्रकोप रहा है। बधान तथा पिंडर और सरयू की घाटी में इस महामारी से अनेक मृत्युएँ हुई हैं। कत्यूर की जलवायु कुछ अच्छी है। गोमती की घाटी में गरुड़ नामक स्थल समुद्रतल से लगभग ४००० फिट की ऊँचाई पर स्थित है। इसके चारों ओर सुन्दर गाँव बसे हुए हैं। यहाँ कत्यूर की राजधानी के ऊपर पहाड़ के प्राचीन

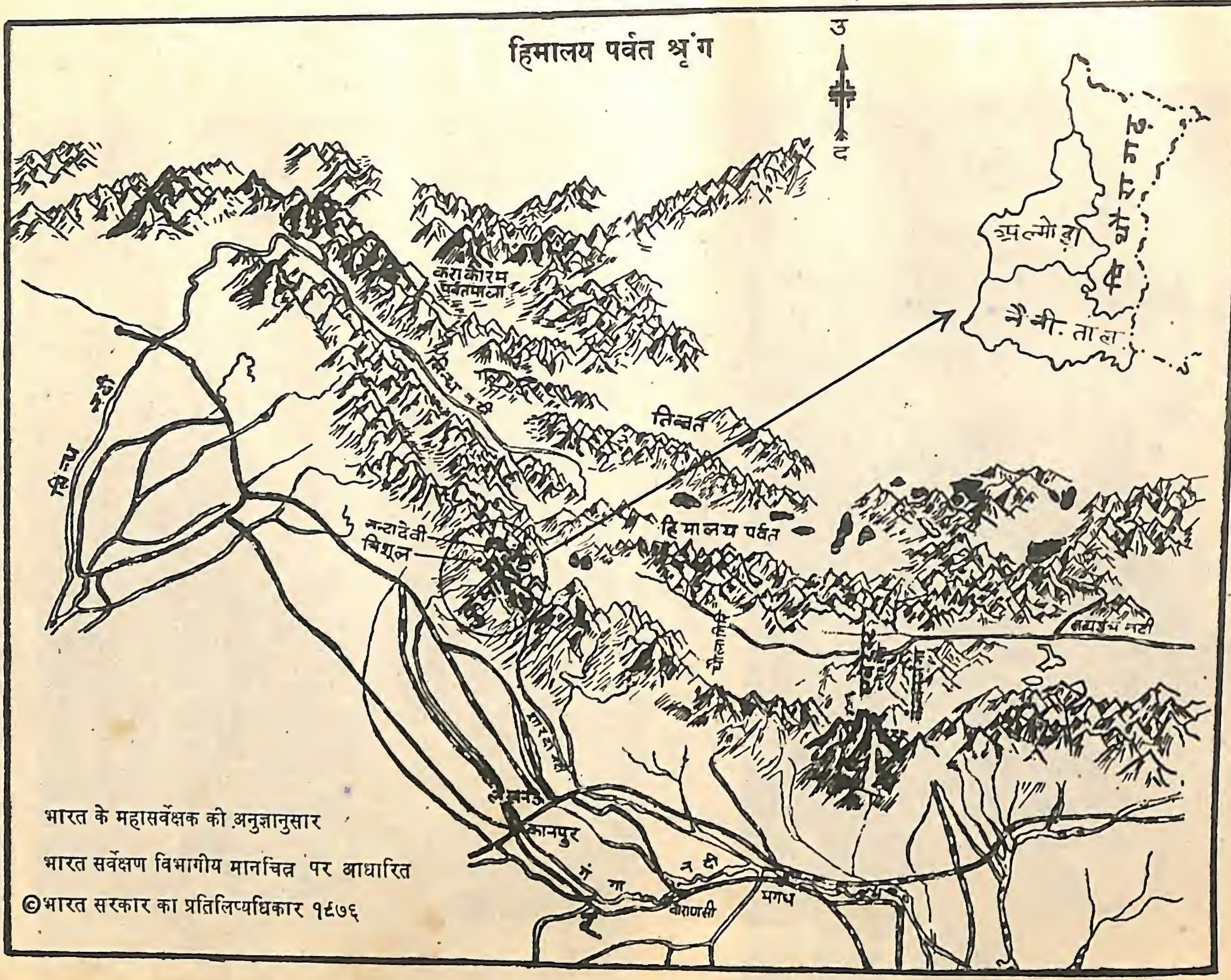

हिमालय पर्वत श्रृंग
उ
द
कराकोरम पर्वतमाला
तिब्बत
हिमालय पर्वत
नन्दादेवी
त्रिशूल
अल्मोड़ा
नैनी. ताल
कानपुर
गंगा नदी
वाराणसी
मगध
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार
भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित
©भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार १९७६

कत्यूरी स्थापत्य

नन्दाष्टमी के अवसर पर केले के स्तम्भ से निर्मित नन्दादेवी की मुखाकृतियाँ

राजाओं का किला रणचूला है। रणचूला से चारों ओर के हरे भरे समतल गाँवों का दृश्य बड़ा रमणीक है।

"बैजनाथ-गरुड़ की घाटी कुमाऊँ और गढ़वाल दोनों राज्यों की सीमा पर स्थित है। सम्भवतः यह अनेक बार युद्ध स्थल बनी है। इसी कारण यहाँ कृषि में कभी उन्नति नहीं हुई है। लोग युद्ध के दिनों में अपने गाँवों को छोड़कर भागने को विवश हुए। दानपुर के अनेक गाँवों में तीन मुख्य पधान मल्हूकसिंह, लालसिंह और फतेहसिंह हैं। मल्हूकसिंह की सम्पन्नता का कारण उसके भेड़ों के झुण्ड हैं। पिंडर और सरयू की घाटी में उसकी भेड़ों के चरने के लिए बड़े सुन्दर चरागाह हैं। वह प्रतिवर्ष भोटिया व्यापारियों से नमक, सुहागा तथा अनाज का व्यापार विनिमय करता है। ये भेड़ें इन वस्तुओं को ढोने के काम में भी आती हैं। कत्यूर में भी तीन ही बड़े थोकदार पदमसिंह दोसाद, पूना और गुमानसिंह हैं जो पडियार जाति के हैं।

गंगोली—"सरयू और रामगंगा घाटी के दक्षिण की ओर का परगना गंगोली है। ये दोनों नदियाँ रामेश्वर नामक स्थान पर मिलती हैं। उसके उपरांत यह नदी सरयू कहलाती है और पचेसर होते हुए काली नदी में मिल जाती है। गंगोली में वेल, बड़ाऊँ, कुमेश्वर, अठगाँव तथा पुंगराव ये पाँच पट्टियाँ हैं। इनमें उत्तर की पुंगराव पट्टी बड़ी उपजाऊ है। भोटिया व्यापारी इसी पट्टी से अन्न खरीदते हैं। रामगंगा के किनारे बसे हुए कुछ गाँव बड़े गरम हैं। बड़ाऊँ पट्टी में थल नामक गाँव में प्रतिवर्ष अप्रेल के महीने में एक बड़ा मेला लगता है जिसमें उत्तर के तीन हिम घाटों से लाए हुए माल का पहाड़ी लोगों के साथ व्यापार विनिमय का अन्तिम सत्र पूरा होता है[१४]। इस पट्टी में ताँबे की खानें हैं। गंगोली के किसान गंगाबल्लभ पंत को जो अल्मोड़े में रहते हैं, लगान देते हैं। इस परगने के प्रमुख थोकदार भोलादत्त पाठक, उत्तमसिंह मेहता और गजेसिंह बफीला हैं।

अस्कोट—"काली के दाहिने तट पर चौदास पट्टी के नीचे तथा ध्वज पर्वत के उत्तर की ओर अस्कोट[१५] का ताल्लुका है यह दो जमीदारियों से बना है जिनमें क्रमशः ८४ और २५ मौजे हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह सीरा परगने का पूर्वी भाग है। इस ताल्लुके का नदीतट का भाग बहुत नीचा और गरम है। इस घाटी में साल, सिसउ, खैर आदि उष्ण कटिबंध के जंगल हैं। सैनिक दृष्टि से अस्कोट का पहाड़ दारमा और व्यास के हिम दर्रों के नियंत्रण के लिए आदर्श स्थल है क्योंकि गौरी गंगा की घाटी को धौली और काली की घाटियों से पृथक् करने वाली चिफलाधार पर्वत माला अस्कोट के उत्तर पूर्व में है। जोहार दारमा जाने के लिए चिफलाधार पर्वत को पार करना सम्भव नहीं है इसीलिये उत्तर की ओर की घाटियों में जाने के लिए काली नदी के किनारे तक नीचे[१६] उतरना पड़ता है। अस्कोट के जमींदार पहाड़

की मल्ल उपशाखा के साही नामक जाति के लोग हैं। उनकी उपाधि रजबार है। इस राजवंश की एक शाखा आज भी डोटी में है। इस जमींदारी का वर्तमान मालिक वहादुर पाल है।

सीरा—"रामगंगा और गौरी गंगा नदियों के मध्य तल्ला जोहार तथा गंगोली से मिला हुआ परगना सीरा कहलाता है। इसमें वारा-वीसी, अट्ठा-वीसी, डीडीहाट तथा माली नाम की चार पट्टियाँ हैं। गोरी गंगा की घाटी का भूभाग घने जंगलों से आवृत है। किसी समय सीराकोट[17] का किला डोटी की साही राजसत्ता के अधीन था। साही मल्ल राजपूतों की एक शाखा है। कालान्तर में सीरोकोट के कुमाऊँ के चंद राजाओं द्वारा ले लिए जाने पर सीराकोट में चंद राजाओं का कारागार रहा। सीरा में थल गाँव के निकट आगर ताँवे की खान के लिए प्रसिद्ध है। कुमाऊँ के गाँवों के खस लोग इन खानों में काम करना पसंद नहीं करते और खनन का कार्य नीच जाति के आगरियों को सौंप दिया जाता है। इस पट्टी में ग्यारह थोकदार हैं तथा ताँवे की खान का प्रवंध खुशालसिंह वसेड़ा के हाथ में है। सम्भवतः डीडीहाट का चंचल सिंह वफीला सभी थोकदारों में कुशल है।

सोर—"पिथौरागढ़ की प्रसिद्ध सैनिक चौकी इस परगने के मध्य में रामगंगा और काली नदी की मध्यवर्ती पहाड़ी चंडाक के अन्त में समतल स्थल में है। इसीलिए इस समतल भूभाग को सैणी (समतल) सोर[18] भी कहते हैं। काली और रामगंगा के मध्य में ध्वज पर्वत है। पिथौरागढ़ के चतुर्दिक छः विभिन्न कबीलों द्वारा बसी हुई इतनी ही पट्टियाँ हैं। ये सभी पट्टियाँ महर नामक स्थल के चारों ओर हैं। रामगंगा की घाटी में चना और गुरंग की सुन्दर द्रोणियाँ हैं। पूर्वी कुमाऊँ का यह स्थल सबसे सुन्दर और उपजाऊ कहा जा सकता है। इस पट्टी में गन्ना, तम्बाकू तथा कपास की खेती होती है। ये वस्तुएँ ग्रामवासी अपने ही उपयोग के लिए पैदा करते हैं। सभी प्रकार के अन्नों की फसलें यहाँ होती हैं। वास्तव में यह परगना एक पूरा उद्यान है। इस परगने में अठारह थोकदार हैं। कुछ गोरखाली पेन्शनरों ने भी सोर में अपने मकान बना लिए हैं। थोकदारों में धनी महर फर्त्यालों[19] का प्रमुख तथा तेजसिंह महर उनके प्रतिद्वन्द्वी मर धड़े का प्रमुख है। तारा भट्ट सेठी पट्टी का बड़ा झगड़ालू थोकदार है। वह अन्य थोकदारों द्वारा "मशहूर जाली" कहा जाता है। सोर के निवासी यद्यपि बहादुर और कर्मण्य हैं, किन्तु वहाँ के लोग आपस में काली कुमाऊँ के मर और फर्त्याल धड़ों की भाँति लड़ते रहते हैं। इस परगने के विषय में (पिछली सदी में) यह गीत प्रसिद्ध है—

सोर हराम खोर। बाप भडुए बेटी मैतोर।
सोर को नाली कत्यूर को माणो। जैई जैठुली खसम जै नानो[20]॥

(सोर अपयश का जीवन बिताता है। बाप भडुए हैं और बेटी मायके रहा करती है। सोर की दो सेर की माप-नाली कत्यूर में एक माणा–आधा सेर के बराबर है। स्त्रियाँ बड़ी हैं और पति उनसे छोटे हैं।)

स्कॉटलैण्ड के पहाड़ों के लोगों की आपसी धड़ेबाजी कुमाऊँ के इन लोगों की धड़ेबन्दी के समान है। स्कॉटलैण्ड के पहाड़ियों ने तो अब कुछ समय से अपने आपस के झगड़े समाज की भलाई और कानून की दृष्टि में भुला दिये हैं किन्तु सोर के पहाड़ी लोग सच्चाई, शांति और नैतिकता को भुलाकर और साधारण साक्ष्य को भी तिलांजलि देकर आपसी धड़ेबन्दी में फँसे हुए हैं।

"सोर से कुछ दूर काली नदी पर झूलाघाट नामक ब्रिटिश और नैपाल सरकारों के संयुक्त प्रयत्न से लोहे के रस्सों का एक पुल बन गया है जिससे सोर तथा डोटी और नैपाल के बीच व्यापार में बड़ी सुविधा हो गई है। इस पुल को बने हुए दस वर्ष हो गए हैं। यह दोनों ओर की सैनिक चौकियों के प्रयोग में भी आता है। डोटी से काली कुमाऊँ में घी, शहद, मोम तथा फुलेल का आयात होता है तथा डोटी को कपड़े, धातु के बर्तन तथा इसी प्रकार की अन्य चीजें जाती हैं।

काली कुमाऊँ—"काली कुमाऊँ का परगना बहुत विस्तृत है। इसके उत्तर में पुनार और सरयू नदियाँ हैं, दक्षिण में भाबर, पूर्व में काली नदी और पश्चिम में लधिया नदी की एक शाखा के किनारे देवीधूरा से कोटगढ़ तक जाने वाली पर्वतमाला है। प्राचीन चन्द राजाओं की राजधानी चम्पावत के खण्डहर परगने के बीच में चार-आल पहाड़ी पर स्थित हैं। पुराने किले में चम्पावत की तहसीलदारी और काली कुमाऊँ का थाना स्थित है। इस थाने के अन्तर्गत अस्कोट, सोर और सीरा है। चम्पावत से पाँच मील उत्तर और नैपाली सीमान्त से पन्द्रह मील की दूरी पर लोहूघाट[२१] में ब्रिटिश छावनी है। जहाँ दो स्थानीय बटालियनें रहती हैं। भोट और सोर से मैदानों की ओर जाने वाली सड़क इसी परगने से होकर जाती है। एक और सड़क इसे अल्मोड़ा से मिलाती है जो यहाँ से ५२ मील दूर है।

"इस परगने के चारों ओर जंगल हैं। मध्यवर्ती भूभाग में अच्छे सम्पन्न गाँव हैं। जलवायु ठंडा है और भूमि भी अच्छी नहीं है इसलिये यह परगना अधिक उपजाऊ नहीं है। अधिकांश निवासी जाड़े के ठंडे महीनों में भाबर चले जाते हैं। मुख्य व्यापारिक फसल हल्दी है जो काली कुमाऊँ के ऊष्ण भूभाग में उगाई जाती है। चौगर्खा की ओर खेती अच्छी हो रही है। चार-आल पट्टी में कुछ ऊँचे पर्वत हैं। उसका जलवायु बहुत सुन्दर है। यहाँ के निवासी अपनी उपज घी और दूध लोहूघाट (अब लोहाघाट) और चम्पावत में बेचते हैं। इस पट्टी के तड़ागी, बोरा, चौधरी और कार्की लोग विशेषतः उनके मुखिया बूढ़ा[२२] कहे जाते हैं। सन् १८७३

तक इन लोगों को लगान की मुआफी थी। ये लोग बड़े आदमी गिने जाते थे। प्रत्येक जाति के बूढ़ा को बूढ़ा चारी तथा थोकदारी के पट्टे मिले हुए थे। चार-आल और सरयू नदी के मध्य रिगणूवान पट्टी बड़ी ऊबड़खाबड़ है। इस पट्टी में मडुआ आदि मोटे अनाज होते हैं। चार-आल और भावर के बीच की पट्टी तल्ला देश[२३] कहलाती है। इस पट्टी में काली नदी के किनारे डोटी के लोगों के सम्बन्धी रहते हैं। तल्लादेश के ऊपरी गाँव में अच्छी फसल नहीं होती है। गुमदेश और पालवेलौन की दो और पट्टियाँ भावर तक चली गयी हैं। इनमें हल्दी तथा अनाजों की उपज होती है। प्रायः सभी गाँव सम्पन्न हैं। काली कुमाऊँ से मैदानों की ओर जाने वाली सड़क अच्छी दशा में नहीं है। वेलखेत के पास लधिया[२४] नदी बहुत चौड़ी है। वहाँ पर पुल नहीं बन सकता है। कुछ ऊपर की ओर नदी पार करने के लिए अच्छे घाट हैं। चम्पावत से सनेह मण्डी तक जाने में सड़क पर अधिक भीड़ रहती है यद्यपि केलाघाट, धूरा तथा बस्टिया होते हुए वरमदेव (ब्रह्मदेव) का रास्ता छोटा है।

"चम्पावत के पश्चिम लधिया की ओर सिव्ति गंगोल नामक पट्टी है। यह भी पर्याप्त उपजाऊ है। सबसे उपजाऊ पट्टी सुई विसंग है जो लोहाघाट के नजदीक है। इस पट्टी के अधिकांश लोग व्यापारी हैं। वे जाड़े की ऋतु में अपने पशुओं सहित मैदानों की ओर चले जाते हैं। इस पट्टी के मध्य में कूतलगढ़ (फोर्ट-हैस्टिंग्स) है। चन्द राजाओं के समय में महरा, फर्त्याल, देवदेक, कड़ायत तथा बूढ़ा और उनके सरदार सभी सिपाही थे। ये लोग गोरखा शासन से कुपित थे। इस कारण अनेक लोग अपने गाँव को छोड़ कर चले गये और मेजर हेयर-से की सेना में जाकर ब्रिटिश पक्ष की ओर से लड़े[२५]। आज भी काली कुमाऊँ के लोग हथियार लेकर चलना पसंद करते हैं। भावर जाते समय प्रायः सभी अपने अपने साथ अपनी बन्दूकें (मैचलॉक) ले जाते हैं।

"काली कुमाऊँ के धुर पश्चिम और उत्तर पश्चिम देवधूरा और पुनार की घाटी में अस्सी चालसी पट्टी है। यहाँ अनेक गांव हैं और निवासी भी बड़े सम्पन्न हैं। पहाड़ की ऊँचाईयों पर भंग की खेती होती है। यह एक बड़ी उपयोगी फसल है। भंग के रेसे का कपड़ा (भंगेला)[२६] कोली जाति के लोग बुनते हैं। पत्तों, फूलों और भंग के रस से बना चरस प्रायः सभी जातियाँ नशे के लिए उपयोग में लाती हैं।

"इस परगने का निचला भाग तल्ली चौभैंसी भावर के अन्तर्गत आता है। जिनसे मिले हुए मल्ली चौभैंसी, मल्ली-रौ और तल्ली-रौ लधिया नदी के वेसिन में बसे हैं। ये सभी देबीधूरा पर्वतमाला से दक्षिण में भावर तक फैले हुए हैं। ध्यानी-रौ को महरोली और छखाता से एक पहाड़ी पृथक करती है जो गागर पर्वत श्रृंखला को

वेड़ुचुला और देवीधूरा से जोड़ती है। इस पट्टी के लोगों की मुख्य सम्पत्ति उनके पशु हैं जो जाड़े में भावर ले जाये जाते हैं। इस पट्टी के ड़िन्दी, मैथी और मजेली गाँव बहुत बड़े हैं। मल्ली-रौ और तल्ली-रौ खूब सम्पन्न पट्टियाँ हैं। यहाँ धान तथा गेहूँ दोनों फसलें खूब अच्छी होती हैं। बासमती चावल भी सनेह, हल्द्वानी, अल्मोड़ा और लोहाघाट के बाजारों में विकने आता है। इन लोगों की अपनी मण्डी जौलासाल है।

ध्यानी-रौ में मंगल-लेख नामक स्थान पर लोहे की खान है जिसका लोहा सारे प्रदेश में उत्तम माना जाता है। इससे बना हुआ लोहा मैदान के व्यापारियों द्वारा बड़ा पसन्द किया जाता है। किमुखेत में लधिया नदी के पूर्वी किनारे पर ताँबे की भी खान है।

धनियाकोट का इलाका गागर पर्वतमाला के पश्चिम की ओर कोसिला (अब कोसी) नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ है। इस पट्टी का नाम उस छोटी सी नदी पर पड़ा है जो खैरना से होकर जाती है। इस पट्टी का थोकदार किश्ना जलाल है। नैनीताल नगर के बनने से इस पट्टी की सम्पन्नता में वृद्धि हो रही है। बुधलाकोट गाँव के ब्राह्मण अपनी धन सम्पत्ति के कारण जो उन्होंने भाबर से अर्जित की है, अपने पर अधिक लगान लगाये जाने की शिकायत करते हैं। उनका कहना है कि गाँव वास्तव में उतना लगान नहीं दे सकता जितना उन पर लगाया गया है। कौसिला नदी की घाटी में सिमलखा पट्टी में १८४० की बाढ़ से बड़ी हानि हुई। इस नदी के निचले भाग में चौथाण सम्पन्न गाँव है। यहाँ के निवासी खेती के अतिरिक्त कोटा रोड, चिल्किया तथा अल्मोड़ा जाने वाली सड़कों पर और रानीबाग से बद्रीनाथ के यात्रा मार्ग पर बोझा ढोने का काम करके धन अर्जित करते हैं। वे अपने उपजाए हुए अन्न, घी आदि को अपने ही दरबाजों पर बेचने में सफल हो जाते हैं। धनियाकोट की लोहे की खानों में लोहे का पर्याप्त उत्पादन होता है। मुख्य खनिज लाल हिमाटाइट है। यदि रेल की लाइन बन जाये तो ईंधन की सुविधा के कारण ये खानें बड़ी लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं[२७]। इस समय तो हमारे एग्जीक्यूटिव इंजीनियर ने अपने तीन पुलों के बनाने के लिए कलकत्ते से लोहा मँगाया है।

फल्दाकोट— "स्याही देवी के पूर्व की चोटी पर अल्मोड़ा के ठीक सामने झूलादेव चोटी[२८] से बैनाघाट और चौमू चोटी तक फैला भूभाग फल्दाकोट कहलाता है। इसके पश्चिम की ओर पाली है। यह भूभाग सन् १८१५ में ब्रिटिश सरकार के अल्मोड़ा पर किये गये सफल आक्रमण का घटनास्थल रहा है। कोश्यां को छोड़कर इस परगने में समतल भूमि बहुत कम है। पट्टी के गाँव बड़े हैं और निवासी भी सम्पन्न हैं। फल्दाकोट के निवासी अपने पड़ौसी धनियाकोट के लोगों की भाँति

अल्मोड़ा, काशीपुर तथा बागेश्वर के बीच सुहागे के व्यापार पर एकाधिकार जमाए हुए हैं। सुहागे को साफ करने के लिए चिन्किया में भट्टी बनी है जो फल्दाकोट के पहाड़ी लोगों के ही हाथ में है। पाण्डेकोटा के पाण्डे आदि लोग मल्ला डोटी की भाँति व्यापार नहीं करते हैं। इन्हीं लोगों में से सरकारी चपरासी, पटवारी, सिपाही आदि भर्ती किये जा रहे हैं। टाँडा का जीवा महरा तथा स्यून तल्ला का धर्मानन्द बेलवाल रुपये के लेनदेन का काम करते हैं और बड़े मुकदमे बाज हैं। हलसों सन् १८३५ तक माफी गाँव था।

रामगढ़—"गागर और लोहकोट पर्वतों के मध्य में मोतेश्वर[२९] की चोटी तक, जो खैरना नदी का उद्गम है, फैला छोटा सा इलाका रामगढ़ है। इस इलाके का दृश्य बड़ा मनोरम है। अल्मोड़ा जाने वाली सड़क पर रामगढ़ की प्रसिद्ध घाटी में नैकाना, बोहराकोट और झुतिया के गाँव हैं। इस इलाके के उत्तर में आगर पट्टी है। सिंचित भूमि नदी के किनारे सूपी और मियारी में है। आगर के निवासी सौन लोग लोहे की खानों में काम करने वाले खनिक हैं। वे जाति के शूद्र हैं। किन्तु वे लोहारी का काम नहीं करते हैं। अब वे भावर में सड़क बनाने या नहर खोदने के काम में बेलदारी करते हैं। कुछ वर्षों से नैनीताल जिले में सड़कें और मकान बनाने के ठेके यही सौन लोग लेने लगे हैं। रामगढ़ में नैकाना में पातर और नायक रहते हैं। पातर वैश्यावृत्ति करती हैं। नायक लोग ब्रिटिश राज्य में आने के उपरान्त हल्द्वानी और मुखानी में प्रमुख लगान देने वाले लोग हैं।

मल्ला छखाता तथा मल्ला कोटा—"ये पट्टियाँ भावर से मिली हुई हैं। गागर पर्वतमाला पर पूर्व में गोला नदी से लेकर पश्चिम में कौसिला नदी तक फैली हुई छखाता पट्टियों में अच्छी खेती होती है। छखाता नाम षष्टिखात अथवा 'साठ तालों' का भाषा अपभ्रंश है। इस सारी पट्टी का जल बमोरी होते हुए गौला में जाता है। सबसे बड़ा तालाब नैनीताल है जो गौला नदी की बल्लिया शाखा का उद्गम है। इससे छोटा तालाब मलुआ ताल है जो गौला के तट पर किसी भूस्खलन से बना है। भीमताल तथा नोकुचियाताल मध्यवर्ती पहाड़ी पर स्थित हैं। इनसे छोटी छोटी नदियाँ निकलती हैं जो गोला में मिलती हैं। चार छोटे छोटे ताल या पोखर जो भीमताल और बल्लिया के बीच में हैं सातताल कहलाते हैं। भीमताल के निकट का प्रस्थ (प्लेटो) सुन्दर, उत्तम गाँव है। इस परगने के भावर से मिले हुए भाग में व्याघ्रों का आतंक रहता है। इस पट्टी में तीन प्रमुख थोकदार नरसिंह[३०] बोरा, लछमन सिंह महरा और देवसिह सौनबिष्ट हैं।

कोटा—कोटादून के मैदान में जहाँ नदी उतरती है उसके ऊपर छोटा सा गाँव और किला है। डुबक के दर्रे के पास प्राचीन राजवंश का देवीपुरा नामक

आवास है। इस इलाके में भोला या भोर, निहाल, बहमनी और कुकरा नदियाँ हैं। कोसिला नदी भी गागर पर्वत के मध्य होती हुई चूकम के पास भाबर में प्रवेश करती है। अल्मोड़ा से चिल्कियां तथा कालाढूँगी से नैनीताल जाने वाली सड़कें इसी पट्टी से होकर जाती हैं। भोर नदी के सिरे पर बधान विनायक दर्रे के पास नैनीताल पहाड़ों की राजचोटी चीनार[३१] है यहाँ बगड़, महरोड़ा आदि अच्छे उपजाऊ गाँव हैं।

चौगर्खा— "चौगर्खा के उत्तर और पूर्व में सरयू नदी है जो इसे पुनार के संगम पर गंगोली से पृथक करती है। पश्चिम की ओर यह परगना सुआल नदी के किनारे राजधानी अलमोड़ा तक पहुँचता है। इस भूभाग के मध्य में सैमदेव पर्वतमाला, जागेश्वर और बिनसर पर्वतों की शाखाओं पर अनेक स्थानों पर गंगा और शारदा के स्रोत एक दूसरे के निकट, निकट[३२] हैं। बागेश्वर की ओर रीठागाढ़ खरही (खरई) की पट्टियाँ हैं। पूर्व की ओर रंगोड़ और दारुण[३३] पट्टियाँ हैं। दक्षिण में सालम पट्टी है और पश्चिमी भाग लखनपुर है। चौगर्खा नामकरण का कारण उसमें निहित उक्त चार दिशाओं को फैली चार द्रोणियाँ हैं। सालम और लखनपुर पट्टियाँ घनी बसी हुई तथा उर्बरा हैं। सालम का चावल बड़ा सुन्दर और प्रसिद्ध है। उपराऊँ (असिंचित) ऊँचे नीचे खेतों में भांग की खेती होती है। पिथौरागढ़ जाने वाला राजमार्ग इसी परगने के मध्य स्वाल नदी को सूपी छानी के पास पार करता है। दारुण पट्टी जागेश्वर तथा दीनदेश्वर[३४] मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। ये तीर्थस्थल इसके धुर उत्तर में हैं। इन मन्दिरों के रख रखाव के लिए इक्कीस गाँव गूँठ[३५] (धर्मादा) लगान-मुक्त प्रदान किए गये हैं।

"जागेश्वर पर्वत का दृश्य अत्यन्त मनोहर है। उस देवदार वन में जहाँ मन्दिर हैं मध्य कुमाऊँ का अब तक बचा सबसे सुन्दर देवदार निकुंज है। दारुण पट्टी रंगोड़ की भाँति बहुत ही निर्धन है। सरयू के निकट का भाग जंगलों से भरा है। इस दृष्टि से ये दोनों पट्टियाँ गंगोली के समान हैं। प्रमुख गाँव दनिया (दनिया के प्रसिद्ध जोशी लोगों का) डूँगरा, गैरार तथा ढुला हैं।

"रीठागाड़ बिनसर और जागेश्वर की पहाड़ियों के पीछे जैगनिया नाले की गहरी घाटी में स्थित है। सरयू की ओर का रीठागाड़ पट्टी का भाग घने उष्ण कटिबन्ध के जंगलों से ढका है। यहाँ गर्मी बड़ी तेज पड़ती है जलवायु भी अच्छा नहीं है। इससे ऊपर की ओर की भूमि जहाँ अल्मोड़ा बागेश्वर सड़क करेल, पासदेव, चौनाबिलोरी होकर जाती है जलवायु और उपज दोनों के लिए अच्छी है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह भूमि झिजाड़ के प्रभावशाली जोशी लोगों के अधिकार में हैं। चौनाबिलोरी के रौतेला लोगों के पूर्वज अल्मोड़ा के राजपरिवार के चन्देलों से सम्बन्धित थे।

"नौगाँव नामक इलाका चावल, गन्ना और हल्दी की उपज के लिए उत्तम है किन्तु गोरखा शासन के अन्तर्गत इसकी दशा बिगड़ती रही। रीठागाड़ के ११ गाँव जागेश्वर तथा दीनदेश्वर मन्दिरों की गूंठ हैं। सरयू और रीठागाड़ के मध्य खरई पट्टी है। यहाँ सिलखड़ी मिलती है। शायद यही खरई (खड़ई) नाम का कारण है। पर्वतमाला पर इधर उधर छिटके चीड़ के जंगलों का दृश्य बड़ा सुहावना है। ताँबा, चूना, खड़िया आदि का उत्पादन खेती की उपज से कहीं अधिक लाभप्रद और प्रमुख है। अतः ग्रामीण लगान कम देते है। बड़ी कठिनाई से खरई गाँव को अल्मोड़े के परमा साह नामक एक बनिये को १५ रुपये लगान पर दिया जा सका। कैपटन ड्रमण्ड की रिपोर्ट के अनुसार पूंजी और कुशल खनिकों के लगाने से खरई की खानें बड़ी महत्वपूर्ण और लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं। चौगर्खा के और भागों में भी उत्तम लोह खनिज मिलते हैं। झिराटोली (दारुण) में चुम्बकीय लोह खनिज पाया जाता है।

"रीठागाड़ का दौलतसिंह विष्ट गोरखा सेना में फौजदार [३७] रहा है। वह स्थानीय राजनीति से विलग नहीं है। बड़ी कठिनाई से अपने सात मील लम्बे चौड़े भूभाग के लिए सौ रुपया लगान देने को राजी हुआ है। यद्यपि वह गत बीस वर्ष के अवशेष लगान को रीठागाड़ की प्रसिद्ध नारंगियों को बेच कर ही चुका सकता है। वह बड़ा घमंडी और कुटिल है। उसके अपने ही परिवार के रूप सिंह से भी कटु सम्बन्ध हैं। रूपसिंह इसी भूमि का १६४ रुपया लगान देने को तत्पर है।

बारामण्डल—बारामण्डल जैसा कि इस नाम से स्पष्ट है बारह पट्टियों का इलाका है। इसी में कुमाऊँ की राजधानी अल्मोड़ा स्थित है। वास्तव में यह कुमाऊँ का हृदयस्थल है। राजधानी के चारों ओर खास परजा नामक छोटी पट्टी है। उच्यूर और बिसौद नगर के पूर्व में चौगर्खा से मिले हैं। बौरा-की-रौ (अब बौरारौ) तथा कैड़ा-की-रौ (अब कैड़ारौ) क्रमशः उत्तर और उत्तर पश्चिम की ओर हैं। मल्ला और तल्ला तिखून, रियूँणी, देवरसौं (अब द्वारसों) और अठागुली बारामण्डल के पश्चिमी भाग का निर्माण करते हैं। इस प्रकार कौसिला नदी (अब कोसी) जहाँ अल्मोड़ा नगर के निकट एकाएक पश्चिम की ओर मुड़ जाती है उससे ऊपर का उसका सारा भूक्षेत्र बारामण्डल है। अठागुली और कैड़ा-की-रौ कौसिला नदी घाटी के पश्चिम में है। यहाँ पश्चिमी रामगंगा की सहायक गगास नदी का उद्गम है। गगास और कौसिला के मध्य भटकोट, ऐडीदेव रिऊँणी, स्याही देवी और दक्षिण में झूलादेवी पर्वत इस घाटी को पृथक करते हैं। केवल ऊँची पर्वतश्रेणियों को छोड़कर बारामण्डल का शेष सारा भूभाग उपजाऊ है। पर्वतों की श्रेणियाँ भी अधिक ऊँची और दुर्लंध्य नहीं हैं। राजधानी का नगर अल्मोड़ा बिनसर पर्वत की एक शाखा पर स्थित है। यहाँ पत्थर और स्लेट की अनेक खाने हैं। शायद यही इसको राजधानी

बोरारौ घाटी में सोमेश्वर पृष्ठ—१२

बैजनाथ की उपास्य देवी पृष्ठ—१३७

के लिये चुने जाने का कारण होगा।

"बौरा-की-रौ, कैड़ा-की-रौ तथा अठागुली में गन्ना, कपास, अलसी आदि के खेत दिखाई देते हैं। सारे परगने में विशेषतः मल्ला स्यूनरा में पहाड़ी अनार (दाड़िम) प्रचुर मात्रा में पैदा होता है। यह बड़ी लाभप्रद फसल है। दाड़िम का रस उत्तम अम्ल है। यह बाजार में बिकता है। बाहर का छिलका जो नसपाल कहलाता है तराई की मंडियों में कपड़ा रंगने और चमड़ा कमाने के व्यवसाय में काम आता है। अखरोट, नारंगी, नीबू, केले प्रचुरता से होते हैं। उद्यानों की यह सम्पत्ति अब दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है जबकि पिछले शासन के अन्तर्गत बागों के पेड़ों के गोरखा सिपाहियों द्वारा ईंधन के लिये काट दिये जाने से ये उजाड़ होते जा रहे थे। बारामण्डल की खाद्यान्न की प्रचुरता और समृद्धि का श्रेय ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित शांति और व्यवस्था को है अन्यथा दृश्य सभी भाँति इसके विपरीत होता इसमें कोई सन्देह नहीं।

पाली पछाऊँ—"यह कुमाऊँ का सबसे पश्चिम का भाग है। इसकी मल्ला सल्ट और चौकोट पट्टियाँ एक ओर गढ़वाल से मिली हैं दूसरी ओर भावर से। सिलोर और ककलासौं फल्दाकोट से मिले हैं। मध्यवर्ती भाग में गेवाड़, तल्ला चौकोट, तल्ला द्वारा और नया पट्टियाँ हैं। रामगंगा और उसकी सहायक बीनू चौड़ी घाटियों के मध्य बहती हुई बूढ़ाकेदार में आकर मिलती है। इस चौड़ी घाटी के दोनों ओर खतसारी, नागढ़, कोटलार, गढ़यूँ, देघाट तथा पाली की छोटी छोटी रमणीक द्रोणियाँ हैं। गेवाड़ में हाल ही में खोली गई ताँबे की एक खान है। तल्ला और मल्ला द्वारा के पर्वत आमूलचूल छोटे बड़े खेतों से ढके हैं। घनी बसी हुई पश्चिम की नैर घाटी से इस नाम की एक और नदी रामगंगा में आकर मिलती है। गेवाड़ में खतसारी (अपराधियों की घाटी) में पूर्व काल में राजा की अपनी खेती थी गेवाड़ का जलवायु बड़ा खराब था। अतः यहाँ दंडित अपराधी लोग खेती के काम पर लगाये जाते थे। सीमा के पार गढ़वाल की लोहबा पट्टी और इस नाम का किला है। यहाँ लोहे की बड़ी बड़ी उत्पादक खानें हैं। यहाँ से उत्तर की ओर के तीर्थों से आने वाला यात्रा मार्ग भतरौंजखान, कोठ-का-रौ होता हुआ मैदान की ओर जाता है।

"पाली पछाऊँ नाम पाली नाम के छोटे से कस्बे पर पड़ा है जो रामगंगा के ऊपर नैथाना पहाड़ के निचले प्रस्थ पर स्थित है। यहाँ पहले गोरखा फौजदार का आवास था। ब्रिटिश शासनकाल के आरम्भिक वर्षों में पाली ब्रिटिश तहसीलदार का मुख्यालय बना। पाली का सबसे कम जनसंख्या वाला भाग दक्षिण पश्चिम का सल्ट नाम का कोना है। यहाँ सौंठ, मिर्च, हल्दी आदि की अच्छी फसल होती है जो एक पड़ाव दूर स्थित चिल्किया में बिकने भेजी जाती है। मल्ला चौकोट का जूनिया-

कोट से मिला हुआ भाग भी अधिक बसा हुआ नहीं है। पाली पछाऊँ में सन् १८४० की बाढ़ से तामाढौन, भिक्यासैण, सिलौर आदि स्थानों पर बड़ी क्षति हुई है। झरसोली, तिमिली, खैरगाँव तथा तामाडौन में रावत, विष्ट, मनराल जातियों के सयाना कहे गये लोग रहते हैं। ये अपने गाँवों में प्रत्येक परिवार से प्रति तीसरे वर्ष एक रुपया और दशहरे पर एक पैसा सयानाचारी कर वसूल करते हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों में मारी गई प्रत्येक बकरी की एक टाँग और एक सेर घी भी वसूल करते हैं। श्रावण मास में उलगिया संक्रान्ति को दही और गाबा भी आसामियों से लिया जाता है। वेठ के रूप में आसामी को रबी और खरीफ की फसल के समय सयाना की दो जुताइयाँ भी करनी पड़ती हैं। इस प्रकार के लगान सयानाचारी दस्तूर कहे जाते हैं[३८]।" (पृष्ठ ५८० से ६१६)

भाबर—कुमाऊँ के पहाड़ों की समाप्ति पर उसे दक्षिण के मैदानों से मिलाने वाला घने जंगलों से ढका समतल भूभाग भावर कहलाता है। यह पहाड़ों से तीव्र वाहिनी नदियों द्वारा बहा कर लाई गई मिट्टी और कंकड़-पत्थर से बना भूभाग है। घने जंगलों में पेड़ों के बीच लताएँ, वेंत की झाड़ियाँ आदि के उग जाने से इन जंगलों में घुसना तक कठिन है। यह भूभाग वर्ष में ९–१० महीने सूखा रहता है। केवल दो तीन शेष महीनों में इसमें बहने वाली नदियों में जल रहता है। वर्षा का पानी हो अथवा नदियों का कंकड़ीली धरती उसे सोख लेती है। जितनी भी नदियाँ भाबर से होकर जाती हैं वे इस पतली पट्टी में जो पश्चिम में गंगा से पूर्व में शारदा तक लगभग २० किलोमीटर चौड़ी है अदृश्य हो जाती हैं फिर तराई में जाकर ही प्रकट होती हैं।

भाबर कुमाऊँ के लोगों का आदि काल से ही चरागाह रहा है। जाड़े के दिनों में पहाड़ी कृषक अपने परिवार और पशुओं सहित इस समतल सुहावनी भूमि में आ जाया करते थे। घने जंगलों के मध्य के बीच बीच में कुछ खत्ते साफ करके वहाँ झोपड़ियाँ बना ली जाती थीं। इन जंगलों में साल, शीशम, हल्दू आदि के मध्य बाँस की घनी झाँड़ियाँ भी होती थीं। शारदा नदी के निकट के भूभाग को तल्लादेश का भाबर कहा जाता है। इसमें चीनी, पडवानी, कुलोनियाँ आदि नाले हैं। किसी वर्ष एक नाले में पानी अधिक रहता है तो कभी दूसरे में। पडवानी से पश्चिम लैबार, कामुन, धुन, गोमती नामक नाले हैं। भाबर के ये नाले अपनी २० मील की लम्बाई में स्थान स्थान पर दूसरे दूसरे नामों से पुकारे जाते हैं। लैबार से सुसी तक का भाबर चौभेंसी भाबर कहलाता है। इस भाबर में मारवा के पास एक बड़ा दलदल है। देवपा और सूखी नालों के बीच पहाड़ों के तले के कुछ जंगल पिछली सदी के अन्त में ही साफ कर लिये गये थे जहाँ ज़ाड़े के दिनों में छोटी बड़ी बहुत सी बस्तियाँ बस गई थीं। यह भाबर चोरगलिया भाबर कहलाता है। सूखी नाले के भी पश्चिम

में छखाता भाबर है। इसमें गौला नदी बहती है। हल्द्वानी इस भाबर का मुख्य केन्द्र है। चौनथल भी छखाता भाबर में है किन्तु उससे आगे काला ढूंगी कोटा भाबर में है। कोटा भाबर की मण्डी चिलकिया थी किन्तु कमिश्नर रैमजे द्वारा रामनगर के बसाए जाने के बाद रामनगर मुख्य व्यापारिक केन्द्र बन गया है।

भाबर में पहाड़ से आने वाली नदियों से उनके पहाड़ी भागों से ही नहरें निकलकर सिंचाई की बड़ी अच्छी व्यवस्था की गई है। भाबर पट्टी में पूर्व में शारदा से पश्चिम में गंगा तक जाने वाली सड़क जो जाड़े में ही खुल पाती है कभी रामजे रोड कहलाती थी अब कंडी रोड कही जाती है। कोशी नदी के पश्चिम का चिलकिया का क्षेत्र कोश्यां कहलाता है। यह भाबर का सबसे दर्शनीय इलाका है। कमिश्नर ट्रेल ने सन् १८३४ में हलद्वानी बसाया, सन् १८५० तक वह कच्ची झोपड़ियों की ही बस्ती थी। पक्के मकान सन् १८५० के ही बाद बनने आरम्भ हुए। हल्द्वानी की समुद्रतल से ऊँचाई १३८०′ है तथा काठगोदाम की १७००′ है।

तराई—भाबर के उपरान्त कुमाऊँ का धुर दक्षिण का पीलीभीत, बरेली, रामपुर, मुरादाबाद और बिजनौर जिलें से मिला हुआ भूभाग तराई कहलाता है। ब्रिटिश शासन के आरम्भिक वर्षों में यह एक पृथक् जिला था। यह क्षेत्र पूर्व में शारदा नदी से पश्चिम में बिजनौर की सीमा तक लगभग १५० किलो मीटर लम्बा और १० किलोमीटर से ४० किलोमीटर तक चौड़ा है। भाबर में अदृश्य हुई नदियों के सोते इस भूभाग में फिर फूट निकलते हैं। चन्द राजाओं के समय में तराई को चौरासी माल भी कहते थे। क्योंकि तब कुमाऊँनी तराई (माल) चौरासी कोस तक फैली मानी जाती थी। तराई की समुद्रतल से औसत ऊँचाई ७२०′ से ७६५′ तक है। इस प्रकार भाबर से तराई तक के क्षेत्र का ढलवान १० मील की चौड़ाई में १०००′ हो जाता है।

जनश्रुतियों के अनुसार दिल्ली के मुसलमान शासक गयासुद्दीन बलवन तथा नासिरुद्दीन अहमद के समय में तराई पर आक्रमण होने लगे थे। तत्कालीन चन्द राजा गरुड़ ज्ञान चन्द (१३६४–१४१६ ईस्वी) में दिल्ली जाकर अपने इस प्रदेश की सुरक्षा की फरियाद की और वह गंगा तक के अपने प्रदेश को वापस पाने में सफल रहा। उन दिनों चन्द शासकों की राजधानी चम्पावत थी। कालान्तर में माधव की माल या तल्ला देश के भाबर पर सम्भल के सूबेदार ने अधिकार कर लिया। जब कटेहर (रुहेलखंड) पर सन् १३८०–१४१८ और १४२४ में मुसलमान शासकों ने आक्रमण किये तो अनेक कटेहर के राजपूत भाग कर कुमाऊँ की तराई में आ गए। मुसलमान शासकों की सेनाएँ उनका पीछा करती रहीं। इस समय तराई भाबर के क्षेत्र में बड़ी अशांति रही।

राजा रुद्रचन्द के समय में रुद्रपुर बसाया गया। चन्द राजा के फौजदार(गवर्नर) हरिराम पाण्डे और शिव देव जोशी तराई में नियुक्त रहते थे। तराई की उपज का छटा भाग लगान में ले लिया जाता था। थारू, बोक्सा, बारवेक, हैड़ी, मेवाती आदि जातियों के अतिरिक्त दक्षिण के हिन्दू मुसलमान काश्तकार भी तराई में खेती करते थे। इसी काल में काशीपुर की ओर के तराई के क्षेत्र में काशीनाथ नामक फौजदार ने अपने नाम से काशीपुर नगर की स्थापना की। चन्द शासकों की एक बड़ी सेना तराई में रहती थी। इसमें नगरकोट, जम्मू, कांगड़ा, गुलेर और बाढ़ेपुरा के भाड़े के सिपाही[३६] रहते थे। कुमाऊँ के चन्द राजा मुगल शासक के कर दाता थे और यह सेना उनको मुगलों के लिये तैयार रखनी पड़ती थी।

अकबर का सूबा सरकार कुमाऊँ आइन-ई-अकबरी के अनुसार मुगल खजाने में ४, ०४, ३७, ७०० दाम कर देता था। उन दिनों ८० दाम का एक रुपया होता था अतः यह कर ५, ०५,४७१/२५ रुपये था। पाँच महालों से कोई कर नहीं मिलता था। कुमाऊँ सरकार को युद्ध के समय तीन हजार घुड़सवार और ५०००० पैदल सिपाही तैयार रखने होते थे। महालों के नाम और उनसे प्राप्त कर का विवरण एटकिंसन ने अपने गजेटियर के पृष्ठ ५४८ पर इस प्रकार दिया है।

महाल का नाम	कर (दाम में)	महाल का नाम	कर (दाम में)
अवदन	४०००००	जारदा	३०००००
भुक्साड़ (भुकाशा)	४०००००	जाऊँन	२५०००
बस्तरा	२०००००	गजरपुर	—
पंचोत्तर	४०००००	द्वाराकोट	—
भैखण्डीवार	२०००००	मालवारा	२५०००००
भक्ती	११ ०००००	मालाचौड़)	
रातोला	१०२५०००	सीताचौड़)	५०३७७००
चटकी	४०००००	कामूस)	
जकराम	५०००००		

ब्रिटिश कालीन तराई क्षेत्र में निम्नलिखित सात परगने थे।

१—जसपुर—जिसका पुराना नाम शाह जागीर भी था।

२—काशीपुर—जो काशीनाथ अधिकारी से पहले कोटा कहलाता था।

३—गदरपुर—पुराना नाम आइने अकबरी में भी गजरपुर लिखा गया है।

४—बोक्साड़—वर्तमान रुद्रपुर तथा किलपुरी (किच्छा) का क्षेत्र

५—बक्सी—जिसमें वर्तमान नानकमत्ता और उसके निकट का क्षेत्र है।

६—छींकी—वर्तमान सरबना का परगना जो सम्भवतः सितारगंज का इलाका है।

७—बिलहारी—वर्तमान खटीमा तहसील।

दिल्ली सल्तनत के समय कुमाऊँ तराई की सीमा बिसौली (बदायूँ) पर समाप्त होती थी। दिल्ली के शासक बिसौली को इसीलिये आखरीनपुर कहते थे। आखरीनपुर के अपरान्त तराई का घना जंगल था जहाँ मुसलमान शासक शिकार खेलने आते थे। यह विश्वास किया जाता कि बिसौली के बाद आबादी है ही नहीं इसीलिये दिल्ली के सुलतानों की अन्तिम सीमा चौकी को आखरीनपुर नाम दिया गया था। यह जंगल पुराणों में वर्णित कुरुजाँगल प्रदेश था। प्रथम अंग्रेज कमिश्नर ट्रेल के समय में हरिद्वार के समीप चण्डी का भावर का इलाका भी कुमाऊँ कमिश्नरी के अन्तर्गत था ! अब यह बिजनौर में है।

प्राचीन मार्ग—मैदानों से कुमाऊँ में प्रवेश करने के लिये तराई भावर का इलाका प्राचीन काल से ही एक प्राकृतिक बाधा रहा है। किसी बड़ी परिखा से भी अधिक दुर्लंघ्य तराई भाबर की यह ५० किलोमीटर चौड़ी पट्टी रही है। इस पट्टी में कोसी, गोला और शारदा ये ही तीन मुख्य नदियाँ हैं जिनके मार्ग से कुमाऊँ में प्रवेश किया जा सकता था और यह भी जाड़े के ही दो तीन महीनों में। इन जाड़े के महीनों में भी विदेशी आक्रमणकारी कुमाऊँ के अन्तराल तक घुसने का साहस नहीं कर पाते थे क्योंकि जाड़े की अधिकता के कारण उत्तर की पहाड़ियाँ उनके लिये और भी दुर्भेद्य हो जाती थीं। हिमपात के कारण जान के लाले पड़ जाते थे। ब्रिटिश सेना भी कुमाऊँ की ओर रामपुर, मुरादाबाद होती हुई कोसी नदी के मार्ग से जाड़े की समाप्ति पर चली थी। मुरादाबाद से अल्मोड़ा जाने का प्राचीन मार्ग सन् १८४१ तक मुरादाबाद कचहरी, बदलीटाँडा, भानपुर, दढ़ियाल, चिलकिया, कोश्याँ होकर था। दढ़ियाल में कोसी नदी को नाव से पार करना पड़ता था। नैनीताल के आविष्कारक मिस्टर पी० बैरन ने उस सैनिक मार्ग की खतरनाक स्थिति के विषय में अपनी पुस्तक 'पिलिग्रिम्स वांडरिंग्स इन द हिममाला' में लिखा है कि मुरादाबाद से अल्मोड़ा जाने वाला वह मार्ग जिसमें चिलकिया पर कोसी को पार करना पड़ता है बहुत खतरनाक है। इसके अनुसार "वर्षाकाल में कौसिला (अब कोसी) नदी का जल सप्ताहों तक उफना रहता है। अतः सैनिक दृष्टि से यह बेकार है। भाग्य से ही कभी कोई सैनिक टुकड़ी सकुशल नदी को पार कर सकती है। अन्यथा नदी का चौड़ा पाट और उसकी तेज धारा उसके गोला बारूद और साज सामान को बहा ले जा सकती है। रुद्रपुर और बमौरी का मार्ग तो इससे भी बेकार है। रामपुर नबाव की जागीर से गुजरने वाली सड़क में भी बीच बीच में बहुत नाले हैं। यह सड़क वर्ष में केवल चार मास काम आ सकती है। अतः जो नया मार्ग अल्मोड़ा से नैनीताल होकर मुरादाबाद आने का सुझाया जा सकता है वह दढ़ियाल होकर ही है। इससे पौलगढ़ तक का मार्ग पहाड़ में है और साफ है।"

इसी अंग्रेज ने शारदा नदी के मार्ग से अल्मोड़े की ओर आने में उसे जो कठि-

नाई हुई उसका वर्णन उक्त पुस्तक में एक स्थल पर दिया है। उसके अनुसार यह मार्ग वरमदेव (ब्रह्मदेव) होकर लधिया नदी को पार करके लोहाघाट, मोरनौली, देवीधूरा होकर था। स्वयं बैरन अक्टूबर सन् १८४३ में पीलीभीत से इस मार्ग से होकर अल्मोड़ा पहुँचा था। वह लिखता है—"२३ अक्टूबर सन् १८४३ को मैं 'बरमदेव पास' से लोहाघाट (काली कुमाऊँ) की ओर गया।[४२] चार घण्टे की चढ़ाई के बाद लधिया नदी की घाटी में पहुँचा। अक्टूबर मास की भारी वर्षा के कारण सड़क टूट चुकी थी। मुझे भ्रम हुआ कि कहीं मैं भटककर शारदा नदी की ओर न चला गया होऊँ क्योंकि लधिया नदी से मैं परिचित था और वह इतनी बड़ी नहीं थी किन्तु मेरे साथ के पहाड़ियों ने मुझे आश्वस्त किया कि मैं ठीक मार्ग पर हूँ। वे दो आदमियों को ले आए थे जिनका काम ही पथिकों को नदी पार कराना होता था। नदी लगभग ४० गज़ चौड़ी थी। उसमें पानी ३-४ फीट से अधिक गहरा नहीं था। अतः मैं भी उन तैराकों के साथ उनकी सहायता से नदी पार करने को उद्यत हुआ। दोनों ने मेरी छाती के आर पार एक कमरबन्द बाँध दिया और मुझे अपने बीच में रख कर नदी की धारा से भी तेज गति से दौड़ने के लिये कहा। बहते पानी के शोरगुल से मैं उनका आशय नहीं समझ पाया और मुँह के बल गिरते गिरते बचा। मैंने उन्हें संकेत किया कि नदी के नीचे की ओर चल कर जहाँ धाराएँ तेज नहीं हैं पानी को पार करना ठीक होगा। उनका उत्तर था कि उस स्थान पर जिसकी ओर मैंने संकेत किया है इस वर्ष जुलाई में छः डाक हरकारे जो सरकारी डाक ले जा रहे थे बहकर मर गए हैं इसलिए वहाँ होकर नदी पार करना वर्जित कर दिया गया है। मैंने बाद में पता किया तो उनकी इस बात को सही पाया। इसी कारण पुल के न बन जाने तक जुलाई से नवम्बर तक उस ओर से आने का मार्ग बन्द कर दिया था गया। किसी प्रकार डरते डरते उन दो तैराकों के बीच मैंने वह नदी पार की। हम लोग जिस तीव्र गति से नदी पार कर गए वह तिरछा ८० गज चौड़ा पाट १० सेकिण्ड में पूरा हुआ। यदि मैं इतना तेज न भाग सकता तो नदी की तेज धारा मुझे बहा ले जाती। इस तेज चाल का रहस्य ही यह है कि नदी की धारा से भी तेज गति से चलने पर बहने का डर नहीं रहता।

"इस घटना को मैं अपने जीवन की सबसे खतरनाक घटना समझता हूँ। किसी भी बड़े प्रलोभन से भी मैं इस अनुभव को दुहराने का साहस नहीं कर सकता। मेरे कुली, मेरा अन्य सामान नदी पार लाने में दो से तीन घंटे तक लगा गये और उनके पाँव मेरी ही भाँति जलधारा में बहते हुए कंकड़ों पत्थरों के कारण लहु-लुहान हो गये थे। मैंने उन दोनों आदमियों को खूब अच्छा पुरस्कार दिया। नदी पार में दो मील दूर बड़ी कठिनाई से लंगड़ाते-लंगड़ाते चल पाया। दूसरे दिन यदि डांडी (पालकी) न आ जाती तो मेरा आगे बढ़ना कठिन था। उस दिन १२ मील चलकर मैं २७ अक्टूबर को

लोहूघाट (अब लोहाघाट) पहुँचा। लोहाघाट में चार दिन विश्राम करके मैं पहली नवम्बर को अल्मोड़ा और चार नवम्वर को नैनीताल ६२ मील दूर पहुँचा।"[४३]

उत्तर के प्रवेश द्वार—दक्षिण की ओर तराई भाबर के घने ज़ंगल और दलदल जहाँ कुमाऊँ की ५०-६० किलोमीटर चौड़ी दुर्भेद्य प्राचीर का काम देते थे वहीं उत्तर की ओर 'हूण देश' में प्रवेश करने के हिम मार्ग अपेक्षाकृत सुगम थे और वर्ष में तराई की अपेक्षा अधिक समय के लिए खुले रहते थे। सन् १८४१ में जब लेह-लद्दाख की ओर से जोरावर सिंह की सेना तिब्बत में घुस आई थी तो उस सेना के अनेक सैनिक और उनके खदेड़े हुए अनेक तिब्बती इन हिम द्वारों से कुमाऊँ में घुस आए थे। मिस्टर पी० बैरन ने अपनी पुस्तक "पिलिग्रिम्स वांडरिंग इन द-हिममाला के पहले अध्याय में लिखा है-"हम लोग अकस्मात् ही यहाँ (बद्रीनाथ) ऐसे समय में आ पड़े हैं जब कि इस हिम प्रदेश के दूसरी ओर चीनी-तातारी का पूरा प्रदेश सिख सेना द्वारा रौंद डाला गया है। आपको ज्ञात हो कि सिख लोग कुछ समय से लद्दाख पर अधिकार किए हुए हैं। इस ग्रीष्म काल के आरम्भ से उनके सरदार गुलाव सिंह की चार या पाँच हजार की सेना वहाँ उपस्थित है। वहीं से उन्होंने जून के आरम्भ में चीनी-तातारी के हर किले और मन्दिर पर आक्रमण किया है। हीरासिंह ने चपरांग को ले लिया है। चपरांग का जोंगपेन (गवर्नर) मार डाला गया है। चपरांग से आगे बढ़कर थोलिग मठ भी विना किसी विरोध के ले लिया गया है। एक और सिख दल जोरावरसिंह के नेतृत्व में तिब्बत के अन्तराल में पहुँच गया है। तिब्बत को चीनी लोग 'चीनी तातारी' या 'छोटा चीन' कहते हैं। इस सेना का सरदार गुलाबसिंह स्वयं अपनी सेना का बागी है। सिखों ने तातारों के ऊपर बड़े अत्याचार किए हैं। अनेक तातार चारों दिशाओं से भाग कर हिमालय को पार करके हमारी भूमि में आ गए हैं। हम लोग आश्चर्य चकित रह गए कि यहाँ इस प्रकार भागे हुए चीनी तातारों की बहुत बड़ी संख्या है। वे ऐसी कोई भाषा नहीं बोल सकते हैं जिसे हम समझ सकें। अतः हमें नहीं बता पाये कि वहाँ क्या हो रहा है। यहाँ हमारे माना पहुँचने पर हमारे सम्मुख जो दृश्य है वह बड़ा दुखपूर्ण और दिलचस्प है। सौभाग्य से ही ऐसा दृश्य देखने को मिलता है। २५ दिन पहले हम मसूरी में थे और अब हम यहाँ चीनी तातारों, लामाओं, उनके स्त्री बच्चों से घिरे हुए हैं।"[४४]

स्पष्ट है कि चीन से भागे हुए लोग बर्षाकाल में भी उस ओर से हिमालय के माना दर्रे को पार कर सकते थे। दूसरा दर्रा नीती तो व्यापार के लिए बहुत अधिक प्रसिद्ध था। इस दर्रे के व्यापार से कुमाऊँ के गोरखा शासन को अच्छी खासी आय होती थी। पूर्व की ओर कुमाऊँ में सन् १८४१ में जोहार हिमघाट से १,००,००० रुपये का माल अल्मोड़ा आया था। व्यास घाटा से इसी अवधि में ५५,३०० रुपये का

माल आया था। जिसमें सुहागा, नमक, चरस, निर्विषी, केसर, पशम (शाल का ऊन), चीनी, रेशम, कम्बल, मोटा ऊनी कपड़ा, भेड़ें, चंवर गाय, कस्तूरी, स्वर्ण धूलि के अतिरिक्त तिमासा नामक सिक्के और कलदार रुपये थे। सिक्के का तिमासा नाम इस तथ्य का द्योतक है कि तिब्बत की ओर का यह व्यापार पाणिनि (ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी) से ही चला आता था। पाणिनि ने भी प्राचीन सिक्कों में इसी नाम के एक सिक्के का उल्लेख किया है। स्वर्ण धूलि अथवा पिपीलिका स्वर्ण तो इस प्रदेश से ईरान के हखमनीश शासकों के दरबार में भी भेजा जाता था।[४५]

अठारहवीं सदी—

अठारहवीं सदी के अन्तिम चार दशकों की अशांति और उसके उपरान्त पच्चीस वर्ष के गोरखा शासन के बाद सन् १८१५ में जब कुमाऊँ ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन हुआ तो कुछ मास तक गर्वनर जनरल के प्रतिनिधि (एजेंट) ई० गार्डनर के शासन में रहा। उसके उपरान्त अगस्त सन् १८१५ में ट्रेल नामक अंग्रेज ने बीस वर्ष तक अपना शासन चलाया। ट्रेल से अपेक्षित था कि वह फर्रुखाबाद स्थित "बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स" के आधीन कार्य करेगा। किन्तु वह स्वच्छन्द विचारों का निरंकुश शासक था। सन् १८३० में वह रुहेलखण्ड का कमिश्नर होकर बरेली चला गया। इस सन् १८३५ तक पाँच वर्ष की अवधि में कुमाऊँ रुहेलखण्ड का अंग सा हो गया। वैसे अंग्रेज अधिकारी कुमाऊँ जैसे भूभाग को पाकर इसकी प्राकृतिक और सांस्कृतिक सम्पदा से आश्चर्य चकित थे। मैदानी जिलों के नियम और कानून कुमाऊँ में लागू नहीं हो सकते थे। एटकिंसन ने ट्रेल के शासन को पैतृक, व्यक्तिगत और निरंकुश कहा है। उसने कुमाऊँ को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझकर किसी प्रकार के लिखित आदेश या अधिनियम को यहाँ लागू नहीं होने दिया। गोरखा शासन के शोषण और अत्याचार से पीड़ित कुमाऊँ ने इस भाँति प्रथम अंग्रेजी शासक के राज्यकाल के २० वर्ष अपने अत्याचारों के घाव सुखाने में बिताए। इस बीच आंतरिक अशांति और कुव्यवस्था से मुक्ति पाकर खंडित कुमाऊँनी परम्पराएँ अपनी मूल गहराई में जाकर जड़ पकड़ चुकी थीं। कुमाऊँ का भूगोल और परिवेश अपनी वास्तविक स्थिति में पहुँच गया था। सन् १८३५ में जब बैटन ने कुमाऊँ के कमिश्नर का पद ग्रहण किया तभी से वास्तविक ब्रिटिश सत्ता और उस के प्रभाव का आरम्भ हुआ।

बैटन के बन्दोबस्त की उक्त रिपोर्ट ही वास्तविक कुमाऊँ का सही चित्र प्रस्तुत करती है। उन दिनों न भारत में और न अंग्रेजों के अपने देश में रेलगाड़ियाँ थीं और न मोटर गाड़ियाँ। नये शासकों के पास कुमाऊँ जैसे देश को देने के लिए कुछ भी न था। कुमाऊँ तब सर्वसम्पन्न और आतम निर्भर था। उन शासकों की दृष्टि में "हिन्दुओं का यह यरुसलेम और पैलेस्टाइन"[४६] संस्कृति सम्पन्न सुन्दर प्रदेश था। यहाँ ऊँचे हिम शिखर और गहरी गर्म घाटियाँ पास पास थीं। कोसिला नदी

की घाटी में ऐसे गाँव थे जो "योरोपियन लोगों के आवासों से कहीं सुन्दर थे"[४७] इसी कोसी नदी की घाटी की कोश्याँ की भूमि "सालवाडोर सी सुन्दर घनी बसी हुई और प्राकृतिक सौन्दर्य में अपूर्व थी।" इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक को कुमाऊँनी संस्कृति के पुरातन अपरिवर्तित परिवेश का प्रतिनिधि काल कहा जा सकता है।

वर्तमान कुमाऊँ—आज कुमाऊँ में दक्षिण की ओर तराई भाबर से टनकपुर, काठगोदाम, रामनगर तथा जसपुर से आने के चार सुन्दर मोटर मार्ग हैं। कुमाऊँ मण्डल के तीन जिलों के क्षेत्रफल और उनकी जनसंख्या के आँकड़े इस प्रकार हैं:—

जिला	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर	जनसंख्या
पिथौरागढ़	७२१७	३१३७४७
अल्मोड़ा	७०२३	७५००३८
नैनीताल	६७९२	७९००८०

ये आँकड़े सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार हैं। इस गणना के उपरान्त चम्पावत की तहसील पिथौरागढ़ जिले के अन्तर्गत कर दी गई है। अतः अल्मोड़ा जिले की जनसंख्या तथा उसका क्षेत्रफल घटा है। पिथौरागढ़ में यही वृद्धि हुई है।

सन्दर्भ और टीपें

१—कस्स (कस्साइट) जाति का कैस्पियन सागर के दक्षिण पश्चिम का पहाड़ी प्रदेश ईसा पूर्व पहली-दूसरी सहस्राब्दी में कुमु कहलाता था। असीरिया के शासकों ने कस्स जाति को कुमु से निर्वासित किया और यह जाति पूर्व को ओर हिमालय की उपगिरिश्रृंखला में आकर बसी। पूर्वकाल में काश्मीर (काशिरी) से ब्रह्मपुत्र तक का पर्वत प्रदेश खस देश कहलाया। खस शब्द तथा कुमु नाम इन्हीं पश्चिम एशिया से आए हुए कस्स लोगों का लाया हुआ है। कुमु का उल्लेख प्राचीन असीरिया, सीरिया तथा ईरान के इतिहास में अनेक स्थलों पर हुआ है। देखिए-एच० डब्ल्यू०-एफ० सैग्स-द ग्लोरी देट बाज बैलीलोन-लन्दन १९६२ मानचित्र तथा पृष्ठ ८९-९६।

२—देखिए एटकिंसन हिमालयन डिस्ट्रिक्टस १८८६ पृष्ठ ५४८।

३—कुमाऊँ गढ़वाल की कोई निश्चित सीमा पूर्वकाल में नहीं रही थी। गढ़-

वाल के दसवें बन्दोबस्त अधिकारी मिस्टर ई०के० पाऊ ने लिखा है—"सारी सीमा रेखा नितान्त ही अनियमित है। जो गाँव गढ़वालियों द्वारा बसे हैं उन्हें गढ़वाल में दिखाया गया है और जो गाँव कुमाऊँनियों द्वारा बसे हैं उन्हें कुमाऊँ में। पूर्वकाल में दोनों देश परस्पर युद्ध में रत रहे हैं। इस प्रकार एक राज्य का भूभाग दूसरे राज्य में आता जाता और स्थानान्तरित होता रहा होगा। किन्तु युद्धकाल के बाद भी ऐसे दृष्टान्तों की कमी नहीं है जब कि उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार सीमायें बदलती नहीं रही हैं।—दसवीं बन्दोबस्त रिपोर्ट इलाहाबाद १८९६ अध्याय एक।

४—देखिए हिमालयन डिस्ट्रिक्टस आफ नौर्थ वैस्टर्न प्रोविंसेज-ई०टी०एटकिंसन १८८२ पृष्ठ ६५०

५—देखिए पिलिग्रिम्स वांडरिंग्स इन द हिममाला—पी० बैरन आगरा १८४४ पृष्ठ १९२—१९३

६—अष्टाध्यायी पाणिनि-इण्डिया एज सीन बाइ पाणिनि-वासुदेव शरण अग्रवाल

७—हिमदर्रों (स्नो पासेज) के लिये बैटन ने अपनी कुमाऊँ की बन्दोबस्त रिपोर्ट में घाट शब्द का ही उल्लेख किया है।

८—इण्डियन इक्सप्लोरर्स ऑफ द नाइंटीन्थ-सैंचुअरी-इन्द्र सिंह रावत-१९७३

९—तिब्बत को कुमाऊँनी लोग हूण देश ही कहते आये हैं। तिब्बत के लोग इस भूभाग को ङरिखुरसुरुम कहते हैं। सन् १८१२ में जब प्रथम अंग्रेज जासूस मूर क्रैफ्ट कुमाऊँ होकर तिब्बत गया था तो उसने अपनी रिपोर्ट में इस तिब्बती भूभाग को ऊन देश लिखा। यह ऊन देश नहीं हून देश था क्यों कि तिब्बती लोगों को आज भी कुमाऊँ के लोग हूण या हुणियाँ कहते हैं।—हिमालयन डिस्ट्रिक्टस-पृष्ठ २९२

१०—आजकल इस हिमश्रेणी को पंचचूली कहते हैं। किन्तु बैटन की बन्दोबस्त रिपोर्ट में इसका नाम पंचचूला दिया गया है। यह माना जाता था कि ये पाँच पर्वतशृंग देवताओं के पाँच चूल्हे हैं। चूला शब्द कुमाऊँनी में चूल्हे का बोधक है।

११—भोट शब्द वास्तव में तिब्बत के लिये प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भोट का अर्थ तिब्बत और भोटभाषा का अर्थ तिब्बती भाषा था। मूलतः इसी भोट शब्द से तिब्बत प्रदेश को ताबोड कहा जाता था जिसको कालान्तर में योरोपियन पर्यटकों ने टि-बट (तिब्बत) कर दिया। कत्यूरी राजाओं के ताम्रपत्रों में लाशाटा-लाशटा और भोटा लोगों का साथ साथ वर्णन आया है। लाशा ६४० ईसवी में तिब्बत का एक स्वतंत्र राज्य था। उसी से मिला हुआ पश्चिमी तिब्बत का प्रान्त भोट कहा जाता था। अंग्रेजों ने भ्रमवंश कुमाऊँ के जोहार, दारमा अथवा पैनखंडा के जोहारी, दारमी तथा मार्छा लोगों को भोटिया और उनके भूभाग

को भोट नाम दे दिया। वास्तव में ये लोग अपने को शौक कहते हैं और भोट शब्द से सम्बोधित किए जाने पर अपने को अपमानित मानते हैं।—हिमालयन डिस्ट्रिक्टस पृष्ठ ३६८-३६ पुराणों में वर्णन, वही ४०५ ई० टी० एटकिंसन—१८८२ संस्करण।

१२—बैटन की वन्दोबस्त रिपोर्ट में नन्दा देवी नहीं नन्दी देवी का उल्लेख है।

१३—बागेश्वर के हरिद्वार के समान महात्म्य प्राप्त करने का उल्लेख मिस्टर जे० एच० बैटन की 'रिपोर्ट ऑन द डिस्ट्रिक ऑफ कुमाऊँ' के पृष्ठ ५७७ पर दी गई है। यह रिपोर्ट सन् १८४१ की है। इस लेखमाला में दिये गये उद्धरण रिपोर्ट के सन् १८६३ के संस्करण के हैं जो सरकार द्वारा बनारस में पुनर्मुद्रित की गई थी। बैटन लिखता है कि बागेश्वर के इस महत्व को तथा शारदा नदी के गंगा के समान पवित्र समझे जाने की परम्परा को नर्मदा नदी के निवासी स्वीकार नहीं करेंगे। वरन् उल्टे ही इस पर अपना रोष प्रकट करेंगे।

१४—तिब्बत से आयात किया हुआ व्यापारिक माल नवम्बर के मध्य में जौलजीवी में बेचा जाता था। दूसरा व्यापारिक मेला जनवरी मास में बागेश्वर में होता था, तीसरा उसी स्थान पर शिवरात्रि को और बचे खुचे शेष तिब्बती माल को अप्रैल मास में देवलथल या थल नामक स्थान पर बेच कर तथाकथित भोटिया व्यापारी फिर हिमघाटों के पार तिब्बत जाते थे। (एटकिंसन-१८८२ संस्करण)

१५—अस्कोट का प्राचीन नाम अस्सीकोट था यह अस्सीकोट या किले खस शासकों के थे। अस्कोट में पहले डोटी के राजवंश के लोगों का शासन था। कालान्तर में काली कुमाऊँ के चन्द्र वंशीय राजाओं ने खसों के इन दुर्गों को जीत कर अस्कोट को अपने आधीन किया। (कुमाऊँ का इतिहास–बद्रीदत्त पाण्डे १६३७ संस्करण)

१६—हिमालय की पिथौरागढ़ के मध्यवर्ती ऊँचे हिमशृंगों की पर्वतमाला जो गढ़वाल की सीमा पर स्थित नन्दा देवी (७,८१६ मीटर) से पूर्व दक्षिण की ओर नन्दाकोट (६,८६१ मी०) होती हुई पंचचूली पर्वतमालाओं की ओर बढ़ती चिफला-धार पर नीची होती ३६०० मी० तक पहुँचती है वह धारचूला के दक्षिण उस स्थल पर समाप्त हो जाती है जहाँ गोरी गंगा शारदा में मिलती है। इसी स्थल पर जौलजीवी नामक स्थान है। अतः पिथौरागढ़ की ओर से जोहार दारमा की ओर जाने का मार्ग जौलजीवी होकर ही बना है। जौलजीवी वैसे प्राचीन काल में एक भोटिया पड़ाव था।

१७—सीराकोट पहले डोटी के राजाओं का प्रमुख दुर्ग था। डोटी की राजकन्या कुमाऊँ के चन्द शासक को ब्याही गयी थी। डोटी के उस दामाद ने दहेज में इस किले को माँगने का आग्रह किया जिसे डोटी के राजा ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि सीराकोट डोटी राज्य का शीर्ष है। कालान्तर में परखू पंत नामक

कुमाऊँ के राजा के सेनापति ने इस किले को जीता। (एट० ५५०)

१८—सोर को बैटन ने शोर लिखा है । पिथौरागढ़ नाम भी पृथ्वीराज से सम्बन्धित लगता है। राजस्थान में पृथ्वीराज को पिथौरा भी कहा जाता था। वैसे यह राज्य पश्चिम एशियाई पार्थव या पह्लव कही गई आर्य जाति से सम्बन्धित लगता है।

१९—काली कुमाऊँ में चन्द राजा सोमचन्द ने जब अपना राज्य स्थापित किया था तो वहाँ के प्रमुख कबीलों में महर और फर्त्याल सबसे शक्तिशाली थे । इन दो कबीलों के पारस्परिक कलहों की कहानियाँ आज भी पूर्वी कुमाऊँ में अनेक दन्त कथाओं का विषय बनी हुई हैं।

२०—सोर के सम्बन्ध में यह अश्लील गीत बैटन की बन्दोबस्त रिपोर्ट में दिया गया है। बद्रीदत्त पाण्डे जी ने कुमाऊँ के इतिहास में इस गीत की एक अश्लील कड़ी को छोड़ दिया है। वैसे प्राचीन काल में काली कुमाऊँ के राजाओं की सेनाओं को जब क्षेत्र में बहुत अधिक समय तक रहना पड़ा था तो उन्होंने कुछ नीच जातियों की स्त्रियों से अनैतिक सम्बन्ध कर लिए थे और उनसे उत्पन्न सन्तान को कटक वाली (सैनिकों से सम्बन्धित) कहा जाता था।

२१—लोहूघाट शब्द का उपयोग बैटन ने किया है। लोहू का तात्पर्य रुधिर से है। कहा जाता है कि लोहाघाट का यह क्षेत्र पूर्वकाल में असुर लोगों द्वारा शासित था। वर्तमान लधिया नदी तब लोहावती कहलाती थी। लोहाघाट के असुर उपनिवेश होने के सम्बन्ध में देखिये लेखक की कृति—चम्पावत कुमाऊँ की सर्वाधिक प्राचीन नगरी—"आजकल" नई दिल्ली १९७० ।

२२—बूढ़ा या बूड़ा-चन्द शासकों की पंचायत में उनके राज्य के प्रमुख कबीलों के प्रतिनिधियों को बूड़ा कहा जाता था। चन्द शासकों की पंचायत के प्रमुख अंग थे (एक) चार चौथानी, (दो) चार बूड़ा, (तीन) पंच थोक, (चार) छः घरी, (पाँच) बारह अधिकारी, (छः) पंचबीड़ी, (सात) कटकवाल तथा (आठ) पौड़ पंडार बैरसु (सोशल स्ट्रैटिफिकेशन इन रूरल कुमाऊँ-सनवाल)

२३—तल्ला देश नाम का एक और इलाका उत्तर में भी है। यह जोहार परगने के निचले इलाके का भूभाग है।

२४—लधिया नदी को पहले लोहावती कहा जाता था। अब इस नदी को पार करने के लिए धूनाघाट नामक स्थान पर झूला बन गया है। इसी घाटी में अब नेपाल और भारत की संयुक्त-घाटी-योजना द्वारा बाँध बनने जा रहा है।

२५—मेजर हेयरसे की सेना में पहले दो सौ कुमाऊँनी सैनिक ही थे। जब यह सेना पीलीभीत से बिलहरी होती हुई तिमला दुर्ग पर पहुँची तो २८ फरवरी सन्

१८१५ को गोरखा सेना से ५०० कुमाऊँनी गोरखों का साथ छोड़ कर मेजर हेयरसे की सेना में जा मिले।

२६—कुमाऊँ गढ़वाल में भांग के पेड़ के रेशे से बना हुआ कपड़ा आज भी बागेश्वर मेले में बिकने आता है। पूर्वकाल में इस कपड़े के बनाने वाले न केवल उत्तर भारत में ही थे वरन् चीन, मध्य एशिया तथा यूरोप के देशों में भी भांग के रेशों से कपड़ा बनाया जाता था। उत्तर चीन में ईसा पूर्व ग्यारहवीं सदी से ही ऐसे कपड़े के बनने के प्रमाण मिलते हैं। चीन का सबसे पुराना कागज भी भांग के रेशों से ही बना हुआ था। भांग का व्यवसाय करने वाले पशुपालक पणि लोग वैदिक काल में गान्धार देश में रहते थे। भांग और सोम दोनों एक ही पेड़ के नाम हैं। (देखिए 'वैदिक भारत'-राहुल सांकृत्यायन)

२७—कालान्तर में लोहा कमाने के लिए कलकत्ता से लाइसेंस प्राप्त करके कुमाऊँ स्टील कम्पनी बनी जिसके भवन आज भी कालाढूंगी में हैं।

२८—रानीखेत पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में बसा। उससे पहले रानीखेत का पहाड़ झूलादेव कहलाता था।

२९—मोतेश्वर को पिछली शताब्दी के अन्त में पूना से भारतीय पशु संस्थान की प्रयोगशाला के रूप में स्थापित किया गया। तदन्तर यह बस्ती मुक्तेश्वर कहलाई। (देखिए कुमाऊँ का सिद्धि क्षेत्र-मुक्तेश्वर-'आजकल' १९७०)

३०—नैनीताल झील और उसके आसपास का जंगल नरसिंह थोकदार का था।

३१—नैनीताल झील के उत्तर पश्चिम की सबसे ऊँची पर्वतश्रेणी जो अब चीना पीक कहलाती है पी० बैरन द्वारा चीनार पीक या चीनर पीक लिखी गई है। इस चोटी पर सर्वप्रथम २७ दिसम्बर १८४३ को नैनीताल में बसे हुए अंग्रेजों ने बड़ा दिन मनाया था। इस समारोह का वर्णन करते हुए पी० बैरन अपनी पुस्तक पिलिग्रिम्स वार्डरिंग्स इन द हिममाला में भी इस चोटी को चीनार ही कहता है। इसी पुस्तक में बैरन ने नैनीताल के इलाके के थोकदार नरसिंह को फुसलाकर ताल के बीच में अपनी नाव में ले जाकर उसे वहीं छोड़ देने की धमकी देकर उससे नैनीताल पर अपना अधिकार त्याग देने को विवश करने की बात लिखी हुई है। वैसे बैरन इस धमकी को एक मजाक कहता है।

३२—अल्मोड़े के निकट की कुछ पर्वतश्रेणियों के एक ओर का जल सुवाल और कोसी नदियों में से होकर रामगंगा में मिलता है। रामगंगा गंगा में मिलती है। इन्हीं पहाड़ों में दूसरे ढाल का जल सरयू में होता हुआ रामगंगा (पूर्वी) द्वारा शारदा में जा मिलता है। इस प्रकार शारदा और गंगा के जल संग्रहण क्षेत्र एक दूसरे से मिले हुऐ हैं।

३३—दारुण ही शंकराचार्य द्वारा स्थापित 'उत्तरे दारुका वने' का दारुकावन है।

३४—बैटन की रिपोर्ट में जिस प्राचीन मंदिर को दीनदेश्वर लिखा गया है वह अब दण्डेश्वर कहलाता है।

३५—मंदिर की धर्मादा भूमि के लिए गूँठ शब्द का उपयोग सर्वप्रथम गोरखा शासकों के समय में हुआ। यह फारसी गूट (वाटिका या देव उद्यान) का स्थानीय करण है। कुमाऊँनी राजाओं के समय में ऐसी धर्मादा भूमि विष्णुप्रिय या सदावर्त कहलाती थी।

३६—चौना बिलौरी अब छाना बिलौरी कहलाता हैं। प्रसिद्ध लोकगीत-लागला बिलौरी का धामा। झन दिया बौज्यू छान बिलौरी। इसी गर्म घाटी की धूप (धाम) से होने वाली ज्वर व्याधि का द्योतक है।

३७—फौजदार (गवर्नर)--चन्द राजाओं के समय में यह अधिकारी धार्मिक मामलों के अतिरिक्त न्यायिक, प्रशासनिक और राजस्व अधिकारी था।

३८—अब तक का उल्टे " " के अन्तर्गत दिए गए अंश बैटन की उक्त रिपोर्ट के उद्धरणों के अविकल अनुवाद है। जैसा ऊपर दर्शाया गया है बैटन के शासन से पूर्व के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के २० वर्षों में कुमाऊँ प्रशासनिक सुधारों की दृष्टि से उपेक्षित रहा। २० वर्ष की इस अवधि में कुमाऊँ को गौरखा शासकों द्वारा तोड़ी गई अपनी कमर को सीधी करने का अवसर मिला।

३९—एटकिंसन तथा बद्रीदत्त पाण्डे दोनों ने इस सेना का उल्लेख किया है। कालान्तर में इन्हीं सैनिकों ने शिवदेव जोशी के विरुद्ध विद्रोह करके उन्हें मार डाला। कुमाऊँ के शासकों के विरुद्ध उनके सैनिकों द्वारा यह विद्रोह १७७६ में हुआ था। यह वही वर्ष था जब अमेरिका में भी ऐसा ही युद्ध हो रहा था।

४०—एटकिंसन ने हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स (१८८२ संस्करण) में कुमाऊँ और रोहेलखंड के कमिश्नरों के मध्य हुए उस पत्र व्यवहार का उल्लेख किया है जिसका परिणाम १८२४ ईस्वी के लगभग न केवल चण्डी वा चाँडी ही वरन् देहरादून का परगना भी एक बार कुमाऊँ आयुक्त मण्डल के अन्तर्गत आ गया था। देखिए—बोर्ड आफ रैवन्यू का आदेश दिनांक २१ मई १८२४, ११ जून १८२४ तथा गवर्नर जनरल का आदेश दिनांक २५ जून १८२५ पृष्ठ ६८७-हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स आफ नौर्थ वैस्टर्न प्रौविंसेज १८८२ संस्करण।

४१—देखिए पिलिग्रिम्स वार्डरिंग्स इन द-हिममाला पृष्ठ—१८६

४२—बरमदेव (ब्रह्मदेव) से तिब्बत में स्थित मानसरोवर के मार्ग का वर्णन स्कन्द पुराण में इस प्रकार दिया गया है—यात्री को पहले गण्डकी नदी में स्नान

करके लोहा नदी में स्नान करना चाहिए। तब उसे महादेव तथा अन्य देवताओं की स्तुति करनी चाहिए। कूर्म शिला के शिखर पर पूजा करके हंस तीर्थ में स्नान करना चाहिए। वहाँ से सरयू की ओर जाकर दारुण या तंकर में महादेव की उपासना करनी चाहिए। तदन्तर पाताल भुनेश्वर जाकर तीन दिन तक उपवास करके शिव पूजन करना चाहिए। फिर रामगंगा में स्नान करके बालेश्वर की उपासना करनी चाहिए। उसके उपरान्त पावन पर्वत श्रेणी पर शिव स्तुति करके पटाक में जाकर काली और गौरी गंगा के संगम पर स्नान करना चाहिए। यहाँ से चतुर दास्ट्र पर्वत पर जाकर व्यासाश्रम में व्यास की उपासना करके काली के उद्गम स्थल पर पहुँचना चाहिए। तदुपरान्त केरल पर्वत पर देवी की उपासना करके प्रलोभन चोटी पर पहुँचना चाहिए जहाँ एक तालाब है उससे आगे तारक पर्वत पर तारिणी और शारदा नदियों के संगम पर स्नान करना चाहिए। वहाँ की गुफाओं में देवता की उपासना करके मुंडन कराकर श्राद्ध करना चाहिए। तदनन्तर गौरी पर्वत पर चढ़कर मानसरोवर में उतरना चाहिए वहाँ पितरों का श्राद्ध करके राजहंस रूपी महादेव की उपासना करनी चाहिए। इसके उपरान्त मानसरोवर की परिक्रमा करके उसके निकट की नदियों में स्नान करना चाहिए। (हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स आफ नौर्थ वैस्टर्न प्रौविंसेज-१८८२ संस्करण पृष्ठ ३१०-३११)।

४३—पिलिग्रिम्स वांडरिंग्स इन दा हिममाला-आगरा १८४४ (पृष्ठ २-३)।

४४—बैरन ने पश्चिमी तिब्बत से भागे हुए लामाओं को तातार लिख दिया है वास्तव में वे तिब्बती लामा थे जो तातारों की भाँति यायावर जीवन बिताने वाले नहीं, गरतोक (पश्चिमी तिब्बत) के बौद्ध लोग थे।

४५—खस शासकों द्वारा पिपीलिका स्वर्ण को उपहार में देने का उल्लेख युधिष्ठर की दिग्विजय यात्रा के सम्बन्ध में महाभारत में भी हुआ है। परसिपोलिस के उत्खनन से भी एक ऊँचे मंच पर प्राचीन हख्नमीश शासकों को उपहार देते हुए अनेक देशों के राजाओं और अधिकारियों के चित्र उत्तीर्ण किये गये हैं। उनमें हिन्द क्षत्रपी के द्वारा भेजा गया स्वर्ण दो कलसों में रखा दिखाया गया है। इन कलसों को एक भारतीय अपने कंधे पर सधी हुई बहंगी पर लिए हुए है।

४६—देखिए पिलिग्रिम्स, वार्डरिंग्स इन द हिममाला-केदारनाथ पृष्ठ ६७-६८।

४७—देखिए पिलिग्रिम्स वॉडरिंग्स इन द हिममाला-कौसिलाघाटी का वर्णन—

'इतनी स्वच्छ, दीवारें इतनी साफ सफेद पुती हुई कि लैण्डौर और मसूरी के यूरोपियन आवास भी लजा जायँ।' पृष्ठ १०५-आगरा १८४४।

————

प्राचीन कुमाऊँ के इतिहास के उपलब्ध स्रोत

प्राचीन कुमाऊँ के इतिहास को भारत के इतिहास का ही अंग माना जा सकता है। वैसे भी मानव जाति का इतिहास समान है। इस इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न कालों और विभिन्न देशों से सम्बन्धित किया जाता है। भारत के प्राचीन इतिहास का अनेक विश्वविद्यालयों में सांगोपांग अध्ययन किया जा रहा है। इससे इतिहास के अध्ययन के लिए नित नई सामग्री मिलती जा रही है। कभी भूगर्भ के भीतर समाये हुए प्राचीन नगर और उनके खण्डावशेष कभी पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त चैत्य, कभी मुद्राएँ, कभी ठीकरें, कभी ताम्र पत्र अथवा अनायास ही प्राप्त कोई प्राचीन धननिधि किसी अज्ञात पूर्व तथ्य की सूचना दे देता है तो कभी भारत के बाहर की ऐतिहासिक नई उपलब्धि अब तक की सभी ऐतिहासिक धारणाओं को परिवर्तित करने के लिए इतिहासकारों को बाध्य कर देती है। अनेक विद्वान इसी भावना से प्रेरित होकर प्राचीन भारत के किसी काल विशेष या अंग विशेष का सर्वांगीर्ण इतिहास प्रस्तुत करने में संलग्न हैं।

कुमाऊँ गढ़वाल का जैसा ऊपर कहा गया न तो समूचे भारत से कभी पृथक अस्तित्व रहा है और न इस भारत के शीर्ष अंग के इतिहास को शेष भारत के इतिहास से पृथक किया जा सकता है। बद्री केदार की गढ़वाल नाम से ख्यात भूमि अथवा कैलास मानसरोवर का पश्चिमी भूखंड कैलास खंड या कुमाऊँ अखिल भारत की पुण्य भूमि के अंग रहे हैं। तथापि अब हम कुमाऊँ या गढ़वाल के इतिहास की एकाधिक विशेषताओं का भारत के इतिहास के सन्दर्भ में उल्लेख करते हैं तो यह पर्वत देश भी अखिल भारत की एक अभिन्न कड़ी के रूप में परिलक्षित होता है। कुमाऊँ जो प्राचीन भारत के इतिहास में कभी मानस खण्ड, कभी किरात वर्ष, कभी किरात मंडल, कभी खस देश तथा कभी केदार खंड आदि विभिन्न नामों से पुराणों में उल्लिखित रहा है गत पाँच चार सदियों से जिसे कुमाऊँ गढ़वाल तथा उत्तराखण्ड नाम मिला है, इस भूखण्ड में प्राचीन भारत के इतिहास के अनेक मूल्यवान संकेत मिलते हैं। विदेशी शासकों और पर्यटकों ने इस भूखण्ड को भारत का 'फिलिस्तीन और यरुसलेम' कहा है। इस भूखण्ड की वार्ता सभी भारतीयों के लिए गौरव की कहानी है। पर अभी तक भारत की इस तपस्थली का इतिहास क्रमबद्ध रूप से लिपिबद्ध नहीं हुआ है। वैसे तो प्राचीन भारतीय इतिहास भी लेखबद्ध नहीं मिलता है तथापि जैसे शेष भारत वैसे ही पर्वतीय प्रदेश के इतिहास की बहुत सी सामग्री जिन स्रोतों से एकत्र की जा सकती है उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं।

१. धार्मिक ग्रन्थ, २. साहित्य ग्रन्थ, ३. प्राचीन अभिलेख, ४. प्राचीन सिक्के, ५. प्राचीन स्मारक, ६. शिल्प शास्त्र, ७. प्राचीन स्थान नाम तथा ८. यात्रा विवरण।

धार्मिक ग्रन्थ—वैसे तो कुछ धार्मिक ग्रन्थों में ऐतिहासिक तत्वों का अभाव रहता है क्योंकि उनकी रचना आध्यात्मिक दृष्टिकोण से की जाती है किन्तु उन ग्रन्थों से उनको रचनाकाल की सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए वेद संहितायें, यद्यपि अधिक उपयोगी नहीं है तथापि समस्त वैदिक साहित्य जिसमें वेद संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् तथा उनकी टीकायें और सूत्र आ जाते हैं इतिहास सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी प्रदान करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीन राजवंशों और राजाओं का जो विवरण दिया गया है उसके ऐतिहासिक महत्व को नकारा नहीं जा सकता। कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में यजुर्वेद के 'शतपथ' ब्राह्मण से बहुत सहायता मिलती है।

इतिहास के लेखन के लिये अब तक केवल भारतीय धर्मग्रन्थों का ही अवलोकन किया गया है। पश्चिम एशिया में प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग नहीं के बराबर हुआ है। यहूदी बाइबिल में प्राचीन यहूदी जाति, फिनीशियन[1], मिस्री तथा हिब्रू जातियों का जो उल्लेख हुआ है उसका उपयोग भी प्राचीन कुमाऊँ के इतिहास के अध्ययन के लिए मूल्यवान है। असुर (असीरियन) जाति का कुमाऊँ में बसना एक ऐतिहासिक तथ्य है। इसी प्रकार खस, कस्स या कस्साइट जाति को जिसने एक बार 'काबुल से लेकर नैपाल तक' के पहाड़ी प्रदेश पर राज्य किया था मूलतः पश्चिम एशिया के निवासी थे इस तथ्य को भी सभी इतिहासकार मानते हैं, इस जाति के पश्चिम एशियाई अभिलेखों और उनके 'यहूदी बाइबिल' (ओल्ड टेस्टामेंट) अथवा अन्य पश्चिम एशियाई धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त संदर्भों से भी कुमाऊँ के इतिहास के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

बौद्ध साहित्य में भी ऐतिहासिक तत्व खोजे जा सकते हैं। पाली भाषा के त्रिपिटक, विनय पटक, सूत्रपिटक तथा अभिदम्भ पिटक ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी की सांस्कृतिक स्थिति के विषय में प्रचुर मात्रा में सामग्री प्रदान करते हैं। हिन्द यवन वंश के सम्बन्ध में पाली ग्रन्थ 'मिलिन्द-पहन' राजा मिनैण्डर के समय का अच्छा चित्रण प्रस्तुत करता है। ललित विस्तार, वैपुल्य सूत्र आदि बौद्ध साहित्य के संस्कृत ग्रंथ भी तत्कालीन भारतीय संस्कृति पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। सबसे महत्वपूर्ण सामग्री तो जातक कथाओं से प्राप्त होती है। इन जातक कथाओं में 'बाबेरु जातक' नामक[2] कथा तत्कालीन बाबेलु (बैबीलोन) तथा भारत के व्यापारिक सम्बन्धों का

संकेत देती है। 'दशरथ जातक'[३] रामायण की कथा के मूल स्रोत का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

जहाँ तक महाकाव्यों के ऐतिहासिक सामग्री जुटाने का प्रश्न है उनकी रचना को आधार लगता है कि इसी प्रकार के उनसे पहले रचे गए बौद्ध और जैन ग्रन्थ हैं। हरिवंश पुराण को ईसा पूर्व दूसरी या तीसरी शताब्दी की रचना माना गया है किन्तु इससे भी प्राचीन जैन हरिवंश पुराण है। इसी प्रकार बाल्मीकि रामायण से भी प्राचीन दशरथ जातक है। कुछ श्लोक दशरथ जातक और बाल्मीकि रामायण में बिल्कुल समान हैं। यद्यपि अधिकांश पुराण आठवीं नवीं शताब्दी तक के लिखे हैं और कुछ तो मुगल काल में भी तथा कुछ पुराण जैसे 'मत्स्य' पुराण या वायु पुराण हैं वे प्राचीन इतिहास की दृष्टि से अमूल्य हैं। वायु पुराण में चन्द्रगुप्त प्रथम के विषय में जानकारी मिलती है। 'मत्स्य' पुराण में मौर्य वंश तथा शिशुनाग वंश के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। 'मत्स्य' पुराण तो प्राचीन सुमेर के धार्मिक ग्रंथ 'गिलगमिश'[६] महाकाव्य' का समानान्तर ग्रंथ है। इसी प्रकार 'अथर्व्‌न', जो कालान्तर में अथर्व वेद कहलाया प्राचीन सुमेरी धार्मिक ग्रंथों से अद्‌भुत समानता रखता है! यही ग्रंथ प्राचीन सुमेर और सिंधु घाटी सभ्यता की समानताओं को उद्‌घाटित करता है।

साहित्यिक ग्रन्थ— कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रंथों में हिमालय का उल्लेख महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है। मुद्रा राक्षस की रचना विशाखदत्त ने की थी। इस ग्रंथ से हमें नन्दवंश के पतन और मौर्य वंश के शासन के स्थापित होने की अप्रतक्ष्य जानकारी प्राप्त होती है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र मौर्य वंश के सामाजिक और धार्मिक जीवन का सम्यक् वर्णन प्रस्तुत करता है। सबसे अधिक सामग्री तो हमें पाणिनि के अष्टाध्यायी से ज्ञात होती है। यह ग्रंथ गांधार देश में लिखा गया था। इसका रचना काल ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी माना जाता है। कुमाऊँ गढ़वाल के इतिहास के लिए पाणिनि का अष्टाध्यायी अत्यन्त मूल्यवान और प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है।

कालिदास के ग्रंथों में मेघदूत तो कुमाऊँ की यात्रा से ही सम्बन्धित है। कुमारसंभव केदारनाथ की यात्रा का वर्णन करता है। इन दोनों ग्रंथों से तत्कालीन पर्वतीय समाज के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कालिदास के व्यक्तित्व और उनके रचनाकाल के सम्बन्ध में भ्रान्ति बनी हुई है। वास्तव में कालिदास हिन्द-यवन शासन काल में कवि का एक पदनाम[५] था। इसका उल्लेख यथास्थान किया गया है। मालवा भी वर्तमान मालवा नहीं कभी जयपुर, कभी किसी अन्य हिन्द-यवन राजा की राजधानी के निकट का नगर रहा है। पर्वतीय हिन्द-यवन राजाओं के समय में

ही कुमाऊँ के तराई भावर क्षेत्र को मालव[६] नाम मिला जो आज कुमाऊँनी 'माल' नाम से जाना जाता है। 'माल' का तत्कालीन अर्थ मैदान के निकट की ऊँची भूमि था। कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में आदि शंकराचार्य से सम्बन्धित 'शंकर दिग्विजय' भी पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। चन्द बरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासौ, जयसिंह से सम्बन्धित कुमर पाल चरित, विल्हण द्वारा रचित विक्रमादेश चरित तथा बाण भट्ट के 'हर्ष चरित' से भी तत्कालीन राजनीतिक तथा आर्थिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सबसे अधिक उपयोगी ग्रंथ तो कल्हण द्वारा रचित 'राज तरंगिणी'। इस राजवंशावली से न केवल कुमाऊँ के खस और डोम कहे हुए जातीय समूहों पर प्रकाश पड़ता है वरन् कुमाऊँ के खस राजा के गजनी पर किए गए आक्रमण से यह भी विदित होता है कि उस समय कत्यूर साम्राज्य का विस्तार-अफगानिस्तान से ब्रह्मपुत्र घाटी तक था। एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ वाक्पति राज द्वारा रचित 'गौड़वाहो[७]' है जिसमें यशोवर्शन द्वारा चीन के सम्राट के पास भेजे गए कन्नौज के राजदूतों का उल्लेख हुआ है।

प्राचीन अभिलेख—कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में प्राचीन अभिलेखों को मुख्यतः निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है:—व्यापारिक, जादू टोना सम्बन्धी, धार्मिक, प्रशासनिक, प्रशस्ति या चारण, व्रत पूजापाठ की दशकर्म पद्धति अथवा कर्मकाण्ड पद्धति तथा दानपत्र या उपहार पत्र।

प्राचीन व्यापारिक लेखों में मेसोपोटामिया में पाये गये वे लेख हैं जिनका सम्बन्ध तत्कालीन भारत के सिन्धु प्रदेश से ले जाये जाने वाले माल के सम्बन्ध में हुआ है[८]। कुमाऊँ से भी प्राचीन काल में स्वर्ण धूलि हखमनीश शासकों को भेजी जाती रही है। इसका उल्लेख भी प्राचीन असीरिया के इतिहास में पाया जाता है। हिन्द यवन पर्वतीय राजाओं के समय के एक लेख का उल्लेख एटकिंसन ने किया है जिसमें कुमाऊँ के तत्कालीन राजा ने पार्चमेंट (चमड़ा) पर लिखा एक सन्धि पत्र[९] रोमन सम्राट अगस्टस को भेजा था। सिंधु घाटी में पाये गये कुछ छोटे शिलालेखों पर तत्तकालीन व्यापारियों के नाम और उनके पदों का उल्लेख मिलता है। यह सम्भवतः ठप्पे का काम करते होंगे। कुमाऊँ गढ़वाल दोनों का अति प्राचीन काल से ही ल्हासा-मंगोलिया से लेकर खुतन काश्गर, लेह-लद्दाख, समरकंद-बुखारा तथा दमिश्क तक व्यापार होता था। उत्तरापथ के इस व्यापार के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सामग्री तिब्बत और मंगोलिया के प्राचीन स्थलों के उत्खनन से उपलब्ध हुई है।

जादू टोने सम्बन्धी अनेक पुरानी पोथियाँ पुराने घरों और मंदिरों में रखी हुई हैं। शक्ति और श्री की स्थापना से सम्बन्धित तांत्रिक अभिलेख, यक्षिणी (जाखनी) त्रिपुरा, चण्डी, आदि से सम्बन्धित तांत्रिक साहित्य आदि से भी प्राचीन इतिहास की

पर्याप्त सामिग्री उपलब्ध हो सकती है। नन्दा देवी का 'डिकर' शब्द तांत्रिक शास्त्र में इसी रूप में उपलब्ध है। कुमाऊँ में जागरियों और गणतुओं के बीज मंत्र भी यदाकदा मिल जाते हैं जिनके प्राचीन राजाओं के विषय में ज्ञान अर्जन किया जा सकता है।

धार्मिक अभिलेखों में अशोक का कालसी का लेख महत्वपूर्ण है। इसमें तत्कालीन पर्वतीय प्रदेश के लिये 'योन' शब्द का उल्लेख यह स्पष्ट करता है। कि अशोक के समय से देहरादून का जौनसार और टेहरी-उत्तरकाशी का जौनपुर यवनसार और यवनपुर थे। यवन या हिन्द यवन शासकों के अन्तर राष्ट्रीय सम्बन्धों के विषय के कालसी के शिलालेख महत्वपूर्ण सामिग्री उपस्थित करते हैं। अशोक के उपदेशों को 'धम्मलिपि'[१०] कहा जाता है। यही लिपि शब्द अशोक के पूर्वगामी हखमनीश नाम के ईरानी शासकों के समय में उनके शिलालेखों में दिपि या दिवि लिखा गया है। वास्तव में अशोक के शिलालेखों में रकार की भाँति डकार भी लकार हो गया है। मौर्य शासक के यह शिलालेख उस शासन पर ईरानी हखमनीश शासन के प्रभाव के द्योतक हैं।

प्रशासनिक लेखों में भी अशोक के आदेश उल्लेखनीय हैं। रज्जुक और प्रादेशिक जैसे धर्मप्रचारकों के सम्बन्ध में दिये गये आदेशों से जिनमें जूनागढ़ का रुद्रदमक का प्रथम लेख भी एक है, तत्कालीन प्रशासन की अच्छी जानकारी उपलब्ध होती है। रुद्रदामन अथवा रुद्रदमक का उल्लेख 'यौधेयों' के सम्बन्ध में कुमाऊँ के इतिहास में महत्वपूर्ण है। कत्यूर के शासकों के ताम्रपत्रों को भी अठवीं नवीं शताब्दी के कुमाऊँ के प्रशासनिक अभिलेखों में गिना जा सकता है। इन पाँच ताम्र पत्रों में तत्कालीन कार्तिकेयपुर के सम्बन्ध में भौगोलिक, राजनीतिक तथा जाति समूहों के विषय में प्रचुर ऐतिहासिक सामिग्री उपलब्ध है। यह ताम्रमत्र तत्कालीन मगध और कुमाऊँ के शासकों के एक ही राजवंश से सम्बन्धित होने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

गोपेश्वर तथा बालेश्वर (थल) के अभिलेख का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो उनसे भी कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। दुलू (नैपाल) तथा रैनका राजाओं की प्रशस्ति के ये लेख उन राजाओं की वंशावली, उनके नाम, चरित्र तथा उनके सामंतों के सम्बन्ध में जो वर्णन देते हैं वह कम महत्व का नहीं है। कत्यूर के ताम्रपत्रों तथा कत्यूरी शासकों के बागेश्वर के शिलालेख[११] में जो प्रशस्तियाँ हैं उनसे इतिहास की पर्याप्त शोध सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

कुमाऊँ के अनेक पुरोहित परिवारों में पूजा और कर्मकांड की पोथियाँ हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं। इन पोथियों में संकल्प की जो विधि दी गई है उसमें

संकल्प कर्ता अपने वंशकुल का ही वर्णन नहीं करता, वरन उस स्थान और उस काल का भी वर्णन करता है जब वह संकल्प ले रहा है। संकल्प के इन प्राचीन मंत्रों से तत्कालीन समाज का अच्छा दिग्दर्शन हो सकता है। कुछ घरों में पुराने पंचांगों की प्रतियाँ पड़ी हुई हैं। कुछ अन्य में पुरानी जन्म कुण्डलियाँ हैं। इन जन्म कुण्डलियों में मंगलाचरण के पदों में भी उस व्यक्ति के आवास की भौगोलिक स्थिति और उस व्यक्ति के कुल की वंशावली वर्णन की गई है।

चन्द वंशी राजाओं के चम्पावत तथा अल्मोड़ा की राजधानियों से दिये गये अनेक अभिलिखित दानपत्र कुछ परिवारों में आज भी उपलब्ध हैं। सबसे प्राचीन दानपत्र कत्यूरी राजाओं के हैं। उसके उपरान्त कराचल्ल देव के समय के। इन दानपत्रों से राजा द्वारा किसी विद्वान अथवा वीर को दान में दी गई भूमि का उल्लेख मिलता है जिससे उस काल की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कुमाऊँ के राजाओं ने सौ से भी अधिक मंदिरों को भूमि दान में दी है। इन दानपत्रों के अनुशीलन से भी पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं।

अभिलेखों में सबसे महत्वपूर्ण मुद्रालेख हैं जो प्राचीन सिक्कों में अभिलिखित मिलते हैं। वास्तव में कुमाऊँ के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में इन मुद्रालेखों से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। मुद्राओं से हमें यह ज्ञात होता है कि उस समय कुमाऊँ का कौन सा भूभाग किस विदेशी व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। इन्हीं मुद्रालेखों से यौधेयों, कुनिन्दों और कुषाणों के समय की पर्वतप्रदेश की आर्थिक स्थिति का पता चलता है। भारत के अन्य क्षेत्रों में प्राप्त रोमन मुद्राओं से हमें प्राचीन काल में रोम साम्राज्य से हुए व्यापारिक सम्बन्धों का प्रमाण मिलता है। कुछ यौधेय मुद्राओं पर चीड़ या देवदार वृक्षों से हमें उनके पर्वतीय होने का संकेत मिलता है। इन्हीं कुछ मुद्राओं पर खरोष्टी, ब्राह्मी मुद्रालेखों के साथ ग्रीक लिपि के अक्षर भी हैं जिससे उनके पश्चिम एशियायी सम्बन्धों का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। काशीपुर में प्राप्त कनिष्क प्रथम की स्वर्ण मुद्राओं से तत्कालीन तराई भाबर की समृद्धि का संकेत होता है।

कुमाऊँ में सबसे अधिक सिक्के यौधेयों के मिलते हैं। उसके उपरान्त प्राप्त सिक्कों में कुनिन्दों के सिक्के हैं। चाँदी के सिक्के दत्त और मित्र राजाओं के मिलते हैं। अष्टाध्यायी में पाणिनि ने भी दत्त अंतक नामों का उल्लेख किया है। श्रीनगर (गढ़वाल) में प्राप्त सैकड़ों प्राचीन सिक्कों में कुछ ब्राह्मी और कुछ खरोष्ठी लिपि में अभिलिखित मुद्रालेख हैं। सल्ट महादेव अल्मोड़ा से भी कुछ सिक्के मिले हैं। अल्मोड़ा में प्राप्त मुड़ी हुई पूँछ के नन्दी तथा षण्मुख कार्तिकेय, देवदारु या चीड़ वृक्ष

तथा हिमालय की छः श्रेणियों से अंकित सिक्कों के विषय में अगले अध्याय में विस्तार से विचार किया गया है। काशीपुर में प्राप्त सोने के सिक्कों पर ध्वजधारी तथा त्रिशूलधारी शासक की मूर्ति है। इस शासक के सिर पर तिकोनी ऊँची टोपी है। ऐसी तिकोनी टोपी वाले शक शासकों को ईरान के प्राचीन इतिहास में 'त्रिखोदा शका' कहा गया है। इन मुद्राओं से उस खस साम्राज्य के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं जो कभी पूरे पर्वत प्रदेश में आसाम की नागाखासिया पहाड़ियों से कैस्पियन सागर तक फैला था। एक मूर्ति जो देवी की ज्ञात होती है इसी काल की काशीपुर में प्राप्त मुद्रा पर अंकित मिली है। मूर्ति के हाथ में मिस्र देश की उपास्य देवी इजिस की भाँति का वलयाकार फंदा (पाश) है तथा ब्राह्मी लिपि में अधूजा या साधुजा शब्द पढ़ मिलता है। कदाचित कुमाऊँनी ईजा शब्द मूल मिस्र की मातृदेवी इजिस से सम्बन्धित रहा हो।

लेंसडाउन में जिसे अंग्रेज इतिहासकारों ने कालापहाड़ कहा तथा जो प्राचीन पौराणिक ग्रन्थों का कालकूट पर्वत हो सकता है कुछ सिक्कों में रावणस्य, भामुव, राजनो, जय आदि शब्द पढ़ मिलते हैं। जौनसार बावर (देहरादून) में सन् १८३६ में १६४ सिक्के मिले थे जो दूसरी सदी ईस्वी के बताए गए हैं। पिंगलौं (गरुड़ विकास क्षेत्र) के सिक्कों के विषय में अगले अध्याय में प्रकाश डाला गया है। इस पिंगलों गांव के निकट कंदहार या खंदार नाम का प्राचीन स्थल है जिसका सम्बन्ध प्राचीन गांधार से भी हो सकता है। इस नाम के और भी अनेक स्थल कुमाऊँ गढ़वाल में हैं। कहीं-कहीं तो कंदहार सम्भवतः गन्धर्व उपास्य देव भी हैं।

बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में बैशाली से बहुत सी प्राचीन मुहरें मिली हैं। इनमें एक मुहर पर "श्री घटोत्कच गुप्तस्य" लेख खुदा है। जनश्रुतियों के अनुसार प्राचीन कुमू में चम्पावत घटोत्कच की राजधानी थी। घटोत्कच को गुप्त वंश का राजा माना जाता है (गुप्त वंश का इतिहास वासुदेव उपाध्याय)। रूस की राजधानी लेनिनग्राड में भी गुप्त कालीन एक मुद्रा मिली है जिस पर एक राजा की मूर्ति अंकित है तथा "घटो" शब्द खुदा पढ़ मिलता है। यौधेयों के सिक्के योरोप में भी मिले हैं। जहाँ तक घटोत्कच नामक राजा का सम्बन्ध है बुन्देलखंड में प्राप्त एक प्रशस्ति का उल्लेख बारहवीं आल इंडिया कानफ्रेन्स की वाराणसी में हुई बैठक की कार्यवाही के पृष्ठ ५८८ पर हुआ है। इसमें गुप्त वंश की उत्पत्ति घटोत्कच से बताई गई है।

प्राचीन स्मारक— पुराने संतो तथा नाथ सम्प्रदाय के पीरों की समाधियों पर भी कहीं-कहीं स्मारक लेख उत्कीर्ण हैं। कुमाऊँ के चन्द शासकों का धर्मगुरु सत्यनाथ गोरखनाथ का समकालीन माना जाता है। उस काल में जोगी सम्प्रदाय के लोग

बैजनाथ मंदिर समूह पृष्ठ—१६१

द्वाराहाट कत्यूरी शिला शिल्प

जागेश्वर मंदिर समूह

मृतक व्यक्ति की अंत्येष्टि दाह संस्कार से नहीं करते थे। वे अपने मुर्दों को मकान के ही आँगन में गाढ़ दिया करते थे। ऐसे कुछ जोगी सम्प्रदाय के पूर्वजों के समाधि-स्थल बैजनाथ, पिंगनाथ, मठ, गणानाथ, सोमेश्वर आदि स्थानों में हैं। इन स्मारकों से भी प्राचीन इतिहास का ज्ञान लभ्य है।

कासार देवी (अल्मोड़ा से १० किलोमीटर दूर) की चट्टान पर खुदा दो पंक्तियों का शिलालेख भी कोई स्मारक लगता है। इस लेख के निकट दो बड़ी बड़ी चट्टानें एक दूसरे के ऊपर स्थित हैं जो महापाषाणी कब्रें कही गईं अन्य देशों की कब्रों के समान हैं। ऐसी ही महापाषाणी कब्रें मिर्जापुर तथा दक्षिण भारत में भी मिली हैं। इनमें से कुछ को ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी की बताया जाता है। सिलोर घाटी में भिक्यासैण में तथा रामनगर रानीखेत मार्ग पर ऐसे अनेक स्मारक स्थल उपलब्ध हो सकते हैं। ब्रिटिश शासन के बाद तो योरोपियनों के कब्रिस्तानों के मृतकों के स्मारक लेखों से भी तत्कालीन इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ सकता है।

शिल्प शास्त्र—सामाजिक और धार्मिक इतिहास के लिये पुरानी मूर्तियों और भवनों के ध्वंशावशेष भी बहुत उपयोगी हैं। अहिछत्रा (आँवला के निकट बरेली जिले में) के उत्खनन से जो सामग्री प्राप्त हुई है उससे कुमाऊँ के नागवंशीय शासकों के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध हो सकती है। इस उत्खनन में एक ऊँचे चबूतरे पर वह श्वेत पत्थर है जो कुमाऊँ में ही उपलब्ध होता है। बहुत से बर्तन मिट्टी के ठीकरे आदि इस उत्खनन से निकले हैं जिनमें और कुमाऊँ की नदी घाटियों में पाई जाने वाली प्राचीन सामग्री में समानता का अन्वेषण शोध की सामग्री बन सकता है। अल्मोड़े में पाताल देवी की गुफा, पिथौरागढ़ में पाताल भुवनेश्वर, देवी धूरा की महापाषाणी कब्रें तथा चिपलाधार की प्राचीन गुफा प्राचीन स्थापत्य कला के अच्छे उदाहरण हैं। कुमाऊँ की संस्कृति के इस अंग को समझने के लिए इसी प्रकार की अवन्ती, भरहुत, कौशाम्बी आदि स्थानों पर प्राप्त मूर्तिकला के उदाहरणों पर दृष्टि डालना आवश्यक है। आदि बद्री, द्वाराहाट, चम्पावत तथा जागेश्वर की प्राचीन मूर्तियों और भवनों के निर्माण में जिस वास्तुविद्या या कुशलता का प्रमाण मिलता है वह देश के अन्य भागों से किसी भाँति कम उत्कृष्ट नहीं है।

प्राचीन शिल्प में कुमाऊँ गढ़वाल का भाँग की खेती का व्यवसाय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह खेती पूर्वकाल में पणि कहे गये लोगों द्वारा की जाती थी। भंग का पौधा ही सोम रस के उत्पादन के काम आता था। इसी से कपड़े बनाने के लिए रेशा निकलता था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुमाऊँ में शासन स्थापित होने से पहले ही उन्होंने भंग के व्यवसाय को अपने हाथ में ले लिया था और कम्पनी के एक डिपो की स्थापना काशीपुर के निकट कर ली थी। दानपुर, दसौली तथा गंगोली की कुछ जातियाँ भांग के रेशे से कुथले (थैले) और कम्बल बनाते थे। कुमाऊँ

गढ़वाल की बन्दोबस्त रिपोर्टों में अनेक स्थलों पर भाँग की खेती का उल्लेख हुआ है। गढ़वाल की दसवीं बन्दोबस्त रिपोर्ट का निम्न उद्धरण दृष्टव्य है—"भंग के पौधे का घर गढ़वाल में चाँदपुर कहा जा सकता है। यहाँ यज्ञोपवीत न धारण करने वाली पत्रीला कही हुई जाति के लोग इस रेशे की ओर ध्यान देते हैं। अन्य स्थानों में यह काम डोम लोगों पर छोड़ दिया गया है। भाँग का कोई हिस्सा भी बरबाद नहीं जाता। फूलों के चरस बनती है। यह चरस हाथों पर मल कर हथेलियों से चिपका ली जाती है। फिर हथेलियों को चाकू से खुरचकर चरस को जमा कर लिया जाता है। भंग के बीज से तेल बनता है। पत्तों को जोगी चिलम में डालकर (गाँजा) पीते हैं। पेड़ की छाल से रस्सियाँ बनती है। डंठल के अन्दर का गूदा (पिथ) बड़ी सुन्दर मशाल का काम देता है। रेशा (लाम्फा) मोटे कनवास (खुरदरे कपड़े) के बुनने के काम आता है। इसी प्रकार के रेशे ऐड़ू (एराऊ), शैलू, मालू, उदाल और भिकुल (भ्यूल) पेड़ों की छाल तथा बावड़ (बाबिल नामक) घास से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। बावड़ घास की रस्सियाँ सबसे कमजोर होती हैं। आजकल भँग गाँव के निकट के अच्छे खेतों में बोई जाती है। पहले उसे जंगल साफ करने के उपरान्त नई प्राप्त भूमि में बोया जाता था। इस परम्परा को समाप्त करने का प्रयत्न किया है क्योंकि इससे जंगलों को हानि पहुँचती है। चरस की बड़ी मात्रा रामनगर में बिकने के लिए आती थी किन्तु अब एक्साइज अधिनियमों के अन्तर्गत अभियोजन और अधिग्रहण की कार्यवाहियों के कारण इसमें कमी आ गई है। चरस की कुछ मात्रा आजकल भी स्थानीय चरस-भाँग के ठेकेदार द्वारा बेची जाती है यद्यपि वह अपनी आवश्यकता का अधिक भाग पंजाब से मंगाता है। यदि भाँग के उत्पादन उसकी फसल और उसकी बिक्री को उत्साहित किया जाय तो चाँदपुर की विगत समृद्धि के दिन फिर वापस आ सकते हैं।" (रिपोर्ट आन द टेन्थ सैटिलमेंट आफ द गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट–ई० के० पाव० इलाहाबाद १८९६ पृष्ठ २९)।

चटाइयाँ, रिंगाले की टोकरियाँ आदि बनाने का शिल्प बधाण, दसौली, कालीफाट, दानपुर तथा गंगोली की कुछ पट्टियों में एक पैत्रिक व्यवसाय रहा है। ताँबे के बर्तन खाड़ी (खरही), चम्पावत आदि स्थानों में बनते थे। ठठेरों की इस जाति के लोग टम्टा कहे जाते रहे हैं। लोहे के बर्तन भी चम्पावत और लोहबा के आसपास बनते थे। जहाँ जहाँ लोहे ताँबे की खानें थीं लोहे को कमाने के स्थल लोहसाल, लोहसार आदि थे। इन नामों की झलक आज भी ल्वेसाली, ल्वेसाल, लोहाना आदि में मिलती है। लकड़ी के बर्तनों का व्यवसाय प्रायः सभी स्थलों पर होता था। मुख्यतः पिथौरागढ़ के राजी लोगों के तथा गढ़वाल में कालीफाट और मैखण्डा के लोगों का तो यह एकमात्र जीविका का साधन था। पहाड़ी कागज के बनाने का उद्योग भी पूर्वकाल में कुमाऊँ में गाँव गाँव में होता था। जिस विशेष वृक्ष से कागज

बनता था वह बड़ुवा कहलाता था। पहाड़ी कागज इतना स्थायी और टिकाऊ समझा जाता था कि ब्रिटिश शासन काल के सभी अभिलेख, अदालती दस्तावेज़, मुन्तखीब, फाँट आदि इसी कागज पर बनाए जाते थे। कागज के बनाने में चावल के माँड का उयोग होता था। जो जूठा समझा जाता था। इस कारण कहीं कहीं कागज का निर्माण कार्य शिल्पकार कहे गए लोगों पर छोड़ दिया गया था।

कुमाऊँ में पहाड़ी नदियों से निकाली गई गूलें और इन गूलों से चलने वाले आटा पीसने के धराट (पनचक्कियाँ) अति प्राचीन कुमाऊँनी अभियंत्रण कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। पानी का प्रणाल जो काठ का बना होता था काठ की ही बनी फितौड़ी (टर्बाइन) के ऊपर किस कोण से गिरना चाहिए यह प्राचीन कुमाऊँनी शिल्पी भलीभाँति जानता था। टर्बाइन को कम या तेज चाल से चलाना और उसकी घूर्णन शक्ति को चक्की के पाट को चलाने में नियंत्रित करना भी उसे भलीभाँति ज्ञात था। ऐसी चक्कियाँ गाँव-गाँव में थीं। इन चक्कियों के पाट विशेष प्रकार के पत्थर से बनते थे।

प्राचीन स्थान नाम—कुमाऊँ के प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिए यहाँ के प्राचीन नामों के नामकरण का इतिहास बड़ा मूल्यवान है। नामों का अध्ययन तत्कालीन देशों, पर्वतों, सागरों, वनों, नदियों, जनपदों, नगरों तथा ग्रामों के इतिहास के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण शोध सामग्री प्रदान करता है। इतिहास की इस सामग्री का पाणिनि के अष्टाध्यायी के समय में ही बड़ा अच्छा विवेचन हुआ है।

पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में भौगोलिक नामों की उत्पत्ति के चार कारण दिए हैं। ये कारण आज भी उतने ही स्वयंसिद्ध हैं जितने उस काल में थे। पाणिनि[१५] के अनुसार नामों की उत्पत्ति इन भेदों से होती है—

१– किसी स्थान का नाम उस स्थान में पाई जाने वाली वस्तु के नाम पर पड़ जाता है।

२—किसी स्थान का नाम उस स्थान या नगर के किसी निवृतकारक या स्थापित करने वाले व्यक्ति के नाम पर प्रसिद्ध हो जाता है।

३—कुछ स्थानों, देशों या नगरों का नाम किसी जाति समूह या जातीय समुदाय के द्वारा उसे अपना आवास बना लिए जाने के कारण पड़ जाता है।

४—कुछ स्थानों के नाम किसी वस्तु या पदार्थ के उस स्थान से निकट या दूर, अदूरभव होने से उसका उसी वस्तु पर नामकरण हो जाता है।

कुमाऊँ के प्राचीन स्थलों तथा भूखण्डों के नामों की ऐतिहासिकता भी उनके संस्थापकों, उनकी उपज, उनके स्मारकों तथा उनके निकट पाए जाने वाली खनिज या खेतीहर वस्तुओं से जानी जा सकती है। पाणिनि ने इन चारों विभेदों को

'चतुर्थिक' परिभाषा दी है। माथुर मथुरा के निवासी या मथुरा को जाने वाली सड़क का नाम था। सैन्धव सिन्धु देशवासी थे या सिन्धु देश में पाया जाने वाला नमक अथवा घोड़ा। कापिसी कपिसा की बनी हुई मदिरा का नाम था। रांकव या रांकवायण पाणिनि के अनुसार रंकुदेश का बैल था। रंकु या रैनकु (रैनका) कुमाऊँ में पूर्वोत्तर डोटी प्रदेश का नाम था। पाणिनि के समय में काशिका काशी में बनाया जाने वाला कपड़ा था। काच्छ कच्छ देश के बैल का नाम था।

कुमाऊँ के सकार, कटारमल, भिकियासैण, मठ, विनायक; कैलाखान, वल्दियाखान आदि खान अंतक; गणाई, गणद्यो, चौखुटिया आदि अनेक नाम इसी प्रकार के चार विभेदों में ऐतिहासिक शोध के लिए प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

यात्रा विवरण—प्राचीन कुमाऊँ के विषय में चीनी यात्री ह्वेनसांग का विवरण महत्व- पूर्ण है। ईसा पूर्व पाँचवी छटी शताब्दी में जब ईरान के हख्मनीश वंश का वंश का विस्तार पश्चिमोत्तर भारत के एक बड़े भूभाग पर हो गया था तो उस काल की भारत से सम्बन्धित बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री ग्रीक लेखकों के यात्रा विवरणों से प्राप्त हो सकती है। जब भारत का यह भूभाग हिन्द यवनों के आधीन रहा उस काल के भी अनेक यात्रा विवरण ईरान और प्राचीन असीरिया के इतिहास में उपलब्ध हैं। ग्रीक इतिहासकारों में हिरोडोटस का भारत के बारे में जो वर्णन है उसमें पर्वतप्रदेशवासियों का भी उल्लेख हुआ है उसने उन्हें जीऑस (द्यौस) का उपासक माना है। सिकन्दर महान के साथ जो ग्रीक इतिहास लेखक आए थे उनके वृतान्तों के अंश भी महत्वपूर्ण हैं। मौर्य शासकों के समय में सैल्यूकस का राजदूत मेगस्थनीज मौर्य दरबार में रहता था। इस राजदूत की लिखी पुस्तक के उपलब्ध अंशों में भी पर्वतप्रदेश के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएं हैं। सीरिया के शासक के दरबार द्वारा भारत भेजे गये राजदूत डिमाकस, मिस्र देश के शासक टालमी द्वारा भेजे गये डायनिसिस की पुस्तकों का भी पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व है। सिन्धु-सौवीर प्रान्त के यवन गवर्नर पैट्रोक्लीज का यात्रा वृतान्त और पैरिप्लस (८० ईसवी) का भारत यात्रा विवरण भी पर्वतीय प्रदेश के विषय में ऐतिहासिक सूचनाएँ देता है।

चीनी यात्री फाहियान जो चन्द्रगुप्त के शासनकाल में भारतवर्ष आया था उसके वर्णन से भी अप्रत्यक्ष जानकारी कुमाऊँ गढ़वाल के विषय में प्राप्त होती है। मध्यकाल में आए हुए यात्रियों में मार्कोपोलो की रोम से चीन तक की यात्रा, अलबरूनी की तहकीक-ई-हिन्द अपने समय की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। पश्चिम एशिया से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध सिन्धु सभ्यता के काल से ही चले आते हैं। मध्यकाल में भी हिन्दू राजाओं के ईरान के शासकों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। अरबों ने इतिहास लिखने की कला में बहुत उन्नति की। सुलेमान, अबू, जैदुल हसन, इब्न खुर्दबा, अलम सूदी, अल इद्रीसी से भी तत्कालीन कन्नौज

तथा मथुरा के राज्यों का विवरण प्राप्त होता है। इनसे तत्कालीन कुमाऊँ गढ़वाल पर हुए उन दलों का भी ज्ञान होता है जो मध्य देश में दिल्ली के सुल्तानों के आक्रमण से खदेड़े जाने पर पहाड़ी राजाओं की शरण में आये थे। तेरहवीं सदी में चचनामा नामक ग्रंथ की रचना हुई। जिसमें आठवीं सदी की लिखी भारत से सम्बन्धित बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री सम्मिलित कर ली गई है। अल्बरूनी तो भारत में आकर संस्कृत का पूरा पंडित हो गया था[१६]। मुगल दरबार के फ्रांसिसी डाक्टर वर्नियर ने २२ वर्ष भारत में रह कर पूरे भारत का भ्रमण किया। उसने काश्मीर और श्रीनगर (गढ़वाल) का वर्णन किया है[१७]। इसी काल में औरंगजेब के भ्रातृ-युद्ध के समय आगरा से भागे हुए सुलेमान शिकोह के आगरे से सात पड़ाव दूर श्रीनगर के पहाड़ी राजा के दरबार में शरण लेने का उल्लेख तत्कालीन कुमाऊँ शासक की विशालहृदनता और निर्भीकता का परिचय देता है।

सन्दर्भ और टीपें

१—फोनिसियन शब्द का उच्चारण 'ओ तथा ई संयुक्त स्वरों के कारण फीनी-सियन होना चाहिए यद्यपि आजकल अब फोनीसियन शब्द का प्रचलन हो गया है। फीनिसियन लोग संसार के सर्वाधिक प्राचीन समुद्रयात्री, व्यापारी और वणिक हैं। यही लोग वैदिक साहित्य में पणि कहे गये हैं। (संस्कृति संगम उत्तरांचल-लेखक की आगरा से प्रकाशित पुस्तक पृष्ठ ३६ तथा १४७)

२ —'जातक' गौतम बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं के संग्रह हैं। इनकी संख्या ५४९ है। पूर्वजन्म में बुद्ध को बोधिसत्व कहते थे। प्रत्येक जातक में एक बोधिसत्व की कथा का वर्णन है। बोधिसत्व कभी मनुष्य योनि में रहता है, कभी पशु योनि में। मनुष्य रूप में वह कभी ब्राह्मण है कभी क्षत्रिय और कभी वैश्य। बावेरू जातक में तत्कालीन भारत और बावेरू (बाबेलु या बेबीलोन) के मध्य होने वाले व्यापार विनिमय का वर्णन है।

३—दशरथ जातक पुराविदों के अनुसार वाल्मीकि रामायण से एक हजार वर्ष पुराना है। श्रीमती रहिज् डेविड्स तथा ओल्डनवर्ग के अनुसार जातकों का वास्तविक समय ईसा पूर्व सातवीं छठी सदी मानना चाहिए। डाक्टर बेनी प्रसाद के अनुसार जातकों की भाषा से स्पष्ट है कि सब जातक एक समय में नहीं बने और न उनका एक

ही संस्करण हुआ था। जनता में जो कथाएँ बहुत प्राचीनकाल से प्रचलित थीं बौद्ध लेखकों ने उनमें बौधिसत्व का प्रवेश करा दिया, भाषा सुधार दी और कुछ नई कथाओं का समावेश कर दिया। तथापि उनका रचनाकाल भी तीसरी सदी ईसवी पूर्व तक माना जा सकता है जबकि वाल्मीकि रामायण का रचनाकाल चौथी सदी ईसवी का माना जाता है।

४—'गिलगमिश' का महाकाव्य सुमेरी जल प्रलय की कथा से सम्बन्धित है और बहुत कुछ मत्स्यपुराण से मिलता है। कथा के अंग्रेजी रूपान्तर के लिए देखिए द इपिक ऑफ गिलगमिश आर० सी० टाम्सन-लन्दन १९३० तथा लेखक की पुस्तक 'असुर्या नाम ते लोका'।

५—ग्रीक परम्परा के अनुसार विद्या और विज्ञान की ९ शाखाओं की अधिष्ठात्री देवियों (म्यूजों) में महाकाव्य की अधिष्ठात्री देवी कालियोप थी। ये नो सरस्वतियाँ ग्रीक देव 'जियोस पितर' या जुपिटर की कन्याएँ थीं। जब देवगण ओलम्पस पर्वत पर उत्सव मनाते थे तो उनको प्रेरणा देने तथा उनका मनोरंजन करने ये देवियाँ वहाँ उपस्थित रहती थीं। कवि और विद्वान को उनकी अपनी-अपनी कला और विद्या की देवी का दास कहा जाता था। हिन्दयवन शासकों के दरबार में महाकाव्य का रचयिता देवी कालियोप का दास कहलाता था। कालियोप दास का ही संक्षिप्त भारतीय रूप कालिदास बना।

६—काशीपुर के निकट हिन्दयवन शासनकाल का एक प्राचीन स्थल उजेनी था। इस स्थल का यह नाम एटकिन्सन ने दिया है। वह उसे एक बौध स्तूप और संघाराम मानता है जो ह्वेनसांग के समय तक भी विद्यमान था। उजेनी मूलतः उज्जयिनी नामक माल प्रान्त का मुख्य नगर रहा होगा। माल या मालव नाम की एक जाति सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब में भी थी।

७—गोडवाहो अपभ्रंश साहित्य का काव्य है। देखिए डा० हरिवंश कोछड़ की पुस्तक अपभ्रंश साहित्य तथा संग्रहालय पत्रिका लखनऊ १९७० जून दिसम्बर अंक पृष्ठ ३६।

८—देखिए "फारिन ट्रेड इन द ओल्ड बैबीलोनियन पीरियड" डबलू० एफ० लीमेंन्स लन्दन १९६० तथा "द एन्श्यन्ट इण्डियन स्टाइल सील्स फ्रॉम बेहरीन"—जी० बिब्बी।

९—यह पत्र २२-२० ईसा पूर्व को भेजा गया था। जनरल राय० ए० सी० २७-३०९ तथा एटकिन्सन हिमालियन डिस्टि० १८८२ पृष्ठ ३९२

१०—दिवि, लिपि तथा दिपि के लिए देखिए ईरान के बेहिस्तुन अभिलेख। फ्राई के अनुसार बेहिस्तुन शिलालेख का नाम बिसुतुन शिलालेख भी है और यह शब्द मूलतः

वगस्तन या भगस्थान अर्थात् भग देवता का स्थान है। भग आर्य देवता किसी समय पश्चिम एशिया में ही नहीं योरोप की आर्य जातियों का भी उपास्य देव था, रूस में ईसाई धर्म के प्रचार से पूर्व वह बुगो कहलाता था। (द हेरिटेज ऑफ परसिया रिचर्ड एन० फ्राई-पृष्ठ ८८)

११—पूजा पाठ के समय किए जाने वाले काशी और कुमाऊँ के संकल्प मन्त्र के लिए देखिए लेखक की पुस्तक संस्कृति संगम उत्तरांचल।

१२—कुमाऊँ के चन्दवंशी राजाओं तथा उनके पूर्ववर्ती कत्यूरी उपराजकों के दानपत्रों का उल्लेख एटकिन्सन के हिमालियन डिस्टि० ग्रन्थ में दिया गया है।

१३—देखिए आर्क्योलॉजी आफ कुमाऊँ-डा० के०-पी० नौटियाल तथा भारतीय सर्वेक्षण विभाग की रिपोर्ट १९६५-६६।

१४—शक जातियों के तीन प्रमुख वर्गों का उल्लेख प्राचीन ईरान के इतिहास ग्रन्थों में हुआ है। शका पारद्रया अर्थात् समुद्र पार के शक कैस्पियन सागर के पार वर्तमान दक्षिण रूस के शक लोग थे। शका होमवर्गा सम्भवतः सोम (पहलवी में होम) के व्यापारी गान्धार देश के शक थे। तीसरा वर्ग शका तिग्राखौदा था जो मध्य एशिया तथा अरल सागर का निवासी वर्ग था। इसी तिग्राखौदा दल की आकृतियाँ हखमनीश शासक दारयवहुश (डेरियस) के बेहिस्तुन शिला लेख पर उत्कीर्ण है। (देखिए-द हेरिटेज ऑफ परसिया रिचर्ड -एन० फ्राई-पृष्ठ ४३-४४)

१५—उत्खनित इतिहास-सर लियोनार्ड वुल्ली।

१६—अल्बरूनी महमूद गजनवी के समय में भारत में आया था। उसकी पुस्तक तहकीक इ-हिन्द में तत्कालीन भारत की सामाजिक अवस्था साहित्य, विज्ञान आदि का सजीव चित्रण है।

१७—फ्रान्सीसी चिकित्सक डाक्टर बर्नियर सन् १६५६ से १६६८ तक मुगल दरबार में शाही चिकित्सक था। उसने सारे भारत का भ्रमण किया। उसकी फ्रैन्च भाषा में लिखी पुस्तक "महान मुगल" का डा० विसेन्ट स्मिथ ने सम्पादन किया है। पुस्तक में काश्मीर की राजधानी का नाम श्रीनगर नहीं 'कश्मीर नगर' दिया गया है जबकि गढ़वाल के पहाड़ी राज्य को श्रीनगर का पहाड़ी राज्य कहा गया है। सुलेमान शिकोह के राजा मानसिंह के कहने पर श्रीनगर के राजा की शरण में जाने का उल्लेख भी इस ग्रन्थ में है।

————

कुमाऊँ गढ़वाल नामों की पृष्ठ भूमि

ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा प्रशासनिक तीनों दृष्टियों से कुमाऊँ और गढ़वाल ये दोनों नाम पर्याप्त आधुनिक हैं। पहाड़ी में कुमु तथा उर्दू में कुमाऊँ (कुमायूँ) नाम सन् १५६३ तक काली (शारदा) नदी के दोनों ओर स्थित चन्द्र वंश के पहाड़ी राजाओं के राज्य के लिए ही प्रयुक्त होता था। आज भी यह क्षेत्र काली कुमाऊँ कहलाता है और यहाँ के निवासी अपने को कुमय्या कहते हैं। कुमाऊँ नामकरण के लिए अधिकांश इतिहासकारों ने एटकिंसन लिखित 'हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स आफ नार्थ वैस्टर्न प्रौविंसेज' नामक ग्रन्थ में उल्लिखित जनश्रुति को दोहराया है कि विष्णु भगवान कूर्म अवतार रूप में तीन वर्ष चम्पावत के पूर्व पट्टी चार आल में स्थित कानदेव पर्वत की चोटी पर रहे। यह चोटी कालान्तर में कूर्मांचल कहलाई तथा कूर्मांचल शब्द से ही वर्तमान कुमाऊँ शब्द व्युत्पन्न है।

एटकिंसन ने कूर्मांचल के इतिहास से सम्बन्धित जनश्रुतियों को ही आधार बनाया है। वह लिखता है—"कुमाऊँ का कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। जो भी विवरण मुझे मिले हैं वे स्वर्गीय रुद्रदत्त पंत नामक अल्मोड़े के विद्वान ब्राह्मण ने अपने जीवन पर्यन्त के परिश्रम से संग्रहीत किए हैं। अपने इस संग्रह को उस विद्वान ने सर जौनस्ट्रेची को सौंप दिया। कुछ खोजों के उपरान्त इन जनश्रुतियों का परिवर्धन हुआ है और बहुत कुछ अंशों में उनकी पुष्टि भी हो जाती है। इसलिए इन विवरणों को ऐतिहासिक दृष्टि से इतना ही विश्वसनीय माना जा सकता है जितना कि भारत के अन्य भूभागों की जनश्रुतियों को उन भूभागों के इतिहास के लिए माना गया है। अर्वाचीन काल के लिए वे अधिक प्रामाणिक और पूर्ण लगती हैं। इस भूभाग के राजाओं के सम्बन्ध में भी बहुत कम लिखित सामग्री उपलब्ध है। यह आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि इस भूभाग का इतिहास ही इस प्रकार का रहा है। गढ़वाल में गौरखाली अत्याचारों के कारण ब्रिटिश शासन के आरम्भ में बहुत ही कम पुराने परिवार रह गये थे। गोरखों ने पुराने अभिलेख जला डाले थे। कुमाऊँ में भी एक के उपरान्त दूसरी क्रान्ति के कारण परिवारों का विभाजन और विखंडन होता रहा। जो दल सत्ता में आया उसने अपने पूर्वगामी शासक दल के सभी अभिलेखों को या तो जला डाला या लोप कर दिया।" (एट० १८८२ संस्करण पृष्ठ ४६६)।

किसी भी पुराण में इस प्रदेश के लिए कूर्मांचल नाम नहीं आया है। तिब्बती कुमाऊँनी लोगों को कुनान और कुमाऊँ को कुना या कुन कहते थे। पश्चिमी

हिमालय के इस भूभाग के लिए बहुचर्चित पौराणिक भूगोल के ग्रन्थ स्कन्दपुराण में भी कूर्माचल शब्द का उल्लेख नहीं हुआ है। इस भूभाग के लिए इस पुराण में मानस खण्ड तथा केदार खण्ड नामों का ही उल्लेख है। केदार खण्ड अलकनन्दा तथा मंदाकिनी घाटियों के भूभाग के लिए तथा मानस खण्ड या कैलास खण्ड वर्तमान कुमाऊँ और उसके पश्चिमोत्तर डरिखुरमुरुम (हूण देश) के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रयाग वाले समुद्र गुप्त के प्रसिद्ध लेख में इस प्रदेश को कार्तिकेयपुर कहा गया है। तालेश्वर में पाए गए पाँचवीं और छठी शताब्दी के ताम्रपत्रों में इस भूखण्ड के लिए ब्रह्मपुर तथा कार्तिकेयपुर नाम आये हैं। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ब्रह्मपुर वर्तमान बरमदेव (ब्रह्मदेव मण्डी) के निकट के क्षेत्र का नाम था। जैसा पहले अध्यायों में वर्णन हो चुका है। बरमदेव पहले वर्तमान टनकपुर से पाँच किलोमीटर उत्तर में स्थित था तथा पिछली सदी के एक भूस्खलन के कारण वह नष्ट हो गया। मैदानी भूभाग से आने के लिए बरमदेव ब्रिटिश शासनकाल के आरम्भिक दिनों तक एक सिंहद्वार था। पाण्डुकेश्वर के ताम्रपत्रों में उनको कार्तिकेयपुर विषय (जिला) से प्रचारित किया गया दर्शाया गया है। कार्तिकेयपुर इस प्रकार किसी राज्य का नाम नहीं था वरन् एक विशाल साम्राज्य का एक विषय (जिला) मात्र था। उस विशाल साम्राज्य का विस्तार काबुल से लेकर नैपाल तक था। राजतरंगिणी के एक उद्धरण से स्पष्ट है कि इस राजवंश के साही जाति के एक राजा ने काश्मीर के राजा की सहायता से गजनी पर आक्रमण किया था। साही परिवार के लोग नैपाल की तराई में आज भी अनेक स्थलों पर हैं। कुमाऊँ के नैपाली सीमान्त के एक राजपूत परिवार के लोग भी अपने को साही कहते हैं। कत्यूरी शासकों के वंश का क्या नाम था यह कहना कठिन है। इतना निश्चय है कि उनके आधीन अनेक माण्डलिक राजा थे। इन राजाओं के राज्यों के भी खण्ड भुक्ति, विषय, पल्ली और ग्राम कहलाते थे।

काश्मीर का प्रांगण – यमुना और काली (शारदा) नदियों का मध्यवर्ती प्रदेश कन्नौज के सन्दर्भ में काश्मीर और कन्नौज दोनों राजवंशों के इतिहास में उल्लेखित हुआ है। आठवीं शताब्दी ईसवी में उत्तर भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने वाले काश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीठ का नाम विशेष महत्व रखता है। वह योरोप के चार्लिमग्ने, पश्चिम एशिया के हारूँ-अल-रशीद, चीन के ताँग देश के हू सुआन की भाँति अपने काल के विश्व के बड़े महत्वकाँक्षी सम्राटों में गिना जा सकता है। अशोक के उपरान्त वही भारत का ऐसा सम्राट् था जिसने न केवल मध्य एशिया तक अपने राज्य का विस्तार किया वरन् साहित्य, वास्तु, तथा अन्य ललितकलाओं की उन्नति में भी योगदान किया। उसके द्वारा निर्मित मार्तण्ड मंदिर आज भी काश्मीर घाटी में उसकी उज्ज्वल कीर्ति का प्रतीक है।

यह एक ऐतिहासिक तत्थ्य है कि काश्मीर के निकटवर्ती राजाओं से अपनी आधीनता स्वीकार करा कर उसने गंगा और यमुना की अन्तर्वेदी के राजाओं को पराजित किया (राजतरंगिणी ६-१३२)। इसी शासक ने सन् ७३३ में कन्नौज के राजा यशोवर्मन को पराजित किया (हिस्ट्री ऑफ कन्नौज-आर० एस० त्रिपाठी-पृष्ठ २०४-२०५)। उस समय हर्षवर्धन के उत्तराधिकारी यशोवर्मन का राज्य हिमालय के गिरिपाद प्रदेश तक फैला था। ललितादित्य और यशोवर्मन के मध्य सन्धि हुई किन्तु सन्धि की शर्तों में विजित और विजेता दोनों को समान रूप से उल्लिखित करने से ललितादित्य को संतोष नहीं हुआ। उसने अपने मान की रक्षा के लिए कन्नौज पर दुवारा आक्रमण कर दिया। कल्हण के अनुसार "यमुना से कालिका नदी तक का सारा भूभाग काश्मीर के राजा के प्रासाद के प्रागण" की भाँति हो गया (राजतरंगिणी १-४-१३९)।

कार्तिकेयपुर से प्रसारित पाँचों दानपत्रों में खस शब्द का उल्लेख एक जातीय (ऐथनिक) समुदाय के रूप में हुआ है। एक स्थल पर दान में दी गई भूमि को खसियाक के अधिकार में बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन कुमाऊँ का राज्य खस राज्य नहीं था। सम्भवत: वह काश्मीर के शासक के ही राज्य का एक विषय (जिला) था। यशोवर्मन के सम्बन्ध में वाकपतिराज नामक प्राकृत ग्रन्थ का लेखक अपने ग्रन्थ गौड़वहो में लिखता है-"यशोवर्मन थानेश्वर की विजय के उपरान्त हरिश्चन्द्र के राज्य की ओर गया। फिर वह देवदारु वनों से सुवासित हिमालय के मन्दारवन की ओर चला।" गौड़वाहो नामक इस ग्रन्थ की भूमिका में यशोव्र्मन द्वारा चीन के सम्राट् के पास भेजे गए कन्नौज के राजदूतों का भी उल्लेख हुआ है। ये राजदूत निश्चय ही ब्रह्मदेव के सिंहद्वार से प्रवेश करके तिब्बत गये होंगे क्योंकि काश्मीर के राजा से जब कन्नौज का मनमुटाव चल रहा था तो काश्मीर के तिब्बत की ओर जाने वाले लेह उद्दाख से होकर उनके जाने का प्रश्न ही नहीं था। (वी० ए० स्मिथ-जरनल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी ९०८ पृष्ठ ७८४)।

जहाँ तक गढ़वाल का सम्बन्ध है यह नाम तो औरंगजेब के समय तक भी प्रचलित नहीं हुआ था। डाक्टर बर्नियर ने अपनी पुस्तक महान मुगल में तत्कालीन भारत का जो मानचित्र दिया है उसमें गढ़वाल को श्रीनगर लिखा है। सुलेमान शिकोह के आगरा में उत्तराधिकार युद्ध में अपनी पराजय के उपरान्त जिस राज्य में शरण लेने का उल्लेख बर्नियर ने किया है उसे भी उसने श्रीनगर का पहाड़ी राज्य कहा है न कि गढ़वाल राज्य। वह लिखता है कि जयसिंह के परामर्श से सुलेमान शिकोह श्रीनगर के पहाड़ी राज्य में शरण लेने के लिए चला गया। उसके अनुसार यह राज्य आगरा से सात पड़ाव दूर था। या तो यह राज्य तत्कालीन स्यूनरा (अल्मोड़ा के उत्तर में एक उर्वरा घाटी) था या फिर वर्तमान श्रीनगर (गढ़वाल)।

यह तथ्य बर्नियर के काश्मीर की राजधानी के विवरण से भी स्पष्ट है। वह काश्मीर की राजधानी को काश्मीर नगर लिखता है न कि श्रीनगर।

जनश्रुतियों के अनुसार केदारखंड के बावन गढ़ों को जीत कर राजा अजयपाल द्वारा राजधानी को चौंदकोट या चाँदपुर (चमोली) से अलकनन्दा के निकट देवलगढ़ नामक स्थान पर लाया गया। देवलगढ़ से राजधानी को गंगातट पर वर्तमान श्रीनगर में लाने वाले शासक का नाम महिपति शाह बताया जाता है। गढ़वाल नामकरण का कारण अधिक स्पष्ट नहीं है। प्राचीन भारत के पहाड़ी गणराज्यों में एक गणराज्य गणेश्वर भी था। लाखा मंडल (देहरादून) में इस राजा को वंजाधिप गणेश्वर कहा गया है। गढ़देश मूलतः गण देश रहा होगा। उत्तर-काशी के एक स्तम्भ लेख में गुहा राजा या गुहेश का उल्लेख मिलता है। समुद्रगुप्त के पूर्वोक्त इलाहाबाद वाले लेख में भी एक पर्वतीय नरेश को गणेश्वर कहा गया है। गढ़वाल के लिए गढ़राज्य और गणराज्य दोनों शब्दों का उल्लेख मौलाराम रचित ग्रन्थों में भी मिलता है। गण शब्द का सानुनासिक लोप होने से भी गढ़ हो जाना स्वाभाविक है। दृष्टव्य है मौलाराम रचित गढ़राज्य वंश काव्य तथा गण का नाटक।

खजुराहो के मंदिर में भी एक विष्णुमूर्ति के विषय में लिखा सम्वत १०११ का एक लेख है जिसके अनुसार-"भोट के स्वामी ने बैकुण्ठ (मूर्ति) को कैलास से प्राप्त करके किरा (किरात) के साही राजा की मित्रता के स्वरूप दिया। साही राजा से इस मूर्ति को हैडम्बपाल ने लेकर यशोवर्मन को चन्देल राजा देवपाल के द्वारा उसके हाथी घोड़ों की शक्ति के लिए भिजवाया" (आर्क० कुमाऊँ के०पी० नौटियाल)। यह शिलालेख यशोवर्मन की पराजय के लगभग ४०० वर्ष बाद का है। यशोवर्मन ने अपनी पराजय के उपरान्त कन्नौज को छोड़ दिया था और राजतरंगिणी के अनुसार ग्वालियर को अपनी राजधानी बनाया था। इस शिलालेख से स्पष्ट है कि किसी काल में कन्नौज की राज्य सीमा भोट देश के साही राजा की राज्य सीमा से मिलती थी। साही और किरात शब्द डोटी के तत्कालीन राजवंश के नाम हो सकते हैं। कन्नौज पर दक्षिण के राष्ट्रकूटों, उत्तर के पाल राजाओं तथा गूजर प्रतिहारों ने आक्रमण किया था। मुहमद गौरी के आक्रमण के समय कन्नौज पर गहड़वाल राज-वंश का अधिकार था। रूपकुण्ड से सम्बन्धित जनश्रुतियों में भी कन्नौज के शासक यशदल का वर्णन मिलता है। सन् १९७१ में इटावा जिले में गहड़वाल राजाओं के दो ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। ये ताम्रपत्र विक्रमी सम्बत १२२९ तथा १२३९ के हैं।

उक्त ताम्रपत्र की भाषा में अनेक अशुद्धियाँ हैं। इनकी लिपि देवनागरी तथा भाषा संस्कृत है तथापि दोनों लेख महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें कुमाऊँ के रैनका राजा का

उल्लेख हुआ है। राजा के आदेशानुसार ये ताम्रपत्र रैनका अभयपाल तथा अमृतपाल द्वारा पशुपत के अनुयायी केदार ऋषि के पक्ष में लिखाए गए हैं। ताम्रपत्र में गहड़वाल वंश की वंशावली दी गई है। वंशावली के उपरान्त "हस्तिका नामक स्थान पर यमुना में स्नान करने के उपरान्त राजा ने कार्तिक मास की पूर्णिमा के बृहस्पतिवार के दिन राजा जयचन्द्र देव ने सिद्ध श्वेत पटल में वक्रदेवपुर अग्रहार के दक्षिण में स्थित लौह क्षेत्र को भट्टारक पंण्डित केदार ऋषि को दान में दिया।" यह उल्लेख है। दान में दी गई भूमि की सीमाएँ भी दी गई हैं। दूसरे दानपत्र में भट्टारक केदार ऋषि के पुत्र भट्टारक नीलकंठ तथा पौत्र परम भट्टारक श्री कीर्तिवास को गायधक नाम पट्टल में स्थित वहादेली ग्राम को दान में देने का उल्लेख है। इस लेख का लेखक कायस्थश्रीधर का पुत्र जगधर है। (द्रष्टव्य संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका दिसम्बर १९७२ पृष्ठ ६२६४) भूमि की स्थिति के विषय में पट्टल शब्द कत्यूरी शासकों के ताम्रपत्रों में उल्लिखित पल्लिका का पर्यावाची है। आजकल भी कुमाऊँ गढ़वाल में इस में अर्थ में पट्टी शब्द का प्रयोग होता है। भट्टारक उपधि का उल्लेख भी कार्तिकेयपुर से प्रचारित ताम्रपत्रों में हुआ है। केदार ऋषि को केदार राशि भी पढ़ा जा सकता है। यह नाम भी केदार खण्ड नामक भूभाग से सम्बन्धित लगता है।

अकबर के समय के (सरकार कुमाऊँ) का उल्लेख पहले हो चुका है। उस समय कुमाऊँ का अभिप्राय प्राचीन काली कुमाऊँ और उससे लगे भाबर तराई के क्षेत्र से था। मुगलकालीन लखनऊ के सूबेदार हुसैन खाँ टुकुड़िया के आगे दिए गए विवरण से भी स्पस्ट है। काली कुमू का कुमू नाम पश्चिम एशिया के कैस्पियन सागर तटीय उस पहाड़ी प्रदेश का ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ही प्रचलित नाम था तथा वह कस्साइट या खस कही गई जाति के साथ कुमाऊँ में आया इसके लिए खस जाति का पूर्व इतिहास देना आवश्यक होगा।

खस जाति का पूर्व इतिहास

प्राचीन कुमाऊँ के मूल आदिवासी वेदों में वर्णित निषाद लोग हैं जो भाषाविदों की परिभाषा में आस्ट्रिक परिवार के लोग हैं। सम्भवतः इन लोगों के अवशेष देबी-धूरा, भटकोट, द्वाराहाट, आदि की वे महापाषाणी कब्रें हैं जिनके विविध रूप दक्षिण भारत, मिर्जापुर में तथा विदेशों में भी पाये जाते हैं। इटली तथा ब्रिटेन के शिला-स्तम्भ (स्टोन हैंजेज) या मेगालिथ इसी महा पाषाणी सभ्यता के माने जाते हैं। पुराविदों का मत है कि कालान्तर में कृष्ण वर्ण के ये लोग हिमालय के दक्षिण पूर्व आस्ट्रेलिया तथा हवाई द्वीप तक चले गए थे।

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "ईसा पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के प्रारम्भ में खस लोग पूर्व मध्य एशिया (काशगर) खोतान की ओर से आए। उनके पीछे वैदिक आर्य उत्तरी भारत के मैदान (कुरु पांचाल) से हिमालय में पहुँचे। इन दोनों जातियों के आने से बहुत पहले जो जाति हिमालय में रहती थी उसे हम किन्नर या किरात कह सकते हैं। किन्नरों का देश एक समय हिमालय में गंगा के पनढर से पश्चिम में सतलुज और चन्द्रभागा के पनढर तक फैला हुआ था। किरात गंगा के पनढर से पूर्वी छोर को लिए सारे नैपाल तक थे।"

अन्यत्र राहुल जी खस और शक जातियों को मूलतः एक ही जाति मानते हैं। वास्तव में खसों के आने से पूर्व जो जाति हिमालय के दक्षिण पनढर पर रहती थी उसका उल्लेख वैदिक साहित्य में भी यत्र-तत्र मिलता है। मैकडोनल और कीथ के अनुसार "किरात एक जाति के लोगों के लिए प्रयुक्त नाम है जो पर्वतों की गुफाओं में रहते थे। वाजसनेयि संहिता में किरातों को गुफाओं (गुहा) को समर्पित किए जाने और अथर्ववेद में एक किरात बालिका कैरातिका जो पर्वतों पर औषधि खोजती है, के सन्दर्भ में यह स्पष्ट प्रतीत होता है। कालान्तर में किरातों की स्थिति पूर्वी नैपाल में बताई जाती है, किन्तु यह नाम किसी भी पहाड़ी जाति, और निःसन्देह-आदिवासियों के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। यद्यपि मानव धर्म सूत्र में इन्हें च्युत क्षत्रिय माना गया है।"

यही दो विद्वान किरात तथा असमाति नामक दो पुरोहितों के वैदिक साहित्य में (पंचविंश ब्राह्मण) आए हुए सन्दर्भ का उल्लेख करते हुए लिखते हैं "किरात असमाति की कथा में दो पुरोहित जाते हैं जो गौपायनों के विरोधी हैं और जिनका नाम पंचविंश ब्राह्मण के अनुसार किरात और आकुलि, शतपथ ब्राह्मण के अनुसार

किलात और आकुलि है। इसमें सन्देह नहीं कि नाम का चुनाव एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में नहीं वरन एक वैर भाव युक्त पुरोहित की उपाधि के लिए किया गया है। क्योंकि यह सम्भवतः उपरोक्त लेख में वर्णित पर्वतीय लोगों के नाम के समतुल्य है।"

एशियाई पहाड़ी लोग—पश्चिम एशिया के इतिहास में सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति सुमेर संस्कृति मानी जाती है। आधुनिक पूर्वी और पश्चिमी विद्वानों ने भाषा-शास्त्र, ज्योतिष, पुरातत्व, भूगोल और भूगर्भ विद्या की सहायता से यह परिणाम निकाला है कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताएँ तथा सांस्कृतिक-विचार धाराएँ मिस्र में नील नदी घाटी, पश्चिम एशिया में सुमेर (दक्षिण ईराक) तथा भारत में सिन्धु नदी घाटी के समतल भूभाग में अस्तित्व में आई तथा उनमें सबसे प्राचीन सभ्यता के अवशेष आज भी दजला फुरात नदी घाटी में ही उपलब्ध हैं। इस मध्यवर्ती नदी घाटी सभ्यता को समय-समय पर सुमेरी, मैसोपोटामियायी, बैबीलोनियन (बाबेलु सम्बन्धी), अक्कद (ऐकैडियन), इलामी (एलामी), ईराकी, खालदी, कालदू (चाल्डियन), असीरियायी तथा नव बाबेलुई (नियो बैबिलोनियन) और मेद-पारसिक (मिडो पर्सियन) आदि अनेक नाम दिये गए हैं। ईरान की सभ्यता को भी आंजन (आंजनाइट), आंशन (आँशनाइट), शुशाई (सुशियन) आदि नाम दिए गए हैं। मैसोपोटामिया शब्द ग्रीक मैसो-मध्य और पैंटोमस-नदियाँ इन दो शब्दों से बना है। यह संस्कृत के अंतरवेदी शब्द की भाँति दो नदियों की मध्य भूमि का पारिभाषिक नाम है। इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजों द्वारा पिछले प्रथम महायुद्ध के समय दजला फुरात नदियों की मध्य की फारस की खाड़ी से मिले मौसल तक फैले भूभाग केलिये किया गया। प्राचीन काल में जब हिन्द यवन शासक पश्चिमोत्तर भारत पर शासन करते थे तो उन्होंने पंजाब को भी पैंटोपोटामिया नाम दिया था।

प्राचीन सुमेरी ग्रन्थों में दजला फुरात घाटी का नाम नार, नाहर दिया गया है। नारू शब्द अक्कद भाषा में भी नदी का बोधक था। अक्कद भाषा सुमेर की सर्वाधिक सम्पन्न भाषा थी जो पूर्वकाल में तीन सहस्राब्दियों तक अंतर्राष्ट्रीय भाषा का काम देती रही। उकारान्त शब्द इस भाषा में प्रथमा विभक्ति के द्योतक हैं। नारू शब्द मूलतः नार था। इसी से प्राचीन हिब्रू धर्म ग्रन्थों में इस घाटी को शि-नार नाम दिया गया है। यहूदी बाइबिल (ओल्ड टैस्टामेंट) में भी इस घाटी के लिए शि-नार ही नाम का प्रयोग किया गया है। संस्कृत में भी नार जल के लिए प्रयुक्त होता रहा है। नार या नर देश का उल्लेख महाभारत में (सभा० ३२/६) में हुआ है।

सुमेर फारस की खाड़ी के सिरे पर समुद्र तट से मिला भूभाग था। इसके समीप उत्तर पूर्व की ओर का देश अक्कद था। सुमेर और अक्कद के मध्य कोई निश्चित

सीमा नहीं थी । सभ्यता का श्रीगणेश इस घाटी में सुमेरी कहे गए लोगों ने किया। सुमेरी लोग भी पूर्व के पहाड़ों के रहने वाले बताए जाते हैं । ये लोग नृतत्व विशारदों द्वारा सामी (सैमिटिक) नहीं माने जाते । इन्हें कोई पुराविद पूर्व के पहाड़ी प्रान्त इलाम (ऐलाम) से दजला फुरात घाटी में आया हुआ मानते हैं । इलाम शब्द का शाब्दिक अर्थ अक्कद की भाषा में पहाड़ी है । इस प्रकार सुमेर की सभ्यता की नींव जिन लोगों ने डाली वे पर्वतीय लोग थे । इन्हीं पर्वतीय लोगों ने कीलाक्षर लिपि का आविष्कार किया । इन्हीं लोगों की धार्मिक परम्पराओं, विचारधाराओं, इहलोक तथा परलोक के विषय में भावनाओं को कालान्तर में असुर या असीरियन कहे गए लोगों ने भी अपनाया । नगर राज्यों की स्थापना करने वाले ये ही पर्वतीय लोग माने जाते हैं । इनकी सभ्यता कालान्तर में पश्चिमी सभ्यता का आधार बनी । अक्कद (अगेद-अजेद) के अन्तर्गत बाबेलु तथा बोरसिप्पा नगर राज्य थे । निपपुर नामक नगर जहाँ सुमेरी लोगों के मंदिर थे, लगभग दोनों के मध्य में था । एक सुमेरी दन्तकथा के अनुसार सर्वप्रथम एनलिल ने स्वर्ग से राजस्व को पृथ्वी के नाभि-स्थल निपपुर में ही उतारा । इस नगर के नाम के नीवि (निप) तथा पुर दोनों शब्द संस्कृत मूलक हैं । ईसा के ३ हजार वर्ष पूर्व निपपुर तक्षशिला की भाँति शिक्षा केन्द्र था । उत्खनन से यहाँ विद्यार्थियों के उपयोग में आने वाली रेखागणित के कुछ प्रमेयों की आकृतियों से अंकित मृद्पट्टिकाएँ मिली हैं ।

असुर—असीरिया शब्द मूलतः असुर्या उच्चारण किया जाता था । अंग्रेजी के वाइ (Y) अक्षर के मूलरूप ग्रीक भाषा के असीरिया (αΣΣγΙρα) शब्द में आए (γ) अपसाइलोन अक्षर का उच्चारण दो हजार वर्ष पूर्व य नहीं उ था । असुर या अस्सुर उपाधि इस घाटी के अनेक राजाओं के व्यक्तिगत नामों के अन्त में अनिवार्यतः जोड़ी जाती रही है । असुर दजला नदी के तट पर स्थित एक अति प्राचीन नगरराज्य था । इस नगर ध्वंसावशेषों के उत्खन्न से ईराक के प्रथम वंशावली काल के (२५०० ई०पू०) इसी नाम के देवता का मन्दिर मिला है । असीरिया के असुर राजाओं की वंशावली की प्रतियाँ खोरसाबाद तथा अन्य स्थानों से उत्खनित अभिलेखों में प्राप्त हुई हैं । असीरिया कालान्तर में अक्कद या अगेद के शासक के राज्य के अन्तरर्गत आगया । असीरियन व्यापारियों के भूमध्य सागर तट पर स्थित व्यापारिक नगर कणेश (गणेश ?) का कई बार प्राचीन लेखों में उल्लेख हुआ है । कणेश वर्तमान कुलटेप नामक स्थल माना जाता है । इस नगर राज्य के इष्टदेव का नाम भी कणेश था । असुर राज्य में वर्तमान सुहू और हिन्दानु के जिले भी थे जो हाबुर नदी के मुहाने के पास हिट के समीप थे । सीरिया शब्द प्राचीन साहित्य में कहीं नहीं मिलता । यह बहुत बाद में रोमनों द्वारा आर्मीनिया के लिए प्रयुक्त हुआ ।

असुर शब्द वदिक है । वहाँ इसका अर्थ श्रेष्ठ, महान तथा उदार है । वेद विद्या

के प्रसिद्ध विद्वान डा० वासुदेव गोपाल परांजपे का जिन्होंने जर्मन विद्वानों के अनेक वैदिक ग्रंथों का अंग्रेजी और मराठी में अनुवाद किया है तथा इन अध्यायों के लिखने में जिनके बहुमूल्य परामर्श के लिए लेखक आभारी है, मत है कि असुर और आर्य ईसा से ३ हजार वर्ष पूर्व साथ-साथ रहते थे। वे अपने कथन की पुष्टि में ऋग्वेद के दशवे मंडल के ५१ तथा ५३ सूक्तों का संदर्भ देते हैं। इन सूक्तों के अनुसार अग्नि (देव) ने आर्यों का साथ छोड़कर असुरों के साथ जाने का निर्णय किया तथा इस निष्क्रमण के पर्याप्त समय बाद अग्नि फिर आर्यों के पास लौट आए। अग्नि के लौकिक या आध्यात्मिक अर्थ के विवाद में न पड़कर यह तो कहा जा सकता है कि अग्नि आर्यों का पृथ्वी स्थानीय प्रधान देव था। ऋग्वेद का आरम्भ ही अग्नि की स्तुति से हुआ है। वेद के भाष्यकार यास्क के अनुसार तो आकाश स्थानीय सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत और पृथ्वी में अग्नि तीन प्रकार की अग्नियाँ मानी गई हैं। डा० परांजपे अग्निदेव के अस्थायी निष्क्रमण में आर्यों और उन्नत सभ्यता के साझी (सेमिटिक) असुरों के सिंधु घाटी में हुई टक्कर की झलक देखते हैं।

एलाम—वर्तमान ईरान के पश्चिम का अरबिस्तान, लुरिस्तान, पुश्त-इ-कुह तथा बख्तियारी का पर्वतीय भूभाग जो दक्षिण में फारस की खाड़ी तक फैला था एलाम या इलम्तु कहलाता था। उत्तर में एलाम या इलाम राज्य की सीमा बाबेलु से एकबताना जाने वाले मार्ग पर समाप्त होती थी। पूर्व के वर्तमान फारस के प्रदेश का कुछ भाग भी इसमें सम्मिलित था, एलाम का पश्चिम का उर्वर भू-भाग कभी-कभी सुमेर द्वारा हथिया लिया जाता था। किसी समय प्राचीर-बद्ध सुषा, मदक्तू, खेदालु आदि एलाम देश के अति सम्पन्न नगर थे। ईरान का यही सबसे उर्वर भू-भाग था। इस देश की नहरों की रचना और उनकी व्यवस्था बाबेलु से भी प्राचीन और उत्तम थी। अक्कद भाषा में एलाम शब्द का अर्थ था ऊँची भूमि।

बाबेलु (बैबीलोन)—ईसा के लगभग २००० वर्ष पूर्व तक बाबेलु अथवा बैबीलोन का अधिक महत्व नहीं था। वह अक्कद राज्य के अंतर्गत था जैसा पहले कहा जा चुका है। अंग्रेजी का बैबीलोन शब्द बाब और इली इन दो शब्दों से बना है। बाब का अर्थ है द्वार, इली का अर्थ है ईश्वर। तत्कालीन भारत के द्वार का या द्वारावती नगर के नाम का भी यही अर्थ है। इतिहासकार सैग्स के अनुसार सिंधु घाटी के व्यापारियों को दजला-फुरात नदी घाटी में अपने देवताओं की उपासना की स्वतंत्रता थी। उनकी अपनी बस्तियाँ भी वहीं थीं। बौद्ध साहित्य के 'बाबेरु-जातक' में इस नगर का नाम, प्रवासी व्यापारियों की कथा के संदर्भ में, बावेरु दिया गया है। आज से दो ढाई हजार वर्ष पहले के पश्चिम भारत के कुछ अभिलेखों में र के स्थान पर ल ही लिखा जाता था (द्रष्टव्य है—अशोक का कालसी का शिलालेख)।

ईसा के २००० वर्ष के उपरान्त इस अन्तर्वेदी में उत्तर में असुर तथा दक्षिण में बाबेल यही दो प्रमुख राज्य थे। बाबेलु का भी केवल उत्तरी भाग इस नाम से जाना जाता था। दक्षिणी भाग सुमेर कहलाता था। बाबेलु समुद्रतट के निकट अपेक्षाकृत छोटा नगर था। कालान्तर में फ़ारस की खाड़ी के तट के डेढ़ सौ मील आ जाने से यह समुद्र से दूर होता गया। बाबेलु की उत्तरी सीमा फुरात नदी के तट पर स्थित हिट नगर से दजला के तट पर स्थित समर्रा पर जाकर समाप्त होती थी। पूर्व में यह अपने पड़ौसी, कभी-कभी अपने से भी सशक्त, देश एलाम से दजला द्वारा पृथक् होता था। दोनों देशों में परस्पर युद्ध होते रहते थे और बहुधा उभयनिष्ठ सीमा कभी दजला के इस पार और कभी उस पार चली जाती थी। पश्चिम में बाबेलु की सीमा फुरात नदी थी और उसके बाद निर्जन रेगिस्तान था।

28151

चाल्डिया—चाल्डिया (शाल्डिया), खाल्दी या काल्दू नाम का उल्लेख असुर देश के अभिलेखों में नवीं शताब्दी ई० पू० से पहले नहीं मिलता। काल्दू दक्षिण बाबेलु की एक जाति विशेष थी जिसका दजला-फुरात की अन्तर्वेदी से अरब तथा भारत से होने वाले समुद्र तटीय व्यापार पर शताब्दियों तक नियंत्रण रहा। इस जाति के मुखिया उकिंजर ने ७३४ ई० पू० बाबेलु (बैबीलोन) पर अधिकार कर लिया। इसी भाँति के एक अन्य शासक मेरुदाश बालदान का उल्लेख यहूदी बाबिल में अनेक स्थलों पर हुआ है। एक स्थल द्रष्टव्य है—'उस समय बलदान का पुत्र मरोदाश, बलदान जो बाबेलु का राजा था, उसने हिचकियाह के रोगी होने ओर चंगे होने की चर्चा सुन कर उसके पास पत्री और भेंट भेजी।'(यशायाह—२९-१)।

वैदिक साहित्य के कुछ विद्वानों ने अथर्ववेद को अन्य वेदों की अपेक्षा अर्वाचीन और कुछ ने चाल्डियन वेद कहा है। अथर्ववेद का छठा अंश गद्यात्मक है। अथर्ववेद के आयुर्वेद, राजधर्म तथा समाज व्यवस्था संबंधी सूक्तों में तथा असुर-बाण इ-पाल नामक असीरियन शासक (६६८–६२६ ई० पू०) के निनेवा के उत्खनन से प्राप्त पुस्तकालय में पाए गए कीलाक्षर लिपि के मृद्फलकों पर उत्कीर्ण ग्रंथों में अद्भुत समानता है। पुरानी बाइबिल के अनुसार जल प्रलय के उपरान्त द्वारा सृष्टि का आरम्भ इसी नदी घाटी में हुआ। इस ग्रंथ के उत्पत्ति संबंधी पहले अध्याय का अविकल उद्धरण है "१०–१० और उसके राज्य का आरम्भ शिनार देश में बाबुल और अक्कद और कलने हुआ। (११) उस देश से वह निकलकर अशुर (असीरिया) को गया और नीनवे, रहोवोतीर और कालह को......" (ग्रेट ब्रिटेन में 'धर्मशास्त्र' नाम से छपी पुरानी और नई बाइबिल का संयुक्त संस्करण—पृष्ठ १३)।

दजला और फुरात नदियां:—उत्तर अफ्रीका से मध्य एशिया तक फैले पूर्वोक्त बियावान बालुकामय विस्तार के मध्य में ईरान का ऊँचा पठार है जिसमें

दक्षिण की ओर बहती दजला, फुरात, कारुन और केरखा नदियों की गहरी घाटियाँ हैं। नील तथा सिंधु नदी की घाटियों से यह मध्यवर्ती नदी घाटी प्राचीन मानव के जीवन यापन के लिए कहीं अधिक सुविधाजनक और महत्वपूर्ण रही है क्योंकि ऊँचे पर्वतों से निकली ये नदियाँ ऐसे समुद्र में गिरती हैं जो तीनों ओर उर्वरा भूमि से दूर तक घिरा है। नील अथवा सिंधु नदियाँ खुले समुद्र में गिरती हैं और उन देशों में स्वभावतः उस प्राचीन काल में कृषि के योग्य इतना विस्तृत समतल भू-भाग नदी के मुहानों के पास नहीं था। मंद गति से बहने वाली फुरात नदी में व्यापारिक पोत दूर तक आ जा सकते थे। एक केन्द्रीय राजसत्ता को अपना शासन चलाने के लिए नहरों द्वारा यातायात के साधन सुलभ थे।

फुरात नदी को प्राचीन काल में पुरात्ता कहते थे। अरबी में पकार न होने से यह शब्द फुरत्ता और बाद में फुरात (फरात) हो गया। सुमेरी भाषा में यह नदी जिम्बिर कहलाती थी और प्राचीन अक्कद भाषा में इसे बुरनुम कहा गया है। दजला नदी का सुमेरी नाम इदिग्ना था जो अरबी में दिगलात हुआ। पुरानी बाईबिल में इस नदी को हिद्दकेल कहा गया है। यहूदी बाइबिल में, मनुष्य की उत्पत्ति से सम्बंधित प्रथम अध्याय में, लिखा है "१४ - और वह तीसरी नदी हिद्दकेल है, यह वही नदी है जो अश्शुर (असीरिया) देश के पूर्व की ओर बहती है और चौथी नदी का नाम फरात है।" हिद्दु शब्द का प्रयोग ईरान के हखमनीश साम्राज्य की पूर्वी क्षत्रपी सिंधु के लिए हुआ है।

पुरात्ता शब्द पुर से संबंधित प्रतीत होता है। पुर वैदिक वाङ्मय में ग्राम की रक्षा के लिए बने किले या दुर्ग का बोधक है (ऋग्वेद १-५३, ७-७८)। संसार के जो अनेक प्राचीन नगर फुरात नदी से तट पर बसे थे उनके नामों के अंत में पुर शब्द आया है। निपपुर, जैसा आगे वर्णन किया गया है, इस नदी घाटी का एक प्राचीनतम नगर राज्य था। वैदिक वाङ्मय में बाढ़ से नदी तटों की रक्षा के लिए बनाए गए बाँध को भी पुर कहा गया है (शारदीपुर ऋग० १—१३१ : ४-१७४, २ : ६-२०-१०)। पुरावती का उल्लेख महाभारत में भी हुआ है (भीष्म ६-२४)।

सुमेरी तथा द्रविड़ लोगों की आकृतियों की समानता से हॉल नामक इतिहासकार सुमेरी सभ्यता को सिंधु सभ्यता की जननी मानते हैं (एंश्येंट हिस्ट्री ऑफ नीयर ईस्ट-पृष्ट १७३-१७४)। जबकि "कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' के लेखक रैप्सन का मत है कि सुमेरी लोग भारत से दजला फुरात घाटी में गये थे। द्रविड़ों का मूल स्थान भी भूमध्य सागर का क्रीट द्वीप माना जाता है। आज से चार हजार वर्ष पूर्व दजला, फुरात, कारुन, केरखा नदियाँ पृथक्-पृथक मुहानों से समुद्र में गिरती थीं। फुरात नदी पश्चिम में दजला के उद्गम के समीप ही तोरुस पर्वतों से

निकलकर आज से और अधिक पूर्व की ओर बहती थी। इसके पश्चिम का भूभाग मरुस्थल था। इसके तटों पर बसे मारी, सिपपार, बोरसिप्पा, लारसा, बाबेलु, किस, उरुक (एरिच) आदि नगरों की पूर्व से आने वाले एलाम के पर्वत वासियों के आक्रमणों से रक्षा होती थी। उर नगर प्राचीन काल में 'चाल्डियन (काल्दू) नगर' कहलाता था।

दजला नदी जगरौस पहाड़ों से निकलने वाली छोटी और बड़ी दो 'जैब' नदियों का जल लेकर भारतीय यमुना की भाँति गहरी द्रोणी में तीव्र गति से बहती हुई समुद्र में गिरती थी। तीव्र प्रवाह के कारण इसके तटों पर केवल असुर नगर के अतिरिक्त और कोई नहीं बसे थे। इस नदी के मुहाने से भारत के समुद्र तट की ओर के व्यापारी जहाज आठवीं सदी ई० पू० आया करते थे। इस तथ्य का उल्लेख पिछली शताब्दी के अंतिम वर्षों में कैनेडी नामक एक विद्वान ने किया है (रायल एशियाटिक सोसाइटी जनरल-१८९८-१६)। इतिहासकार परसी साइक्स के अनुसार इस नदी का दिग्लात नाम फारसी तिधरा (तीर-वाण) से पढ़ा। सम्भवतः नदी के तीव्र प्रवाह से तीर की भाँति जाने से यह नाम पड़ा हो।

केरखा नदी का प्राचीन नाम उकनू था और ग्रीक लोगों ने इसे च्वस्पीज (क्वस्पीज) नाम दिया। इसी नदी के किनारे बहस्तान (गमस्याव) के पास वह हखमनीश सम्राट का छटी शताब्दी ई० पू० का विशाल शिलालेख है। केरखा नदी देमावन्द पहाड़ों से निकली है। आजकल यह लुरिस्तान के मध्य होती हुई फारस की खाड़ी में गिरती है।

कारुन नदी जिसको ग्रीक लोगों ने यूलेयस अथवा उलई, छोटी दजला (परा-तिगरिस अथवा दुजयाल) भी कहा है, प्राचीन काल में फारस की खाड़ी के एक द्वीप के निकट समुद्र में गिरती थी। अजकल यह नदी सुस्टर और अहवाज होती हुई शत्तल अरब में मिलती है। दजला और फुरात दोनों नदियाँ आजकल बसरा के उत्तर में मिलती हैं और उनका संयुक्त नाम शत्तल-अरब है।

दजला का अंग्रेजी टिगरिस नाम उच्चारण में संस्कृत त्रिगर्त्त से मिलता है। त्रिगर्त को आप्टे संस्कृत कोष में पश्चिम दिशा का विशाल मरुस्थल बताया गया है। महाभारत में त्रिगर्त देश का उल्लेख अनेक बार हुआ है। त्रिदिवा नामक नदी (भीष्म ९-१०) तथा त्रिगर्त नामक यम की सभा में उपस्थित रहने वाले राजा का भी (सभा ८-२०) महाभारत में उल्लेख है जो निश्चय ही तिगर्त के वर्तमान भारत के बाहर पश्चिम दिशा में वरुण के देश में स्थित होने का आभास देता है।

मैंसोपोटामियां में खस (कस्साइट) संस्कृति का प्रभाव

बाबेलु के कस्साइट[1] शासकों और असुर देश के असीरियन शासकों में रक्त सम्मिश्रण कराइनदाश के समय से ही हो गया था। असीरियन नाम केवल असुर देश

के निवासियों के लिए ही प्रयुक्त होने लगा था चाहे वे सेमिटिक हों, असुर हों अथवा कस्स लुल्लुवि, गुटि अथवा मन्नी। किन्तु असुर संस्कृति ने आर्य या कस्स सभ्यता को ग्रहण कर लिया था। डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने यह मत व्यक्त किया है कि मैसोपोटामिया में कस्स जाति ही घोड़े को लाई थी। उनका यह भी कहना है कि ई० पू० सन् १७६० के एशिया माइनर के कस्साइट अभिलेखों में सूर्यस्, मरुतस्, बुगस् आदि देवताओं के नाम मिले हैं। असुर देश वासियों ने कालान्तर में इन देवताओं को ग्रहण किया। तथा असुर भाषा का घोड़े का सुस नाम कस्साइट जाति के अश्व नाम का रूपान्तर है। (दि कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया-खण्ड, कलकत्ता १९५८)

अधिकांश पुराविद् यही मानते हैं कि कस्साइट शासन से पहले गधा ही मैसोपोटामिया में बोझा ढोने, सवारी करने तथा देव बलि चढ़ाने के लिए उपयोग में आता था। प्राचीन चित्रों में भी रथ में जुते हुये गधे दिखलाई देते हैं घोड़े नहीं। कस्स जाति में थोड़ा बहुत उपयोगी और सम्मानित पशु था। बाबेलु में उसको यह सम्मानित पद कस्स जाति के आगमन के उपरान्त ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में मिला। सैग्स ने मारी के उत्खनन से प्राप्त एक प्राचीन अभिलेख का उदाहरण दिया है।

"घोड़े को जिसका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता था, प्राचीन मैसोपोटामिया में प्रतिष्ठत स्थान प्राप्त था। मारी इसका अपवाद है। वहाँ एक सरकारी पत्र व्यवहार में एक कर्मचारी ने अपने राजा को लिखा था कि राजा का घोड़े पर सवार होना अशोमनीय है।

'मेरे प्रभु कृपया अपने पद का सम्मान बनाए रखें। आप हनीयनों के भी वैसे ही राजा हैं, जैसे अक्कद वालों के। मेरे स्वामी घोड़े पर सवार न हों। मेरे स्वामी रथ की सवारी कर सकते हैं। नि संदेह वे खच्चर की भी सवारी करें और इस भाँति राजसी पद की गरिमा बनाए रखें।

बाद में कस्साइट लोगों के शासन में घोड़ा ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में अपना सम्मानित पद पा गया। उन लोगों के लिए घोड़ा रखना गरिमा और यश की ही बात थी, उसकी पैतृकता को भी महत्व दिया जाता था। निपपुर के कुछ अभिलेखों से हमें घोड़ों की सूची का पता चलता है। इस सूची में अलग-अलग घोड़ों के नाम ही नहीं दिए गए हैं वरन् उनके सवारों के नाम भी अंकित हैं।" (द ग्रेट-नेस दैट वाज बेबीलोन पृष्ठ १९४-९५)

मछली

प्राचीन सुमेर में मछली भोजन का अंग था। मन्दिर को भेंट में दिए जाने वाले पदार्थों में भी सूखी मछली एक अनिवार्य वस्तु थी। सुमेरी साहित्य में अनेक प्रकार की मछलियों का उल्लेख मिलता है कुछ ऐसे भी मृद फलक अभिलेख मिले हैं जिसमें

एक देवता द्वारा मछलियों के लिए बनाए गए आवास में मन्त्रोच्चार द्वारा उनके झुण्ड के प्रवेश करने का उल्लेख मिलता है। मछलियों का उल्लेख बाबेलु के प्रथम राजवंश के बाद फिर नहीं मिलता है। लगभग २००० ई० पू० के एक अभिलेख में भिन्न प्रकार की मछलियों के स्वभाव तथा उनकी प्राप्ति स्थान का उल्लेख है। कस्साइट जाति के बाबेलु पर अधिकार कर लेने के बाद के अभिलेखों में मछली का उल्लेख न मिलने के कारण कुछ पुराविद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कस्स जाति में मछली के भोजन के प्रति कोई निषेध या अन्ध विश्वास प्रचलित था। सम्भवतः कुछ स्थलों में मछलियाँ पवित्र मानी जाति थीं। ईराक के कुछ स्थलों में आज भी पवित्र मछलियाँ सुरक्षित हैं। कस्स शासन के उपरान्त के भित्ति चित्रों में मछलियों का फिर उल्लेख है। नव बाबेलु राज्य काल में मछली पकड़ना एक व्यवसाय था।

उर के उत्खनन से मत्स्य के आकार के मानव पुतले का घर के भीतर रखे जाने का प्रमाण मिलता है। घर के अन्दर से भूत-प्रेत को भगाने के लिए अथवा किसी शुभ शकुन के लिए मछली के आकार के ये पुतले घर के भीतर रखे जाते होंगे। कस्स जाति में मांस के लिए प्राचीन मैसोपोटामिया में बकरी की बलि दी जाती थी। गोमांस का प्रचलन नहीं था। तथापि देवता के लिए गौ बलि चढ़ाने के उल्लेख दुर्लभ नहीं हैं।

बर्तन तथा आभूषण

कस्स जाति से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार के रंगे हुए मिट्टी के बर्तन कशान नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार के बर्तन टेप गियान तथा टेप स्यालक में भी मिले हैं। किन्तु यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है कि ये कस्स जाति से ही सम्बन्धित हैं। कस्स जातियों के शासन की समाप्ति के बाद भी उन जातियों के वंशज लुरिस्तान के पर्वतों में आवास करते थे। मकदूनिया के सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय भी वे वहाँ विद्यमान थे। सिकन्दर के साथ आए हुए इतिहासकारों में पर्वतवासी कस्साइट (कोस्साइ) लोगों के उसके द्वारा दण्डित किये जाने का उल्लेख किया है। इतिहासकार फ्राई नामों की इस समानता के प्रलोभन से बचने का संकेत करते हुए लिखता है कि यद्यपि कीलाक्षर लिपि में मक या मग जाति का नाम आता है और यह विश्वास किया जाता है कि यह नाम फारस की खाड़ी के मकरान तट के लोगों का द्योतक है किन्तु ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में मक और मगान नाम कीलाक्षर अभिलेखों में मिस्र देश के लिए आए हैं।

लुरिस्तान में इस शताब्दी के तीसरे दशक में काँसे के बर्तन बहुत अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं। योरोप के अनेक संग्रहालयों में ये कांस्यपात्र संग्रहीत हैं। इन्हें लुरिस्तान के कांस्यपात्र कहा जाता है। ये लुरिस्तान के प्राचीन पर्वतीय लोगों की

समाधियों से प्राप्त हुए हैं। कांसे की इन वस्तुओं में घोड़े की सवारी में काम आने वाली रकाबें, लगाम के छल्ले, लगाम का घोड़े के मुख के अन्दर रहने वाला टुकड़ा आदि वस्तुएँ हैं जिनसे पुराविदों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ये वस्तुएँ घोड़े का उपयोग करने वाले घुमक्कड़ लोगों से सम्बन्धित है। कांसे के बने खंजर, विभिन्न प्रकार की तलवारें, पंचपात्र, चम्मच आदि पूजा के पात्र, पिन, धुरी, कमर की पेटी के बकसुए, वाणों के फलक भी काफी बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के कांसे के बने उपकरण मेसोपोटामिया या ईरान में अन्य किसी स्थल पर नहीं प्राप्त हुए हैं। पुराविदों का विश्वास है कि ये खस (कस्साइट) जाति से ही संबंधित हैं और उसी काल के हैं। यद्यपि कुछ वस्तुएँ मैसोपोटामियां में मिट्टी से बनी वस्तुओं के समान हैं, तथापि कुछ अन्य को सीथियन अथवा उत्तर के स्टेपीज (चरागाहों) के शकों से संबन्धित किया जाता है। प्रथम प्रकार के पूजापात्रों में एक तो प्राचीन बाबेलु के गिलगमिश की कहानी से संबन्धित कांस्य मूर्ति है। (दि आर्ट आफ नार्दन नोमेड्स-लंदन १६४२-ई०एच० मिन्नस)। इससे पुराविदों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कस्साइट जाति ने उन मूर्तियों को जिन्हें प्राचीन बाबेलु में मिट्टी से बनाया जाता था, कांसे से बनाना आरंभ कर दिया था।

कांस्य वस्तुओं के विशेषज्ञ गौडार्ड ने इन उपकरणों का समय १२००-१००० ई० पू० बताया है। उसके अनुसार लुरिस्तान के कस्साइट लोगों ने इस कला को शक (सीथियन) जाति को प्रदान किया जबकि ई पू० ६८० में मीडिया पर सीथियन शासन हुआ। यही सीथियन इस कला को दक्षिण रूस की ओर ले गए। एक दूसरे विशेषज्ञ गिर्समान ने लुरिस्तान के कांस्य उपकरणों को ई०पू० सातवीं-आठवीं शताब्दी का बताया है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन ईरान में कांस्य उपकरणों को ही लुरिस्तान के कांस्य उपकरण कहा जाता था। (लिस ब्राँन्जेज दू लुरिस्तान-ए० गोडार्ड रोम १६५०)। कदाचित कांसे का संस्कृत नाम कांस्य उसके कस्स जाति से संबंधित होने से ही पड़ा है।

भारतीय काशि

कस्स जाति को यद्यपि कुछ ग्रीक इतिहासकारों ने कोस्साइ लिखा है तथापि हीरोडोट्स ने उन्हें किस्सि भी कहा है। (तीन–६१–आदि)। प्राचीन कस्स जाति के संदर्भ में घोड़े के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का भी तत्कालीन भारतीय वस्तुओं के संदर्भ में उल्लेख मिलता है। कीथ और मैकडोनेल्ड जैसे विद्वानों का विचार है कि कस्स[५] भारत से योरोप जाने वाले आर्य जाति के (संभवतः काशि) लोग थे। भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर सिडौन नाम का एक व्यापारिक स्थल था। इस सिडौन को अनेक भाषाविद् सिन्धु से व्युत्पन्न मानते हैं। असुर शासक तिग्लाथ पिलेसर के

समय में भारत से जो सामान असुर देश को जाता था उनमें हाथीदाँत, मसाले, सूती कपड़ा, चन्दन आदि वस्तुएँ थीं। 'वावेरु जातक' में भारत से गए हुए कौए का वर्णन है। एक अन्य स्थल पर इसी जातक में यह भी कहा गया है कि अगले वर्ष कौए से भी अधिक सुन्दर मोर पक्षी मैसोपोटामियां में लाया गया। ई० पू० दसवीं शताब्दी में हिब्रू शासक सोलोमन के समय में भी भारत से उक्त वस्तुएँ पूर्वी भूमध्य सागर के तट पर स्थित सोलोमन की राजधानी के महलों में पहुँचती थीं। (जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी १९१० पृष्ठ ४०३)। भारत संस्कृति के उपर्युक्त ग्रन्थ में ही एक स्थल पर लिखा है कि कर्मानियां और हिमालय के स्वर्ण के आयात का स्थान फारस की खाड़ी के बन्दरगाह थे। यह हिमालय का सोना पिपीलिका स्वर्ण कहा जाता था जिसका अति प्राचीन काल से ही ईरान को निर्यात होता था।

सिन्धु-सिडौन-साटन

हिब्रू भाषा के कुछ शब्द विशेषतः भारत से आयातित वस्तुओं के, तत्कालीन भारत में प्रचलित नामों से ही व्युत्पन्न हैं। भारत या सिन्धु देश से आयात किए गए सूती कपड़े को सुमेर में सिन्धु कहा जाता था। इसी सिन्धु शब्द से भूमध्य सागर तट के प्राचीन नगर सिडौन का नामकरण हुआ तथा अंग्रेजी के सैटिन और ग्रीक सैंडिन शब्द बने है। अरबी में शाटन या शाटिन भी सिन्धु देश से आए हुए सूती कपड़े का बोधक था। हाथीदाँत का हिब्रू नाम शीन 'हब्बिन' शब्द संस्कृत इभदन्त से ही व्यत्पन्न है। इभ हाथी का पर्यायवाची आर्य शब्द है। इभ का हिब्रू में हब्बिन तथा लैटिन में एफ नाम हाथी का द्योतक नाम बना। 'एफ' पर अरबी भाषा का प्रत्यय एल लगा और ग्रीक एल ऐफस शब्द बना, जो कालान्तर में अंग्रेजी में एलीफैन्ट हो गया। नबुचदनेजर नामक नवबाबेलु शासक (छठी शताब्दी ई० पू०) के समय के दो अभिलिखित मृद फलक जो दो दासियों के विक्रयपत्र हैं, पूना में भाण्डारकर प्राच्य संस्थान में सुरक्षित हैं। वे बम्बई में प्राप्त हुए थे। दक्षिण भारत से भी अति प्राचीन काल से मैसोपोटामियां के व्यापारिक सम्बन्ध थे। नबु चदनेजर के बनाए चन्द्रदेव के मन्दिर में भारतीय सागौन की धरणियां तथा बल्लियां मिली हैं। यह मन्दिर मुगर (खाल्दी लोगों का उर) में स्थित है। हिब्रू भाषा में मोर का थुकि नाम तमिल भाषा के मोर के पर्यायवाची तोलाई टोका (पूँछ) से उधार लिया गया है। इसी प्रकार चन्दन का हिब्रू भाषा का अलमग नाम संस्कृत वल्गु से लिया गया शब्द है। संस्कृत का कपि (बन्दर) शब्द जो स्वयं तमिल या द्रविड़ भाषा का है, मिस्र देश में कफु और हिब्रू में कौफु हो गया है।

सोलोमन के न्याय से सम्बन्धित कथाओं का मूल स्रोत भारतीय जातक महोसद माना जाता है। यह संदर्भ दोनों ओर लागू हो सकता है। कदाचित महोसद जातक

ही पश्चिम एशिया में प्रचलित सोलोमन के न्याय की कथा का बौद्ध रूपान्तर है। संस्कृतियों का आदान प्रदान दोनों दिशाओं की ओर हुआ है। प्रायः सभी पुराविद अब यह मानते हैं कि भारत में पत्थर के भवनों का बनना हख्मनीश शासकों के सम्पर्क का ही प्रभाव है। हख्मनीश शासन से पूर्व भारत में लकड़ी हाथीदाँत अथवा मिट्टी के ही स्तम्भ बनते थे। इतिहासकार चन्द के शब्दों में-अशोक के सभी स्मारक स्तम्भ, एक पथर के बने हुए अभिलेख, चट्टानों पर खुदे हुए उपदेश अथवा मूर्तियाँ जो भी हैं वे सब हख्मनीश आदर्शों पर ही निर्मित हैं। भले ही उन में कुछ सुरुचि-पूर्ण सुधार हुआ है।

खस हख्मनीश शासकों की उपाधि

हख्मनीश शासकों का पूरा उल्लेख अन्यत्र हुआ है। यहाँ उस संदर्भ में इतना बताना पर्याप्त होगा कि इस राजवंश के संस्थापक कुरु (साइरस) महान ने असुर, मेद, पार्थियन और पारसिक देशों को संयुक्त करके लगभग २००० वर्ष पुराने सैमिटिक शासन का अन्त करके पूर्व में पंजाब से लेकर पश्चिम में यूनान और मिस्र तक एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जो पश्चिम के इतिहासकारों द्वारा 'परसियन एम्पायर' कहा जाता है। कुरु महान् ने ५४५ ई०पू० एक विशाल सेना लेकर भूमध्य सागर तट पर स्थित लीडिया राज्य को जीता। फिर आगे बढ़ कर आयो-नियन (यूनान-भारतीय पुराण ग्रन्थों के यवन) द्वीप समूह पर अधिकार कर लिया। ईरान और यूनान के मध्य युद्धों का जो क्रम चला उसकी समाप्ति सिकन्दर महान् के द्वारा लगभग २२० वर्ष बाद हुई। मकदूनिया के उक्त सिकन्दर महान् ने ३२४ ई० पू० अपने देश से पचास गुने बड़े 'परसियन एम्पायर पर' अधिकार करके इस साम्राज्य की बाबेलु, सुषा तथा परसिपोलिस इन तीन राजधानियों पर अधिकार किया। उसके उपरान्त हख्मनीश शासकों की हिन्दवी क्षत्रपी को रौंदता हुआ सिकन्दर पंजाब में सतलज नदी के किनारे तक पहुँच गया।

ग्रीको-पारसिक (यूनान-ईरान) युद्धों में भारतीय कस्सों और योधेयों के पारसिकों की ओर से लड़ने का उल्लेख इतिहासकारों ने किया है। हख्मनीशों की हिन्दवी क्षत्रपी से उन्हें इतना अधिक स्वर्ण मिलता था कि साम्राज्य की अन्य छब्बीस क्षत्र-पियों के कर को मिलाकर भी उतना कर उन्हें नहीं मिलता था। सुषा के राजमहल से प्राप्य एक शिलालेख के शब्द हैं—

पिरुष ह्य इदा कर्त कुश आ उता हचा हिन्दुव उता हचा हरह्वतिया अवरिय् (पंक्ति ४३-४४) अर्थात्

पिरुष (हाथीदाँत) ह्य (जो) इदा (यहाँ) कर्त (बना) ह्य (वह) कुश (कुश) द्वीप (इथियोपिया) आ (से) उता (आया) हचा (तथा) हिन्दुव (हिन्दु से) उता

(आया) हरह्वतिया (सरस्वतिया सारस्वत देश, ग्रीक आरकोशिया वर्तमान हेरात) से अवरिय (लाया गया)।

कुरुस (साइरस) महान की समाधि पर अंकित शब्द हैं—

अदम् कुरुस् खषयथिया हखमनीशिया। (अहं कुरुः क्षत्रीश हखमनीश)

इतिहासकार रिचर्ड एन० फ्राई के अनुसार ईरान में कस्स शब्द राष्ट्र या जाति का बोधक था। इस इतिहासकार ने तत्कालीन ईरान की सामाजिक संरचना की नीचे से ऊपर की ओर की श्रेणियों की तालिका इस प्रकार दी है—

	अवेस्ता में	पुरानी फारसी में	उदाहरण
१—परिवार (फैमिली)	नमान	तोमा	डेरियस दारयवहुश (धारयेत्वसुः)
२—गोत्र या शाखा (क्लैन)	विस्	विट	हखमनीश
३—जाति (ट्राइब)	जन्तु	दन्तु	पसरगडै (परशुगढ़ी)
४—प्रदेश या देश	दह्यु	दह्यु	पर्स (पार्स्व)
५—राष्ट्र या लोग	क्षथ्र	खशस्स	आर्य

(पूर्वी ईरान में उक्त गणना की चार और पांच का संगठन कवि कहलाता था।)

इस सूची के नामों में पी० थाईम नाम के एक अन्य प्राच्य विद्या विशारद ने कुछ संशोधन किया है। उनकी अंग्रेजी पुस्तक 'मित्र एण्ड अर्यमन्' (न्यू हेवन १९५७) के अनुसार नमान गृह में, ख्वयेतु 'परिवार' में रहता है; विस् 'आवास' में वरजान या गोत्र रहता है; जन्तु जाति के क्षेता में अर्यमन्-आतिथ्य रहता है अथवा वे लोग रहते हैं जिनमें आतिथ्य का लगाव है।

इस तालिका में मौर्यकालीन अभिलेखों में प्रदेश के लिए प्रयुक्त विश या विषय शब्द को लगभग उसी अर्थ में पूर्ववर्ती ईरानी रूप में देखा जा सकता है। विट् शब्द का सवर्ण या द्विज के अर्थ में हिमालय की पहाड़ी बोलियों में आज भी प्रयोग होता है। ईरान में हखमनीश शासकों के अनेक अभिलेख प्राप्त हैं। इस राजवंश के राजाओं के ये प्रचलित नाम उनके गद्दी पर बैठने के बाद धारण किए हुए नाम हैं। दारयवहुश (धारयेत्वसुः-वसु को धारण करने वाला) नाम इसी प्रकार सिंहासनारूढ़ होने के बाद का नाम है। फ्राई के अनुसार 'इस शासक का मूल नाम स्पन्तदत्त है। एक अन्य शासक का ग्रीक नाम जरक्षीज (क्षयार्ह) का अर्थ वीरों में वीर है, पुरानी फारसी का खष्य-अर्हन; इसी भाँति अर्तजरक्षीज नाम के अन्त का जरक्षीज ग्रीक भाषा-न्तर है। वह मूलतः आर्त-खशस्स (पुरानी फारसी में क्षत्र) है जिसका अर्थ होता है नीति सम्मत शासक।' (द हेरिटेज आफ परसिया, पृष्ठ ९७)। मेद शासकों के अभिलेखों

में भी राजा के लिए खषयथिय शब्द का प्रयोग मिलता है । हिमालय पर्वत के निवासी परतंगण भी मेद जाति के थे ।[६]

सन्दर्भ और टीपें

१. महाभारत और रामायण में वर्णित तथा हिमालय पहाड़ों के निवासी खस लोग ही पश्चिम एशिया के कस्साइट कहे गए लोग हैं इस तथ्य से सभी इतिहासकार सहमत हैं । इस विषय पर देखिए संस्कृति-संगम-उत्तरांचल ।

२. रिचर्ड एन० फ्राई हारवर्ड विश्व विद्यालय में ईरानियन विद्या के प्रोफेसर हैं । उनकी संदर्भगत पुस्तक सन् । १६६२ में लंदन से प्रकाशित हुई ।

३. फर्टाइल क्रेसेन्ट एशिया माइनर के भूमध्य सागर तट के दक्षिण पूर्व की ओर से फारस की खाड़ी तक की सीरिया तथा मैसोपोटामियां देशों की उर्वरा भू क्षेत्र का प्राचीन नाम था ।

४. अंग्रेजी में कस्साइट और कशाइट दोनों जातियों का प्राचीन मैसोपोटामिया के संदर्भ में उल्लेख होता है । दोनों शब्दों की वर्तनी में आरम्भिक अक्षर कभी अंग्रेजी **सी** और कभी अंग्रेजी **के** लिखा जाता है । जार्ज रालिन्सन ने कुश से ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में मैसोपोटामियां में बसने वाली जाति को कशाइट (कुशाइट) लिखा है । कुश प्राचीन हब्श देश का नाम था । ग्रीक भषा में हब्स शब्द **ह** व्यंजन के न होने से अब्श हो गया, ऐसे ही जैसे भारत का हिन्द नाम इन्द हो गया । यही अब्स देश अबीसीनियाँ और आधुनिक इथियोपिया हैं । रालिन्सन के अनुसार हब्श देश से मैसोपोटामिया में आकर बसने वाले एक राजा का नाम भी कश (Cush) था । कश का ही पुत्र निमरुद था जिसने २२०६ ई० पू० दक्षिण अक्कद तथा सुमेर राज्यों पर शासन किया । निमरुद (उर नगर के निकट) इस शासक द्वारा स्थापित प्राचीन ऐतिहासिक स्थल भी है । तब उर नगर हुर भी कहलाता था । राजा निमरुद का उल्लेख प्राचीन पश्चिम एशियाई धार्मिक ग्रन्थों में भी हुआ है । रौलिन्सन इसे बिल निपु से व्युत्पन्न मानता है जिसका शब्दिक अर्थ है महान् आखेट कर्ता या बड़ा शिकारी । कस्स जाति समूह का निमरुद के पुरखा कश या कुश से कोई संबन्ध नहीं है । (द वर्ल्डस ग्रेट ईवन्ट्स खण्ड-१) न उर (हुर) नगर का हुर्रियन जाति से ही कोई संबन्ध है ।

५. पश्चिम एशिया के कस्साइट कहे गये लोग भी संभवत: ब्राह्मणत्व को त्याग देने के कारण वृषलत्व (संस्कार विहीनता) को प्राप्त काशि लोग हैं। कत्यायन श्रोत सूत्र में काशि लोगों के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया गया है। इसका कारण यह समझा जाता है कि काशि जाति में धार्मिकता कम थी। इसी आशय का भाव काशि लोगों के प्रति वाजसनेयि संहिता में भी व्यक्त हैं। मैकडोनेल और कीथ के अनुसार काशि वास्तव में कुरु पंचालों की जाति की ही शाखा के लोग थे जिन्होंने दूरी तथा आदिवासियों पर कम प्रभुत्व के कारण ब्राह्मण संस्कृति को खो दिया था। शतपथ ब्राह्मण के आर्यों के देशान्तार गमन कथा की शाब्दिक व्याख्या द्वारा भी इस विचार की पुष्टि होती है। (तुलनीय है ग्रियर्सन जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी-१९०८, ८३७,-११४३ तथा कीथ वही ८३१,११३८)

६. मेद लोगों की ६ उपजातियों के लिए देखिए 'संस्कृति संगम उत्तरांचल।'

वैदिक दमूना तथा पणि

पशुपालक आर्य कबीले जब हिमालय के गिरिपाद प्रदेश में आए तो उन्हें किरात जाति के जो स्थायी आवास मिले उन्हें उन्होंने दमूना कहा। यह शब्द दम मूल से व्युत्पन्न है। दम शब्द का अर्थ संस्कृत कोष में घर या गृह है। दम्पति अथवा गृह-पति शब्द इसी मूल दम शब्द से बना है। योरोप की आर्य भाषाओं से भी दम शब्द घर का पर्यायवाची है। अंग्रेजी के डोमल=गृह सम्बन्धी, डोमीसाइल=स्थायी निवासी तथा डोमीनिकल शब्द इसी से बने हैं।

वैदिक अक्षर मूर्धन्य ल मराठी, उड़िया और राजस्थानी बोलियों में तो है किन्तु हिन्दी में नहीं है। राजस्थानी या पंजाबी की भाँति पहाड़ी बोलियों में न का ण हो जाने से वैदिक दमूना शब्द दमूड़ा और डुमोड़ा हो गया। कुमाऊंनी बोली में ही नहीं अन्य बोलियों में भी आज यह विकार है। यथा पानी का पाणी, जाना का जाणी तथा खाना का खाणा हो जाता है।

वैदिक दमूना शब्द बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद के चौथे सूक्त का पाँचवाँ मंत्र है—

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण
इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान,
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या
शत्रूयतामाभरा भोजनानि ।

अर्थात् हे अग्निदेव, जुष्ट (प्रिय) अतिथि हमारे (नः दुरोण दमूनः) घर में स्थायी निवास करने वाला विद्वान अपने सम्पूर्ण ज्ञान के साथ हमारे (यज्ञं उप याहि) उन सब शक्तियों का बध कर जो हम पर आक्रमण करने में प्रवृत हैं, जो अपने आप को हमारे शत्रु बनाते हैं उनके (भोजनानि आभर) भोग्य पदार्थों को हमारे पास ले आ।[1]

यह शब्दार्थ ऋषि अरविन्द के वेद रहस्य के अनुसार दिया गया है। उन्होंने भी दमूना का अर्थ स्थायी निवास दिया है। एक अन्य श्लोक में भी "दमूनस गृहपति वरेण्य" पद आया है जिसमें स्थायी निवासी को वरणीय गृहपति बताया गया है।

तिब्बती सीमान्त क्षेत्रों में आज भी समाज में दो ही वर्ण हैं शूद्र या दम और शौक या व्यापारी। शौक लोग अपने को क्षत्रिय मानते हैं यद्यपि निचली घाटियों के क्षत्रियों अथवा खस राजपूतों से उनके रोटी बेटी के सम्बन्ध नहीं होते। शौक परिवारों की अनेक पीढ़ियाँ मध्य एशिया की मंडियों में व्यापार करते बीती हैं। इस सदी के उत्तरार्ध के आरम्भिक वर्षों से उनका बेरोकटोक तिब्बत आना एकाएक

रुक गया है। हजारों वर्षों से नमक, ऊन, जड़ी-बूटी, तथा सुहागे का उनका व्यापार हिमघाटों के मार्ग से होता आया है। ये व्यापारी वेदों में वर्णित पणि ही हैं। ग्रीक सभ्यता से पूर्व पणि लोग पूरे संसार में फैल चुके थे। पणि शब्द का अर्थ व्यापारी है जो पण धातु से बना है। तमिल में भी पण शब्द है जिसका अर्थ करना है। यह संस्कृत के कृ मूल का समानार्थी है जिससे क्रय-विक्रय आदि शब्द बने हैं। ग्रीक भाषा को पौनोश शब्द भी इसी मूल का है जो अव उद्योग अथवा श्रम के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार पणि द्रविड़ थे। उनमें से कितने ही आर्यों की कृपा पर कृषक या शिल्पी रहकर जीवन यापन करते थे। उन्हीं के शब्दों में "पणि व्यापारी थे। पणि शब्द से ही वणिक या बनिया शब्द की उत्पत्ति हुई है। ये सम्पत्तिशाली थे। व्यापार भी इनके हाथ में था। इनके पास गायें बहुत थी। पणियों की गायों को लूटना आर्य अपना धर्म समझते थे। इस चोरी के लिये बहाने की जरूरत नहीं थी। यह सर्मा और पणियों के सम्वाद में हम देखेंगे। यदि सर्वस्व हरण कर लिया जाता तो व्यापार हो ही नहीं सकता था। इसलिए आर्य पणियों की पूंजी और उनके व्यवसाय के साधनों का हरण करना नहीं चाहते थे। उन्हें सोने की जरूरत थी। मणि और रत्न की भी कदर उनमें बड़ी थी। ये चीजें पणियों के द्वारा ही मिल सकती थीं। इसलिये पणियों की रक्षा करना भी वह अपना कर्तव्य समझते थे। पणि भी उदारता पूर्वक आर्य कवीलों को दान देते थे।" (ऋग्वैदिक आर्य-३-२)

मैकडौनेल और कीथ वैदिक साहित्य का उल्लेख करते हुए पण तथा पणि के सम्बन्ध में बड़ी महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार "पण प्रतिपण के साथ साथ अथर्ववेद के एक सूक्त में मिलता है। यहाँ यह मोल भाव तथा विक्रय करने की क्रिया का द्योतक है। पण धातु का जिससे यह शब्द व्युत्पन्न हुआ है, बाद की संहिताओं और ब्राह्मणों में प्रयोग हुआ है, जब कि शतपथ ब्राह्मण में पणन शब्द क्रय-विक्रय शब्द का द्योतक है।

"पणि ऋग्वेद से एक ऐसे व्यक्ति का द्योतक प्रतीत होता है जो सम्पन्न तो था किन्तु देवों को हवि अथवा पुरोहितों को दक्षिणायें नहीं देता था। इसीलिए इस संहिता के रचयिताओं के लिए यह अत्यन्त घृणा का पात्र बन गया था। वेदों में पणियों पर आक्रमण करने का निवेदन किया गया है। और ऐसा भी उल्लेख है कि पणियों का वध करके उनको पराजित किया था। एक कृपण के रूप में पणि पवित्र यज्ञ कर्ताओं का विरोधी है। और इसे एक भेड़िया जो शत्रुता का प्रतीक है कहा गया है। कुछ स्थलों पर पणि लोग निश्चित रूप से ऐसे पौराणिक व्यक्तियों अथवा दैत्यों के रूप में आते हैं जो आकाश की गायों अथवा जलों को रोक रखते हैं। और जिनके पास 'सरमा' इन्द्र के दूत बनकर जाते हैं।

"पणियों में वृत्रु प्रत्यक्षतः अधिक प्रमुख था। ऋग्वेद में पणियों को एक स्थल पर बेकनट अथवा सूदखोर कहा गया है। एक अन्य स्थल पर इन्हें वस्तुओं के रूप में सम्बोधित किया गया है। पणियों के लिए 'मृघ्र-वाच' (सम्भवतः कटु भाषी) और अनिश्चित से अर्थ वाले 'ग्रथिन' शब्द का प्रयोग किया गया हैं। ऋग्वेद के भाष्यकार हिले ब्राण्ट का विचार है कि ग्रथिन् शब्द से लगातार निकल रही ऐसी बाणी का तात्पर्य है जो समझी न जा सके। मृध्र-वाच शब्द का अर्थ उनके अनुसार शत्रु की भाषा बोलने वाला है। अतः इसका अर्थ अनिवार्यतः अनार्य ही नहीं लिया जा सकता। ऋग्वेद में दो स्थलों पर पणि लोग दासों के रूप में आते हैं। एक स्थान पर वैर के सम्बन्ध में भी किसी पणि का उल्लेख है। वैदिक विद्वान रौथ ने भी पण शब्द को ही पणि नाम का कारण माना है। उनके अनुसार पणि एक ऐसा व्यक्ति होता था जो बिना किसी प्रति प्राप्ति के अपना कुछ नहीं देता था अतः इसे ऐसा कृपण व्यक्ति कहते थे जो न तो देवों की उपासना करता था और न पुरोहितों को दक्षिणायें देता था। वैदिक विद्वान त्सिमर और लुडविग ने भी इसी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। लुडविग का विचार है कि पणियों के साथ युद्ध के प्रत्यक्ष सन्दर्भों की व्याख्या यह मान लेने से हो जाती है कि ये लोग ऐसे आदिवासी व्यवसायी होते थे जो काफिलों में चलते थे-जैसा कि अरब और उत्तरी अफ्रीका में होता है और आवश्यकता पड़ने पर अपनी वस्तुओं की रक्षा के लिए उन आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भी तत्पर रहते थे। जिन्हें (आक्रमणों को) आर्यगण सर्वथा स्वभावतः उचित मानते रहे होंगे।

"दासों और दस्युओं के रूप में पणियों के सन्दर्भ द्वारा उक्त विद्वान अपनी इस व्याख्या की उपयुक्तता सिद्ध करते हैं। फिर भी पणियों को वैदिक गायकों के पूज्य देवों की उपासना न करने वाले लोगों के अतिरिक्त कुछ और मानना आवश्यक नहीं। पणि शब्द का आशय इतना विस्तृत है कि इसके अन्तर्गत आदिवासी अथवा आक्रामक आर्य और साथ ही दैत्यगण भी आ जाते हैं। फिर भी हिलेब्राण्ट का विचार है कि इनसे ग्रीक इतिहासकार स्ट्रबो के 'पर्नियनों' जैसी एक वास्तविक जाति का आशय है और यह लोग दहाए (दास) से सम्बन्धित थे। इसके अतिरिक्त एक स्थल पर उक्त विद्वान पणियों को पारावत (पर्वतवासी) मानते हैं। पारावत लोगों को ग्रीक इतिहासकारों ने पारूपेताई लिखा है। दिवोदास के विरोधियों के रूप में वैदिक साहित्य में पणियों का उल्लेख व्यक्त करता है कि दिवोदास आर्कोसिया की हरक्वती (सरस्वती) नदी के निकट रहता था तथा वहीं उसने पर्नियनों और दहायों तथा साथ ही साथ अन्य ईरानी जातियों के साथ युद्ध किया था।" (वैदिक इंडेक्स आर्थर ऐंथनी मैकडौनेल तथा आर्थर बरीडेल कीथ खण्ड १।)

अमेरिका में मेरी हुआना
भारत में पत्ते—भाँग
कलियाँ—गाँजा
गोंद—चरस

पृष्ठ—६५

उत्तरापथ में प्राप्य प्राचीन सिक्के

ए—यूथिडिमस— तीसरी सदी ई० पू०

बी—डिमिट्रियस—दूसरी सदी ई० पू०

सी—एंटीमकुस—उसी काल का

डी—मिनेडर—दूसरी सदी ई० पू०

उक्त चारों सिक्के चाँदी के हैं।

ई—कनिष्क का सोने का सिक्का

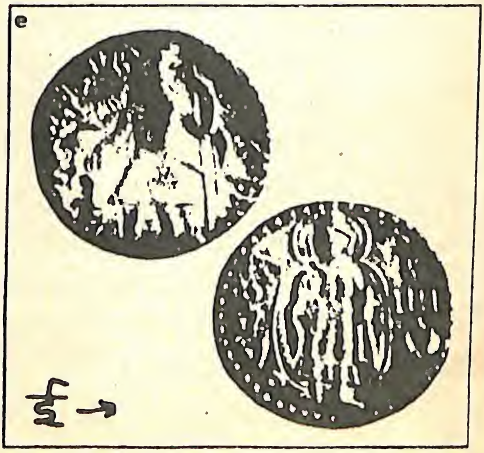

कुमाऊँ के सीमान्त व्यापारी जो शौक, जोहारी, दारमी, व्यांसी या चौदांसी नाम से भी जाने जाते हैं सभी भाँति प्राचीन पणि या फोनोसियन लोगों के समरूप हैं। मध्य एशिया का सीरिया से चीन तक का भूभाग अति प्राचीन काल में भाँग की फसल तथा गाँजा, चरस (हशीस) के उत्पादन के लिए सदियों से प्रसिद्ध रहा है। यही पौधा वैदिक काल में सोम कहलाता था। इसका उल्लेख पृथक अध्याय में किया गया है। अंग्रेजी का असेसिन शब्द मूलतः अरबी हशीसिन भंगेड़ी है। भाँग छान कर नशे में राजनैतिक हत्या करने वाले मुसलमान उग्रवादी सम्प्रदाय के लोगों का मुख्य केन्द्र दसवीं ग्यारहवीं सदी में सीरिया में था। मार्कोपोलो ने भी इन हशीसियों का वर्णन अपने यात्रा वृतान्तों में किया है।

तिब्बती भांग को आज भी सोमराजा कहते हैं। अफगान लोग भाँग को होम और बलूची ओम कहते हैं। सोम को भी भाँग की भाँति ही छाना जाना था। मधु और दूध मिला कर पिया जाता था। सोम ही भाँग है इस तथ्य को राहुल सांकृत्यायन ने भी स्वीकार किया है। कुमाऊँ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन से पहले सोम का व्यापार (भँग और भँगेले) कितना व्यापक था इसका उल्लेख पिछले अध्यायों में हो चुका है। भंग की खेती करने वाले ये लोग गढ़वाल के अंग्रेज बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा यज्ञोपवीत न धारण कर सकने वाले खस जाति के लोग कहे गए हैं।

वेदों में वर्णित पणि ही कुमाऊँ गढ़वाल के भाँग की खेती करने वाले लोग हैं। यह निःसंकोच कहा जा सकता है। ये पश्चिम एशिया के फीनीसियन कहे गए लोग हैं। फीनीसियन लोग संसार के सर्वप्रथम समुद्रयात्री नाविक थे। उन्हें अपनी नौकाओं पर गेहूँ तेल, शराब, लकड़ी, काँच का सामान, बर्तन, तथा अन्य वस्तुएँ लेकर गहरे समुद्रों के पार अज्ञात देशों की यात्राएँ करने में आनन्द आता था। पूर्व से लेकर पश्चिम तक के जल और स्थल के भागों पर उनका शताब्दियों तक एकाधिपत्य रहा। समुद्र तटों के नगरों पर फेरी लगाने वाले छोटे-छोटे पणि व्यापारी लक्षाधीश ही नहीं बने कालान्तर में वे अपने छोटे छोटे पृथक राज्य भी स्थापित करने में सफल हुए। जब अपने देश भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर स्थित कनान में ईसा पूर्व तेरहवीं और बारहवीं सदी में उन्हें मध्य एशिया के आर्मीनिया की ओर से आए आक्रमणकारियों का तथा दक्षिण में इस्राइली और फिलीस्तीनियों का सामना करना पड़ा तो अनेक फीनिसियन कबीले अपने मूल स्थान कनान को छोड़ने को विवश हुए। समुद्र ही उनका आश्रय रह गया। इस भाँति वे विश्व इतिहास के सबसे महान समुद्री व्यापारी बनने में सफल हुए।

सम्भवतः पणियों का विरोध आर्यजातीय कस्स या कस्साइट लोगों से हुआ। कस्साइट लोग दजला फुरात घाटी में हित्ती आक्रमणकारियों के उपरान्त जाकर बसे। हित्ती तो उत्तर की ओर से दजला फुरात घाटी में लूट पाट मचा कर वापस चले

गए। कस्स जातियों ने मैसोपोटामिया की उस दुर्व्यवस्था और शासन शून्यता का लाभ उठाया। उनका मूल निवासस्थान जैगरौस पर्वत का पूर्व दक्षिण इलाका था। यही इलाका उस काल में कुम्मु कहलाता था। ईसा पूर्व १७६५ में कस्साइट लोगों ने बावेलु में अपने राजवंश की स्थापना की। भारत में भी यही समय आर्य जाति के आगमन का माना जाता है। बावेलु में चोगा जनविल नामक स्थान पर कस्स शासक के द्वारा बनाए गए जिग्गुरात के अवशेष आज भी मिलते हैं। (द्रष्टव्य धिर्शमन-ओरिएँटेलिया पृष्ठ १५-१६५०)

कस्स लोग सूर्य के उपासक थे। यह उन राजाओं के नामों से भी स्पष्ट है। उनकी भाषा हित्ती और मितानी लोगों की भाषा के समान थी। यह अनुमान लगाना इसीलिए अनुचित नहीं है कि पहाड़ों की ओर सर्वप्रथम जिस आर्य कबीले ने कुमाऊँ गढ़वाल के भूखण्ड में प्रवेश किया वे कस्स जातीय आर्य भाषा भाषी लोग थे। जरनल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी (१९१७-पृष्ठ १०१-११४) में पुराविद टी० जी० पिंचेज ने कस्स जाति की भाषा के विषय में एक सारगर्भित लेख प्रकाशित किया था। एक अन्य पुराविद ए० टी० कले ने कस्स लोगों के समय के कुछ मृदफलक (क्यूनीफर्म) अभिलेखों में भी उनके व्यक्तिगत नामों का उल्लेख किया। इनमें एक राजा का नाम सगरक्ति तथा दूसरे का मरुता पढ़ मिलता है।

फोनिसियन ही पणि

कस्सों के विषय में विस्तार से लिखने के साथ पणि लोगों का उल्लेख करना समीचीन होगा। हाथी दाँत का व्यापार भी पणि लोगों का मुख्य व्यवसाय था। उनकी कला सोलहवीं सदी ई० पू० में अपने समृद्धि के शिखर पर थी। अल-मिना-बपदा नामक स्थान पर हाथी दाँत की एक देवी माता की मूर्ति मिली है। वह एक वेदी पर खड़ी है और उसने अपने दोनों हाथ दोनों ओर खड़े दो शेरों के सिरों पर रखे हैं। मूर्ति कटि से नीचे लहंगा सा पहने है, उसके सिर पर मुकुट है किन्तु कटि से ऊपर उसका वक्ष नग्न है।

यूनान, रोम, उत्तर अफ्रीका, क्रीट, सिसली, स्पेन आदि तक जाकर फीनीसियन या फोनिसियन भूमध्य सागर तट के देशों को माल भेजने वाले एकाधिकारी ठेकेदार बन गये थे। भूमध्य सागर उनके लिए एक झील मात्र हो गया। ग्रीक देशवासियों के लिए लेबनान का देवदारु (सीडार) फोनिसियन देवदारु था। मिस्र और मैसोपोटामिया में मंदिरों और राजप्रासादों के निर्माण तथा नौकाओं और बड़े जहाजों के लिए लकड़ी की बड़ी आवश्यकता पड़ती थी। लेबनान के जंगलों से इन देशों को न केवल देवदारु, चीड़, फर आदि लम्बे तने के वृक्षों की कड़ियाँ तथा शहतीर वरन् बिरोजा, डामर, धूप (सुगंध) भी भेजा जाता था। देवदारु की लम्बी कड़ियाँ और धिरनियाँ बनों से बर्षा काल में बहाकर हरमोन पहुँचा दी जाती थीं। वहाँ से वह

सिडौन[२] और टाइर के बन्दरगाहों को भेजी जाती थीं। फोनिसियन ध्रुव तारे के सहारे अपनी समुद्र यात्रा के लिए दिशा ज्ञान प्राप्त करते खगोल शास्त्र के पारंगत हो गए। आकाश के ग्रहों और नक्षत्रों को ग्रीक लोगों ने जो नाम दिए हैं वे मूलतः फोनिसियन हैं। मिस्र की प्रमुख नील नदी का नाम भी फोनिसियन शब्द नाहल (नाहर अथवा प्रवाह) से निकला है।

कनान—कनान शब्द लेवनान का विलोम है। कनान का अर्थ है नीची भूमि और लेवनान का अर्थ ऊँचे स्थल से है। कुछ भाषा विशारदों का कथन है कि कनान शब्द हुरियन भाषा के क्रंगी (नील लोहित रंग) से निकला है। इसी शब्द से फोनिसियन में केना, हिब्रू में केना-अन शब्द बना जो नील लोहित (जामुनी) रंग का वाचक है। इसका पर्यायवाची ग्रीक 'फोइनिक्ष' शब्द है। संस्कृत में कन् सूक्ष्म या छोटे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी से कनीयस, कनिष्ठ आदि शब्द बने हैं। लेबनान पर्वत के नाम की व्युत्पत्ति करते हुए फिलिप के० हिट्टी ने अपनी पुस्तक "सीरिया का इतिहास" में लिखा है कि यह लेबन धातु से बना है जिसका अर्थ सफेदी करना होता है तथा लेबन मूलतः सेमिटिक भाषा का धातु है। यह पर्वत शिखर वर्ष में छः मास हिमाच्छादित होकर श्वेत हो जाता था। इसलिए इसका लेबनान नाम पड़ा। यदि हम संस्कृत के धातु लेपन का शाब्दिक अर्थ देखें तो उसका अर्थ भी सफेदी करना या चूना पोतना है (देखिए आप्टे कृत संस्कृत कोष)। इस प्रकार यह कल्पना करना असंगत न होगा कि सीरिया के लेबनान शब्द और भारत के लेपन शब्द का उच्चारण करने वालों के पूर्वज एक ही थे। अथवा एक ही स्थान में रहते थे।

जिस जामुनी रंग के अर्थ के 'क्रंगी' या 'फोइनिक्ष' शब्द से पाश्चात्य इतिहासकारों ने इस देश का कनान या फोनिसिया नामकरण होना बताया है वह रंग शंख जाति के मोलुस्क या मुरेक्ष नामक जलजन्तु के शरीर से निकाला जाता था। इस रंग से रंगे हुए ऊनी वस्त्र ऊँचे दामों पर बिकते थे। इस रंग से न केवल ऊन बल्कि सन और अन्य तन्तु भी रंगे जाते थे। यह रंग जन्तु के मरते समय उसकी एक शिरा से निकलता था। इन अनेक छोटे-छोटे जन्तुओं को एकत्र करने के उपरान्त उन्हें मार कर मृत जन्तुओं के शरीर जल से भिगो दिए जाते थे। कुछ समय बाद मृत शरीरों से रंग छूट कर पानी में आ मिलता था। यह रंग इतना मंहगा पड़ता था कि बैंजनी या लोहित नील रंग राजसी ठाठ-बाट का प्रतीक हो गया था। इस प्रकार रंगे ऊनी वस्त्र को उन दिनों योरोप तथा पश्चिम एशिया में अर्गमानु, अर्गमार या उरजवान कहते थे। संस्कृत में अर्घ्यमान बहुमूल्य वस्तु को कहते हैं। अतः यह नाम भी बैंजनी रंग के बहुमूल्य ऊनी वस्त्र को भारतीय व्यापारियों ने दिया होगा।

पूर्व के लोग—फोनिसियन लोगों ने लेबनान के उत्तर पश्चिम एडिसा और निसविस की पूर्वी संसार की मंडियों को एक ओर भूमध्यसागर तट से और दूसरी ओर फारस की खाड़ी के नगरों से स्वनिर्मित मार्गों से जोड़ दिया था। उनकी अपनी एक किम्वदन्ती के अनुसार वे सीरिया में सर्वप्रथम फारस की खाड़ी की ओर से ही आए थे। वहाँ भी उनके अरदुस, टाइर तथा सिडौन नाम के नगर थे। इन्हीं के नाम पर उन्होंने वाद में भूमध्यसागर तट पर वसाए अपने नए नगरों का नामकरण किया। फोनिसियन व्यापारी स्पेन से चाँदी, लोहा, राँगा और सीसा, आर्मीनिया से पीतल के बर्तन तथा यवन दास-दासियाँ, अरब से भेड़ें और मिस्र से कपड़ा लाते थे। इस भाँति उनके पोतों को ढोने के लिए आयात निर्यात का माल मिलता रहता था। कोलम्बस या वास्को डि-गामा से दो हजार वर्ष पहले उन्होंने पूरे अफ्रीका महाद्वीप की परिक्रमा कर ली थी। यह साहसिक यात्रा उन्होंने मिस्र के फराओ नेचो (६०६-५६३ ई० पू०) के अनुरोध पर की। नेचो[3] ने ही लालसागर के तट को नहर खोदकर नील नदी से मिलाया था। फोनिसियन मौसम के खराब होते ही समुद्रतट के पास लंगर डाल देते थे। आस-पास के जंगल साफ करके गेहूँ बो देते थे। फसल तैयार होने तक वहाँ रहते फिर अपने पोत लेकर चल पड़ते।

इस प्रकार फोनिसियनों का पहला दल दो वर्ष अफ्रीका के समुद्र तटों पर बिता कर तीसरे वर्ष वापस आया। प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार हीरोडोटस लिखता है—"लीबिया (अफ्रीका) की परिक्रमा करते समय वे कहते हैं कि उन्होंने सूर्य को अपने दाएँ उदय होते देखा। कुछ लोग इस बात पर विश्वास करते भी हैं पर मैं नहीं करता।" यह कथन यद्यपि इतिहासकारों के गुरु हीरोडोटस को विश्वसनीय नहीं लगा किन्तु यही प्रमाणित करता है कि फोनिसियनों ने केप ऑफ गुड होप पार किया तथा वहाँ भूमध्य रेखा से नीचे दक्षिण छोर पर सूर्य उन्हें अपनी दाहिनी ओर उदय होता दिखलाई दिया होगा।

नगर राज्य—कनान देश छोटे-छोटे राज्यों का समूह था जो एक शासक के अधीन थे। प्रत्येक राज्य की राजधानी के चारों ओर प्राचीर वनी होती थी। लेबनान पर्वत के निकट त्रिपोली, बोटरिस, बाइब्लस, बिरिटिस, सिडौन तथा टाइर नगर राज्य काफी शक्तिशाली थे। इन नगर राज्यों का वर्णन १५०० ई० पू० में थुतमोस तृतीय के अभिलेखों में मिलता है। रथ कनानी लोगों का युद्ध तथा आत्म-रक्षा का मुख्य साधन था। रथ के घोड़े का इस देश में ई० पू० १७५० में हिक्सौस जाति के लोगों द्वारा आयात हुआ था। उस काल के धनुष, काँसे या तेज पत्थर के फलक के बाण, कटार तथा लकड़ी की गदाएँ कनान में मिली हैं। मैकलिस्टर नामक पुराविद ने अपनी पुस्तक "गेजेर के उत्खनन" में प्राचीन कनानी मकानों का वर्णन किया है। वे बहुत साधारण और अनियमित आकार प्रकार के थे। किसी-किसी

मकान में अनाज रखने का भण्डार तथा पानी के संचय और निकास के उपकरण भी मिले हैं। अरदुस, सिडौन तथा टाइर नगरों में रक्षा के लिए दुहरी प्राचीरें मिली हैं। अरदुस को बाद में ग्रीक लोग अन्तरदुस भी कहने लगे थे। इस नगर में चट्टान के किनारे बने छोटे-छोटे कई मंजिल के ऊँचे मकान मिले हैं। मकानों की छतों से गिरते वर्षाजल को बावड़ियों में एकत्र करके पीने के लिए संचित रखने की सर्व प्राचीन फोनिसियन व्यवस्था भी यहाँ देखने को मिली है।

फोनिसियन जिस देश में जाते वहीं के निवासियों के अनुरूप और उनके प्रिय बन जाते। उन्होंने एक स्थिर और विशाल विश्व को अपने संचार साधनों से सचल और सजीव बना दिया। उनकी बस्तियों ने नगरों का और नगरों ने उपनिवेशों का रूप लिया। दूर दूर छिटके इन उपनिवेशों को उन्होंने अपनी नौकाओं की सतत् यात्राओं से गुंजित और भूमध्यसागर के अपने केन्द्र स्थलों से उन्हें सम्बद्ध रखकर इस प्राचीन अमरु-सागर का नाम सार्थक कर दिया। स्पेन का गडेस (अर्वाचीन कार्डिज) और उत्तर अफ्रीका का उटिका (वर्तमान ट्यूनीसिया) उन्हीं के १००० ई० पू० के लगभग बसाए उपनिवेश थे। कार्डिज नगर (फोनिसियन कार्त-इदाश्त) का अर्थ है नया नगर और उटिका का फोनिसियन में अर्थ है आटक अर्थात् प्राचीन। गडैस शब्द का अर्थ है प्राचीर से घिरा हुआ। अरबी में यह शब्द जिदार हुआ और कालान्तर में अगादिर कहलाया। अमेरिका में डालर के लिये जो चिह्न लिखा जाता है वह फोनिसियन दुहरा 'प' है। हिन्दी भाषा का पैसा संस्कृत का पण या कार्षापण नामक सिक्का, स्पेन और मैक्सिको का पियास्टर तथा अन्य कई देशों का पसोस फोनिसियन अक्षर 'प' से ही निकले हैं। फोनिसियन देवता पोसीडान भारतीय वरुण सा ही है। फोनिसियन देवमाता लीबिया उनके शासक एगीनूर की माता थी। उस काल में इसी देवी के नाम पर समस्त अफ्रीका महाद्वीप लीबिया कहलाता था, यद्यपि अब यह नाम उत्तर अफ्रीका के एक छोटे से देश के लिए प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी का ओसन (महासागर) शब्द जिससे ग्रीक ओकिनीस सम्बद्ध है, मूलतः फोनिसियन अग शब्द था। ग्रीक महाकाव्यों में अटलांटिक महासागर का वर्णन इन्हीं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारियों की देन है। रामायण की कथा में लंका विजय अथवा ग्रीक काव्य में ट्रॉय के युद्ध की सादृश्यता के पीछे पणियों के दोनों महाद्वीपों के मध्य जल और स्लथ मार्गों का सतत् सम्बन्ध है।

योरोप महाद्वीप का नाम फोनिसियन शासक एगीनूर की रूपसी कन्या योरोपा के नाम पर पड़ा है। पाश्चात्य देशों में प्रचलित दन्त कथा के अनुसार जिओस देवता योरोपा पर मोहित हो गया था। उसने बैल का रूप धारण करके योरोपा का अपहरण किया और क्रीट द्वीप में जाकर फिर मानव वेश धारण करके योरोपा से

विवाह किया। कथा के अनुसार एगीनूर ने अपनी खोई हुई पुत्री की खोज में अपने पुत्र कैडमस को भेजा था। कैडमस का फोनिसियन भाषा में अर्थ है नवागन्तुक अथवा पूर्वी देश का। इसी नवागन्तुक ने वर्तमान ग्रीस के उत्तर में खानों से सोना निकालना आरम्भ किया। यहाँ थीविज (देवी) का ऊँचे-ऊँचे स्तम्भों का मन्दिर बनाया। प्राचीन ग्रीक स्थापत्य में सीरिया के इन फोनिसियनों का हाथ है। यह भी कहा जाता है कि राजकुमार कैडमरा ने ही सोलह अक्षरों की वर्णमाला का आविष्कार किया था। इस कथा से स्पष्ट है कि ग्रीक लोगों को लिखने की कला खानों से धातु निकालना, मद्य के देवता डियोनाइसस की उपासना करना पणियों ने ही सिखाया। माल्टा द्वीप का नाम भी फोनिसियन शब्द मालत (पलायन) पर ही पड़ा है। यह द्वीप सीरिया से पलायित पणियों ने बसाया होगा।

फोनिसियन लोगों की मानवता को दी गई तीन देने महत्वपूर्ण हैं—वर्णमाला (लेखन कला), विशेष धार्मिक आचार विचार तथा अटलांटिक सागर का आविष्कार। ग्रीक लोगों ने ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में फोनिसियन से लेखन कला सीखी। ग्रीकों ने फोनिसियन अक्षरों का आकार क्रम और उच्चारण ज्यों का त्यों अपनाया। पहले फोनिसियन अक्षरों की भाँति ग्रीक अक्षर भी दाहिने से बाएँ लिखे जाते रहे। ग्रीक लोगों ने अपनी वर्णमाला में कुछ सुधार करके उसे छठी शताब्दी ई० पू० में रोमन लोगों को सिखाया। वहाँ वह लैटिन कहलाई। यही वर्णमाला आज योरोप की सभी भाषाओं की वर्णमालाओं की जननी है। अरबों, भारतीयों तथा आर्मीनियों ने इसी फोनिसियन वर्णमाला में हेर-फेर करके अपनी-अपनी भाषाओं की वर्णमालाएँ बनाईं। हिब्रू और फोनिसियन दोनों एक ही भाषा के दो भिन्न रूप हैं जो मूलतः २२ अक्षरों की वर्णमाला थी जिसे फोनिसियनों ने मिस्र देश की सीनियाई चित्र-लिपि के चिह्नों को सरल आकार देकर बनाया था।

हिन्दी की देवनागरी लिपि का प्रयोग सर्वप्रथम आठवीं सदी ईसवी में हुआ। वह ब्राह्मी लिपि से निकली जिसके प्राचीनतम अभिलेख ५०० ई० पू० के मिलते हैं। ब्राह्मी का द्रविड़ रूप मट्टिडोलु के अभिलेख में मिलता है जो २०० ई० पू० का है। आर्मीनी भाषा से ही भारतीय पणियों ने लिपियों का ईरान और भारत में प्रचलन किया। ब्राह्मी अक्षरों से मिलती जुलती आर्मीनी लिपि के ९ वीं सदी ई० पू० के लेख तेल-अल-हलाफ (गोजन) तथा अलप्पों में पाए गए हैं। एक लेख अराम के राजा सदयन के पुत्र तब-रम्मान के पुत्र बर्हदाद का है। आर्मीनी शासक पन-अम्मू (पणि सखा) द्वारा स्थापित ३ मीटर ऊँची देव हदाद की मूर्ति सिंधु घाटी के पशुपति की भाँति दो सींगों का मुकुट धारण किए और दोनों हाथ फैलाए है। हदाद की एक मूर्ति के हाथ में वज्र और त्रिशूल भी है। वज्रपाणि का आर्मीनी

पर्याय रम्मन या रिमोन था। हदाद शब्द अदाद और कालान्तर में भारत में आदित्य बना।

हिमालय सीमान्त के पणि—व्यापारी का बोधक एक अन्य शब्द पह्लिक आज भी संस्कृत कोषों में उपलब्ध है। फोनिसियन अथवा पणि नामक व्यापारी ऋग्वेद काल में अपने व्यापार के लिए गान्धार देश तक आते थे। ऋग्वेद में सोम का एक नाम मौजवंत अर्थात् मूजवंत पर्वत से उत्पन्न है। वेदों के भाष्यकार यास्क ने मूजवंत पर्वत को हिमालय के अन्तर्गत माना है। सोम-हओम के नाम से ख्यात प्राचीन ईरान के लोगों का भी पेय था। ईरान के पूर्वोत्तर प्रदेश के गांधार-आर्कोसिया के तथा कथित गन्धर्वों के हाथ सोम के व्यापार के चले जाने का उल्लेख ऋग्वेद (१०-३४-३) में हुआ है।

कुमाऊँ के धुर उत्तर व्याँस चौदास-जोहार तथा दारमा सीमान्तों के मध्य एशियाई व्यापारी आज भी 'पन' शब्द का प्रयोग इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए करते हैं। पणचा का अर्थ उनकी बोली में व्यापारिक दल है। 'हे ईश्वर' या 'अरे राम' जैसा विस्मय बोधक शब्द इनकी बोली में 'ऐ ज्योवा' है जो मूलतः 'ए जहोवा' होगा और इनके भूमध्यसागर के प्राचीन यहूदियों या फोनिसियनों से संबंधित होने का द्योतक है। सभी पहाड़ी बोलियों में इनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की अदला-बदली या उधार देने और वापस करने के लिए पैंच शब्द का प्रयोग होता है जो पणिन (तुलनीय है कर्तनी-कैंची) से ही व्युत्पन्न है। इन पहाड़ी बोलियों के बोलने वाले आमू दरिया (औक्सस) घाटी के निवासी पणि आज भी पंड्य कहे जाते हैं। ये सोवियत गणराज्य ताजिकिस्तान के 'हिसार' (रूसी उच्चारण गिसार) के अंतर्गत हैं। इनकी भाषाओं का अध्ययन रूसी भाषाविदों ने किया है और उसे संस्कृत और प्राकृत की मध्यवर्ती भाषा माना है।

ऐपण—पणि लोगों ने कुमाऊँ को एक और शब्द ऐपण (लेखन कला) दिया है। पर्वों और धार्मिक संस्कारों के अवसर पर देहली, गृहद्वार, मंडप आदि पर बिस्वार (पीसे हुए चावलों का घोल) को अर्घ्य से गिराकर सधवा महिलाओं द्वारा अंकित की जाने वाली भित्ती चित्रावली को ऐपण कहते हैं। समतल पर अंकित चित्रावली 'लिख थाप' 'ख्मेटी या बरबूंद' कहलाती है। ऐपण लेखन की परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आयी है। कुमाऊँ वधू की निपुणता ऐपण कला पर उसके अधिकार से आंकी जाती है। कुछ लोग ऐपण शब्द को अल्पना से व्युत्पन्न मानने लगे हैं जो सरासर मिथ्या है क्योंकि अल्पना शब्द नया गढ़ा हुआ है और किसी प्राचीन शब्दकोश में नहीं मिलता। ऐपणों की खड़ी पंक्तियाँ फोनिसियन कीलाक्षर लिपि के γ (क, ग), $\gamma\gamma$ (द) या ल ($\gamma\gamma\gamma$) अक्षरों सी है। अथवा स्त्री के

पिछोड़े (ओढ़नी) पर अंकित अथवा धूलिअर्घ्य (विवाह की द्वार पूजा) पर चित्रित मयूराकार के भीतर स्वस्तिक का 卐 रूप, वाण, शंख, सूर्य आदि के प्रतीक चिन्ह भी फोनिसियन रेखीय लिपि के अक्षरों से मिलते हैं।

मनु-अरुपा—महाभारत के पात्रों के भारतीय नाम पणियों (फोनीसियन) के इतिहास और उनकी पुराण कथाओं में मिल जाते हैं। मछली द्वारा उद्धार किए गये आदिमानव मनु क्रीट के मीनोस के समानार्थी हैं। मनु के दौहित्र अग्रहणी क्रीट में पूर्व से आए एगीनूर (अगिनूर) हो सकते हैं। प्रजापति की धेवती अरूपा और एगीनूर द्वारा अपहृत योरोपा इन नामों की सदृश्यता केवल आकस्मिक नहीं हो सकती।

फोनिसियन शासक अहिराम के तावूत पर ताँवे के अक्षरों में उत्कीर्ण एक लेख फ्रांसीसी पुराविदों को १६३० में विब्लस नामक स्थल के उत्खनन में मिला था। यह लेख ईसा पूर्व दसवीं सदी का है। अहिराम नाम में भी वैदिक 'अहि' शब्द 'पणि' का समकालीन है। पणियों को उनके कुशल नाविक होने से कर्णिन भी कहा जा सकता है। जल पर प्रभुता प्राप्त होने से यक्ष शब्द भी गन्धर्वों के लिए प्रयुक्त हुआ, उन्हें वारिचर कहा गया है। (भड़ोंच) भृगुकच्छ का विदेशियों द्वारा दिया गया प्राचीन नाम बरूगाजा था। गाजा शब्द कच्छ या समुद्री कछार के लिए आज तक भूमध्य सागर तट की गाजा पट्टी और मिस्र में गजेर में जीवित है। कदाचित एशिया से मिस्र देश पर ईसा पूर्व सत्रहवीं शताब्दी में आक्रमण करने वाले हिक्सौस ही भारतीय यक्ष थे तथा कर्णिन से कनानी शब्द व्युत्पन्न हुआ हो।

परिव्रजन-आचारहीनता—आध्यात्मिक और धर्म प्रधान भारतीय संस्कृति में, जिसका शान्ति और संतोष मुख्य उद्देश्य बन चुका था, प्रवास और वाणिज्य से आर्थिक तथा राजनैतिक महत्वाकांक्षा रखने वाले पणि समन्वय नहीं स्थापित कर सके। इस लिए शूद्र वर्ग में गिने जाने लगे। महाभारत में युधिष्ठर के मुख से पांडवों को बन्दी बना देने वाले वारिचर यक्ष को दिया गया युधिष्ठर का यह उत्तर स्पष्ट करता है कि उस काल में द्विज भूखे अपने घर पर बैठना प्रवास में रहने और धनादि के लेन देन से कहीं अधिक सुखकर मानने लगे थे।

"पंचमे अहनि षष्टे वा शाकं पचति वै गृहे
अनृणी चाप्रवासी स च वारिचर मोदते।"

[हे वारिचर, पाँचवे छठे दिन (भी) पका शाक खाने को मिल जाय तो अपने घर पर ही रहकर विना ऋण लिए जो जीवन यापन करता है वही प्रसन्न है।]

यही था प्रवास के निषेध का कारण की परिव्रजन आचारहीनता का दूसरा नाम हो गया। इस निषेध से ही खान पान के भेदभाव और छुआछूत को जन्म दिया। परिव्रजन केवल साधुओं, धर्मप्रचारकों तथा भिक्षाटन करने वाले तक ही सीमित रह गया। परिव्राजकाचार्य की उपाधि दुनियादारी से विमुक्त परमहंस के लिए निर्धारित रह गई।

संदर्भ तथा टीपें

१—वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध)-पांडिचेरी १६७२ पृष्ठ ५।

२—सिडौन सिन्धु से बना शब्द है।

३—फराओ नेचो को पुरानी बाइबिल (हिन्दी संस्करण) में नेको लिखा गया है।

पश्चिम एशिया की कस्स (कस्साइट) जातियाँ

भारत में आए आर्य कबीलों ने जहाँ दस्युओं और असुरों को मार कर उनके पुरों को धूल में मिला दिया वहीं मैसोपोटामिया की घाटी में कस्स[1] लोगों ने न तो वहाँ की नागरिक सभ्यता को ध्वस्त किया और न अपनी सभ्यता को ही मैसोपोटामिया के लोगों पर थोपने का प्रयास किया। इसके विपरीत जैसे पहले कहा जा चुका है उन्होंने बाबेलु के ढंग के एक मन्दिर जिग्गुरात का निर्माण कराया। कस्स शासक सगरक्ति सूर्यास सम्भवतः राजा सगर से सम्बन्धित कथाओं का स्रोत हो। नबुचदनेजर (११३० ई० पू०) नामक असुर शासक के एक लेख में सुमालिया शब्द आता है। कस्स जाति के एक अन्य राजा का नाम अभिरट्टस (१६७८ ई० पू०) था। इस नाम का शब्दार्थ रथारूढ़ है। (आर्यन वेस्टीजेज इन द नियर ईस्ट आफ द सेकिण्ड मिल्लीनियम बी० सी० ११-१९३३ पृष्ठ १४३)

सुमेरी सभ्यता के काल में पश्चिम एशिया में गदहा ही सवारी तथा माल ढोने के उपयोग में आता था। प्राचीन सुमेरी चित्रों और अभिलेखों में गदहे को ही इस रूप में दर्शाया गया है। दो एक स्थलों पर घोड़े का उल्लेख हुआ भी है तो गदहे को घोड़े से अधिक उपयुक्त माना गया है। घोड़े और घोड़े जुते हुए रथ का दजला फुरात घाटी में सर्वप्रथम प्रचलन कस्स जाति ने ही किया। बाबेलु की तत्कालीन अक्कद भाषा में घोड़ा सुसु[2] कहलाता था। आर्मीनी में यह शब्द ससिया तथा प्राचीन इण्डो ईरानी अथवा पुरानी पहलवी में असुवा हुआ। वैदिक देवी देवताओं के विभिन्न रंग के घोड़े माने गए हैं। अग्निदेव के घोड़े का रंग लाल है। सूर्य का पीला, आदित्य का भूरा तथा मरुत का वाहन एक घोड़ी थी। देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों की सवारी गदहा ही थी। इससे लगता है कि आयुर्वेद का ज्ञान आर्य जाति ने अपने समकालीन बाबेलु के सुमेर लोगों के वंशजों से ही प्राप्त किया होगा। भारतीय रथ शब्द कैल्टिक भाषा में रौत, लेटिन में रोटा तथा अंग्रेजी में रोटेशन का पूर्वज रोट बना। ये शब्द सभी आर्य भाषा के ही हैं। (देखिए पिछले पृष्ठ ५४-५७)

हिक्सौस[3] अथवा यक्ष—मिस्र देश में एशियाई आक्रमणकारी पशुपालक कबीले के लोगों ने दो शताब्दियों तक राज्य किया। इन्हें मिस्र के इतिहास में पश्चिम एशियाई आक्रमणकारी कहा जाता है। मगिद्दो की लड़ाई (१४७९ ई० पू०) में मिस्र के फराओ (शासक) थुतमस के द्वारा एशियाई शत्रु के ९२४ रथों के अधिग्रहीत किए जाने का विवरण है। हिक्सौस शब्द का इन एशियाई आक्रमणकारियों के लिए सर्वप्रथम उपयोग ग्रीक इतिहासकारों ने किया है। ज्ञातव्य है कि ग्रीक लिपि में ह उच्चारण का

= असुर साम्राज्य =

असुर - बाण - आपालि के समय ७०० ई०पू०

(दिल्ली स्थित इराकी दूतावास के सौजन्य से प्राप्त नैप्स के मानचित्र की हिन्दी प्रति।)

कुमाऊँ

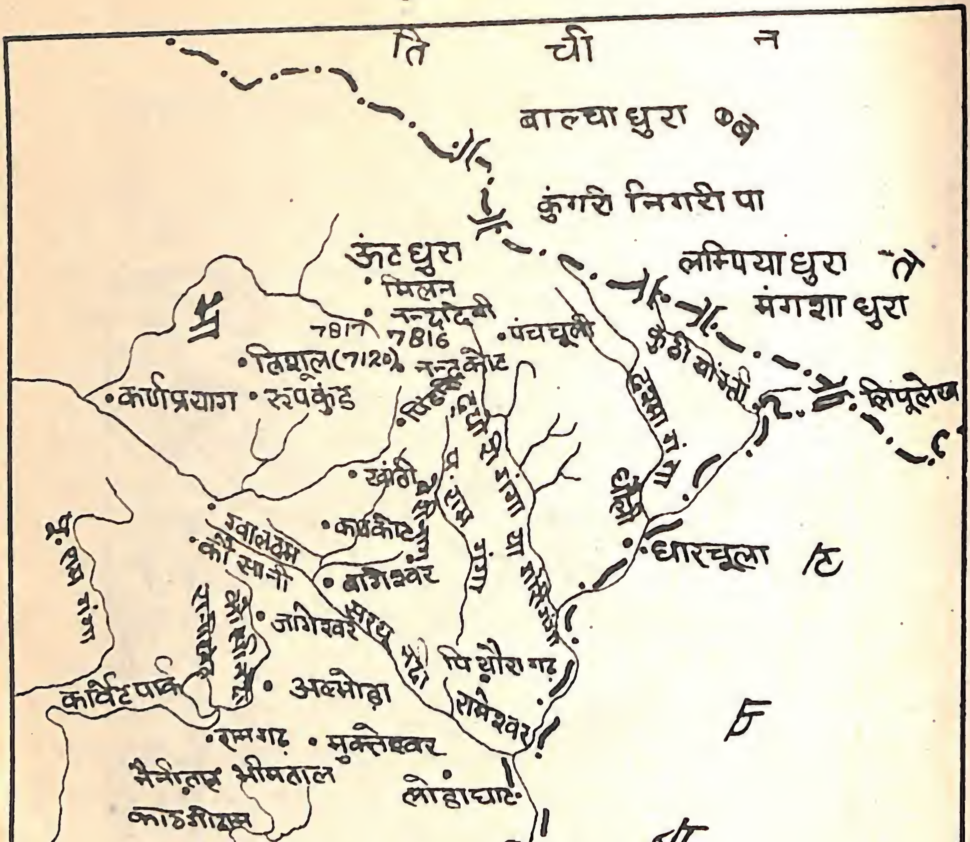

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारत सर्वेक्षण विभागीय मान चित्र पर आधारित

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार १९७६

कोई व्यंजन अक्षर नहीं था। इसी अभाव के कारण हिन्द शब्द ग्रीक भाषा में इण्ड (उसी से इंडिया) हुआ। इसी भाँति हरक्वती शब्द अरक्वती हुआ और आरक्वत उस भूक्षेत्र के लिए प्रयोग में आने लगा जिसे पुरानी पहलवी में हारक्वत और संस्कृत में सारस्वत कहा गया है। यह सरस्वती नदी की घाटी कालान्तर में ग्रीक इतिहास-कारों द्वारा आर्कोसिया कही गई। इसी भाषा विकार को यदि हम और आगे ले जायें तो हिक्सौस भी मूलतः इक्सौस अथवा यक्सौस रहा होगा। यहीं भारतीय ग्रन्थों के हिमालय पर्वतवासी यक्ष लोग रहे होंगे। कालिदास रचित मेघदूत का यक्ष भी कैलास मानसरोवर निवासी पर्वतीय ही हैं।

कनिंघम अपनी पुस्तक एन्श्यंट जौग्राफी आफ इण्डिया में कश्यप देश को प्राचीन मुल्तान मानते हैं। हरिवंश पुराण में प्रजापति कश्यप को संसार के नर-नारियों तथा पशु-पक्षियों का जन्मदाता पुरखा माना गया है। इसी पुराण के अनुसार कश्यप प्रजापति का मूल स्थान शक द्वीप था। शक द्वीप की स्थिति कैस्पियन सागर तट का सीस्तान (शकस्तान) माना जाता है। समुद्रपार के शकों के लिये अर्थात् उन शक जातियों के लिये जो काला सागर और कैस्पियन सागर के उत्तरदक्षिण रूस में रहती थी ईरान के इतिहास में शकाः पाराद्रय शब्द का उपयोग यत्र-तत्र हुआ है। वायु पुराण के अनुसार राजा सगर खस जाति का विनाश करने पर तुले हुए थे किन्तु वशिष्ठ ऋषि ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। हिरोडोटस ने कस्स जाति द्वारा बसी हुई कसपतिरस नामक नगरी के लोगों का वर्णन किया है और लिखा है कि उस देश में चीटियाँ स्वर्ण एकत्र करने के काम में लगाई जाती हैं।

महाशक--पुरानी बाइबिल में शक जाति के एक कबीले को मुशकु या मेशक[४] कहा गया है। इन लोगों का उल्लेख असुर शासक तिग्लाथ पिलेसुर (१११५-१०७७ ई० पू०) के सन्दर्भ में हुआ है। इतिहासकार सैग्स के अनुसार "मैसोपोटामिया में इस काल में लोहा उपयोग में आने लग गया था। यह सोना हित्ती साम्राज्य के जिस प्रदेश से आता था उस पर मुशकु या मे-शक जाति का अधिकार था। तिग्लाथ पिलेसुर के सिंहासनारूढ़ होते ही इन लोगों का बीस हजार सैनिकों का एक दल दक्षिण की ओर असीरिया के कुम्मु प्रदेश पर चढ़ आया। तिग्लाथ पिलेसुर ने उत्तर पश्चिम की ओर तत्काल जाकर इन आक्रमणकारियों को पछाड़ा और उन्हें कम्मु प्रदेश से निकाल बाहर किया।" (द ग्रेटनैस देट वाज बैबीलोन—एच० डब्ल्यू० एफ० सैग्स लंदन १९६२ पृष्ठ ८८-८९) इन मुशकु यामे-शक लोगों को राहुल सांकृत्यायन ने महाशक जाति कहा है।

सैग्स एक अन्य स्थल पर लिखता है "असुर नासिर पाल द्वितीय (८८३—८५९ ई० पू०) के समय में उत्तर के पर्वतीय लोगों पर असुर शासकों का पूर्ण नियंत्रण

हो गया था। दो सफल आक्रमणों के उपरान्त सुलेमानियां की घाटी में जमुवा के पहाड़ी लोग असुरों के आधीन हो गए थे। असीरिया के उत्तर पश्चिम में स्थित कस्सियारी पर्वत जो इससे पहले असुर शासकों के अधिकार में था उनके राज्य से पृथक हो गया था। इस राज्य में कस्स जाति ने अपना शासन कर लिया था। इस भूभाग में असुर नासिर पाल ने वर्तमान कर्ख नामक स्थल के पास तुश्खान नामक स्थल पर असुर उपनिवेश बनाया। जब इस प्रदेश के पहाड़ी लोगों ने फिर विद्रोह किया तो असुर नासिर पाल ने उसे कठोरता से दबा दिया।...उस समय असीरिया की मुख्य सेना उसके कुम्मु प्रान्त में थी। विद्रोही लोगों को दबाने के लिये असुर शासक ने हाबुर की ओर कूच किया। दो दिन के भीषण युद्ध के बाद वह उस प्रदेश पर फिर अधिकार करने में सफल हुआ।" (वही पुस्तक पृष्ठ ९६)

सैग्स ने उपर्युक्त पुस्तक में कस्स जाति द्वारा दजला फुरात घाटी में किए गये आक्रमण का उल्लेख इन शब्दों में किया है—"हम्मुरब्बि के पुत्र सम्सु-इलुना (१७४९–१७१२ ई० पू०) के राज्य काल में कस्स जाति की एक सेना ने इलाम की सीमा की ओर से बैबीलोन पर आक्रमण करके उर[५] और ऐरिच नगरों को ले लिया। इन कस्स लोगों ने कालान्तर में बाबेलु में कई शताब्दियों तक राज्य किया। वे जैगरौस पर्वतवासी थे।" (वही पृष्ठ ७३) जिस समय कस्साइट (करस) लोग बैबीलोन पर शासन कर रहे थे उस समय असीरिया का अधिकांश उत्तरी भाग हुरियन कही हुई एक अन्य जाति द्वारा अधिकार में किया जा रहा था। इन लोगों को यहूदी बाइबिल में होरिम या होराइट कहा गया है। हाबुर नदी की ओर इन लोगों का एक स्वतंत्र राज्य भी था। बैबीलोन से कस्स लोगों को असुर शासक शम्शी अदाद ने १८११ ई० पू० अपने पड़ौसी अन्य राज्यों की सहायता से निकाल भगाया। यही नहीं उसने सभी कस्स जाति के लोगों को दजला फुरात घाटी से संपूर्ण रूप से निर्वासित कर दिया।

भौगोलिक, भाषागत और जातिगत बाधाओं के होते हुए भी पश्चिम एशिया, मिस्र और मध्यपूर्व के लोगों से भारत देश के सम्बन्ध आज से पाँच-छः हजार वर्ष पहले से थे। ये संपर्क पुर्तगाल और स्पेन के नाविकों द्वारा समुद्र मार्ग के द्वारा योरोप और भारत से सम्बन्ध स्थापित करने से पहले तक निरंतर बने रहे। अनेक मुसलमान आक्रमणकारी पश्चिम एशिया के देशों के साथ साथ भारत पर भी शासन करते थे। मुगल बादशाहों का भी शासन करामान, समरकंद तक विस्तृत था।

आर्यों ने ही भारत में सभ्यता की ज्योति जलाई यह धारणा पिछले सौ वर्ष की अवधि में हुए पुरातत्व के अन्वेषणों से अब छिन्न भिन्न हो चुकी हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक अंगों पर सिन्धु घाटी सभ्यता के ज्ञान से प्रभूत प्रकाश

पड़ा है। आर्यों के आने से पहले कौन सी जातियाँ और कौन से राजवंश पश्चिमोत्तर भारत में थे यह जानकारी हमें ऋग्वेद में वर्णित आर्यों के दलों के रावी नदी के तट पर हुए संघर्ष से मिलती है। आर्यों के विरोधी अनु, द्रह्यु, यदु, तुर्वशु तथा पुरु लोग थे। इन उकारान्त नामों से लगता है कि ये अक्कद भाषा के नाम हैं। ऋग्वेद के कुछ अंशों की रचना वैदिक विद्वानों के अनुसार ३००० ई० पू० हो चुकी थी। इस ग्रन्थ के १०१७ या १०२८ सूक्तों में से अधिकांश उतने पुराने नहीं हैं। मण्डल दो से लेकर सात तक की संहिताएँ सबसे पुरानी मानी जाती हैं। दसवें मण्डल की सामग्री १५०० ई० पू० की मानी जाती है। इस अन्तिम मण्डल के लिखे जाने तक यह विश्वास किया जाता है कि आर्य जाति कुभा (काबुल), कुरमू (कुर्रम), सुवास्तु (सुवात) तथा गोमती (गुमाल) नामक स्थलों में बस गई थी। ये सभी स्थल अब अफगानिस्तान में हैं।

जिन जातियों से आर्यों का संघर्ष हुआ वे निश्चय ही उसी सभ्यता के सगोत्रीय लोग थे जो एक ओर सिंधु घाटी में तथा दूसरी ओर मैसोपोटामिया में रहने वाले अक्कद भाषा-भाषी लोग थे। पंजाब की पाँचों नदियाँ ऋग्वेद में वर्णित हैं। वितस्ता वर्तमान झेलम है, चेनाव परुष्णी जो कुछ काल बाद इरावती कहलाई आजकल रावी कहलाती है। विपशा अथवा व्यास वर्तमान व्यास है और शतद्रु अथवा शतुद्रु वर्तमान सतलुज है। परुष्णी नदी के तट पर वेदों में वर्णित आर्यों और अनार्यों के मध्य अनेक संघर्ष हुए। इन सबसे भी महत्वपूर्ण नदी सरस्वती थी जो सतलुज और यमुना के मध्य बहती थी। इस नदी का उल्लेख दृषद्वती नदी के साथ भी हुआ है और उन्हीं के साथ अपया नामक नदी का भी वर्णन है। ऋग्वेद में यमुना का तीन बार वर्णन आया है।

ऋग्वेद में उत्तर दिशा की ओर हिमवंत अथवा हिमालय का मूजवन्त शिखर के सम्बन्ध में उल्लेख है जो पूर्वोक्त सोम पेय का स्रोत माना गया है। वेदों में न विंध्याचल पर्वत का वर्णन है और न नर्मदा नदी का। ऋग्वेद में समुद्र शब्द का बाद में वर्णन हुआ है, यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया है। सोम नामक वनस्पति का कालान्तर में उपलब्ध होना कठिन से कठिनतर होता गया और उसके स्थान पर अन्य बनस्पतियों का उपयोग होने लगा इससे लगता है कि आर्य लोग दक्षिण दिशा की ओर हिमालय से दूर होते गए। नवीनतम शोधों में सोम को हिम प्रदेशीय जलवायु में उगने वाला एक कुकुरमुत्ता जाति का शिलीन्द्र[६] (मशरूम) बताया गया है और यह शोध भी इस धारणा की पुष्टि करता है कि आर्य शीत प्रधान भूखण्ड के निवासी थे।

वैदिक काल में जो जाति जिस भूखण्ड में बसी उस भूखण्ड का ही नहीं उसके

निकटवर्ती पर्वत और निकटवर्ती नदी का नामकरण भी उसी जाति के नाम पर किया गया। कुरु एक देश भी है और पर्वत भी। कुरु और उत्तर कुरु जातियों का उल्लेख तो अनेक बार हुआ है। परुष्णी नदी के तट पर आर्यों का जिन तत्कलीन भारतीय जातियों से संघर्ष हुआ वे संस्कृत भाषा-भाषी नहीं थे। उन जातियों के यदु, पुरु, द्रह्यु, तुर्वशु, अनु तथा भरत नाम प्रमुख हैं। भरत लोगों का राजा सुदास तृत्सु वंश का था। उनका कुलगुरु वसिष्ठ था। वसिष्ठ से पहले विश्वामित्र के नेतृत्व में भरत लोगों ने विपशा और शुतुद्रु नदी के किनारे युद्ध में विजय पाई थी जिसका बदला लेने के लिए विश्वामित्र भरत लोगों तथा उनके साथ की दस अन्य जातियों के साथ परुष्णी नदी के तट पर लड़े थे। इन दस जातियों में से अलिन, पखता, भालमाश, शिवि और विषाणी कम महत्वपूर्ण हैं इन्हें हिस्ट्री आफ इण्डिया में क्रमशः वर्तमान काफिरिस्तान, पखतूनिस्तान, बोलन दर्रा तथा सिन्धु तट के शिवि माना गया है। इन पाँचों से अधिक महत्वपूर्ण भृगु वंश के अनु लोग थे। शेष चार द्रह्यु, तुर्वशु, यदु और पुरु लोग थे। इन दूसरी पाँच जातियों का ऋग्वेद में अनेक बार उल्लेख हुआ है।

आज का भारत जिसे आर्यावर्त भी कहते हैं 'मानव धर्मशास्त्र' का मध्य-देश है। वैदिक काल में भरत लोग जिस भूभाग में रहते थे उसे दो भरत राजाओं का निवास स्थान माना गया है। ये दो राजा देवश्रवस और देववात हैं। भरत जाति के अनेक राजाओं का वेद में उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में पुरु तीसरे और सातवे मण्डलों में सुदास और तृत्सुओं के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से आते हैं, जबकि छठवें मण्डल में इन्हें दिवोदास के साथ सम्बद्ध किया गया है। एक स्थल पर भरत-गण भी, तृत्सुओं की ही भाँति, पुरुओं के शत्रु हैं। तृत्सुओं और भरतों को समीकृत करने के लुडविग[८] के दृष्टिकोण कीं प्रत्यक्ष शुद्धता पर कदाचित ही संदेह किया जा सकता है। अपेक्षाकृत अधिक समीचीनता के साथ ऑल्डेनवर्ग यह विचार व्यक्त करते हैं कि तृत्सुवर्ग वास्तव में भरतों के पारिवारिक गायक वशिष्ठ ही हैं, जबकि गेल्डनर कदाचित अधिक सम्भावना के साथ तृत्सुओं में भरतों के राज परिवार का आशय देखते हैं। त्सिमर[९] का यह विचार कि तृत्सु और भरत परस्पर शत्रु थे, भौगोलिक आधार पर भी अत्यन्त असम्भव है, क्योंकि त्सिमर के मतानुसार तृत्सुगण परुष्णी के पूर्व के क्षेत्र में बसे थे, और इसलिए यह मानना पड़ेगा कि तृत्सुओं के विरुद्ध भरतगण पश्चिम दिशा से आए, जबकि ऋग्वेद में दो भरत राजाओं को सरस्वती, आपया और द्वषद्वती अर्थात् हमारे देश के पवित्र क्षेत्र मध्य प्रदेश में, रहने वाला बताया गया है। हिलेब्रान्ट[१०] तृत्सुओं और भरतों के सम्बन्ध में दो जातियों के मिश्रण का आभास देखते हैं किन्तु उनकी यह मान्यता किसी भी प्रमाण से पुष्ट नहीं होती। भरद्वाज परिवार के सम्बन्ध में दिवोदास के उल्लेख तथा उसी के पुत्र अथवा कदाचित पौत्र सुदास (तु० की० पैजवन) के वशिष्ठों और विश्वामित्रों के साथ सम्बन्ध होने के तथ्य की

व्याख्या करने के लिए इस प्रकार के सिद्धान्त की ही आवश्यकता है।

बाद के साहित्य में भरतगण विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। शतपथ[११] ब्राह्मण में एक राजा तथा अश्वमेध यज्ञ करने वाले के रूप में 'भरत दौःषन्ति' का और 'शतानीक' सत्रजित नामक एक अन्य भरत का भी यही यज्ञ करने वाले के रूप में उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण में दीर्घतम मामतेय द्वारा अपना राज्याभिषेक कराने वाले के रूप में 'भरत दौःषन्ति' का, और 'शतानीक' का उस सोमशुष्मन वाजरत्नायम नामक पुरोहित द्वारा अभिषक्त होने के रूप में उल्लेख है। मामतेय नाम का स्वरूप बहुत बाद का प्रतीत होता है। भरत लोगों की भौगोलिक स्थिति इस तथ्य द्वारा स्पष्ट हो जाती है कि भरत राजा काशियों को विजित करके यमुना तथा गंगा के तट पर यज्ञ करते हैं।[१२] इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण के लिए राजा के घोषणा पत्र में उल्लिखित विभेदों के अन्तर्गत 'कुरवः', 'पंचालाः', 'कुरु प्रांचालाः' और 'भरताः' आते हैं और महाभारत में नियमित रूप से कुरुओं के राजपरिवार को भरत वंशीय ही माना गया है। अतः औल्डेनवर्ग का यह मानना अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होता है 'कि ब्राह्मणों के रचना काल तक भरतगण कुरु पंचाल जाति में विलीन हो चुके थे।'

पश्चिम एशिया में हुए उत्खननों से मिस्र और बावेलु की सभ्यताओं का निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इनमें से एक महत्वपूर्ण उत्खनन पूर्वोक्त उर नामक स्थान पर हुआ है। उर फारस की खाड़ी के पश्चिमोत्तर तट पर फुरात नदी के मुहाने पर बसा था। कालान्तर में इस नदी के मार्ग परिवर्तन से वह समुद्र से दूर हो गया तथा आजकल इस नदी के तट पर 'आबूशहरीन' के निकट बसरा से उत्तर-पश्चिम में स्थित है। इस स्थान पर पुरातत्व के विद्वान लियोनार्ड वूली के द्वारा कुछ वर्ष पूर्व पुरातात्विक उत्खनन हुए थे जिसमें अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि भारतीय पुराणों में वर्णित जलप्लावन तथा यहूदियों के धर्मग्रन्थ पुरानी बाइविल की नूह की कथा का जलप्रलय केवल पौराणिक गाथा मात्र नहीं है। उर के उत्खनन में एक ७५ फिट चौड़े और ४८ फिट गहरे प्राचीन स्थल में लगभग आठ वर्ष तक खुदाई की गई और वहाँ नदी की बाढ़ में ध्वस्त बत्तीस सौ ई० पू० की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए। इन उत्खननों में भवनों की आठ विभिन्न परतें प्राप्त हूईं जिनमें पृथक-पृथक प्रकार के मिट्टी के बर्तन मिले। ऊपर की सतहों में कुम्हार की चाक से बने हुए बर्तन मिले और उससे नीचे की पर्तों में हाथ से बने हुए। तत्कालीन ईंटों के बने भवन भी पर्याप्त सुन्दर थे और कुछ सीमेन्ट के भी बने थे। फारस के इतिहासकार सर परसी साइक्स[१३] के कथनानुसार सीमेन्ट का यह सर्वप्रथम उपयोग है। एक शूकर की मूर्ति भी उर में मिली है और यह अट्ठाईस फिट की गहराई पर प्राप्त हुई तथा इसे मूर्तिकला का सबसे प्रचीन दृष्टांत माना गया है।

जिन लोगों की ये बस्तियाँ हैं वे असभ्य नहीं कहे जा सकते। वे घास-फूस की झोपड़ियों में नहीं, ईंट के बने लकड़ी के दरवाजों वाले मकानों में रहते थे। ये दरवाजे पत्थर की उखलियों में फँसाकर मकानों से जोड़े जाते थे। पत्थर आयात किया जाता था। ये लोग ताँबे के औजार और हथियार प्रयोग में लाते थे। ये अपने मुर्दों को गाड़ते थे। कब्रों में मृतक के साथ छोटी-छोटी मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें कोई देवी सी आकृति है। एक स्थान पर चालीस फिट की गहराई पर लगभग ग्यारह फिट मोटी बालू की दीवाल सी मिली है जो बाढ़ के आने का प्रमाण है। जलप्रलय के बाद भी लोग उस स्थल पर बसते रहे थे। वे अपने पूर्वजों से भिन्न जाति के नहीं लगते किन्तु ये नवागन्तुक अपने पूर्वजों जैसे सम्पन्न नहीं लगते। इसके उपरान्त ऊपर के स्थलों पर जिन जातियों के अवशेष मिले हैं वे लोग उर की उक्त प्राचीन जातियों से सर्वथा भिन्न संस्कृति के हैं। इतिहासकारों का मत है कि ये नावागन्तुक सुमेरियन (सुमेरी) थे।

सुमेरी लोग बावेलु के प्राचीन ग्रन्थों में श्याम मुण्ड (ब्लैक हैड्स) कहे गये हैं। इन लोगों के देवताओं को मूर्तियों में शिखिर पर बैठा हुआ दिखलाया गया है। अतः इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वे उत्तर के पर्वतों की ओर से आने वाले इण्डो-यूरोपियन जाति के काले बालों वाले लोग थे। प्राचीन शिनार को ही कुछ इतिहासकारों ने सुमेरु कहा है। यहूदी बाइबिल में एक स्थल पर इन लोगों को पूर्व दिशा से आने वाला कहा गया है (देखिये : पुरानी बाइबिल-उत्पत्ति-११-२)।

प्राचीन मिस्र देश का लिखित इतिहास हीरोडोटस नामक ग्रीक इतिहासकार ने ५०० ई० पू० उस देश का भ्रमण करके लिखा था किन्तु इससे पहले की पच्चीस शताब्दियों की इतिहास सामग्री, राजाओं की समाधियों, मन्दिरों के पवित्र लिपि चित्रों, दीवालों पर उत्कीर्ण भित्तिलेखों तथा पपिरस पर सुरक्षित अभिलेखों में प्रचुरता से मिल जाती है। नील नदी घाटी में इतिहासकारों के अनुसार कृषि करने वाले आदिवासी यायावार परिवार ईसा से ६००० वर्ष पहले से ही पूर्व दिशा से आकर बसने लगे थे। ईसा के ३२०० वर्ष पूर्व इन बिखरे परिवारों को एक केन्द्रिय शासन के अन्तर्गत लाने का श्रेय मीनिस नामक एक ऊपरी मिस्र के राजा को दिया जाता है।

मीनिस ग्रीक शब्द है। किसी नाम के अन्तिम व्यंजन अक्षर के साथ स्वर वर्ण के बाद सकार (सिग्मा) को जोड़ने की ग्रीक प्रथा रही है। सुकरात नाम ग्रीक में सोक्रेटीज लिखा जाता है। ब्राह्मण शब्द को ग्रीक इतिहासकारों ने ब्राक्मनाइस लिखा

असुर देवता

असुर धर्नुधर और उसका अंग रक्षक

असुर नासिरपाल

सारगौन अक्कद का

ऐसाहँद्दौन असुर शासक बन्दी मिस्र के शासक के साथ

असुर शासक सूर्य की उपासना करते हुए—
कोलाक्षर लिपि अभिलेख

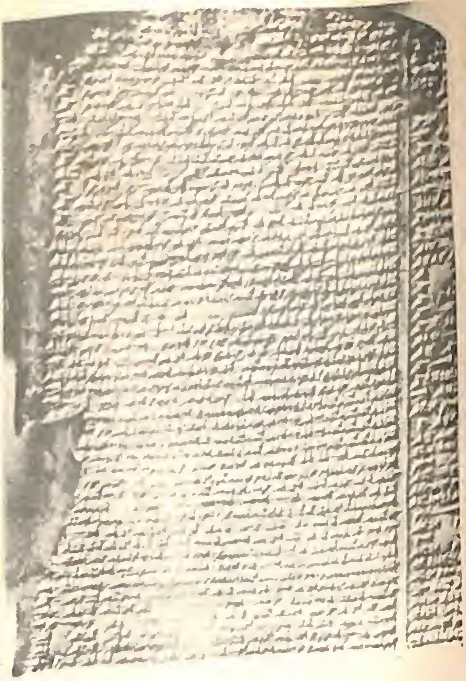

गिल गमिश महाकाव्य का एक फलकांश

कोलाक्षर लिपि में अभिलिखित स्वर्ण-पत्र
फारसी, एलामी तथा अक्कद भाषाओं में

पृष्ठ—८१

हित्ती देवता तेशब रुद्र
(सूर्य) की प्रतिमा १२०० ई०पू०

है और श्रमण शब्द को शर्मनोइस। इसी प्रकार मीनिज या मीनिस नाम मूलतः म और न इन दो ही व्यंजनों से बना है। उसमें अन्तिम "इस" ध्वनि निरर्थक है। मूलतः वह नाम 'मिन' रहा होगा। मिस्री चित्रलिपि के अक्षरों में मकार ध्वनि के लिए उल्लू तथा नकार ध्वनि के लिए तरंग (लहर) का चित्र बना रहता है। अतः म और न इन दो व्यंजनाक्षरों से मिस्र के मूल शासक का नाम मनु भी हो सकता है।

भारतीय धर्मग्रन्थों में संसार का आदि सृष्टा मनु स्वायम्भुव मनु कहा जाता है। मनु दिव्य व्यक्ति है जिससे दस प्रजापतियों (महर्षियों) का जन्म हुआ। वर्तमान जीवधारी प्राणियों का सृष्टा सातवाँ मनु वैवस्वत (सूर्यवंशी) मनु कहलाता है। अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशी राजाओं का प्रवर्तक यही मनु है। जल प्रलय के समय विष्णु ने इसी मनु की रक्षा की थी। यहूदी बाइबिल में जल प्रलय के संदर्भ में अपनी नौका पर एक-एक जोड़े जीव-जन्तुओं सहित बच निकलने वाले नूह भारतीय पुराणों में वर्णित द्रविड़ कुल में उत्पन्न मनु की कथा के रूपान्तर हैं। अगले एक अध्याय इस पर विस्तार से विचार किया गया है।

मिस्र के मनु नाम के इस प्रथम शासक ने श्वेत प्राचीर से घिरी अपनी राजधानी नील नदी के त्रिभुजाकार मुहाने के शीर्ष से २० मील दूर बनाई जो मेम्फिस कहलाई। यह नाम भी ग्रीक है। अन्तिम इ स्वर मात्रा तथा स इस निरर्थक व्यंजन को इस नाम से हटा देने से नगर के नाम के मूल मिस्री व्यंजन म और म्फ रह जाते हैं जो मुम्बई नगरी की मुम्बा भाँति की देवी के नाम पर बसाया नगर था।

नील नदी घाटी में इस नगर के निकट आबिदो अथवा बुतो (इबतू) के उत्खनन से कुछ वर्ष पूर्व पे तथा देप नामक प्राचीन नगरों का पता चला है। जहाँ अश्व, गरुड़ तथा इजी नामक नागदेवी की उपासना होती थी। मनु नाम उपाधि मात्र लगता है क्योंकि इस प्रथम शासक का असली नाम नारमेर या मरिनार है। मिस्री चित्रलिपि में लिखे नाम कुछ संकेत के साथ दोनों दिशाओं में अथवा ऊपर से नीचे भी पढ़े जाते हैं। उक्त प्रथम शासक के नाम के अक्षर म्र और न्र हैं। चित्रलिपि में अनेक व्यंजन द्विव्यंजनात्मक तथा कुछ त्रिव्यंजनात्मक अक्षरों के चित्र हैं। अतः म्र और न्र ध्वनियों से जिस नाम का बोध होता है यह भारतीय पुराणों की मेरुनर (नारायण के साथी) अथवा मारी नर हो सकता है। मारी नामक स्थल (दक्षिण ईराक) के उत्खनन से अति प्राचीन सुमेरी सभ्यता के अभिलेख मिलते हैं। यह सभ्यता मिस्र की सभ्यता से भी पुरानी मानी जाती है। सम्भवतः ऊपरी मिस्र का यह शासक पूर्व में मारी से आए कबीले से संबन्धित रहा हो। स्वर मात्रा विहीन प्राचीन लिपियों में लिखा मारी शब्द मेरु भी पढ़ा जा सकता है। कदाचित् भारतीय पुराणों में वर्णित सृष्टि का केन्द्र स्थल मेरु पर्वत प्राचीन मारी ही हो।

हिन्दू संस्कृति में सेमिटिक तत्व

आधुनिक हिन्दू संस्कृति में मिस्र, क्रीट, सुमेर और अक्कद (बावेलु) तथा असीरिया इन पाँचों प्राचीन देशों की विचारणा की जो विशेषताएँ आज भी विद्यमान हैं, इनमें प्रमुख मूर्तिपूजा तथा बहुदेव वाद है। हिन्दू संस्कृति में यह आर्येतर प्रभाव इन प्राचीन सेमिटिक (सामी) कही गई जातियों की देन है अथवा उन सामी जातियों और तत्कालीन भारतीयों की तदनुरूप विचारणा का प्रभाव है, यह कहना कठिन है। अपनी संस्कृति के प्रति एकपक्षीय लगाव रखने से हमारे मन और मस्तिष्क में एक प्रकार की संकीर्णता आ जाती है। उसके फलस्वरूप हम उसके प्रति निर्लिप्त भाव से नहीं सोच सकते और अपनी संस्कृति में निहित विदेशी प्रभाव का विरोध करने लगते हैं। कभी-कभी उस प्रभाव को स्वीकार भी नहीं करते हैं। जैसा डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन ने कहा है, "अकेली मानव जाति किसी ऐसी शक्ति, सांस्कृतिक निधि अथवा अनुभूति की एकमात्र उत्तराधिकारी नहीं है जिसको कुछ अंशों में दूसरे लोग न रखते हों। अन्तर केवल उन सांस्कृतिक निधियों का अथवा उन प्राचीन प्रभावों का न्यूनाधिक होना है। अतः ऐसे विदेशी प्रभाव को स्वीकार करना हमारी संस्कृति की अवमानना नहीं है। वह एक दृष्टि से उसकी सबल समन्वयन शक्ति का प्रतीक है।"

यद्यपि काशि लोग आर्य जाति के ही थे तथापि असीरिया में सदियों तक निवास करने के उपरान्त तथा असुर जाति से रक्त सम्बन्ध कर लेने के कारण उन्हें भी संस्कारविहीन माना जाने लगा। इसी कारण काशि (कस्साइट) कबीलों की अन्य आर्य कबीलों से शत्रुता बनी रही। भारतवर्ष में आने पर, उत्तर वैदिक काल में, ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित धर्म को ग्रहण करने में काशि जातियों को पर्याप्त समय बीता। इसीलिए नव-आगंतुक शिक्षित वर्ग ने उन्हें वृषल, ब्राह्मणत्वहीन अथवा अधार्मिक कहा। मनुस्मृति में पर्वत प्रदेश के लोगों के लिए लिखा गया है :—

शनैकस्तु क्रियालोपादियाः क्षत्रिय जातयः
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मण अदर्शनेन च।
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः काम्बोज यवना शकाः
पारदापह्लवाश्चीना किराता दरदाः खसाः। (१०—४४)

अर्थात् ब्राह्मण को न बुलाने के कारण संस्कार विहीन हुए क्षत्रिय, पौण्ड्रक, उड्र, द्रविड़, कम्बोज, पारद, पह्लव, चीन, किरात, खस तथा दरद लोग जातिच्युत हुए जो इन पर्वतों पर रहते हैं।

जहाँ तक कुमाऊँ का सम्बन्ध है, मध्य देश से आए हुए ब्राह्मणों द्वारा स्थानीय निवासियों को द्विज वर्ग में लाने का कार्य राजा रुद्रचन्द के समय में बनी हुई त्रैवर्ण

धर्म निर्णय नामक नीतिसंग्रह के अनुसार हुआ। खस जाति श्रीमद्भागवत् में भी नीच जाति मानी गई है।

किरात हूणांध्र पुलिन्द पुल्कसा
आभीर कंका यवनाः खसादयः।
ये अन्ये च पापा यदुपाश्रया भयः।
शुद्धयन्ति तस्मै प्रयविष्णवेः नमः। (२-४)

अर्थात् विष्णु का आश्रय ग्रहण करने पर किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर (अहीर), कंक (सम्भवतः कनिष्क के वंशज), यवन, खस तथा अन्य पाप को प्राप्त हुए लोग शुद्ध हो जाते हैं।

इन जातियों का शुद्धीकरण अथवा ब्राह्मण धर्म का अनुयायी बनाया जाना सदियों तक चलता रहा होगा क्योंकि तुलसीदास जी भी लिखते हैं :—

स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात।

कुमाऊँ में जाति और उपजातियों की रूढ़िवादिता पर डा० रामी सनवाल का शोध निबंध महत्वपूर्ण है। उसका सारांश इस पुस्तक के अंतिम अध्याय में दिया गया है।

संन्दर्भ और टीपें

१—कस्स :—सुमेरी सभ्यता का अंत डा० जार्ज रालिन्सन के अनुसार लगभग १७१० ई० पू० इलुमा-इलु के दसवें उत्तराधिकारी इआ-गामिल के समय में हुआ जबकि कस्साइट नेता उलम बुरियास ने मैसोपोटामिया पर अधिकार किया।

२—सुस-असुवा, अश्व आदि की व्युत्पत्ति के लिए देखिए इस अध्याय का अनुच्छेद २ पृष्ठ ७४। नवीनतम शोधों के अनुसार घोड़े को पालतू बनाने का कार्य २००० ई० पू० हुआ जबकि कुत्ता १०००० ई० पू० पालतू बना दिया गया था, उसके बाद भेड़, बकरी तथा जंगली गधे से बोझा ढोने का कार्य लिया जाने लगा। सवारी के लिए घोड़े का उपयोग ब्रोनौस्की के अनुसार इतना ही चमत्कारिक था जितना आज के युग में विमान का आविष्कार। इस विद्वान के अनुसार मूलतः घोड़ा दक्षिण अमे-

रिका के जंगलों में पाया जाता था। उत्तर-पूर्व एशिया के कोने से वह मध्यएशिया पहुँचा और वहीं से सीथियन जाति द्वारा पश्चिम एशिया में ले जाया गया। (जे० ब्रोनौस्की—द एस्सेंट ऑफ मैन-बी० बी० सी० पृष्ठ ७६-८०)

३—हिक्सौस :—मिस्र देश के इतिहास में हिक्सौस लोगों को मध्यएशियायी चरवाहे कहा जाता है।

४—महाशक :—पश्चिम एशिया का इतिहास, राहुल सांकृत्यायन।

५—उर :—पुराविद लियोनार्ड वूली ने उर के उत्खनन के विषय में एक ग्रन्थ-उर के उत्खनन के बारह वर्ष लिखा है। उर के तृतीय राजवंश के राजाओं की समाधियों में अनेक कलात्मक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। यह उर वही है जिसे यहूदी पुरखा अब्राहम का जन्मस्थान माना जाता है। कालान्तर में नव बाबेलु काल में यह 'खल्दी लोगों का उर' कहलाया। उर शब्द स्थान या देश के लिए आज भी दक्षिण भारत में प्रचलित है। मंगलौर, इलुर, बंगलौर आदि शब्दों के अन्त का उर पद उल्लेखनीय है।

६—होरम, होराइट, हुर्रियन :—असीरिया के उत्तर के निवासी हित्ती और मितानी लोगों के समकालीन लोग थे। पुराविद इन्हें इंडो-यूरोपियन जाति का नहीं मानते हैं। (द हेरिटेज ऑफ पर्सिया-रिचर्ड एन० फ्राई पृष्ठ २२)।

७—शिलीन्द्र :—सोम को भंग की जाति का ही एक पौधा माना जा सकता है। उसे एक प्रकार का कुकुरमुत्ता मान लेना युक्तिसंगत नहीं है। इस आशय का एक लेख कि सोम हिम प्रदेश में उगने वाला कुकुरमुत्ता है, सन् १९७२ ई० में 'धर्मयुग' में छपा था।

८—लुडविग :—देखिए ऋग्वेद का अनुवाद —३, १७२, तथा अन्य स्थल।

९—त्सिमर :—देखिए ओल्टिण्डिशे लेबेन, १२७। ब्लूमफील्ड का भी यही विचार है। (देखिए जर्नल ऑफ अ० ओ० सो०-१६, ४१, ४२)।

१०—हिलेब्रांट :—देखिए—वेदिशे माइथौलोजी, १, १११, इस विद्वान का मत है कि वसिष्ठगण मूलः इन्द्र के नहीं वरुण के भक्त थे। दूसरे अर्थों में वे इंडो-आर्यन जाति की उस शाखा के थे जो ईरान में जा बसी थी तथा जिनका मुख्य उपास्य वरुण था।

११—शतपथ :—देखिए यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण १३, ५, ४।

१२—काशि :—देखिए शतपथ ब्राह्मण पूर्वोक्त तथा ११, २१।

१३—परसी साइक्स :—देखिए हिस्ट्री ऑफ पर्सिया।

पाणिनि के समय के जनपद

कुमाऊँ के पहाड़ों में पश्चिम के पहाड़ी मार्गों से जाकर पहले-पहल बसने वाले औस्ट्रिक जाति के लोग वैदिक दमूना वासी लोग थे। इन्हें इतिहासकारों ने द्रविड़ भी कहा है। इन लोगों का मूल स्थान भी भूमध्य सागर तक का क्षेत्र माना जाता है। सिन्धु सभ्यता को भी द्रविड़ सभ्यता माना गया है। सिन्धु शब्द वैदिक साहित्य में तीव्र वाहिनी अथवा नदी वाचक जाति वाचक संज्ञा था। अतः उन दमूना वासी लोगों को चाहे सुमेरी सभ्यता के लोग कहें, चाहें सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग, बात एक ही है। तीनों नदी घाटियों के लोग मूर्ति पूजक थे। उनका पारस्परिक सम्पर्क भी था।

किरात—

ग्रीक इतिहासकारों ने यमुना से शारदा तक के प्रदेश को किरातों का निवास या तंगण देश कहा है (टाल्मी)। कुमार सम्भव में कालिदास ने भी कुमाऊँ गढ़वाल के क्षेत्र के वर्णन में दो बार किरातों का उल्लेख किया है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार[1] "किरातों और खसों के बाद वैदिक आर्यों की पहली लहर दक्षिण के मैदानों से पहाड़ों की ओर बढ़ी तथा त्रित्सु हिमालय के सानु में पहुँचे। वहाँ द्रविड़ों और पार्वतों के समीप पहुँचने पर त्रित्सु की किरातों से मुठभेड़ हुई।" किरात जाति का अस्तित्व नैपाल में अठारहवीं सदी ईसवी के अन्तिम वर्षों तक रहा जैसा अन्यत्र दर्शाया गया है।

पिथौरागढ़ की अरण्यवासी राजी जाति अपने को राज किराती कहती है। पिथौरागढ़ और नैपाल के सीमान्त में आज भी कुछ लोग इस जाति के बसते हैं। नैपाल के अन्तराल में तो ये लोग स्वतंत्र जीवन यापन करते हैं और अपने को किसी भी राज्य शासन के विधि निषेधों के अनुकूल व्यवहार करने को वाध्य नहीं मानते। (बी० डी० सनवाल—नैपाल ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में) इस जाति की भाषा का अध्ययन कतिपय नृतत्व विद्या विशारदों ने किया है। इससे किरातों के द्रविड़ मूलक होने के पर्याप्त प्रमाण मिले हैं। किराती सर्वनाम शब्द ना (मैं) तथा नी (तुम) तमिल भाषा में भी उसी रूप और अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।[2]

कस्स जाति समूह के आने के समय द्रविड़ जाति पहाड़ों के अन्तराल में अपने पन्द्रह सदियों के निरन्तर आवास के कारण यहाँ की स्थायी निवासी बन चुकी थी। इसीलिए इन लोगों को कस्स कही गई आर्य जाति ने दमूना या स्थायी निवासी नाम दिया। कस्स कही गई जातियाँ मूलतः कैस्पियन और काला सागर के समीप-

वर्ती पर्वतों की रहने वाली आर्यवर्ग की जातियाँ थीं । इस जाति समूह के सम्बन्ध में हर्त्ज फेल्ड नामक पुराविद की प्रस्थापना उल्लेखनीय है । उनके अनुसार "लुल्लुबि गुटी, उरार्तियन तथा आदि सभी जातियाँ एक विशेष एकजातीय (ऐथिनिक) तथा एक भाषीय समुदाय के लोग थे जिन्हें कस्सी या कैस्पियन कहा जाता था । इन लोगों को इतिहासकार हिरोडोटस ने कोस्साइ या किस्सी कहा है। कस्स शब्द आर्मीनी भाषा का है । प उस भाषा में बहुवचन का बोधक है । (द हेरिटेज आफ परसिया-रिचर्ड एन फ्राई लन्दन । १९६२, पृष्ठ ६३-६४) इसी जाति समूह के नाम पर कैस्पियन सागर (अरबी में कसरे बहर) का यह नाम पड़ा । कालान्तर में असुरों द्वारा दजला-फुरात की नदी घाटी में अधिकार कर लिये जाने पर इन लोगों को पूर्व की ओर जाने के लिये विवश होना पड़ा ।

कस्स जाति समूह ने जैसा पूर्ववर्ती अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है, बाबेलु के पठार पर १५०० ईसा पूर्व से ११०० ईसा पूर्व तक राज्य किया । इलाम के द्वारा ११५० ईस्वी पूर्व बाबेलु पर अधिकार कर लेने के उपरान्त कस्स जाति समूह को मैसोपोटामिया की घाटी को त्याग देना पड़ा ।

असुरों का राक्षसी व्यवहार

बाबेलु घाटी पर तिग्लात पिलेसर, अदाद निरारी, असुर नासिर पाल (८८३-८५९ ई० पू०) आदि ने अधिकार करके अपने राज्य का विस्तार अर्मीनी आर्य जाति के राज्यों पर भी कर लिया । इन शासकों ने पूरे उत्तर सीरिया में कत्ले आम का आतंक मचा दिया । विजित लोगों का सामूहिक निर्वासन आरम्भ कर दिया । असुर नासिर पाल के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने किस प्रकार अपने विद्रोहियों की खाल उतार कर उसको दीवालों से टांग दिया । शाल्मनेसुर नामक शासक ने (८५८-८२४ ई० पू०) उत्तर के उरार्तु प्रदेश पर अधिकार करके अपने पूर्वजों के अत्याचारों को और भी नृशंसता से दुहराया । लूट का सामान और दासों की भारी संख्या असीरिया में आने लगी । दमिश्क का अर्मीनी राज्य भी तिगलात पिलेसर तृतीय (७४५-७२७ ई० पू०) ने अपने अधिकार में कर लिया । इसी समय तेहरान के देममन्द (हेमवन्त) पर्वतों पर अधिकार करके वहाँ से भी रहे सहे कस्सी लोगों को सामूहिक रूप से निर्वासित किया ।

असुर शासकों को उनके किए गए अत्याचारों के कारण भारतीय धर्म ग्रन्थों में राक्षस अथवा दैत्य माना गया है अन्यथा असुर शब्द का वैदिक कालीन अर्थ महान अथवा श्रेष्ठ है । असुर शासक शाल्मनेसुर प्रथम ने उत्तर पश्चिम असीरिया के हनीगलबल नामक प्रदेश को जहाँ कस्साइट शासक नजीमनदास शासन करता था, अपने अधिकार में लेकर कई हजार कस्स लोगों को निर्वासित किया । उसके वंशज

तुकुल्ति निनुर्त प्रथम (१२४४-१२०८ ई० पू०) ने उसी का अनुसरण करते हुए सामूहिक निर्वासन का कार्यक्रम जारी रखा। ये निर्वासन इतने बड़े पैमाने पर लगातार कई वर्षों तक होते रहे कि पुरानी बाइबिल में (राजा २, १५-१९-२२ राजा-२, १८-८, इसायाह-२३-५, राजा-१६-७-९ आदि) इन निर्वासनों का लोमहर्षक उल्लेख हुआ है।

असुर शासन का अन्त

असुर साम्राज्य पर नवबावेलु वंश के नबु चदनेजर ने कालान्तर में अधिकार कर लिया और उसने भी असुरों की सामूहिक निर्वासनों की प्रथा को जारी रखा। उनके किए हुए ५९७ तथा ५८६ ई० पू० के कुख्यात सामूहिक निर्वासन आज भी यहूदी लोक गाथाओं के आधार हैं। कालान्तर में मीडिया और फारस को संयुक्त करके हखमनीश के वंश के ईरानी शासन कुरु (साइरस) ने एक बार सारे पश्चिम एशिया के व्यापारिक मार्गों को अपने नियंत्रण में कर लिया। अंततः ५३९ ई० पू० में कुरु ने बावेलु पर अधिकार कर लिया और पश्चिम एशिया से बन्दी बनाकर लाए गए हजारों यहूदी लोगों को यरुसलेम वापस जाने की अनुमति दे दी। कई शताब्दियों से चली आ रही पश्चिम एशिया की असुरों की प्रभुसत्ता मेद तथा पारसिक जातियों के हाथ आ गई।[3] उन देशों से निकाले गए कस्स, असुर तथा अन्य पर्वतीय जातियाँ पूर्व की ओर के देशों में जा बसीं। जल मार्ग से ये लोग गुजरात, राजस्थान होते हुए पूर्व में मगध तक जा बसे। कुछ स्थल मार्ग से काकेशस (हिन्दुकुश) पर्वत के पार हिमालय की तलहटी में आ बसे। यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुर लोगों के राज्य उत्तर भारत में मगध तक फैल चुके थे।

कुमाऊँ में असुर—श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को अपहृत कराकर ले जाने वाली ऊषा के पिता असुर बाण और उसकी राजधानी शोणितपुर या रुधिरपुर की पौराणिक कथा की ऐतिहासिकता का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। हरिवंश पुराण में इस असुर का नाम बाणासुर नहीं असुर बाण है। यद्यपि बाद के कुछ भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में उसे बाणासुर लिख दिया गया है। यह असुर बाण असुर वंश का अन्तिम प्रभावशाली शासक (६६८-६२६ ई० पू०) था जिसने मिस्र से बलूचिस्तान तक फैले भूभाग पर अधिकार कर लिया था। यहूदी बाइबिल में उसकी राजधानी निनेवा को 'सिटी ऑफ ब्लड' कहा गया है (नाहुम की पुस्तक)। कुमाऊँ में काली कुमाऊँ में सुई-लोहाघाट तथा लोहावती नदी, बमसू, कत्यूर में बाणेश्वर, गढ़वाल में उखीमठ आदि से असुर लोगों की जनश्रुतियाँ सम्बन्धित हैं। लोहाघाट की लाल मिट्टी असुरों के द्वारा किए गए अत्याचारों से रक्त रंजित होने के कारण रंगी हुई मानी जाती है। वर्षाकाल में यह लाल मिट्टी नदी में बहकर उसके जल को भी रक्त वर्ण का कर देती है। इसी कारण

इस घाटी को लोहाघाट और लधिया नदी को लोहावती भी कहा जाता है। मूलतः ये नाम लोहूघाट तथा लोहूवती थे जैसा कि बैटन की बन्दोबस्त रिपोर्ट और बैरन के यात्रा विवरणों में भी दर्शाया गया है। एटकिंसन ने भी सुई के भग्नावशेषों को शोणितपुर नगरी के ध्वंसावशेष कहा है। चम्पावत का कोटवालगढ़ वाणासुर की पत्नी कोटवी से सम्बन्धित माना जाता है।[४] (एटकिंसन पृष्ठ ७३०)

जनश्रुतियों का आधार जो भी हो यह स्पष्ट है कि गढ़वाल कुमाऊँ में भी पश्चिम एशिया के निर्वासित असुर, यहूदी आदि लोगों के अनेक उपनिवेश ईसा पूर्व पहली सहस्राब्दी में स्थापित हो चुके होंगे। मगध के शिशुनाग वंश के संस्थापक को भी कुछ इतिहासकार पश्चिम एशिया के निर्वासित जाति समूहों में से मानते हैं। असुरों के सामूहिक निर्वासन इतने बड़े पैमाने पर हुए कि पश्चिम एशिया में अनेक जातियाँ दूर-दूर मध्य एशिया तक के भूभागों में जाकर बसने को विवश हुईं। असुरों के उपरान्त हखमनीश शासकों ने भी यूनान से हुए युद्धों के उपरान्त यूनानी बन्दियों को दूर दूर देशों में ले जाकर बसाया। गान्धार देश में सिकन्दर के आक्रमण के समय ग्रीको परसियन युद्धों के समय हखमनीश शासकों द्वारा स्वदेश से निर्वासित दो शताब्दी पूर्व के यूनानी लोगों की बस्तियाँ थीं। पाणिनि के समय में (पाँचवीं सदी ईस्वी पूर्व) यूनानी लोगों की भाषा गान्धार देश में प्रचलित थी इसका प्रमाण अष्टाध्यायी से भी मिलता है।

हखमनीश शासकों के जनपद और गण

अष्टाध्यायी में जिन जनपदों और गणों का उल्लेख हुआ है उनमें से अधिकांश इन्हीं निर्वासित लोगों के जनपद और गण थे। एक जाति समूह दूसरे पड़ौसी जाति समूह से इतना भिन्न था और अपने अपने मूल स्थानों से इतनी दूर-दूर जाकर बसा था कि भूमध्य सागर के पूर्वी तट से लेकर हिमालय की उपशृंखलाओं तक पश्चिम आप्रवासी जातियाँ बिखरी थीं। अष्टाध्यायी में वर्णित सभी जनपदों और गणों को भाष्यकारों ने वर्तमान भारतीय प्रायद्वीप के भीतर ही खोजने का प्रयास किया है। ऐसा करना इसलिए तर्कसंगत नहीं है कि पाणिनि का देश गान्धार उसके समय में ईरान के हखमनीश शासकों के अधिकार में था तथा भारत ईरान जैसी दो राजनैतिक इकाइयाँ बन ही नहीं पाई थीं। कुछ जनपदों का उल्लेख अष्टाध्यायी के सन्दर्भ सहित नीचे दिया जा रहा है।

१— कम्बोज

इसका वर्णन पाणिनि के अष्टाध्यायी में (४-१-१७५) में हुआ है। यह पामीर के निकट हखमनीश सम्राट् कम्बुज (कम्बाइसिस) द्वारा विजित देश का नाम था। (हेरि० पृष्ठ ६७) अष्टाध्यायी के टीकाकार वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे पुराविद लैसन द्वारा वर्णित हिमालय के परे का देश माना है।

२—प्रावणव

प्राकनोई या परितकनिओई हिट्टी के अनुसार उत्तर ईरान की छः मेद (मीडियन) जातियों में से एक थी। उनमें से एक जनपद का यह राज्य भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर स्थित था। हिरोडोटस ने भी इन लोगों का उल्लेख किया है। वासुदेव शरण अग्रवाल इसे मध्य एशिया का जरक्सीज नदी के पूर्व का मध्य एशियाई भूभाग मानते हैं। पर्तिकनोई जनपद पाणनि के (४-१-१५३) के समय में परगनम (फरगना) में स्थित रहा होगा। (हेरि० पृष्ठ ७४)

३—गान्धार

गान्धारी या गान्धार (४-१-१६६) जनपद तथा गान्धार गण (४-२-१३३) तथा (४-३-६३) का अष्टाध्यायी में तीन बार उल्लेख यह सिद्ध करता है कि गान्धार देश हखमनीश काल के प्रसिद्ध जनपदों में रहा होगा। इसे हिट्टी पेशावर जलालाबाद तथा सत्तगिडिया (तथगू) का इलाका मानता है। (हेरि० पृष्ठ ६६) वासुदेव शरण अग्रवाल अपने पाणिनि कालीन भारत ग्रन्थ में इसे डेरियस के साम्राज्य का एक प्रदेश मानते हैं और लिखते हैं कि डेरियस (५२१-४८६ ई० पू०) की मृत्यु के बाद यह स्वतन्त्र गणराज्य हो गया था। (इण्डिया एज नोन टु पाणिनि-४८६)

४—सिन्धु अभिजन

पाणिनि के (४-३-९०) में इसका उल्लेख हुआ है। यह केवल अभिजन है। कोई जनपद नहीं। इससे स्पष्ट है कि यह हखमनीश साम्राज्य की सिन्धु क्षत्रपी थी जहाँ भूमध्य सागर के पूर्वी तट की सिदौन नामक प्राचीन व्यापारिक नगर के लोग जा बसे होंगे। (हेरि० पृष्ठ १००) वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार यह झेलम तथा सिन्धु नदी की अन्तर्वेदी थी। (इण्डिया० पृष्ठ ५०)

५—सौबीर

अष्टाध्यायी (४-१-१४८) में इसे फणटाहिति तथा मिमित जातियों का जनपद कहा गया है। निश्चय ही यह प्राचीन पश्चिम भारत का औफिर नामक बन्दरगाह है जहाँ से पणि नामक व्यापारी धूप वास, मसाले आदि पश्चिम एशिया को ले जाते थे। (हेरि०—हिट्टि० पृष्ट ९९) अग्रवाल इसे उत्तरी सिन्धु का बुगती जाति का प्रदेश मानते हैं। (इण्डिया पृष्ठ ५०)

६—ब्राह्मणक्

यह अग्रवाल के अनुसार आयुध जीवी ब्राह्मणों या एक जनपद मध्य सिन्ध में स्थित था। इसका उल्लेख अष्टाध्यायी ७-५-७१ में हुआ है। हिट्टी अथवा फ्राई किसी ने भी ऐसे जनपद का उल्लेख नहीं किया है। ग्रीक इतिहासकारों ने सिकन्दर कालीन ब्राक्मनोई का उल्लेख अवश्य किया है। यह सिन्ध में तो नहीं उत्तर भारत में

कश्मीर या गढ़वाल में रहा होगा जो प्राचीन काल में राजर्षि कहे हुए अपने हथियारों से ही जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मणों के राज्यों का स्थल रहा है।

७—अपकर

पाणिनि ने अपकर नामक (४-३-३२) जनपद का उल्लेख किया है। अग्रवाल इसे सिन्ध प्रान्त का मियांवाली जिला मानते हैं। वैसे अवगर नाम के शासकों का पश्चिम एशिया में अस्तित्व रहा है। (सीरिया का इतिहास हिट्टी-पृष्ठ ३०८)

८—पारस्कर

पाणिनि द्वारा वर्णित पारस्कर (४-१-१५७) को अग्रवाल सिन्ध का थार पारकर रेगिस्तान मानते हैं। यह निश्चय ही दमिश्क का पुराना नाम पारपर है। (फ्राई ४८, हिट्टी ४७२) इसी राज्य में परशुमान नामक राजा हुआ था जिसकी राजधानी मतक्षेत भी थी। (हेरि० १८७)

९—कच्छ

पाणिनि ने कच्छ जनपद (४-२-१३३) तथा कच्छ अन्तक दो अन्य नगरों का उल्लेख (४-२-१२६) किया है। अग्रवाल इन्हें कच्छ प्रायद्वीप तथा भड़ोंच मानते हैं। कच्छ शब्द पश्चिम एशियाई गाजा शब्द का पर्यायवाची है। गाजा नामक नगर में जो भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर स्थित है ३१२ ई० पू० में अन्तिओक्स को मिस्र के ग्रीक शासक टोलमी ने हराया था। कालान्तर में यह मिस्र देश का एक अंग बन गया। गाजा अन्तक शब्द समुद्रतटीय मरुभूमि के लिए पूर्वकाल में प्रचलित रहे हैं। दृष्टव्य है मेद जाति का गजक राज्य। (हेरि० १४५)

१०—केकय

नामक जनपद का पाणिनि ने (७-३-२) में उल्लेख किया है। अग्रवाल इसे झेलम शाहपुर तथा गुजरात जिलों का भूभाग मानते हैं (इण्डिया पृष्ठ ५२)। केकय कय या कवि नामक पारसिक वीरों के राज्य का द्योतक हो सकता है। (हेरि० ३६,१९७)

११—मद्र

इस जनपद का उल्लेख पाणिनि ने अष्टाध्यायी (४-२-१३१) में तीन स्थलों पर किया है। एक स्थल पर पूर्व मद्र तथा दूसरे स्थल पर अपर मद्र (४-२-१८) नाम आए हैं। अग्रवाल इसे वाहीक देश या रावी नदी का भूभाग मानते हैं। 'हेरिटीज आफ़ परसिया' नामक पुस्तक के मानचित्र में (पृष्ठ २५६) मद्राया को वर्तमान मिस्र का काहिरा के आस पास का भूक्षेत्र दर्शाया गया है। असुर शासकों ने मिस्र के लोगों को भी उनके देश से निर्वासित कराकर पूर्व के अपने प्रदेशों में बसाया था। मद्र ऐसे ही लोगों द्वारा स्थापित कोई पूर्व में स्थित जनपद रहा होगा।

१२—उषीनर

इस जनपद का उल्लेख पाणिनि के सूक्त (४-२-११८) में हुआ है। अग्रवाल वाहीक देश के उषीनर, केकय तथा मद्र तीन जनपद मानते हैं। उषीनर का उल्लेख ईरान या सीरिया के इतिहास ग्रन्थों में नहीं हुआ है। सम्भवतः यह मन्दाकिनी नदी की घाटी में बसा वर्तमान उखीमठ (उषीमठ) स्थल होगा क्योंकि मठ अन्तक स्थल नामों के शब्दों का प्रचलन यथा जोशीमठ, कालीमठ या उषीमठ शंकराचार्य के बाद (आठवीं नवीं शताब्दी ईस्वी के बाद) हुआ है। उसके पूर्व ज्योतिर्मठ सम्भवतः प्राक्-ज्योतिष जैसे ज्योतिष से सम्बन्धित नगर का नाम रहा होगा और उखीमठ, उषीनर।

१३—अम्बष्ट

अम्बष्ट जनपद का उल्लेख (८-३-९१) अष्टाध्यायी में हुआ है। उसे अग्रवाल चेनाव नदी का क्षेत्र मानते हैं। वैसे इसी नाम से मिलता जुलता अमड नामक राज्य ईरान में भी था। (हेरि० २२६)

१४—त्रिगर्त

त्रिगर्त नाम के आयुधजीवी संघ तथा त्रिगर्त शाश्थ (५-३-११६) का उल्लेख पाणिनि ने किया हैं। उसे अग्रवाल कुलू सहित जालन्धर का क्षेत्र मानते हैं। महाभारत में त्रिगर्त नामक स्थल को पश्चिम का एक मरुस्थल माना गया है। दजला नदी का पुराना नाम भी तिरगा था। तिर्गख़ौद या तिग्रखौद शक जाति की एक आयुधजीवी शाखा थी जो पश्चिमी तुर्किस्तान के अरल सागर के प्रदेश में रहती थी। (हिट्टी पृष्ठ ७४४)

१५—कालकूट

कालकूट का उल्लेख पाणिनि (४-१-१७३) में हुआ है। अग्रवाल इसे यमुना गंगा का उद्‌गम स्थल मानते हैं। उनके अनुसार यह कुलिन्द जाति का निवासस्थल था और वर्तमान कालका हो सकता है। इस नाम के जनपद का ईरान और सीरिया के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं हुआ है। कदाचित यह असुरों की तीसरी राजधानी काल्हा या काला से सम्बन्धित हो अथवा गढ़वाल का लैंसडाउन का भूभाग जो कुछ वर्ष पूर्व तक काला पहाड़ कहलाता था तथा जहाँ कुनिन्दों के सिक्के पाए गए हैं। कालका तो काली देवी के नाम पर स्थापित पर्याप्त आधुनिक स्थल है।

१६—कुरु

पाणिनि के समय में कुरु (४-१-१७२) निश्चय ही हख्मनीश शासक कुरुष (साइ-रस) के नाम पर स्थापित जनपद रहा होगा। अग्रवाल इसे रोहतक हिसार और

हस्तिनापुर का क्षेत्र मानते हैं। वैसे सुग्द प्रदेश का कुरुपोलिस या कुरुखेत नामक नगर समरकंद के उत्तर पूर्व में स्थित था सिकन्दर ने इसे कालान्तर में नष्ट किया। मध्य काल में भी यह उसरुशान नाम से प्रसिद्ध था। यह कुरुष के ईरानी साम्राज्य की पूर्वोत्तर चौकी थी। (हेरिटेज० पृष्ठ ८७)

१७—साल्व

साल्व (४-२-१३५) साल्वेय (४-२-१३५) तथा साल्वावयव (४-१-१७३) जनपदों का उल्लेख पाणिनि में हुआ है। इन्हें अग्रवाल अलवर और उत्तर बीकानेर मानते हैं। साल्व कहे गए तुरुष्क लोगों का प्रदेश बलूचिस्तान में था। (हेरि० ४१) द्वारिका पर आक्रमण करने वाले साल्व असुर को भी पुराणों में पश्चिम दिशा का असुर कहा गया है।

१८—प्रत्यग्रथ

पाणिनि द्वारा उल्लिखित प्रत्यग्रथ (१४-१-१७३) जनपद को अग्रवाल रामगंगा नदी का रथस्थ या रहुट क्षेत्र मानते हैं। यह सीरिया के रेगिस्तान में स्थित मरुद्यान पैट्रा रहा होगा। (हेरि० २४०)

१९—अजाद

पाणिनि द्वारा वर्णित अजाद जनपद को अग्रवाल अजा या बकरियों के लिए प्रसिद्ध वर्तमान इटावा जिला मानते हैं। पाणिनि के समय में अजपथ नाम प्रचलित था। यह उन हिम मार्गों के लिये पाणिनि द्वारा प्रयुक्त हुआ है जहाँ भेड़ और बकरियों के काफिले ही आ जा सकते थे। अतः इसे हिमालय स्थित भेड़ बकरियों का जोहार-दारमा क्षेत्र या गढ़वाल का बधाण-पैनखंडा माना जा सकता है। वैसे दक्षिण बाबेलु का अजदे नामक नगर जो अक्कद भी कहलाता था भारतीय अजाद या भेड़ पालक आप्रवासियों द्वारा बसाया हुआ यह कोई भारतीय जनपद हो सकता है। (हेरि० ५९)

२०—रंकु

रंकु, रैणकु, रांकव तथा रांकवायण का पाणिनि ने अष्टाध्यायी में (४-२००-१००) उल्लेख किया है। डा० अग्रवाल इसे अल्मोड़ा जिले के रंगका भाषा भाषी लोग कहते हैं। यद्यपि ऐसी बोली कुमाऊँ में अस्तित्व में नहीं है। अग्रवाल ने रंगका के लिए डा० मोती चन्द और लिग्विस्टिक सर्वे के खण्ड ३ (१-४७९) का उद्धरण दिया है। वैसे डोटी के राजाओं की एक उपाधि रैनका अवश्य थी। यह जनपद शक जाति के मध्य एशियाई समीतियन जातियों में से एक जाति रक्सोलियन हो सकती है। (हेरि० १९१)

२१—आत्रेय

आत्रेय भारद्वाज, भारद्वाज (४-२-१४५) तथा आत्रेय भारद्वाजे का पाणिनि ने उल्लेख किया है। अग्रवाल इन्हें गंगा के उत्तरी भाग के गढ़वाल के निवासी मानते हैं। यह सम्भव भी हो सकता है। वैसे मूलतः ये लोग अत्रोपतेन अथवा अर्तवज़ेन नामक उस उत्तर ईरान और दक्षिण रूस के केस्पियन सागर तट के लोग हो सकते हैं जो कालान्तर में अजर्बेजान के नाम से प्रसिद्ध प्रान्त रहा। आजकल अजर्बेजान का कुछ भाग रूस में और कुछ ईरान में है। मध्य काल में यही भूखण्ड अत्रिपत्तन कहलाता था।

२२—कोसल

कोसल का उल्लेख अष्टाध्यायी (६-१-१७१) में हुआ है। अग्रवाल इसे इक्ष्वाकु जनपद कहते हैं। यह पाली ग्रन्थों में वर्णित सोलह महाजनपदों में से एक था।

२३—काशि

हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण जनपद काशि लोगों के हैं। पाणिनि में काशि लोगों का उल्लेखमात्र (४-२-११६) हुआ है। अग्रवाल कहते हैं कि पाणिनि किसी कारणवश काशि जनपद को गिनना भूल गए हैं (इंडिया० पृष्ठ ६०)। जैसा पिछले अध्यायों में दर्शाया गया है काशि (कस्सी या कस्साइट) एक जाति समूह था जिसमें कई कबीले थे। अतः इस जाति विशेष का किसी पृथक जनपद से सम्बन्ध जोड़ना सम्भव नहीं है। ऊपर लिखे अनेक जनपदों में से कुछ काशि कबीलों के आयुधजीवी काशि लोगों के अथवा अन्य व्यवसाय करने वाले काशि लोगों के जनपद रहे होंगे।

२४—वृज्जि

वृज्जि जनपद का उल्लेख अष्टाध्यायी (४-२-१३१) में हुआ है। अग्रवाल ने इन्हें वृज्जिक देश कहा है और यह उल्लेख नहीं किया है कि यह देश कहाँ था। उत्तर ईरान के पार्थियन राज्यवंश की एक शाखा वरज़ कहलाती थी। सम्भवतः यह वही जनपद हो।

२५—मगध

मगध का उल्लेख पाणिनि ने (४-१-१७० में किया है। यह मगध का ही प्रसिद्ध जनपद है जिसकी स्थापना का श्रेय शिशुनाग (शिशुनाक) जाति को है। यही नाम पूर्व काल में इलाम (ऐलाम) देशवासियों के लिए भी उपयोग में आता था।

२६—कलिंग

कलिंग का उल्लेख पाणिनि (४-१-१७०) में हुआ है। अग्रवाल इसे मगध का एक समीपवर्ती जनपद मानते हैं। ग्रीक इतिहासकारों में इस जनपद की स्थिति के

सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ इसे मगध के पूर्व में मानते हैं और कुछ उसके दक्षिण में।

२७—सूरमास

सूरमास का उल्लेख पाणिनि के सूक्त (४-१-१७०) में हुआ है। अग्रवाल इसे आसाम की सूरमा घाटी मानते हैं। वैसे यह पह्लवों का हरमाउस हो सकता है। हरमाउस सिक्के मिले हैं। स का ह उच्चारण पह्लवी में सम्भव भी है। (हेरि० १७३) अथवा यह सूर्यान या सूर्यानी कही गई प्राचीन सीरियायी जाति का जनपद हो। कुमाऊँ में सोर और सीरा नामक प्राचीन राज्य भी इस जनपद के द्योतक हो सकते हैं।

२८—अवन्ति

अवन्ति का उल्लेख अष्टाध्यायी (४-१-१७५) में कुन्ती के साथ हुआ है। इसे अग्रवाल उज्जयनी के देश तथा कुन्ती को ग्वालियर या चिन्ति सुराष्ट्र मानते हैं। उज्जैन नाम के अनेक स्थल प्राचीन काल में थे। हिन्द यवनों के समय में मालव, जयपुर के आस-पास का इलाका था। इसी काल में कुमाऊँ में काशीपुर के निकट का भूभाग भी उज्जैन कहलाता था। इस प्राचीन स्थल का विवरण एर्टकिसन ने भी दिया है।

२९—अश्मक

अश्मक का उल्लेख पाणिनि में (४-१-१७५) हुआ है। इसे अग्रवाल गोदावरी नदी पर स्थित प्रतिष्ठानपुर मानते हैं। यह बाद के ग्रन्थों में अश्वक जनपद भी है। स्पष्ट है कि यह जनपद अपने घोड़ों के लिए प्रसिद्ध रहा होगा अतः यह भोट प्रान्त (हूण देश) हो सकता है जहाँ के जुमली घोड़े प्रसिद्ध हैं।

३०—बर्बर

बर्बर जनपद का उल्लेख पाणिनि में (४-३-९३) में हुआ है। अग्रवाल इसे सिन्धु के मुहाने का बार्बरिक बन्दरगाह मानते हैं। वैसे बर्बर नामक जाति पश्चिम एशिया के समुद्र तटों पर छा गई थी। रोमन काल में बर्बर लोगों का राज्य मोरक्को से मिला उत्तर अफ्रीका का समुद्रतटीय भूभाग था। (हिट्टी ६६४)। यहूदी बाइबिल (ओल्ड-टेस्टामेंट) में इन्हें गोमर, गिमिरियन कहा है। पंचाल देश की पाँच जातियों में मुख्य क्रिवि जाति।

३१—काश्मीर

काश्मीर का उल्लेख पाणिनि में (४-२-१३३ तथा ४-२-९३) में हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि यह वर्तमान काश्मीर ही है। यह कस्सी या काशि जाति का उपनिवेश रहा है। क्योंकि इसका प्राचीन नाम कसीर था। कुशन राजाओं के समय में यह

कुशन शहर भी कहलाता था । शहर का तत्कालीन अर्थ प्रदेश था जैसे ईरान को भी ईरान शहर कहा जाता था ।

पालि और बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित जनपद

जैन भागवती सूत्र में अंग, वंग, मगध, मलय, मालव, अच्छ, बच्छ, कोच्छ, पढ़, लाढ़ (राढ़), वज्जि, मोलि, काशि, कोसल, अवाह तथा समुत्तर ये सोलह जनपद बताए गए हैं । बुद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरा में सोलस महा जनपद मगध, कोसल, वत्स, कुरु, पांचाल, सूरसेन, काशि, मिथिला, अंग, कलिंग, अश्मक, गांधार, तथा कम्बोज है । इनमें कहीं-कहीं हैहय, विटि्टहोत्र और अवन्ति को भी जोड़ दिया गया है । कहीं चेदि का भी नाम आता है । गौतम बुद्ध से पहले के जनपदों में विज्जि (वज्जि), मल्ल तथा चेदि ये तीन अन्य जनपद हैं । कहीं-कहीं जनपदों के नाम दो दो करके दिए गए हैं । यथा मत्स्य-शूरसेन, काशि-कोसल, वृज्जि-मल्ल, छेदि-वंग तथा कुरु-पांचाल । चुल्ल निदेश नामक बौद्ध ग्रन्थ में गान्धार के स्थान पर योन (यवन) जनपद का नाम आया है जो अशोक कालीन योन अर्थात् देहरादून का उत्तरी क्षेत्र जौनसार रहा होगा । इस जनपद के योन नाम का उल्लेख कालसी के शिलालेख में भी हुआ है ।

रेणुराजा के सात प्रदेश—महागोविन्द सूत्तन में रेणुराजा के ब्राह्मण मंत्री द्वारा अपने राज्य को सात उप राज्यों में बाँटने का उल्लेख है। ये राज्य और उनकी राजधानियाँ हैं; कलिंग—राजधानी दत्तपुर; सौवीर राजधानी—रोरुक; अस्सक—राजधानी पोतन; विदेह—राजधानी मिथिला; अंग राजधानी चम्प; अवन्ति राजधानी महिस्मति तथा काशि राजधानी वाराणसी । इन राज्यों में बहुत से बिना राजा के थे तथा कुछ में राजा थे । कपिलवस्तु के साकिया (शाक्य), पावा के मल्ल, कुशीनर के मल्ल, वैशाली के लिच्छवी तथा मिथिला के विदेह भी ऐसे ही जनपदों में से थे ।

एक महत्वपूर्ण जनपद कोलिय लोगों का था जिनकी राजधानी रामगाम थी । ये जनपद वर्तमान अफगानिस्तान से बंगाल तक फैले हुए थे । इनमें उन जनपदों का उल्लेख नहीं है जो अफगानिस्तान के पूर्व तत्कालीन आर्यन बैजो में भी अस्तित्व में थे । अगुत्तर निकाय के अनुसार इस भूभाग में अर्थात् अफगानिस्तान से बंगाल तक उस काल में दस प्रजातंत्र भी थे जिनमें साकीय की राजधानी कपिलवस्तु, बुलि की अल्लकप्प, भग्ग की सुसुमार, कोलीय की रामगाम, कालाम की केसपुत्त, मल्ल की पावा, भल्ली की कुशीनारा, मोरिय की पिप्फलिवन, विदेह की मिथिला तथा लिच्छवी की वैशाली थी (रिह्ज डेविड्स बुधिष्ट इण्डिया-पृष्ठ २३) । मल्लों की नौ उपजातियाँ थीं । उन्हें मगध ने कालान्तर में अपने आधीन कर लिया । वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी ।

कोल या कोलीय कुमाऊँ के शिल्पकार कहे गए लोगों में एक जाति रही है। देहरादून गढ़वाल में यही लोग कोलटा डोम कहे जाते रहे हैं। कुमाऊँ में रामगाड़ (अब रामगढ़), कोटा का भूभाग पूर्व काल में आगरी नामक शूद्रों का राज्य था। हो सकता है रामगाम ही कालान्तर में रामगाड़ हो गया हो। पूर्व काल में पश्चिमी रामगंगा का नाम अरहटा, रहुट या रहुप था। पाणिनि ने इसे रथस्थ लिखा है। उत्तर पश्चिम की ओर से आने वाले रथ इस नदी को पार नहीं कर पाते थे इस कारण इस नदी को यह नाम दिया गया था। पूर्वी रामगंगा का क्षेत्र जिसमें गंगोली से रामेश्वर तक का भूभाग रहा है तथा जहाँ पूर्व काल में मणकोटी के राजाओं का राज्य था वह अथवा रामगाड़ का क्षेत्र भी रामगाम हो सकता है।

सन्दर्भ और टीपें

१—देखिए राहुल सांकृत्यायन कृत—ऋग्वेदिक आर्य

२—पिठौरागढ़ के राजी किराती अथवा वनमानुष कहे गये लोगों की बोली और दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाओं के समानार्थी शब्दों की सूची के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'संस्कृति संगम उत्तरांचल'।

३—बहुवचन में 'प' के प्रयोग का उल्लेख रिचर्ड फ्राइ ने जर्मन विद्वान ई० हर्ट्सफैल लिखित ग्रंथ 'आर्कियोजोजी आफ ईरान' (लन्दन-१९३५) से उद्धृत किया है। कस्सी जातियों में लुल्लुंव, गुटि, उरार्तियन तथा इलाम (एलाम) की पहाड़ी जातियाँ भी सम्मिलित की जाती हैं। नैपाल में भी इलाम नामक एक भूखंड है। कश्यप या कस्सप शब्द कस्स मूल पर लगे बहुवचन बोधक 'प' उपसर्ग के लगने से बना है। इस धारणा पर कुछ पुराविदों को सन्देह है।

४—अशोक के अफगानिस्तान में प्राप्त द्विभाषीय धर्मलेख का जो ग्रीक और आर्मीनी भाषा में है अगले अध्याय में वर्णन किया गया है।

५—**प्रावणव**—अशोक के कालसी के शिलालेख में वर्णित यौन जाति के साथ पैतृणिक जाति का भी उल्लेख मिलता है जो कालान्तर में परतंगण कही गई होगी। सम्भवतः इसी जाति को ग्रीक इतिहासकारों ने परतक्नोई लिखा है। ये कौन लोग थे, इतिहासकार अभी तक पता नहीं लगा सके हैं। देखिए अशोक के धर्मलेख—पब्लिकेशन्स डिवीजन पृष्ठ १३०।

६—संभवतः सौवीर शब्द ही हौवीर और फिर औफिर हो गया है। औफिर नामक भारतीय बन्दरगाह का उल्लेख प्राचीन मैसोपोटामिया के व्यापारिक अभिलेखों में भी मिलता है।

७—**अपकर**—पश्चिम एशिया में अवगर नामक एक शक्तिशाली साम्राज्य दजला नदी के किनारे स्थित था। कालान्तर में यह एडेसा और ग्रीकों द्वारा ओसराई कहा गया। यही वर्तमान उर्फा है। (रिचर्ड एन० फ्राई कृत 'द हेरीटेज आफ पर्सिया' पृष्ठ १८८।)

८—**शिशुनाक**—प्राचीन ईरान के इलाम या एलाम राज्य के निवासियों के लिए भी इस नाम का प्रयोग हुआ है। देखिए—सुषा-वरुण की राजधानी—लेखक की पुस्तक 'असुर्याः नाम ते लोकाः'। कस्स और यवन जातियों की भाँति मगध में शिशुनाक वंश की स्थापना करने वाली यह जाति ही पश्चिम एशिया से निर्वासित हो कर भारत में बसने वाली उन असुर जातियों में हो सकती है जो शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पूरे उत्तर भारत में मगध तक जा बसी थीं।

— — — —

उत्तर पंचाल देश का अंग–कुमाऊँ

पंचाल लोगों का उल्लेख कृवि नाम से शतपथ ब्राह्मण में हुआ है। पुराणों में पंचाल[1] नामकरण के विभिन्न कथानक हैं। भागवत पुराण में (९—२१) इस नाम करण का कारण इस राज्य का मुदगल, यवीनर, वृहदिश्व, प्रवीर और काम्पील्य नाम के पाँच भाइयों में बाँटा जाना है। विष्णुपुराण के अनुसार जिस राज्य का संरक्षण करने के लिए पाँच समर्थ व्यक्ति यथेष्ट हों उस राज्य की संज्ञा पंचाल है—'पंच अलं इति पंचालम्'। प्राचीन कुमु की एक पट्टी का नाम चार-आल या चाराल था। आज भी यह नाम वहाँ अस्तित्व में है। प्रथम चार 'यथेष्ट समर्थ' लोग ही प्राचीन काली कुमु राज्य की स्थापना के समय 'चार-बुड़' नाम से ख्यात हुए। पंचाल लोग चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। उन्होंने कालान्तर में अपने को पाँच के स्थान पर तीन और फिर केवल दो भागों में विभक्त कर लिया। उनके दो मुख्य केन्द्र हुए, एक काम्पिल्य या कांपील जो राज्य के दक्षिणी भाग (दक्षिण पंचाल) की राजधानी हुई और दूसरी अहिछत्रा जो उत्तरी भाग (उत्तरी पंचाल) की राजधानी हुई। महाभारत, जैन एवं वौद्ध जातक साहित्य में प्रायः पंचाल के इन्हीं दो भागों के उल्लेख मिलते हैं, न कि वैदिक पाँच भागों के। (अहिछत्रा-कृष्ण दत्त वाजपेयी—१९५६-पृष्ठ २)।

कृवि या कृमि पश्चिम एशिया में

पश्चिम एशिया की ओर से आने वाली कस्स जाति समूह में एक जाति का नाम कृवि या कृमि भी था। यहूदी बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेंट) में इनको किमेरियन या गिम्मेरियन तथा कहीं गोमर भी कहा गया है। असीरिया में असुर शासक सेन्नचरिब (सिन्नहरिब) को इन पहाड़ी जातियों के विप्लव का सामना करना पड़ा था। एक अन्य असुर शासक एसार्-हैद्दौन ने भी इन पर्वतीयों के विरुद्ध अभियान चलाया था। सेग्स ने इस विद्रोह के सम्बन्ध में लिखा है—'ईसा पूर्व ७०७ में गिमिरिया नामक बर्बर जाति के लोग उत्तर की ओर से बहुत बड़ी संख्या में उरार्तु में प्रविष्ट हुए। अर्गिस्टिस उनको रोकने के अपने प्रयास में सफल नहीं हो सका। ये लोग सिलीसिया की ओर बढ़ गए। इसके उपरान्त इन्होंने असुर प्रदेश में प्रवेश किया। .... उन पर एक ओर असुर शासकों का तथा दूसरी ओर मेशकु दल का दबाव पड़ा। (द ग्रेटनेस दैट वाज बेवीलोन-पृष्ठ ११४ तथा ११९)।'

मशकु लोग ही महाशक कहे गए हैं। इसका उल्लेख पहले हो चुका है। शकों से पहले पूर्व की ओर आए हुए कृवि लोगों का उल्लेख ऋग्वेद में भी हुआ है। (मैकडॉनल्ड

तथा कीथ-वैदिक इण्डैक्स-खण्ड-१, पृष्ठ ६९) । इन्हीं विद्वानों के अनुसार पंचाल नामक जनपद में आकर बसने वाले पाँच जनसमुदायों में कृवि मुख्य थे । अन्य चार थे तुर्वशु, केशिन्, शृंजय और सोमक । डॉ० वेणी प्रसाद के अनुसार आर्यों के आगमन के समय पुण्ड्, मूतिव और शबर नामक अनार्य जातियाँ उत्तर भारत में थीं तथा उस समय प्रधान आर्य समूह में से थे— शिवि, मत्स्य, वैतहव्य, विदर्भ । कुरु समूह से सम्बन्ध रखता हुआ शृंजय समूह था । हिमालय के पार शायद कश्मीर में कुरुओं के पास उत्तर मद्र थे । मध्यदेश में कुरुओं और पंचालों के अलावा वश और उशीनर थे । (हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृष्ठ-७७) ।

पंचाल और हिमालय

उपनिषद् काल में पंचाल को 'ध्रुव मध्य देश' कहा जाता था । यह आर्य संस्कृति का मुख्य केन्द्र बन गया था । पंचाल के प्रवाहन, जैबालि, अरुणी और श्वेतकेतु जैसे विद्वान और धर्मशास्त्री उत्तर भारत के सभी जनपदों में प्रसिद्ध थे । कालान्तर में इनको विदेह के शासक ने दरबार में बुला लिया था । गंगा-यमना के उद्गम स्थल की घाटियाँ तथा कैलास मानसरोवर पंचाल के विज्ञजनों की तपस्थलियाँ थीं । मत्स्य पुराण में भी कैलास के वर्णन में खस जाति का तथा पंचाल देश का साथ साथ वर्णन हुआ है ।

तान्देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः ।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान बर्बरान् यवानान् खसान् ।। (२-५२-४३)
पांचालान् कौशिकान् मत्स्यान मागधाङ्गारस्तथैव च ।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरुन् वं भारतानपि ।। (वही ४९-५०)

पंचालों के अधिकार में हिमालय से लेकर दक्षिण में बरेली-बदायूँ, फर्रुखाबाद, तक का भूभाग था । मजूमदार के अनुसार 'पांचाल उस ऋग्वैदिक क्रिवि जाति के वंशज थे जिनका संबंध शृंजयों और तुर्वसु जाति से था ।' (एन एडवांस हिस्ट्री ऑफ इण्डिया-पृष्ठ ४४) तथा, उनका व्यापार उन्नति पर था, । वाणिज नामक एक पैतृक व्यापारी वर्ग पैदा हो गया था । देश के भीतर पहाड़ों में रहने वाले किरातों से व्यापार होता था जो स्पष्टतः ऊँचे पहाड़ों की चोटियों से खोदकर लाई गई जड़ी बूटियों के बदले कपड़े, कम्बल और खालें विनिमय में ले जाते थे ।' (वही पृष्ठ ४७) । शतपथ ब्राह्मण में जल प्रलय का उल्लेख तत्कालीन भारत के बाबेलु से हुए समुद्र मार्ग के व्यापारिक सम्बन्धों का द्योतक है । (वही)

भाबर और पंचाल

सिवालिक की पहाड़ियों की समाप्ति के उपरान्त की कंकड़ीली समतल भूमि के लिए भाबर शब्द का प्रयोग कुमाऊँ में पूर्व काल से ही होता आया है । इसका

उल्लेख पहले अध्याय में हो चुका है। पहाड़ी बोली में भवरी जाना का अर्थ भटक जाना है। किन्तु वैदिक शब्द बभ्र से भी भावर की व्युत्पत्ति हो सकती है। बभ्र का पंचाल देश से उत्तर वैदिक काल से ही सम्बन्ध रहा है। पांचाल में प्रचलित ऋग्वेद का भाष्य बाभ्रव कहलाता था। पतंजलि के भाष्य में—किं ते बाभ्रव शालंकायानां अंतरेण गतैनेति-(५-१-५७-५८) सूत्र पर वासुदेव शरण अग्रवाल की पाद-टीका है—प्राच्य के बाभ्रव और उदीच्य के शालंकायन भौगोलिक दृष्टि से पृथक थे। पंतजलि की यह टीका भवतः अरुणि को संबोधित है (इण्डिया ऐज नोन टु पाणिनि—पृष्ठ ३२६)। अरुणि का उल्लेख पहले हो चुका है। वह पांचाल देश का प्रसिद्ध दार्शनिक था।

कनिंघम ने भी 'एनश्यंट ज्योग्रफी आफ इण्डिया' में लिखा है कि पंचाल देश कभी उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चम्बल नदी तक फैला था। पंचाल देश की प्रभुता ऋग्वेद के समय से ब्राह्मण काल तक निरन्तर बनी रही। इस देश के राजाओं का वैदिक साहित्य में वर्णन मिलता है। तथापि वैदिक साहित्य तथा पुराणों में दिए गए विवरणों में एकरूपता नहीं है। नील, सुदास, च्यवन, शृंजय, मित्रायु, सहदेव, सोमक, दिवोदास, सुशान्ति, पुरुजानु, ऋक्ष, मुदगल आदि शासकों को पंचाल देश के राजा कहा जाता है[२]। शतपथ ब्राह्मण में क्रव्य तथा शोण सात्रासाह नामक दो राजाओं का उल्लेख मिलता है जिनके लिए यह कहा गया है कि ये अश्वमेध यज्ञ कर्ता थे। सुदास के समय में पंचाल की बड़ी उन्नति हुई। उसने हस्तिनापुर के पौरव राजा संवरण को पराजित किया। संवरण के सहायक यदु, द्रुह्यु, तुर्वसु, अनु, मत्स्य, शिवि, पक्थ, मलनस, अलिन और विषाणी लोग थे। सुदास ने रावी तट पर इन सब को फिर हराया। ऋग्वेद में इस युद्ध का उल्लेख "दाशराज्ञ युद्ध" नाम से हुआ है। दाशराज्ञ युद्ध के उपरान्त सुदास ने मेद[३], अज, शिग्र और यक्ष को हराया। यक्ष का उल्लेख यू-ची तथा कालान्तर में खस या खसिय कही गई हिमालय प्रदेश की जाति से है। विषाणी लोगों का क्षेत्र गोविषाण हो सकता है।

महाभारत में उत्तर पांचाल के शासक द्रोण के द्वारा अपने पुत्र अश्वत्थामा सहित कौरवों का पक्ष लेने के उल्लेख से भी लगता है कि पंचाल जनपद की मुख्य आर्य शाखा से नहीं बनती थी। महाभारत के ही अनुसार परीक्षित के अन्तिम दिनों में उत्तर पंचाल पर नागों का प्रभुत्व हुआ। जनमेजय ने नागों से युद्ध किया। बौद्ध तथा जैन साहित्य में उल्लिखित १६ महाजनपदों में पंचाल भी एक महाजनपद था। कालान्तर में यह मगध महाजनपद का एक अंग बन गया। गार्गी संहिता में यवनों द्वारा साकेत और मथुरा पर आक्रमण करने के प्रसंग में पंचाल पर भी उनके आक्रमण का उल्लेख है। अहिछत्रा के उत्खनन से मित्र वंशी राजाओं के सिक्के मिले

हैं। इन सिक्कों की लिपि तीसरी सदी ईस्वी की ब्राह्मी लिपि है। काशीपुर (नैनीताल) में मित्रवंशी राजाओं के नामों से अंकित ईटें मिली हैं जिनका वर्णन आगे किया गया है।

कनिंघम के अनुसार काशीपुर के निकट प्राचीन उज्जैन गांव के खण्डावशेष ही गोविषाण के दुर्ग के अवशेष हैं। गोविषाण की यात्रा ह्वेन-साँग नामक चीनी यात्री ने की थी। गोविषाण कुमाऊँ की सबसे प्राचीन नगरी है। कदाचित कार्तिकेयपुर गोविषाण राजधानी से शासन करने वाले क्षत्रिय राजा का एक विषय रहा होगा।

गोविषाण—कुमाऊँनी में विशाय् क्रिया धातु से व्युत्पन्न विशाण का अर्थ विश्राम करना है। यह संस्कृत विशाय् का कुमाऊँनीकरण है। तराई भावर का क्षेत्र पूर्व काल से ही गायों के चरागाह की भाँति उपयोग में आता रहा है। ह्वेन-सांग के यात्रा विवरणों में इस राज्य का नाम क्यो-पि-शाँगन लिखा मिलता है। शांगन् शाण शब्द का ही चीनी रूपान्तर है। शुद्ध रूप गोविशाण रहा होगा। ह्वेनसांग के अनुसार गोविषाण नाम राज्य का भी था और इसी नाम का नगर उसकी राजधानी थी।

कनिंघम का अनुमान है कि वर्तमान काशीपुर के उत्तर उसी नगर की सीमा के निकट प्राचीन गोविषाण है। उसके अनुसार मण्डावर (बिजनौर) से यह स्थल १०० किलोमीटर के लगभग है जिसके भी गोविषाण होने की संभावना वह करता है। काशीपुर के निकट उजैन (उज्जैन) गाँव के खंडहर प्राचीन इसी नाम के दुर्ग के हैं। इसका पुरातात्विक उत्खनन आंशिक रूप से ही हुआ है। कनिंघम के अनुसार "दुर्ग की दीवारें ३६×२५×४ से०मी० आकार की ईटों की हैं। यह पास की भूमि की सतह से ६ मीटर से कुछ अधिक ऊँची हैं। सारे दुर्ग में अब जंगल उग आया है। पूर्व को छोड़कर शेष तीन ओर बनी खाइयों की गहराइयाँ अब भी बनी हुई हैं। खंडहर का तल ऊँचा-नीचा है। उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम पुराने सिंहद्वारों के अवशेष अभी स्पष्ट दिखाई देते हैं। ह्वेन सांग ने लिखा है कि गोविषाण राज्य की परिधि २००० ली (५५० किलोमीटर) है। इससे अनुमान लगता है कि वह रामगंगा से पूर्व शारदा तक तथा दक्षिण में बरेली जिले तक फैला होगा।" (कनिंघम एन्श्यण्ट ज्यो० २३६-३७)।

28151

दुर्ग से मिली दो खण्डित ईटों पर "—राज्ञो मातृ मित्तस पुत—" "श्री पृथिवी मित्तस—" लिखा मिला है। (ओझा प्राचीन लिपिमाला—पृष्ठ १५१ तथा पायनीयर का ६ दिसम्बर १९०१ का लेख) इन मित्र राजाओं में से पृथिवी मित्र को पांचाल देश के मित्रवंशी राजा भूमिमित्र माना जा सकता है। मित्र नाम अहिछत्रा के सिक्कों में मिलते हैं किन्तु मातृमित्र मथुरा और अहिछत्रा में प्राप्त सिक्कों में नहीं मिलता। कनिंघम के समय में काशीपुर में द्रोणसागर नामक ताल के चतुर्दिक अनेक छोटे-छोटे

मन्दिर थे। दुर्ग से पूर्व १८० मीटर की दूरी पर उज्जयिनी या ज्वाला देवी का मन्दिर था। जहाँ पर एक अन्य विशाल चतुर्भुज मन्दिर था। देवी का मन्दिर तथा चतुष्कोणीय मन्दिर एक ऊँचे टीले पर स्थित थे। इनके चतुर्दिक और भी अनेक छोटे छोटे मन्दिरों के खण्डहर विद्यमान थे। पास ही एक और ऊँचा टीला था। इसे रामगिरि गोसाँई का टीला कहा जाता था। इस टीले पर तीन से चार मीटर ऊँची दीवारों से घिरा स्तूप था। पास ही खागपर गाँव में भी ईंटों का एक अन्य टीला था जिसे कनिंघम ने बौद्ध स्तूप या विहार का अवशेष बताया है।

देवी के मन्दिर में चैत्र मास की नव रात्रियों में मेला तो अब भी लगता है किन्तु भूतेश्वर, मुक्तेश्वर, नागनाथ, जागेश्वर आदि छोटे-छोटे प्राचीन मन्दिर उपेक्षित हैं। प्रारम्भिक अवशेषों का अब तक सर्वांगपूर्ण अध्ययन नहीं हुआ है। कुषाण शासक कनिष्क की स्वर्ण मुद्राओं के मिलने से इस क्षेत्र में छिपे हुए कुमाऊँ के इतिहास का एक नया कोना आलोकित हुआ है। सारा स्थल विधिवत् उत्खनन की अपेक्षा में है। कदाचित देवी की मूर्ति भी देवी नैना की है जिसे अन्यत्र देवी एकनंसा[४] भी कहा गया है। जहाँ तक मालव और उज्जैन नाम का सम्बन्ध है मालव ब्राह्मणों ने सिकन्दर का भी सिन्धु देश में डटकर सामना किया था। भावर का माल नाम संभवतः इस उज्जैन या उजैनी नाम की भाँति उन घुमक्कड़ मालव लोगों की देन हो जो सिकन्दर के आक्रमण के बाद की शताब्दियों में कई स्थानों पर रहते वहाँ बसते और उनको छोड़ते अन्त में वर्तमान मालवा (मध्य प्रदेश) में बसे थे।

कत्यूरी राजाओं की राजधानी गोविषाण रही या नहीं इसका ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं है किन्तु काशीपुर के भी पश्चिम की ओर कुमू की सीमा-चौकी वर्तमान जसपुर के पास किरातीपुर थी। इस भूभाग को काठी (अब खाती) राजपूत राजा से, जो संभवतः कत्यूरी राजा के मांडलिक थे लेकर किरातीचन्दने सन् १४९५ ई० के लगभग कुमु राज्य में मिलाया था।[५]

ह्वेनसांग के आगमन के पश्चात् सात सदियों तक गोविषाण कत्यूरी शासन के अन्तर्गत रहा। संभवतः अहिछत्रा की ही भाँति आठवीं शताब्दी के बाद गोविषाण भी उस साम्राज्य का अंग था जो हिमालय के दक्षिण पार्श्व में गढ़वाल-कुमाऊँ-नैपाल से मुंगेर तक फैला था। ह्वेनसांग के आगमन से पहले गुप्त साम्राज्य के एक अंग (भुक्ति) के रूप में गोविषाण का उल्लेख हुआ है। अहिछत्रा से प्राप्त एक मुद्रा में—"श्री अहिछत्रा भुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य" शब्द लिखे मिले[६] हैं। कत्यूर (कार्तिकेयपुर) भी उस काल में गुप्त साम्राज्य की भुक्ति रहा। ग्यारहवीं सदी ईस्वी में अहिछत्रा नगर संभवतः महमूद गजनबी के लगातार हुए आक्रमणों से नष्ट हो गया था। गोविषाण भी कुमाऊँ नेपाल के दुलू के मल्ल शासकों के अन्तर्गत आ जाने

से राजधानी नहीं रहा। पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम वर्षों तक उस क्षेत्र में जंगल उग आए होंगे। चन्द राजाओं के प्रभुत्व में आने पर उनकी तराई-भाबर प्रान्त की राजधानी कोटा तथा बाद को काशीनाथ अधिकारी द्वारा स्थापित नगर[७] काशीपुर हो गई।

प्राचीन गोविषाण के उजैनी गाँव के निकट व्यवस्थित और विधिवत् उत्खनन से कुमाऊँ के इतिहास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो सकती है। स्थानीय ग्रामीण जनता में प्राचीन दुर्ग को पाण्डवों का किला कहा जाता है। यह भी उसके पंचाल से संबंधित होने का प्रमाण है।

संदर्भ और टीपें

१—वैदिक शब्द पंचाल शुद्ध है। वैसे शतपथ ब्राह्मण, एतरेय ब्राह्मण तथा महाभारत में भी पंचाल शब्द ही आया है न कि पांचाल।

२—देखिए—"अहिछत्रा" शीर्षक पुस्तिका—१९५६ लखनऊ कृष्णदत्त वाजपेयी संग्रहाध्यक्ष मथुरा संग्रहालय-पृष्ठ—२।

३—पश्चिम एशिया के मेद (मीडियन) जाति समूह की जातियों में एक जाति परतंगण भी थी। हीरोडोटस ने इसे 'परतकनोई' लिखा है। हिमालय के उस पार से टंकण (सोहागा) लाकर उसे भारत और बाहर के देशों में भेजने वाले शौक व्यापारियों के लिए तंगण या परितंगण शब्द का उपयोग अनेक प्राचीन ग्रन्थों में हुआ है। इस संबंध में अन्यत्र विस्तार से लिखा गया है। (हेरि० रि० एन० फ्राइ-पृष्ठ-७४)

४—एकनंशा देवी को कुषाण कालीन वासुदेव (कृष्ण) और बलराम की मूर्ति के मध्य में देखा जा सकता है। (देखिए—संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका-मार्च १९६८ पृष्ठ-२४)

५—हिमालयन डि० एटकिंसन पृष्ठ-५३७

६—उपर्युक्त सं० पु० पत्रिका पृष्ठ-२

७—हिमा० पृष्ठ ५६२, पृष्ठ ५८० तथा ५८६

उत्तरापथ के हिन्दयवन शासक और कुमाऊँ

कुमाऊँ में हिन्दयवन या इन्डो-ग्रीक तथा हिन्दशक या इंडोसीथियन लोगों का आगमन सिकन्दर महान् के आक्रमण के परिणाम स्वरूप हुआ। स्वयं सिकन्दर का आक्रमण भी ईरान के हख्मनीश शासकों की यूनान से तीन सदियों से चली आ रही शत्रुता का बदला लेने के कारण हुआ था। हख्मनीश शासकों का कुछ वर्णन पहले हो चुका है। मूलतः हख्मनीश वख्तयारी पर्वतों की तलहटी के पास परशुमस नाम के छोटे से राज्य के राजा थे। इलाम और असुर देश (असीरिया) की निरंतर लड़ाइयों से लाभ उठा कर कुरुस (५५६—५३० ई०पू०) ने असुर देश पर अधिकार करके एशिया माइनर के फिनीसियन (फोनीसियन) तट से मध्य एशिया के सीर दरिया तक के सारे भूक्षेत्र को अपने अधिकार में किया। कुरुस का पुत्र कम्बुज (कैम्बेसिस) हुआ। उसने मिस्र, लीबिया और यूनान को भी अपने आधीन किया। अगला शासक दारयवहुश (धारयेत्वसु) हुआ। उसे पाश्चात्य इतिहासकार डेरियस (५२२-४८६ ई० पू०) महान् कहते हैं। उसने ५१८ ई० पू० में गान्धार और सिन्ध तक अपने राज्य का विस्तार किया। उत्तर में दक्षिण रूस के शक लोगों को पराजित किया और यूनान के मकदूनिया (मेसडन) तथा अन्य कई शहरों को पारसिक राज्य में मिला लिया।

खस (कस्सो) सैनिक—हख्मनीश शासकों और यूनानियों के मध्य हुए युद्धों को 'परसियन वार्स' कहा जाता है। मेरेथान की भयानक लड़ाई जिसमें ६४०० पारसिक मारे गए थे, इन्हीं युद्धों में से थी। दारयवहुश के वंशज क्षयार्श (जरक्षीज) ने योरोप और एशिया महाद्वीपों के मध्य इन युद्धों के दौरान अपनी सेना को थ्रेस (यूनान) में उतारने के लिये अबिडोस के पास मारमरा सागर के पश्चिमी जल डमरूमध्य पर नावोंका विशाल पुल 'हेलसपोंट' बनाया था। हख्मनीश शासकों ने यूनानी विद्रोहियों को कड़ाई से दबाया ही नहीं, हजारों यूनानियों को बन्दी बनाकर अपने देश के सुदूर पूर्व के गर्म प्रदेशों में ले जाकर वहाँ बसा दिया। इतिहासकारों ने यूनानी सेना के भारतीय योद्धेयों तथा कोसिओई (कस्सी) जाति के सैनिकों का उल्लेख किया है। इन्हें अन्यत्र भारतीय पर्वतीय भी कहा गया है। (एटकिन्सन हिमालयन डिस्ट्रि० पृष्ठ ३७७)।

दारयवहुश के उत्तराधिकारी यूनान को जीतने की बराबर कोशिशें करते रहे कभी उन्हें छोटी-मोटी सफलताएँ भी मिलीं किन्तु यूनानी विजेता सिकन्दर महान् ने सन् ३३१ ई० पू० ईरान पर आक्रमण करके इस विशाल साम्राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। हख्मनीश शासकों की शासन प्रणालियों को यूनानियों ने

ग्रहण किया। क्षत्रप, सेनापति और कराधिकारी के पद हख्मनीश शासकों की ही प्रथा पर बाद के यवन शासकों ने भी नियुक्त किए।

ईरान का हख्मनीश युग असुरों के भयंकर अत्याचारों के उपरान्त शान्ति और सुरक्षा का युग था। ईरान में उन दिनों 'दात श शर्री' या राजा के कानून की धाक थी। दारयवहुश के वहस्तुन शिलालेख का वर्णन अन्यत्र हो चुका है। इसी राजा का नक्शेरुस्तम का अभिलेख है। इस लेख में एक वाक्य है 'दाते त्य मना अवदिश अदारिय्' अर्थात् मैं जो कानून बनाता हूँ उसे सब लोग मानते हैं। न्यायधीश हख्मनीश शासन में 'दातबर' कहे जाते थे। दातबरों की अपीलें सात न्यायाधीशों की एक पीठ सुना करती थी जिसके निर्णयों पर राजा स्वयं हस्ताक्षर करता था। साम्राज्य की राजधानियां सुषा, पारसगढ़ी तथा पर्सिपोलिस तीन स्थानों पर थी। साम्राज्य में राजधानी सुषा से शुरू होकर चारों ओर राजपथ बने हुए थे। एक राजपथ सुषा, आरबेला, दजला नदी को पार करता हुआ सारदिस पर समाप्त होता था। इसकी १६७७ मील की दूरी १११ पड़ावों में बटी हुई थी। हर पड़ाव पर कारवाँ सराय, सैनिक चौकी, डाक का दफ्तर, अश्वशाला और दुकानें थीं। प्रति परसंग (योजन) पर मील का पत्थर लगा था। राज्य के दूसरे सिरे सुग्द गान्धार से भी सुषा तक राजपथ बना हुआ था। स्थल मार्गों के अतिरिक्त सिन्धु और काबुल नदी के संगम के पास से समुद्र मार्ग से मिस्र जाने की भी व्यवस्था थी। हख्मनीश शासकों ने फिनीसियन नाविकों की सहायता से भूमध्य सागर तथा लाल सागर के मध्य नहर भी बना ली थी।

हख्मनीश धर्म

हख्मनीश शासक सूर्य के उपासक थे। मन्दिरों में मूर्तियाँ नहीं होती थीं। वेदी बनी होती थी और उसमें यज्ञ-याग किए जाते थे। पशु बलि का प्रचार था। सूर्य को मिथ्र, चन्द्रमा को माह, पृथ्वी को अनाहिता, अग्नि को आतर, जल को अपाम नाम से पूजा जाता था। मग नामक लोग अग्नि की पूजा करते थे। सोमपान का प्रचलन था। इस युग में आर्मीनी भाषा और लिपि का विकास और प्रसार हुआ और वह जैसा पहले कहा जा चुका है, मिस्र से हिन्द तक व्यापार व्यवहार की भाषा बन गई।

हख्मनीश शासकों के बनाए हुए सुषा, पार्सिपोलिस और पारसगढ़ी (पार्सगढ़) के राजमहल साम्राज्य की विशालता और विविधता के द्योतक हैं। सम्राट् का सभा मंडप 'अपदान' कहलाता था। वह ऊँचे-ऊँचे खंभों की कतारों पर टिका था। इन खंभों की ऊँचाई २० मीटर थी। स्तम्भों के शीषों को सांड (बैल) के अगले धड़ का रूप दिया गया था। क्षयार्श ने सर्वापसरक (दरबारे आम) बनाया जो १०० खम्भों

पर टिका था। वास्तुकला में हखमनीश भवन असुर शैली की अनुकृति थे। उनमें पंखधारी सांड तथा अन्य पशुओं की आकृतियाँ बनी थीं। कुछ पर हंस और बतख के आकार की मूर्तियाँ भी बनाई गई थीं। एक राजप्रासाद की चार दीवारी पर विभिन्न देशों से आकर सम्राट् को उपहार और खिराज पेश करने वाले लोगों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इन आकृतियों में वहंगी कन्धे पर लिए स्वर्णधूलि का उपहार लाए हुए हिन्द क्षत्रपी का व्यक्ति भी है।

सिकन्दर का आक्रमण

दारयवहुश और क्षयार्श के यूनान को जीतने के विफल प्रयत्नों की प्रतिक्रिया के रूप में मकदूनिया के शासक सिकन्दर ने ईरान को जीतने की ठानी। सन् ३३४ ई० पू० में वह ३०००० पैदल सैनिक और ५००० घुड़सवार लेकर ईरान पर टूट पड़ा। ईरान को जीत कर वहाँ अपने को सम्राट् घोषित करके उसने गान्धार और सुग्द पर आक्रमण किया। पंजाब और सिन्ध यूनानी साम्राज्य के अंग हो गए। सिकन्दर के साथ अनेक लेखक और विद्वान आए थे। इनमें से कम से कम १९ लेखकों की बची हुई रचनाओं से ज्ञात होता है कि उस समय पश्चिमोतर भारत में अनेक प्रजातंत्र थे। किसी किसी राज्य में ब्राह्मणों का बड़ा प्रभाव था। कहीं-कहीं नगर राज्य भी थे। अपने विजित प्रान्तों की रक्षा का भार अपने सेनापतियों और करद हिन्दू राजाओं को सोंप कर सिकन्दर ने भारत से विदा ली। लौटते समय वह बावेलु में मर गया।

सिकन्दर के उत्तराधिकारी

सिकन्दर के मरने पर उसके सेनापतियों ने बन्दर बाँट शुरू कर दी। सेल्युकस ने प्राचीन बावेलु और पश्चिम एशिया को अपने अधिकार में ले लिया। उसने अपने माता-पिता और पत्नी के नाम पर लगभग ६० नगर बसाए। सेल्युक्स के वंशजों का अन्त ६५ ई० पू० में रोमन साम्राज्य के स्थापित होने पर हो गया। तब तक यूनानी सभ्यता जो हेलेनी सभ्यता कहलाती है, सारे पश्चिम एशिया और पश्चिम उत्तर भारत में भी फैल गई। सेल्युकी सम्राट् हखमनीश सम्राटों से भी एक पग आगे बढ़ कर अपने को देवता कहने लगे। वे धर्म के निर्माता हो गए। भूमि के स्वामी वे स्वयं अपने को ही मानने लगे। हेलेनी युग में भी एक नगर को दूसरे नगर से जोड़ने के लिए राजमार्गों का जाल बिछाया गया। यूनानी धर्म असभ्य और भंयकर आकृति वाले ओलम्पिक देवी देवताओं की पूजा का धर्म था। प्रत्येक नगर का अपना अलग नगर देवता भी होता था। ईरान में आने पर हेलेनी संस्कृति ने आर्य देवी देवताओं की भी उपासना आरम्भ कर दी। यूनानियों को ज्योतिर्विद्या से गहरी दिलचस्पी थी। यूनानियों से ही बावेलु की ज्योतिष विद्या भारत में आई। बराह मिहिर

ने 'वृहत्संहिता' (२/१५) में ज्योतिष के ज्ञान के कारण यवनों (यूनानियों) को म्लेच्छ होते हुए भी ऋषियों के समान पूज्य बताया है।

मिनिण्डर—तक्षशिला का यवन राजा मिनिण्डर (१६५-१३० ई० पू०) बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित राजा मिलिन्द है। मिलिन्द पह्नो (मिलिन्द प्रश्न) ग्रन्थ में प्लेटो के दार्शनिक विचारों की झलक मिलती है। लेखन साम्रग्री के सभी शब्द ग्रीक भाषा से इसी काल में संस्कृत में लिए गए। कलम शब्द का प्रयोग कालिदास के ग्रन्थों में सर्वप्रथम धान के पौधे के डंठल के लिए हुआ है। शक कुषाण काल में यूनानी प्रभाव स्पष्ट झलकता है। बहुधा यह कहा जाता है कि सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। किसी हिन्दू ग्रन्थ अथवा शिलालेख में इस आक्रमण का उल्लेख नहीं हुआ है। किन्तु यह बात इतनी सत्य नहीं है। यूनानी रोमन देवता जियोस, हरक्लीज, हेलिओस, सेलीनी, यूनानूस हेफेस्तस, रोमा कुषाण सिक्कों पर मौलिक रूप में मिलते हैं। मिस्री देवी ईजिस भी राजदण्ड और पाश लिए दिखाई देती है। ईरानी देवताओं में मित्र (मिहिर), माओ, अथशो, फर्रो आदि प्रमुख रूप से अंकित हैं। बहुधा अनेक देवी देवताओं को मिला दिया गया है। नना, अनाहिता, आर्तमिस और उमा देवियां एक जैसी हो गई हैं।

शक-कुषाण काल में यूनान की राजा को देवता मानने की विचार धारा चल पड़ी थी। यह सिकन्दर द्वारा प्रचारित पश्चिम और पूर्व के समन्वय का ही प्रभाव था। ज्ञातव्य है कि सिकन्दर ने ईरान में यूनानी वेश भूषा को छोड़ कर पारसिक वेश भूषा को ही धारण करना आरम्भ कर दिया था। उसने अपने सैनिकों को विजित देशों की कन्याओं से विवाह करने के लिए उत्साहित किया था। स्वयं ईरान में तथा गान्धार में उस देश की कन्याओं से विवाह किया था। उसकी गान्धारी पत्नी का नाम रेक्सोना था। कहा जाता है कि उसकी ईरानी पत्नी दारयवहुश तृतीय की पुत्री थी तथा उसने अपने अस्सी सरदारों और १०००० सैनिकों को भी आर्य जातीय ईरानियों की कन्याओं से विवाह करने को उत्साहित किया। कहा जाता है कि झेलम नदी को पार करते समय देवताओं को प्रसन्न करने के लिए सिकन्दर ने नदी किनारे बारह वेदियाँ बनाईं जिसमें मिस्र के देवता अमौन, ग्रीक देवता हैराक्लीज, अदिनोस, जिऔस, सूर्य, अपोलो आदि को भेंटें चढ़ाईं।

मौर्य शासन पर यवन प्रभाव—सिकन्दर के क्षत्रप फिलिप के मारे जाने पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमोत्तर भारत के यवन साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। मुद्राराक्षस नामक नाटक में चन्द्रगुप्त को वृषल और कुलहीन कहा गया है। वायुपुराण में उसे मुरा नामक राक्षसी (असुर कन्या) का पुत्र कहा गया है। यह उसके यवनों से ही सम्बन्धित होने का द्योतक है। पाटलीपुत्र नगरी के उत्खनन से उसकी

लकड़ी की प्राचीर का पता लगा है जो स्पष्ट ही पारसिक हखमनीश शासन के प्रभाव की द्योतक है[२]। ठीक उसी प्रकार की प्राचीर ईरान की तत्कालीन राजधानी पर्सी-पोलिस (इष्टग्रह) में भी थी। सैल्यूकस निकेटार (३१२-२८१ ई० पू०) ने जब चन्द्र-गुप्त द्वारा अधिकृत यवनों के गान्धार प्रदेश को वापस लेना चाहा और इस प्रयत्न में वह सफल न हुआ तो उसने गान्धार देश को जो तब आर्कोसिया (हार्कोसिया-सारस्वत) कहलाता था, चन्द्रगुप्त को सौंप कर उससे ५०० हाथी लिए। ये हाथी अन्तिओक के विरुद्ध युद्ध में काम आए। जनश्रुतियों के अनुसार सेल्युकस चन्द्र गुप्त मौर्य का दामाद या ससुर बना। कालान्तर में मेगस्थनीज (३०२-२८८ ई० पू०), सैंटकोटौस (चन्द्र गुप्त) के दरबार में राजदूत नियुक्त हुआ। अन्तिओकस ने बिन्दुसार के दरबार में दयमकुश नामक राजदूत भेजा। अशोक के समय में भी पश्चिम के अन्तियोग, तुलमाय, मक, अन्तेकिना अलक्यसदल आदि पश्चिम एशिया और मिस्र के शासकों से मौर्य शासकों के मैत्री सम्बन्ध थे। ये पश्चिम के देशों से हुए सम्बन्ध सिकन्दर के आक्रमण के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुए।

स्थापत्य पर यवन प्रभाव—तक्षशिला के यवन राजा अन्तियक्लिदास द्वारा वेस नगर (भिलसा) में जिस गरुड़ ध्वज स्तम्भ की स्थापना की गई उसमें यवन राजा को भागवत कहा गया है। यह उसकी उपाधि हो अथवा धर्म। जिस भारतीय राजा के राज्य में उस समय वेस नगर था उसका नाम भागभद्र काशि पुत्र है। यह भद्रक नामक शुंग वंशीय राजा था या कोई और कहा नहीं जा सकता। दूसरा गरुड़ ध्वज वेसनगर में ही राजा के राज्य काल के बारहवें वर्ष में बनाया गया। यह भारत का पहला बहुकोणीय स्तम्भ है। जिस व्यक्ति ने इस स्तम्भ का निर्माण किया उसका नाम हेलियोडोरस और उसके पिता का नाम डायौन है[३]। सम्भवतः यह कोई ग्रीक वास्तुकला विशेषज्ञ था। इसी प्रकार कनिष्क के स्तूप का निर्माण करने वाला अगासि-लवस भी कोई ग्रीक ही है। (जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी १९०९ पृष्ठ १०५८)। कुमाऊँ के सभी प्राचीन मन्दिरों में मुख्य देवता के द्वार पर गरुड़ की मूर्ति स्थापित की गई है। कुमाऊँ गढ़वाल के कत्यूरी राजाओं के शिलालेखों और ताम्र-पत्रों में उनके राज्यकाल के सम्वत् का उल्लेख भी वेसनगर के गरुड़-ध्वज उल्लिखित राज्य काल के सम्वत् की प्रणाली की अनुकृति है। ग्रीक भाषा का प्रभाव आज भी पहाड़ी में पैलि (पैलिओ)-प्रथम, बोट (बोटेन वृक्ष), ठिठ थीटा-चीड़ का फल (जो ग्रीक अक्षर थीटा के आकार का है), गांता (गोतेन चोगे के प्रकार का ग्रीक वस्त्र) आदि अनेक शब्दों में झलकता है। रोमन सम्राट् अगस्टस (२९ ई० पू०—१४ इस्वी) के दरबार में पर्वतीय राजाओं के तत्कालीन संघ ने ग्रीक भाषा में पार्चमेंट पर लिखा हुआ एक पत्र भेजा था जिसका उल्लेख एटकिंसन ने किया है। इस पत्र को किसी पोरस नामक राजा द्वारा ६०० राजाओं की ओर से भेजा गया बताया गया था। इस

पत्र में पोरस ने अगस्टस से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने तथा अपने देश के व्यापारिक द्वार उस रोमन सम्राट् के लिए खोल देने का वचन दिया था।

यह पत्र दमिश्क के शासक निकोलस द्वारा मार्ग में देखा गया था। (स्ट्रैबो भूगोल १५-४-७३) इस पत्र के लेजाने वाले के साथ विशेष प्रकार के विचित्र उपहार थे। अनेक प्रकार के सर्प, १० फीट लम्बा एक नाग, एक कछुआ जो चार हाथ चौड़ा था तथा एक चील से भी बड़ी चिड़िया थी। एक बिना बाहु का कृच्छाचारी योगी था जिसका नाम जरमनकेगस (सम्भवतः संस्कृत श्रमणकराज) था। इन लोगों को रोम तक जाने में चार वर्ष लगे थे। एक अन्य विवरण के अनुसार इन उपहारों में हाथी, शेर जैसे जन्तु तथा भाँति भाँति के रत्न भी थे।[४]

देवी नैना

कुषाण शासकों के आने से पूर्व उत्तर भारत के हिन्द यवन शासकों और उनके राज्यों का चित्र स्पष्ट नहीं है। डिमैट्रियस का उल्लेख दत्तमित्र नाम से महाभारत में भी मिलता है। कनिष्क के पूर्वगामी ऐजस रंजुवुला, केडफिस तथा केडफिस द्वितीय भी यवन प्रभाव से मुक्त नहीं थे। कनिष्क के सिक्कों पर बाबेलु के चन्द्र देवता, ईरानियों के मित्र देवता तथा ऐलामी अथवा सुमेरी देवी नना के भी चित्र हैं। कुमाऊँ में नना (नैना) देवी के नाम से इसी कुषाण शासक के समय में पूज्य बनी। नैना की उपासना बीबी नैनी नाम से बलूचिस्तान में भी इस्लाम के अभ्युदय से पहले तक प्रचलित थी। काश्मीर घाटी और कुलू घाटी में भी यह देवी इसी नाम से पूजी जाती है। प्रायः सभी देवी मन्दिरों के पास नैना देवी के प्राचीन मन्दिर हैं। बधाण (गढ़वाल) में नन्दा को उपासना करने की प्रथा से पहले यह देवी नैनी ही कहलाती होगी। देवी के उपासक नौटी के ब्राह्मणों का पुराना गाँव आज भी नैनी नौटी कहलाता है। इसी प्रकार स्याही देवी के निकट नैनी, धौला देवी के निकट नैनी नामक गाँव तथा नैनी (चौगरखा) आदि प्रायः सभी देवी के स्थानों के निकट नैनी स्थल का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि मूलतः नैना या नैनी ही उपास्य देवी थी और वही मातृदेवी के रूप में कुषाण शासकों के समय से पर्वत प्रदेश में पूज्य थी।

यवन आर्या देश

यवन शासकों के समय में बैक्टीरिया तथा गांधार का प्रदेश आर्या कहा जाने लगा था। ईसा पूर्व तीसरी सदी में आर्या प्रदेश के दोनों क्षत्रपों ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। सेल्यूकस वंशीय बाबेलु के गर्वनर ने अपने को इन राज्यों को फिर से आधीनता स्वीकार कराने में असमर्थ पाकर उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये। इस काल के यवन सिक्कों में दिवोडोटस प्रथम तथा द्वितीय के नाम मिलते हैं। इन

शासकों के उपरान्त युथिडमस नामक शासक का पता चलता है। इसी का पुत्र डिमेट्रिस था। डिमेट्रिस को अन्तिओकस तृतीय की कन्या ब्याही गई थी। डिमेट्रिस के द्वारा सुभगसेन के राज्य पर अधिकार करने का इतिहास ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है यवन शासकों द्वारा साकेत और माध्यमिका (वर्तमान मध्य प्रदेश) पर अधिकार करने का उल्लेख विष्णु पुराण में भी हुआ है।

भागदत्त अथवा अपोलोडोटस–मिनिण्डर (मिलिन्द), अगथोक्लीज, हिरमौस तथा पंतलिओन नामक बीस यवन शासकों के पश्चिमोत्तर उत्तर भारत में सिक्के प्राप्त हुए हैं। लगता है इन छोटे-छोटे राज्यों को उत्तर की ओर से आने वाले इण्डो-सीथियन (हिन्द-शक) कहे गए लोगों ने पाराजित किया। यउस (२० ई० पू० से २० ईस्वी), अजेस या अय नाम के दो राजाओं तथा अजिलिस, आयलिस और गोण्डोफोरस (ईरानी विन्दवरण) नामक इन शासकों को इण्डोसीथियन या हिन्द-शक कहा जाता है। इस काल की ऐतिहासिक जानकारी सिक्कों से मिलती है। प्रायः सभी सिक्के एक ही साँचे में ढले लगते हैं। इनमें कुछ सिक्कों में सूर्य देव अपोलो एक पीठिका पर बैठा हुआ है। किसी सिक्के में उसके हाथ में त्रिशूल भी है। अपोलो की मूर्तियों वाले सिक्कों की अनुकृति स्ट्रेटोन, डायोनिसियस, हिप्पोस्ट्रेटस तथा जुइलस नामक राजाओं ने की है। अपोलोडोटस को वेवर ने भागदत्त माना है। ज्ञातव्य है कि महाभारत में हिमालय पर्वत के यवन राजा भागदत्त को हिमालय पार के प्रदेश का शासक तथा इन्द्र का सखा माना गया है। (वेवर हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिट० पृष्ठ १८१)। इन्हीं सिक्कों में जिनमें अपोलो की मूर्ति है राजा की उपाधि सोटेर दी गई है।

सूर्य के उपासक अपोलोडोटस का शासन तत्कालीन कुमाऊँ गढ़वाल में रहा होगा। कुमाऊँ के सूर्य मन्दिरों में इसी काल की मूर्तियों में यवन प्रभाव स्पष्ट दीखता है। बैजनाथ में सूर्य की प्रतिमाओं में घुटने तक के बूट हैं जो निश्चय ही अभारतीय हैं। अपोलो का भारतीय नाम भग या भाग रहा होगा जो सूर्य का ही पर्यायवाची है। कटारमल के मन्दिर का प्राचीन नाम बड़ादित्य था। प्राचीन कुमाऊँ में महर में आदित्य, काली कुमाऊँ में रमकादित्य तथा लखनपुर बागेश्वर में भौमादित्य सूर्य के मन्दिर हैं। बेलपट्टी में सूर्य का मन्दिर बेलादित्य कहलाता है। सबसे प्राचीन कुमु राज्य का मन्दिर बालेश्वर थल या देवथल के समीप है। बालबक्क, बाल या बेल ईसा पूर्व की दूसरी सहस्राब्दी में सीरिया का सूर्य देवता था। प्राचीन टायर तथा कार्थेज में भी बाल की उपासना की जाती थी। कनानी लोग पेड़ की हरी शाखा और हरे डंडे को बाल देवता का प्रतीक मानकर पूजा स्थल पर रखते थे।[५] बाल देवता की कांस्य मूर्तियाँ भी प्राप्त हैं। इन मूर्तियों के दाहिने उठे हाथ में बज्र तथा

बाँये हाथ में हरे वृक्ष की शाखा है। संस्कृत शब्द कोष में भी बाल का सूर्य के अर्थ में प्रयोग (रघुवंश-१२-१००) कालिदास उपाधिधारी इण्डोग्रीक राजकवि की देन है।

संदर्भ और टीपें

१—सिकन्दर ने अपने अभियान के मार्ग पर स्थान-स्थान पर सैनिक छावनियां बसाई थीं। ये एलिग्जैन्ड्रिया कहलाती थीं। ऐसी ही एक छावनी झेलम के पूर्वी तट पर बसाई गई थी जो कालान्तर में एलिग्जैण्ड्रिया बुशफल नाम से प्रसिद्ध हुई और पंजाब के हिन्द यवन राजा हिपोस्ट्रेटस की राजधानी बनी। वर्तमान जालन्धर संभवतः तत्कालीन एलिग्जैण्ड्रिया शब्द का ही रूपान्तर है। 'यौन लोगों के राजा के इस नगर अल्सदा' का उल्लेख लंका के इतिहास में भी हुआ है। कालिदास के ग्रन्थों में यक्षों की राजधानी, अल्कापुरी तथा अलकाप्रभा नाम ग्रीक प्रभाव के द्योतक हैं। सम्भवतः अलकनन्दा नाम भी एलिग्जैण्डर के नाम पर ही पड़ा। (देखिए फॉरिन इनफ्लुएंस आन एन्श्यंट इंडिया—जैराजभाय तथा नोट्स ऑन मार्कोपोलो—पी० पेलियट)

२—पाटलिपुत्र के स्तम्भों के मंडप को भी हखमनीश शासकों के स्थापत्य की अनुकृति माना जाता है—आर्किटेक्चर ऑफ ईस्टर्न इंडिया-ईस्ट सर्किल- १९१२-१३

३—'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल' भारतीय विद्याभवन प्रकाशन-पुस्तक-२

४—'हिस्ट्री ऑफ सीरिया' फिलीप के० हिट्टी

५– प्राचीन भारत में विना सिली धोती, चादर तथा दुपट्टे की वेष-भूषा का प्रचलन था। यूनानी तथा शक-कुषाण प्रभाव से ही कुर्ता, कोट, पाजामा, पेटी तथा बूट जूते का प्रचलन हुआ। गुप्तकाल में वह भारत की राष्ट्रीय वेश भूषा बन गई। जेवरों में भारी सोने के कड़े जिनके सिरों की आकृति पशुओं की सी होती है, शक प्रभाव को व्यक्त करते हैं। (एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूप रेखा—डा० बुद्धप्रकाश।)

————

उत्तरापथ के अशोक के धर्मलेख

ऐतिहासिक दृष्टि से अशोक के धर्मलेख बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इतिहास के प्रायः सभी अन्य स्रोत अशोक के विषय में मौन हैं। वास्तव में सन् १७५६ ई० तक प्राचीन भारत के इस महान सम्राट् के विषय में किसी को भी कोई जानकारी नहीं थी। रोमन कैथलिक पादरी टीफनथेलर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने दिल्ली में मेरठ से लाई गयी शिला के ऊपर लिखे गये अभिलेख के अंशों का सन् १७५६ ई० में निरीक्षण किया। उस समय इन शिला लेखों की लिपि को पढ़ने वाले देश में नहीं रह गये थे। इनकी लिपि को पढ़ने का सफल प्रयास सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने १८३७ ई० में किया। ऐतिहासिक शब्दावली में हम प्रिंसेप को अशोक का जन्मदाता कह सकते हैं फिर तो इस दिशा में अनेक प्रयास हुए और अन्य बहुत से अभिलेख प्राप्त हुए जो अशोक के सम्बन्ध में मूल्यवान सूचना प्रदान करते हैं।

इन धर्मलेखों के विषय में सबसे प्रामाणिक सामग्री ई० हुल्स नामक जर्मन विद्वान कृत 'इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ अशोक' (कोर्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम् भाग—१) से प्राप्त होती है। इसी संग्रह के आधार पर अशोक के धर्मलेखों का एक संग्रह भगवान् बुद्ध की २५०० वीं जयन्ती के अवसर पर भारत सरकार के सूचना एवं प्रसार मंत्रालय द्वारा मई, सन् १९५७ ई० में प्रकाशित किया गया था। उक्त जयन्ती समारोह के उपरान्त तीन और महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हो गए हैं। उत्तरापथ के इतिहास के सम्बन्ध में ये तीनों अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण हैं। अशोक ने अपने अभिलेखों के माध्यम से राजाज्ञाओं को सर्वसाधारण तक पहुँचाने का अन्यतम प्रयास किया था। जनसाधारण के हित को ध्यान में रखते हुए इनकी भाषा मुख्यतः पालि चुनी गयी। जहाँ संस्कृत या पालि नहीं बोली जाती थी वहाँ अभिव्यक्ति का माध्यम यूनानी और आर्मीनी भाषा हुई। जहाँ ब्राह्मी लिपि नहीं प्रचलित थी वहाँ खरोष्टी लिपि अपनाई गई। आर्मीनी भाषा में हख्मनीश शासन काल के अनेक पुरानी पहलवी के शब्द हैं। विशुद्ध ईरानी शब्दों में संस्कृत की भाँति त्रिलिंगवाची प्रत्यय लगते हैं। किन्तु आर्मीनी भाषा के व्याकरण में यह प्रथा नहीं है। उसमें प्रथम एवं द्वितीय पुरुष तथा क्रिया का बहुवचन 'क' लगाने से बनता है। आर्मीनी जैसा पहले भी कहा जा चुका है, हख्मनीश साम्राज्य की राज भाषा थी।

गांधार का नव अविष्कृत अभिलेख

सन् १९५८ ई० कन्दहार में अशोक का एक द्विभाषीय अभिलेख मिला जिसमें

ऊपर ग्रीक और नीचे आर्मीनी भाषा[1] में एक ही धर्मलेख लिखा हुआ है। यह द्विभाषीय अभिलेख इस तथ्य का द्योतक है कि पाणिनि के समय में आर्मीनी और यूनानी लोग गान्धार देश में रहा करते थे। पिछले अध्याय में वर्णित जनपदों की हमारी प्रस्थापना को इससे एक और पुष्ट प्रमाण मिलता है। भले ही अशोक के समय में गान्धार देश मौर्य साम्राज्य का अंग बन चुका था किन्तु आर्मीनी और ग्रीक भाषा का उस जनपद का अभिलेख इस तथ्य का द्योतक है कि वहाँ हख्मनीश शासकों के समय से ही चली आ रही जनभाषाओं का प्रचलन था। इस अभिलेख में जो शर-इ-कुना (सहर-इ-कुना) नामक स्थान पर मिला है तेरह पंक्तियाँ पूरी और एक पंक्ति आधी है। प्रथम तीन पंक्तियाँ कुछ अस्पष्ट हो गई हैं। यह उस ग्रीक लिपि में है जो तीसरी सदी ई० पू० पश्चिम एशिया तथा यूनान में प्रचलित थी। ग्रीक लिपि के नीचे आर्मीनी लिपि का लेख है। उसमें सात पंक्तियाँ पूरी तथा एक पंक्ति आधी है। हख्मनीश शासनकाल में सहर-ईरान का अर्थ वही था जो आर्यन वैजो का था। इन दोनों का संस्कृत रूपान्तर आर्य निवास हो सकता है।

सहर इ-कुना --

प्राचीन भोट (तिब्बत) अभिलेखों में कुमाऊँ गढ़वाल के प्रदेश को कुना लिखा गया है। अशोक के इस अभिलेख में 'कुना' शब्द के प्रयोग से यह स्वतः प्रमाणित हो जाता है कि प्राचीन कुमु (वर्तमान कालीकुमाऊँ) तथा गान्धार के पारस्परिक सम्बन्ध थे और दोनों स्थानों में आर्मीनी भाषा भाषी लोग निवास करते थे। यह इस परिकल्पना को भी प्रामाणिकता प्रदान करता है कि गान्धार से लेकर कुमु(काली कुमाऊँ) तक असीरिया के उत्तर में स्थित आर्मीनिया से निर्वासित की हुई कस्स जातियाँ बसी हुई थीं। अशोक के समय में नैपाल के खस राजकुमार से हुए मौर्यों के विवाह सम्बन्ध का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है। यही खस पाणिनि द्वारा वर्णित यक्ष रहे होंगे जो खस उपाधि धारी हख्मनीश राज परिवार से अपना सम्बन्ध जोड़ते होंगे। पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्र (५-३-८४) में वीशाल नामक यक्ष का उल्लेख किया है। उसने यक्षों के लोक देवता शेवल, सुपरि, वरुण, अर्यमा का भी उल्लेख किया है। वीशाल उस यक्ष का नाम था जो कुल देवताओं में पूज्य था (सभापर्व १०—१६)। आटना-टीय सुत्त के अनुसार वरुण भी एक यक्ष था। अर्यमा को पाणिनि के भाष्यकार वासुदेव शरण अग्रवाल प्रसूतिका से सम्बन्धित लघु देवता मानते हैं (इन्डिया ऐज नोन टु पाणिनि वासुदेव शरण अग्रवाल—पृष्ठ ३६४) किन्तु अधिक संगत तो यह लगता है कि अर्यमा का आर्मीनी से सम्बन्ध है। वास्तव में अर्यमा के ही उपासक पश्चिम एशिया के पर्वतीय आर्मीनी लोग थे।

अभिलेख के ग्रीक पाठ का भाषान्तर

'दस वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद राजा पियदस्सी ने मनुष्यों के प्रति दया (धम्म)

प्रदर्शित की। उसके बाद से ही (आगे) उन्होंने लोगों को और अधिक धार्मिक बनाया और सम्पूर्ण विश्व का सर्वांगीण विकास हुआ। और राजा जीवित जीवों के खाने का निषेध करते हैं (परिणामस्वरूप) वास्तव में अन्य लोगों के साथ ही राजपरिवार के आखेटकों (वधिकों) एवं मछुओं ने भी अपना कार्य करना बन्द कर दिया और जिनका (अपने ऊपर) किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था, उन्होंने भी यथासंभव इस प्रकार के कार्य करने बन्द कर दिये हैं और माता पिता एवं बड़ों के प्रति आज्ञाकारी (हो गये हैं) जैसा कि (वे) पहले नहीं थे; और भविष्य में भी वे इसके अनुकूल आचरण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक पहले से सुन्दर जीवन व्यतीत करेंगे।'

अभिलेख के आर्मीनी पाठ का भाषान्तर

'दस वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद हमारे स्वामी राजा पियदस्सी ने लोगों को धम्म में दीक्षित करने का निर्णय किया। तभी से विश्व में लोगों के अन्दर बुराइयाँ कम होने लगी हैं। पहले जो कष्ट में थे उनका कष्ट कम हो गया है, और सम्पूर्ण विश्व में प्रसन्नता एवं शान्ति है। अन्य बातों में भी जिनका सम्बन्ध भोजन से है, हमारे स्वामी राजा बहुत ही न्यून संख्या में जीवों का वध करते हैं। यह देखकर शेष लोगों ने भी जीवों की हत्या करनी बन्द कर दी। मछुओं पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इसी प्रकार जो पहले असंयमित थे उन्होंने भी संयम से रहना सीख लिया है। माता-पिता एवं बड़ों के प्रति आज्ञाभाव एवं इसके अनुरूप कार्य करने की आदत अब व्यवहार में लायी जाती है। दयावान व्यक्तियों के लिए अब कानून की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार धम्म का आचरण सबके लिए उपयोगी है और (यह) भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा।[२]

अन्य नये प्राप्त अभिलेख

अशोक के हाल में प्राप्त अन्य शिला लेखों में दूसरा महत्वपूर्ण शिला लेख सन् १९६१ ई० में अहरौरा, जिला मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश में प्राप्त हुआ। दो अन्य अभिलेख दिल्ली के आस-पास प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक अप्रैल १९६६ में लाजपत नगर (दक्षिणी दिल्ली) के पास प्राप्त हुआ। यहाँ केवल नए अभिलेखों का ही संक्षिप्त में वर्णन दिया जा रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से अशोक के सभी अभिलेख महत्वपूर्ण हैं। कुमाऊँ के इतिहास के लिए तो अशोक स्वयं हिमालय की पहाड़ी जाति का ही राजकुमार होने से महत्वपूर्ण है। सम्भवतः कस्स, खस अथवा कस्साइट कही गई पश्चिम एशिया से आई हुई जो जातियाँ हिमालय के पनढर पर जाकर बसीं तथा जिन्हें आर्यों ने संस्कार विहीन अथवा शूद्र कहा, उन्हीं में से अशोक का पितामह चन्द्रगुप्त भी था। इस तथ्य की पुष्टि मौर्यों के सिकन्दर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस से विवाह सम्बन्ध होने तथा चन्द्रगुप्त प्रथम के स्वयं सिकन्दर की सहायता

से तत्कालीन भारतीय राजाओं की निर्बलता का लाभ उठा कर एक नए राज्य की स्थापना की जनश्रुतियों से होती है। वास्तव में जिस प्रकार कस्सी जाति ने मैसोपोटामिया में हित्ती आक्रमणकारी राजा के चले जाने के बाद अपना राज्य स्थापित किया ठीक उसी प्रकार उस घटना के १३८६ वर्ष बाद मौर्य नामक इस पहाड़ी जाति ने भी समस्त उत्तर भारत को अपने अधिकार में लिया।

मौर्य वंश

मौर्य लोग कुमाऊँ-नैपाल-उत्तरी बिहार में बसी पहाड़ी जाति की एक शाखा के लोग थे इसे पूर्वोक्त जर्मन विद्वान् ई० हुल्स कृत अशोक के लेखों के अंग्रेजी अनुवाद के संग्रहकर्ता प्रसिद्ध इतिहासकार डी० सी० सरकार भी मानते हैं। अशोक के धर्मलेखों की अपनी भूमिका में डी० सी० सरकार ने मौर्य वंश के विषय में लिखा है:–'उत्तरी बिहार और नैपाल के लिच्छवियों तथा अन्य इसी प्रकार के दूसरे लोगों के समान मौर्य लोग भी एक हिमालयवर्ती जाति के थे। धीरे-धीरे जब वे ब्राह्मणों द्वारा व्यवस्थापित समाज में लीन होने लगे, तब उन्होंने क्षत्रिय होने का दावा किया, यद्यपि कट्टर ब्राह्मण धर्मानुयायी तब भी उनको शूद्र वर्ण से अधिक पद का भागी नहीं समझते थे[1]।'

हख्मनीशों की अनुकृति

अशोक के शिला लेखों और स्तम्भलेखों की शैली तथा मौर्य वास्तुकला की सभी प्रवृतियों का उद्गम ईरान का हख्मनीश शासन ही है। भले ही संस्कृत साहित्य में भारत के प्राचीन नगरों के अपरिमित वैभव के अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण मिलते हैं किन्तु पुरातात्विक उत्खननों से इनकी पुष्टि नहीं हो पाई है। वास्तव में हमारे महाकाव्यों के पात्रों की क्रीड़ास्थली वह सप्त सिन्धु देश है जो पश्चिम में भूमध्यसागर तट तक फैला था। दजला नदी का नाम पुरानी बाइबिल में हिद्दुकेल है जो संस्कृत में सिन्धु केल हो सकता है। अशोक के शिलालेख हख्मनीश शासक धारयेत्वसु (दारयवहुश-डेरियस महान) के द्वारा ५१६ ई० पू० बहस्तुन नामक स्थल पर लिखाए गए शिलालेख की तुलना में उसकी छाया मात्र भी नहीं लगते।

बहस्तुन शब्द इतिहासकारों के अनुसार भगस्थान का पहलवी-पुरानी फारसी रूपान्तर है। भग, जो कालान्तर में योरोप और पश्चिम एशिया में बुगो कहलाया अविभाजित आर्य जाति का उपास्य देवता था। अतः बहस्तुन के शिलालेख भी उसी बृहत्तर आर्यावर्त की सांस्कृतिक निधि हैं जिसकी दो सन्तानों में से एक ईरान में रह गई और दूसरी सिन्धु और गंगा-यमुना के मैदानों में आकर बसी।

बहस्तुन का यह शिलालेख तीन भाषाओं में लिखा गया है। ये भाषायें हैं—प्राचीन पारसिक या पुरानी पहलवी, बाबेलु की कीलाक्षर तथा शक जाति की

सिथिक या टारटर (तातार) कही गई भाषा। इस अन्तिम भाषा को ही कालान्तर में हखमनीश शासक कुरुस के नाम पर खरोष्ठी कहा गया। वहस्तुन के शिलालेख १७०० फिट ऊँची एक शिला के पार्श्व पर पाँच स्तम्भों में लिखे गए हैं। वह स्थान जहाँ पर उक्त लेख उत्कीर्ण हैं, भूमि से ३०० फिट की ऊँचाई पर स्थित है। यह स्थल दजला फुरात घाटी को जग्रौस पर्वत शृंखला से मिलाने वाली एक पहाड़ी पर स्थित है। प्राचीन काल में यह मेद देश के पश्चिम और पूर्व के प्रान्तों को बैबीलोन तथा एकबताना से मिलाने वाले सार्थवाह मार्ग पर स्थित था।[४]

कालसी के शिलालेख

अशोक के शिलालेखों में जिन नगरों का उल्लेख आया है वे हैं—उज्जयिनी, तक्षशिला, सुवर्णगिरि, तोसली, कौशाम्बी, समापा तथा इसिला। कालसी के तेरहवें शिलालेख में पश्चिम एशियायी राजाओं तथा राज्यों का उल्लेख जिन शब्दों में हुआ है, उनका रूपान्तर है।

यह 'धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छः सौ योजन दूर उन सीमावर्ती राज्यों में बार-बार प्राप्त की है जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है और उस अन्तियोक (सीरिया का राजा ऐंटिओकस) के पूरे चार राजा अर्थात् तुलमय (मिस्र का राजा टालेमी), अन्तेकिन (मेसिडोनिया का राजा एंटिगोनस गोनेटस), मका (साइरीनी का राजा मागस), और अलिक्यशुदल (एपिरस का राजा एलेक्जैण्डर) राज्य करते हैं (और) इसी प्रकार अपने राज्य के (दक्षिण में), चोड़, पांड्य तथा ताम्रपर्णी (लंका) तक (प्राप्त की है)। इसी प्रकार यहाँ (राजा के राज्य में), यवनों, काम्बोजों में, नाभकों में, नाभपंक्तियों में, भोजों में, पितिनिकों में, आंध्रों में और पुलिन्दों में सब जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं।'[५]

मूल लेख में यवन शब्द को यौन लिखा गया है। ईरान के हखमनीश शासन काल में भी यौन ही नाम का प्रचलन था। हख्मनीश साम्राज्य का यौन प्रान्त पश्चिम एशिया का भूमध्यसागर तटीय क्षेत्र था। उसी क्षेत्र पर स्मर्ना और मनिसा के व्यापारिक नगर थे (ईरान अंडर दि अकेमिनिड्स-मानचित्र पृष्ठ २५६ रिचर्ड एन० फ्राई)। इस साम्राज्य के कुछ अन्य प्रान्तों की स्थिति इस प्रकार है—मुद्रा (मद्रा) मिस्र में नील नदी घाटी, अरबया—फुरात नदी घाटी, बाबरिस-बैबीलोन, अकुरा दजला की उत्तरी नदी घाटी, अर्मीना-कैस्पियन और काला सागर का मध्यवर्ती दक्षिणी पहाड़ी प्रदेश, शका त्यैय पाराद्रया—काला सागर का उत्तरी वर्तमान रूस का भूभाग, शका त्रिखौदा-कैस्पियन सागर के पूर्व का देश, दहा-कैस्पियन सागर का दक्षिण पूर्व प्रदेश, वर्कान तथा परकावा-दहा के दक्षिण तथा पूर्व के राज्य, हरइव-हैरात नदी का देश,

वाक्ट्रिस-आमूदरिया के उद्गम का वैक्ट्रिया प्रदेश, गंधार या गन्दार-वर्तमान गान्धार, हिन्दुस-पंजाब, मक, यौतेय, पार्स, सुषा-वर्तमान बलूचिस्तान से लेकर फारस की खाड़ी तक के क्रमशः पश्चिम की ओर के देश,हरहुवतिस-हेलमन्द नदी की घाटी (सरस्वती नदी का देश) करमान तथा व्र्यंक-हरहुवतिस के दक्षिण पश्चिम के राज्य।[६]

सन्दर्भ और टीपें

१—देखिए 'अशोक के हाल में प्राप्त शिलालेख' सरस्वती-जुलाई १९६६

२—भाषान्तर 'सरस्वती' के उक्त लेख से उद्धृत किया गया है।

३—देखिए 'अशोक के धर्मलेख' (पब्लिकेशन्स डिवीजन—पृष्ठ ३)।

४—बहस्तुन के शिलालेखों के अंग्रेजी रूपान्तर के लिए देखिए 'द ग्रीक हिस्टोरियन्स-न्यूयार्क १९४२ अथवा जार्ज राविन्सन कृत पार्थिया'।

५—देखिए पूर्वोक्त क्रम संख्या—१ पृष्ठ ४५

६—कालसी और गान्धार के अतिरिक्त अशोक के उत्तरापथ के अन्य धर्मलेख इन स्थानों पर पाए जाते हैं—नैपाल में रुम्मिनी देई तथा निगाली सागर, उत्तर बंगाल में पुन्द्र बर्धन, हजारा जिले में मानसेरा तथा उत्तर बिहार के चम्पारन जिले में रामपुरवा। इन सब की चर्चा यहाँ प्रसंग से बाहर है।

कुमाऊँ में पार्थव, रोमन और कुषाण

अपोलोडोटस का उल्लेख पहले हो चुका है। पंजाब में ज्वालामुखी के पास अपोलोडोटस के ३० सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों के साथ जो अन्य सिक्के मिले हैं वे कुनिन्दों के कहे जाते हैं। ये सिक्के उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार के सिक्कों को 'अल्मोड़ा-सिक्के' नाम दिया गया है। ज्ञातव्य है कि अल्मोड़ा जिले में अमोघभूति, हरिदत्त, शिवपालित तथा शिव दत्त के सिक्के मिलते हैं। डी० सी० सरकार के अनुसार हिन्दयवन शासक अपोलोडोटस को पछाड़कर उसके तुरन्त ही बाद अमोघ-भूति ने अपना राज्य कुमाऊँ-गढ़वाल, हिमाचल तथा कांगड़ा तक स्थापित किया। जैसा पहले कहा जा चुका है महाभारत में वर्णित यवनाधिप ही पंजाब का शासक अपोलडोटस है। बेवर, वान, स्ख्रोडर तथा हापकिन्स ने भी दोनों नामों को एक ही शासक का द्योतक माना है। जिन अन्य यूनानी राजाओं के सिक्के पंजाब में मिले हैं उनमें डिमेट्रियस और अपोलोडोरस का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं राजाओं के सिक्कों की अनुकृति शक शासकों ने की है। (कैटलोग ऑफ एन्श्यन्ट क्वाइन्स ऑफ इंडिया -१६३६ पृष्ठ ३५ तथा ४०)।

मौर्य शासक के उपरान्त शुंग शासकों की जिस शाखा ने उत्तर के पहाड़ों की तलहटी में अपना राज्य स्थापित किया उनको ही कुछ इतिहासकार कुनिन्द कहते हैं। कहीं इन शासकों को 'ट्राइबल डाइनेस्टीज' या जनजातीय राजवंश भी कहा जाता है। इसी कारण इनके सिक्कों को भी ट्राइबल क्वाइन्स नाम दिया गया है। काशीपुर के उत्खनन से सोने के तीन सिक्के मिले थे। इनका विस्तृत विवरण डा० के० पी० नौटियाल ने जर्नल ऑफ न्यु० सो० खण्ड २४ के पृष्ठ १८१-१८२ पर दिया है। इन सिक्कों की प्राप्ति से पुराविद् यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कनिष्क ने तथाकथित कुनिन्दों को पराजित करके कुमाऊँ में अपनी सत्ता स्थापित की थी। इन सिक्कों पर 'साधुजा' या 'आधुजा' जैसा शब्द लिखा मिलता है जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि कुषाण शासक का तत्कालीन पहाड़ी प्रदेश इस नाम के किसी स्थानीय क्षत्रप के अधिकार में होगा। जो भी हो कुषाणों के सत्ता में आने से कुमाऊँ का भूक्षेत्र फिर एक बार अन्तर्राष्ट्रीय राजमार्ग के मध्य आ गया।

कुषाणों के पूर्वज

पंचाल के संदर्भ में जिस गिम्री या कृवि जाति का उल्लेख हो चुका है इसी से शक जाति को भी सम्बन्धित किया जाता है। शकों के तीन मुख्य वर्गों का उल्लेख

अन्यन्त्र हो चुका है। पुरातत्व संम्बन्धी नयी खोजों से शकों के प्राचीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। शका त्रिखोदा नोकीले टोप, पेटी में बंधे अचकन और चोगे, पाजामे और पूरे बूट पहनते थे। शकों के अवशेष क्रीमिया, नीपर नदी तथा ओडेसा के अतिरिक्त दक्षिण पूर्व रूस में कई स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। लगता है कि मृतक को पूरे राजसी वस्त्रों में पूर्व की ओर मुँह करके कब्र के बीच में दफनाया जाता था। उसकी पत्नियों, दासियों और नौकरों के गले घोंट कर उनको भी कब्र के निचले हिस्से में दफनाया जाता था। कब्र के फर्श पर सुन्दर कालीन बिछाए जाते थे। दीवारों को चोटकों (नमदों) से सजाया जाता था। घोड़े का शिरोच्छेदन करके वह भी कब्र में दफनाया जाता था। उसके साथ ही घोड़े का साईस भी गला घोंट कर मार कर रखा जाता था।

पुरातात्विक उत्खननों से पता चला है कि शक लोग काकेशस पर्वत के आर-पार हंगरी तक फैले थे किन्तु वे उस आर्य शाखा के थे जो ईरानी कही जाती है। कुछ पुराविद उनको तातारी या मंगोलियाई भी मानते हैं। यहूदी बाइबिल में मेश्कु या मेश्क कहे गये महाशक लोगों का वर्णन पहले हो चुका है। किन्तु महाभारत में भी मशक शब्द का प्रयोग हुआ है। मशक, मगान, मक, मन्दग सभी जातियाँ शकद्वीप की रहने वाली कही गई हैं। मग हख्मनीश शासन काल में सूर्य के उपासक पुरोहित थे (महा० ६-१२-३३)। शक जाति के निष्क्रमण का कारण उनका हूणों से दूसरी शती ई० पू० हुआ संघर्ष माना जाता है।

जब यूनान के शासकों की सत्ता ईरान में निर्बल पड़ने लगी तो पर्थिया के शासकों ने उससे लाभ उठाकर हरकानिया तक के उत्तरी ईरान के पहाड़ी प्रान्तों पर अपना अधिकार कर लिया। भारतीय पुराणों के पृथु आदि पात्र इसी पार्थव वंश के हैं। पार्थव या पहलव लोग भी यायावर कबीले थे। इनकी १८ रियासतें थी जिनमें ११ ऊँची जाति की मानी जाती हैं और सात नीची। इनमे से कुछ अपने-अपने पृथक सिक्के चलाते थे। भारतीय आर्यों की भाँति इनमें भी चार वर्ण थे। युद्ध करने वाले वर्ण को 'र्सावितियोर' (क्षत्री) कहा जाता था। पार्थियन अश्वारोही अजेय थे। उन्होंने ५३ ई० पू० कारहे के युद्ध में रोमन पदातियों को रौंद डाला था। पार्थव यूनानी संस्कृति के बड़े प्रेमी थे। अश्काबाद के निकट प्राचीन निशा नगर पार्थव माना जाता है। उनके समय के सिक्कों में यूनानी तथा भारतीय दोनों प्रकार के देवी देवताओं की आकृतियाँ अंकित मिली हैं। यहूदी धर्म को भी उनके समय में खुली छूट मिली थी। पार्थवों के सम्बन्ध में अनेक वीर उपाख्यान ईरान में प्रचलित हैं। अपनी वीरता के कारण ही उनको पहलव या पहलवान कहा जाने लगा। उन्होंने ही उस पुरानी फारसी का पूर्व ईरान में प्रचार किया जो पहलवी कहलाती है। संभवतः अर्जुन को पार्थ नाम उसकी वीरता की इस जाति मूलक अनुश्रुतियों के कारण दिया गया है।

कुषाण भारतीय शक

यू-ची या यूइश जाति का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है । इतिहासकार इस शब्द को महाभारत में वर्णित (२-२७-२६) ऋषिक शब्द का समानार्थी मानते हैं, यद्यपि य अक्षर भोट भाषा में ख उच्चारण होता है और यू-इ-सही खसिय कहे गये लोग हैं। ऋषिक लोग महाभारत के अनुसार परम कम्बोज के पड़ोसी थे। कम्बोज देश आमू दरिया का क्षेत्र कहा जाता था। अतः ऋषिक कहें या यू-इ-शि या यू-ची बात एक ही है। ये शक जाति की खस कही गई शाखा के लोग ही थे। बैक्ट्रिया में इन लोगों ने यूनानी सत्ता को उखाड़ फैंका।[2]

भारत में १५० ई० पू० के लगभग डिमेट्रियस द्वितीय ने मथुरा तथा पूर्व में पाटलीपुत्र तक आक्रमण किए थे। इसी वंश का राजा मिनिण्डर था जिससे संबन्धित बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्द पहनो है। मिनिण्डर के वंशजों को शकों[3] की इस ऋषिक उपजाति के हमलों का सामना करना पड़ा। इन आक्रमणकारियों का पहला राजा मोघ (मेवकी) सन् ४८-५३ ई० में पंजाब का सार्वभौम शासक बन गया। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसके वंशज ही मुरुण्ड कहे जाते हैं। मुरुण्डों को उपर्युक्त पार्थव कहे गए शासकों के नेता वनान ने पराजित कर दिया।

पार्थव

इस प्रकार पहली ईसवी सदी में पार्थव राज्य स्थापित हुआ। यूनानी पंजाब की राजभाषा बन गई। गुन्दफर्न या विन्दफर्न नामक शासक जिसका ईसाई धर्मग्रन्थों में उल्लेख है इसी वंश का था। कहा जाता है कि इसी काल में सेंट टॉमस भारत की यात्रा पर आया। पंजाब में सूद या सुल्गी कहे गए लोग इसी काल में सुग्ध (सुग्दानिया-गान्धार) से आकर बसे। इतिहासकार बुद्ध प्रकाश इनको ही चूलिक या शूलिक कहते हैं। (एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूप रेखा पृष्ठ ८४)।

तख्त वाही के शिलालेख से भी पंजाब के पार्थव राजा का उल्लेख मिलता है। पार्थव शासनकाल २१ ई० पू० से ४५ ई० माना जाता है। गार्डनर ने कुछ पार्थव शासकों के भारत से पाए गए सिक्कों से इस काल में थोड़ा परिवर्तन आँका है। (क्वाइन्स ऑफ ग्रीक एण्ड सिथिक किंग्स १८८६)। कुछ अन्य पुराविद पार्थव वंश का अन्त ६५ ई० मानते हैं क्योंकि ६५ ई० में ही गन्धार पर शक-कुषाण शासक ने अधिकार किया। कत्यूरी राजा ललित शूर देव के ताम्रपत्र में उसे पृथु के समान परम भट्टारक और दानशील कहा गया है। कुमाऊँ के यूनानियों से प्रभावित पार्थव राजा भी अपने को देवता मानते थे। पार्थवों का यह राज्य पंजाब से पूर्वोक्त गढ़वाल तक रहा होगा क्योंकि वे उत्तरापथ से चीन का रेशम और सुहागा, भोट देश का

रोम तक भेजने के माध्यम थे। कदाचित कुमाऊँ में प्रचलित पार्थिव पूजा के पीछे उस काल की नृप पूजा हो।

कदफिस

कुषाण उपर्युक्त यूइश कही गई जाति के ५ कबीलों में से थे। शनैः-शनैः इन्होंने अपने अन्य कबीलों पर भी अपनी अधिसत्ता स्थापित की[४]। यह घटना २० या ३० ई० पू० की मानी जाती है। इसी समय कुषाण नेता कदफिस ने कपिशा पर अधिकार करके अपने सिक्के चलाए। उसके पुत्र वीमा और फिर पौत्र कनिष्क ने पूर्व की ओर बढ़कर पंजाब, कश्मीर, गढ़वाल तथा कुमाऊँ पर अधिकार किया।[५]

कुछ इतिहासकारों का मत है कि शाके संवत् जो ७८ ई० से प्रारम्भ होता है वह कनिष्क का चलाया है। नैपाल और तिब्बत के पार भी कनिष्क का राज्य था। उसके सिक्के गोरखपुर-गाजीपुर में भी मिले हैं। सारनाथ की खुदाई से उसके बैक्ट्रिया के महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप वनस्पर के लेख मिले हैं। मध्य एशिया में तारिम नदी के पार पामीर के उस ओर तक उसका अधिकार था। पश्चिम में उरार्तू और क्रीमिया तक उसकी धाक थी। (बुद्ध प्रकाश—पृष्ठ ८५)

कनिष्क के बाद बझेष्क, हुविष्क, कनिष्क द्वितीय तथा वासुदेव ने राज्य किया। पश्चिम के विशाल साम्राज्य में ससान राजाओं ने अपने को 'कुशानशाह' घोषित करके राज्य चला दिया। पंजाब और गढ़वाल कुमाऊँ में इसी समय कतोर या कत्यूर राज्य स्थापित हुआ। ये सभी अपने को कंक (कनिष्क) के वंशज मानते थे। शाक, शलिद और गदहर वंश के राजाओं की छोटी-छोटी रियासतें पंजाब में भी अस्तित्व में आईं।

शक कुषाण काल में जैसा पहले कहा जा चुका है कुमाऊ एशिया के अन्य देशों के सम्पर्क में आ गया। वाणिज्य, व्यापार, कृषि उपकरण, हथियार आदि के उपयोग में नई विधियों का प्रयोग होने लगा। भारत (संभवतः कुमाऊँ) का लोहा रोम तक जाने लगा। 'रोमन सम्राटों ने पार्थवों से खटपट के कारण कुषाणों से मित्रता की। कुषाणों के द्वारा पूर्व का माल—चीन का रेशम और भारत के कपड़े, मसाले, धातुएँ और अन्य सामान—रोम जाता था, मानसून की खोज से मिस्र और भारत के मध्य जल यात्राएँ सुगम हो गईं। पश्चिम के व्यापारी जुलाई में चलकर ४० दिन में मालाबार पहुँच जाते और तीन मास वहाँ रहकर दिसम्बर में लौट जाते थे। हिन्दुस्तानी दक्षिण अरब, मिस्र, हब्स, और पश्चिमी जगत में बसने लगे तो यूनानी, रोमन, गाथ और पश्चिमी योरोप के लोग पश्चिम और दक्षिण भारत में अपनी बस्तियाँ बसाने लगे।' (बुद्ध प्रकाश-वही—पृष्ठ ८७)

कुषाणों के सिक्के हब्स (अफ्रीका) तथा गाल (जर्मनी) तक में पाए गए हैं।

रोमन सिक्के भारत वर्ष में लगभग ६८ स्थानों पर मिले हैं। रोमन सम्राट् नीरो का एक सिक्का सुगद् में तिरमिज से ६८ किलोमीटर उत्तर खैराबाद के टीले की खुदाई से मिला है। कुषाणों की टकसालों में जो सिक्के ढलते थे उन पर रोम नगर की देवी रोमा की मूर्ति अंकित है। भारत में रोमन सोने के सिक्के का नाम **दीनार** संस्कृत साहित्य में मिलता है। प्लीनी के अनुसार भारत से शकर, नील, चिरायता, इलायची, काली मिर्च (जो यवन प्रिय कहलाई जाने लगी थी), अदरक, चुक्र (खटाई), कटहल, केला, नारियल, रेशमी कपड़ा आदि रोम जाता था। इनका व्यापार का मूल्य प्लीनी के अनुसार आठ लाख पौण्ड था। भारतीय वस्तुएँ रोम में जाकर सौ गुने दाम पर बिका करती थीं। शक कुषाणकाल में साहित्य की धाराओं और विधाओं में भी युगान्तरकारी परिवर्तन हुआ। बुद्ध चरित, सौन्दरानन्द, सारिपुत्र प्रकरण महायान सूत्रालंकार नामक ग्रन्थ इसी काल में लिखे गए।

कौशाम्बी की खुदाई से प्राप्त कुषाण कालीन प्रासाद नयी शैली की वास्तुकला का उत्तम उदाहरण है। मूर्तिकला में गान्धारशैली का विकास इसी काल में हुआ। उत्तरापथ इस काल में बोधिसत्व की अनेक कहानियों का आदर्श स्थल माना जाने लगा।[६] बौद्ध लोग बोधिसत्व के गुणों को "पारमिता" कहते हैं। बौद्ध विद्वानों ने इन आदर्शों को लेकर जो जातक रचे उनमें व्याघ्री जातक से मिलती हुई जातक कथा उत्तरापथ की उत्पलावती नगरी की महिला रूपावती के त्याग और बलिदान की है। जातकों में यक्ष सुन्दरता और सौन्दर्य के भी उपमान हैं। यक्ष मूर्तियों के ही आधार पर बुद्ध मूर्तियों की रचना कुषाणकाल में हुई। स्वयं बुद्ध शाक्य सिंह कहे जाते हैं। शाक्य शब्द शक जाति से ही सम्बन्धित है। बुद्ध के मुख्य शिष्य विल्व काश्यप, गाय काश्यप तथा नदी काश्यप उसी कश्यप जाति के थे जो कस्सी (खस) जाति से सम्बन्धित है। कनिंघम काश्यप देश को गान्धार मानता है। भाण्डारकर ऋग्वेद में आए हुये काशि शब्द को कस्सी जाति से ही सम्बन्धित मानते हैं।

सन्दर्भ और टीपें

१—पार्थियन शासक सैल्युकस वंशजों से २४६ ई० पू० स्वतन्त्र हुए। इसी समय डियोडोटस प्रथम ने भी अपने को शकों की आधीनता से मुक्त किया। (दि हेरिटेज ऑफ पर्सिया रिचर्ड एन० फ्राई—पृष्ठ १६९)

२—ग्रीकोबैक्ट्रियन राज्य का संस्थापक यूथीडिमस था। इसने पूर्वोक्त डियोडोटस को पराजित करके हिन्दूकुश के उत्तर में स्वतंन्त्र सत्ता संभाली। यूथीडिमस को सीरिया के अन्तिओक तृतीय ने आकर पराजित किया। इस अभियान में अन्तिओक तृतीय की हिन्द के शासक सुभगसेन (सोफगसनस) से भेंट हुई। रिचर्ड फ्राई के अनुसार सुभगसेन उस समय मध्य एशिया तथा सुग्द का राजा था।

३—तक्षशिला का शक शासक मेउस था जो उदयन की ओर का था। उसके उपरान्त दो ग्रीक शासक एपोलोडोटस और हिप्पोस्ट्रेटस आए, तदनन्तर अजिस नाम का एक राजा हुआ जो शक था। गान्धार के प्राचीन स्थानों के उत्खनन से शकों और हिन्द यवनों के राज्यकाल में बड़ी असंगतियां मिलती हैं। यह कहा जा सकता है कि पार्थव राजाओं के पंजाब और हिमालय की घाटियों में अधिकार जमाने के उपरान्त भी झेलम की कुछ घाटियों में यत्र-तत्र कुछ ग्रीक राजा राज्य करते रहे होंगे। (वही पृष्ठ १७३)

४—कुषाण जाति ने अपनी सगोत्रीय जिन चार उपजातियों को पराजित करके अपने को सर्वोपरि बनाया, उसका उल्लेख चीनी और यूनानी दोनों स्रोतों से मिलता है। (ग्रीक एण्ड शकाज इन इंडिया-मार्शल तथा तक्षिला २-७६४ जर्नल रा० ए० सी० (१६४७ ई०)।

५—दुरा एण्ड दि प्रोब्लम ऑफ पार्थियन आर्ट-येल क्लासिकल स्टडीज–५ (१६३५ ई०)।

६—आचार्य नागार्जुन के 'महाप्रज्ञा पारमिता शास्त्र' में जिसे कुमारजीव ने ४०४ ई० में चीनी में भाषान्तरित किया, महायान को बुद्धयान कहा गया है। डा० बुद्ध प्रकाश के अनुसार महायान की सारी पृष्ठभूमि कुषाणकालीन उत्तरापथ की है। वहाँ उस युग में जो व्यापारिक, औद्योगिक और लौकिक संवृद्धि का ज्वार आया, उसने बौद्ध धर्म को सार्वभौम रूप देकर महायान में परिणत कर दिया। (एशिया के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा–बुद्ध प्रकाश—पृष्ठ ११५)।

गरुड़ (अल्मोड़ा) में पाए गए सिक्के

सन् १९७५ के अन्तिम मास में अल्मोड़ा जिले के गरुड़ विकास क्षेत्र के क्षेत्र विकास अधिकारी को अपने इलाके के पिगलों नामक गाँव में एक मकान की नींव खोदते समय कुछ पुराने सिक्के मिले हैं। ये सिक्के मटमैले दिखलाई देते हैं और विभिन्न भार के हैं। कुछ सिक्कों का भार १७.५ ग्राम है कुछ का १५.० ग्राम तथा कुछ का २०.० ग्राम। आकार में ये सभी सिक्के गोल हैं और सभी में सामने और पीछे एक ही प्रकार के मुद्रा लेख और एक ही प्रकार के चार खड़े चीड़ वृक्षों के मध्य बना मण्डप का चित्र है। मंडप के भीतर हिन्दी चार ४ का सा अंक है और इस अंक के ऊपर के दोनों सिरों पर एक एक दीपक सा बना है। मडप के ऊपर एक त्रिभुजाकार ध्वज का चिह्न है।

पूर्वकाल में कश्मीर से नैपाल तक का भूभाग खस देश[1] कहलाता था। मौर्यकाल में खस राजाओं के आधीन काश्मीर से लेकर नागाखासिया तक का भूक्षेत्र था। ईसा पूर्व पहली सदी में हिन्द यवन इस भूभाग के पश्चिमी प्रान्त पर कुछ काल के लिए अपना अधिपत्य स्थापित करने में सफल हुए। उसके उपरान्त कुषाण, फिर कुनिन्द तथा कालान्तर में यौधेय लोग कुमाऊँ गढ़वाल पर अधिकार करने में सफल हुए। काश्मीर के शासक की सहायता से एक बार खस देश के साही वंश के शासक ने काबुल पर भी आक्रमण किया था। उत्तर वैदिक काल में यह किरात देश कहलाता था। कुछ काल तक यह उत्तर पंचाल की राजधानी अहिछत्रा से भी शासित हुआ। सम्भवतः इसी काल में नाग क्षत्रपों या नाग शासकों ने पाताल भुवनेश्वर (पिथौरागढ़) को अपनी उत्तरी राजधानी बनाया।

गोनन्द

कुमाऊँ की नदी घाटियों के अतिपूर्व काल से ही बसने के प्रमाण उपलब्ध हैं। कत्यूर घाटी तो कत्यूरी राजाओं की राजधानी रही है। इन राजाओं ने उस बड़े साम्राज्य की स्थापना की जिसके अन्तर्गत वर्तमान कुमाऊँ मण्डल और रुहेलखण्ड तथा गढ़वाल के भूभाग भी सम्मिलित थे। बैजनाथ अल्मोड़ा संग्रहालय में कत्यूरी वास्तु और मूर्तिकला के कुछ उत्कृष्ट नमूने देखे जा सकते हैं। बैजनाथ गरुड़ घाटी में गोमती नदी के तट पर बसा एक छोटा सा सुन्दर स्थल है। कुमाऊँ की धरती में विशेषतः नदी घाटियों में पुरातत्व की विपुल सम्पदा भूगर्भ में छिपी पड़ी है। इन नदी घाटियों में अनेक बार बाढ़ों से क्षति पहुँची है। कई बार भीषण भूकम्पों

से प्राचीन भवन ध्वस्त होकर बार-बार बनाए जाते रहे हैं। गोमती की घाटी में बसा बैजनाथ भी पूर्वकाल में कर्वीरपुर कहा जाता रहा। सम्भवतः कश्मीर के गोनन्द वंश[2] के समय में जब कश्मीर के विद्वान दक्षिण भारत में राज दरबारों में बुलाये जाते थे और द्रविड़ और सिन्धु देश के लोग पहाड़ी राज्यों में बुलाकर वहाँ बसाए जाते थे। कर्वीरपुर भी दक्षिण के कर्वीरपुरम अथवा कवीरपट्टनम से आए हुए चेट्टियार व्यापारियों[3] का बसाया हुआ स्थल रहा होगा।

सिक्कों की आकृति

गरुड़ में पाये गये उक्त सिक्कों में एक ओर एक गोलवृत्त के नीचे टेढ़ी-मेढ़ी गोमूत्राकार पूँछ है। यह एक सरोवर और उससे निकलनी नदी का चित्र लगता है। इस चिन्ह के बाईं ओर एक और पशु आकृति है। किसी सिक्के में यह आकृति गदहे की सी लगती है, किसी में दो कूबड़ के ऊँट की सी तथा किसी में छः मुखों वाले किसी अन्य जन्तु की। ठीक इसी प्रकार की आकृति शक पह्लव शासक अजेस (Azes) के सिक्कों पर भी अंकित मिलती है जिसे विक्रमी संम्वत का प्रवर्तक माना जाता है। आकृति के सिर पर छोटी छोटी खड़ी चार लकीरें भी किसी सिक्के में दिखलाई देती हैं। ये दो सींग और दो कान मान लिये जाँय तो इस आकृति को नन्दी (सांड) भी माना जा सकता है। इस आकृति के उपरान्त सिक्के पर पाँच संयुक्त अक्षर है पहला अक्षर प्राचीन ब्राह्मी ब (अथवा फोनेसियन बे या बीटा) के ऊपर एक बाण का चिह्न है। दूसरा अक्षर X सा तथा तीसरा ब्राह्मी का आ मात्रा युक्त ह्य या मा हो सकता है।

अल्मोड़ा सिक्के

इस प्रकार के सिक्के पहले भी अल्मोड़ा में पाए जा चुके हैं। कुछ मुद्रा शास्त्रियों ने उन्हें कुनिन्द राजाओं के तथा कुछ अन्य ने योधेय (यौधेय) क्षत्रपों के सिक्के कहा है। वास्तव में यौधेयों और कुनिन्दों के सिक्कों में अधिक अन्तर नहीं है। कुनिन्द शब्द गोनन्दि या गोनन्द है। यह वही राजवंश है जिसका काश्मीर में अन्तिम बार २४ ईस्वी पूर्व से ५५६ ईस्वी तक राज्य रहा। पुराणों में इसीलिये इस पर्वतीय प्रदेश को गोनन्दि अथवा नन्दिनी गौ की सन्तान से उत्पन्न लोगों द्वारा शासित कहा गया है। गोनन्द वंश का राजा मित्रगुप्त (राज्यकाल ११८ से १८५ ईस्वी) ही शकारि[4] नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके राज्य में खस देश का कुछ भूभाग सम्मलित था। राजतरंगिणी के अनुसार खस देश के शासक और काश्मीर के गोनन्द वंश के मध्य परस्पर वैमनस्य भी था। एक बार तो काश्मीर का शासक क्षेमगुप्त खस देश के शासक द्वारा पराजित होने पर उसके ३६ गाँवों को लौटाने के लिए भी विवश हुआ था।

लैन्सडाउन सिक्के

यौधेयों के कुछ सिक्के लैन्सडाउन (प्राचीन कालापहाड़) से भी प्राप्त हुए हैं। यौधेयों का इष्टदेव षण्मुख ब्रह्मण्यदेव (कार्तिकेय) था। कार्तिकेय के उपासक लोगों को मत्तमयूरिका लोग भी कहा गया है। मयूर वंश के इन पहाड़ी राजाओं ने एक बार इन्द्रप्रस्थ पर भी अधिकार किया था।[५] इसके ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। यौधेयों ने ही शक क्षत्रप रुद्रदामन से लोहा लिया था। उनका राज्य हिमालय की उपगिरिश्रृंखला से दक्षिण में भरतपुर तक था। यौधेयों के पहली सदी ईस्वी पूर्व के सिक्कों पर "बहुधानेके यौधेयानाम्" शब्द अंकित मिलते हैं। बहुधानेके शब्द से मुद्रा शास्त्रियों तथा पुराविदों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यौधेयों की टकसाल बहु धान्यक नामक स्थान पर थी। उनके अनुसार यह रोहतक जिले में जहाँ यौधेयों के सर्वाधिक सिक्के और सिक्के ढालने के ढाँचे मिले हैं स्थित होगा।

अमोघभूति

कुनिन्द राजाओं के सिक्के यमुना, सतलज तथा व्यास नदियों की उत्तरी पहाड़ी घाटियों में पाए जाते हैं। एक कुनिन्द राजा अमोघभूति के खरोष्टी और ब्राह्मी में अभिलिखित सिक्के मिलते हैं। कुछ अन्य सिक्कों में शिव की मूर्ति और ब्राह्मी मुद्रालेख "भगवताः चत्रेश्वर महात्मनः" लिखा मिलता है। चत्रेश्वर का तात्पर्य अहिछत्रा का शासक भी हो सकता है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि छत्र इस जाति का राजचिह्न था। हिन्द यवनों के शासन की समाप्ति के उपरान्त अमोघभूति ने उनके पहाड़ी भूभाग को अपने राज्य में मिला लिया। यह भी विश्वास किया जाता हैं कि कुनिन्दों को कुलूतों (कुलू-कांगड़ा) के पर्वतीय राजाओं ने पराजित किया। अल्मोड़ा में पाए गए कुनिन्दों के सिक्कों को ऐलन ने 'ट्राइबल क्वायन्स' या कबीले विशेष के सिक्के कहा है। ईसा पूर्व पहली शती में उत्तर भारत में अन्य कबीले राज्य अर्जुनायन, उद्दहिक, नाग, कुलूत, मालव, शिवि, मद्रक, राजन्य, आभीर, यौधेय तथा उत्तमभद्र थे। ये राज्य कभी कुषाणों कभी हिन्द यवनों तथा कभी शक सम्राटों के आधीन थे। कुषाणों के पराभव के बाद ये फिर प्रबल हो गये थे। मगध के गुप्त शासन के सत्ताधारी होने पर समुद्रगुप्त ने इन राज्यों को अपने आधीन कर लिया था।

नाग

नाग वंश के राजा शिवदत्त, शिवपालित, हरिद(त)स अभिलिखित जो सिक्के अल्मोड़े में पाये गए हैं उन्हें कुषाण शासक कनिष्क प्रथम के अधीनस्थ राजाओं के सिक्के माना गया है। इन नामों में से कुछ नाम मथुरा के नाग वंश के दत्त वंशीय राजाओं के नामों से मिलते जुलते हैं। भारत में नाग वंश का कोई लिखित इतिहास

उपलब्ध नहीं है। उनके सम्बन्ध में पुराणों, शिलालेखों तथा सिक्कों से ही कुछ ऐतिहासिक सामग्री मिली है। मथुरा में रामदत्त, काम दत्त, भाव दत्त, शेष दत्त, आदि के सिक्के पाए गए हैं। वीरसेन नामक नाग के सिक्के मथुरा, बुलन्दशहर एटा तथा फर्रुखाबाद में मिले हैं। जब उत्तर पाँचाल की राजधानी अहिछत्रा थी तो छत्र इन नाग राजाओं का प्रतीक रहा होगा। अहि का अर्थ भी नाग है। कहीं-कहीं नाग शासकों को चत्रेश्वर (छत्रेश्वर) भी कहा गया है। महाभारत में अहिछत्रा को छत्रवती कहा गया है। हरिवंश पुराण तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी में अहिक्षेत्र और अहिछत्र नाम आया है। जैन ग्रन्थों में इसे अहिछत्रा कहा गया है।

मित्र राजवंश—

अब तक अहिछत्रा में अग्निमित्र, अणुमित्र, प्रजापति मित्र, इन्द्रमित्र, आयुमित्र, जयमित्र, ध्रुवमित्र इत्यादि मित्र शासकों के सिक्के मिले हैं। मथुरा के मित्र वंश शासकों में भी सूर्यमित्र, ध्रुवमित्र तथा विष्णुमित्र नाम सिक्कों में मिले हैं। (देखिए कनिंघम, क्वायंस आफ ऐंश्यंट इंडिया, पृ० ७३-७४ तथा एलन 'कैटलोग' पृ० १०७-१०९)। नागों का शासन काल लगभग दो सौ से ३५० ईस्वी माना जाता है। कुषाण सत्ता को उखाड़ने में नागों का बड़ा हाथ रहा है। कौशाम्बी, बिंध्य प्रदेश, पद्मावती, कान्तिपुरी मध्यप्रदेश से नागों ने तथा यौधेयों, मालवों और कुनिन्दों ने राजस्थान तथा उत्तर के पहाड़ी प्रदेशों से कुषाणों को भगाने में प्रमुख भाग लिया। नागों के समय में मथुरा और पद्मावती नगर बड़े समृद्ध नगरों के रूप में विकसित हुए। इसी काल में नाग स्थापत्य के मन्दिर, प्रासाद, मठ, स्तूप तथा अन्य भवनों का निर्माण हुआ। शैव धर्म की विशेष उन्नति हुई।

नाग उर्बरता-कर्मकाण्ड में

नाग वंश के राजा सर्प के उपासक थे। नाग प्राचीन भारत में ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी पूजे जाते थे। मिस्र के फराओ (शासक) के राजमुकुट पर फन उठाए हुए सर्प की आकृति बनी होती थी। प्राचीन सुमेर में तो सर्प अपनी केंचुली को प्रतिवर्ष उतार कर फिर नई केंचुली धारण करने से पुनर्यौवन प्राप्ति का प्रतीक समझा जाता था। उर्वरा कर्मकाण्ड (फर्टिलिटी कल्ट) में प्रायः सभी जातियों में यह विश्वास किया जाता था कि नाग या सर्प का यह गुण उसमें ईश्वरीय अंश के कारण है। मैसोपोटामिया के 'गिल गमिश के महाकाव्य' की मूल कथा का आधार ही अनेक कष्टों और मरणान्तक विपदाओं को झेल कर गिल गमिश द्वारा समुद्र के तल से "बूढ़े को फिर जवान बना देने वाली" जड़ी को उत्तनपिश्तिम दैत्य से प्राप्त करना है। जब गिल गमिश इस जड़ी को लेकर लौट रहा था तो मार्ग में एक सरोवर में स्नान करते समय सर्प ने उसको चुरा लिया। इसी कारण सर्प को पुनर्यौवन प्राप्त करने की

विशेषता प्राप्त हो गई। प्राचीन सुमेर में सर्प को स्वास्थ्य देव निंगिजिद्दा का पुत्र माना जाता था। यही विश्वास प्राचीन सुमेर से पारसिकों को और उनसे ग्रीक और रोमन लोगों को प्राप्त हुआ। आज भी दो नागों का चित्र ऐलोपैथी का सभी देशों में चिकित्सकों का मान्य प्रतीक है।

भारतीय पुराणों में नाग

भारत में नाग गाथाओं की बहुलता से भी उनके अत्यन्त प्रभावशाली होने का प्रमाण मिलता है। तक्षक, वासुकी, राजा परीक्षित की मृत्यु, जनमेजय की नाग पूजा, श्री कृष्ण का कालिय नाग दमन आदि अनेक प्रसंग पुराणों में नागों से सम्बन्धित हैं। खांडव वन दहन में भी नागों से हुए किसी संघर्ष की ऐतिहासिक घटना की छाप है। काश्मीर घाटी की रक्षा करने वाला नील नाग, नेपाल की बागमती घाटी का पुराना नाम नागह्रद, कुमाऊँ में नाग नाम के अनेक पर्वत तथा भूखंड नागों की सत्ता के ही द्योतक हैं। सर्वप्रथम ऐतिहासिक नाग शासक शिशुनाग लगता है। गणपति नाग तथा नाग सेन समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राजाओं में से थे। पुराणों के अनुसार विदिशा, कान्तिपुरी तथा पद्मावती के नौ नाग राजा अग्निनाग, स्कन्द नाग, विष्णु नाग आदि थे। स्कन्द गुप्त के पुत्र ने कुबेर नाग की कन्या से विवाह किया था। कुमाऊँ में नाग राजाओं से सम्बन्धित पाताल भुवनेश्वर (पिथौरागढ़) का अति प्राचीन स्थल है। द्वाराहाट में नागार्जुन मंदिर को दी गई गूंठ के अभिलेख प्राप्त हैं। वैसे सर्प ग्राम, क्रकोटक पर्वत, वासुकी, उर्गम, नागदेव, नागथान, नागपुर आदि तीस से भी अधिक स्थान नागों से सम्बन्धित हैं। बेणी नाग, पिंगल नाग आदि नौ नागों की मूर्तियाँ भी पाताल भुवनेश्वर में प्राप्त हैं। गरुड़ विकास क्षेत्र से जो उक्त सिक्के मिले हैं वे जिस गाँव में मिले हैं उसे विकास अधिकारी ने पिंगलों लिखा है। हो सकता है ये पिंगल नाग के ही समय के सिक्के हों क्योंकि सिक्कों के मध्य में गोल वृत्त और उससे निकली टेढ़ी मेढ़ी रेखा को जिसे मुद्रा शास्त्रियों ने झील से निकली नदी माना है वह नाग का सिर और उसकी पूंछ भी हो सकती है।

यौधेयों के सिक्के

पुरातत्व शास्त्री डा० के० पी० नौटियाल के अनुसार "यौधेयों का कुमाऊँ के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। कुमाऊँ में सर्वाधिक सिक्के यौधेयों के ही मिलते हैं।" यौधेयों का उल्लेख पाणिनि ने भी आयुधजीवी संघों में किया है। आयुधजीवी अर्थात् अपने शस्त्रों के ही बल पर जीविका उपार्जन करने वाले सैनिकों के संघ। प्राचीन काल में ऐसे संघ पश्चिम एशिया के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों की रक्षा करने के लिए राजाओं द्वारा वेतन पर नियुक्त किये जाते थे। पाणिनि के समय में यौधेयों का एक राज्य फारस के दक्षिण पूर्व समुद्र तट के किनारे था। इसका विस्तार

वर्तमान बलूचिस्तान तक था। यौधेयों के सर्वाधिक सिक्के रोहतक में मिले हैं। इनमें अधिकांश में 'यौधेयगण' शब्द का उल्लेख हुआ है। रोहतक के अतिरिक्त यौधेयों के जो गणराज्य गुप्त शासन के पूर्व उत्तर भारत में थे उनमें एक कुमाऊँ गढ़वाल में भी अवश्य रहा होगा। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यौधेयों की मुद्रा पर अंकित 'बहुधान्यक' शब्द कुमाऊँ-गढ़वाल के वर्तमान बधाण नाम से सम्बधित है।

बहुधान्यक तथा बधाण

प्राचीन कुमाऊँ गढ़वाल में पिंडर नदी की घाटी तथा गोमती-सरयू के उद्गम के स्थल बड़े उर्वरा थे। इन नदियों का यह रमणीक क्षेत्र आज भी बधाण कहा जाता है। उक्त पिंगलों गाँव जहाँ आलोच्य सिक्के पाए गए हैं उसी बधाण में स्थित हैं। गढ़वाल के बधाण परगने में कापीड़ी, कराकोट, खनसर, पिंडर वार, और पिंडर पार ये पट्टियाँ थीं। जोशीमठ से वान होता हुआ अति प्राचीन व्यापारिक मार्ग पिंडर घाटी के मार्ग से कत्यूर शासकों के पवित्र स्थल बागेश्वर को जाता था। बधाणगढ़ी नामक अति प्राचीन दुर्ग, आज भी इस इलाके के बीच की पर्वतमाला में, जो स्वयं भी बधाण फोरेस्ट रेंज कहलाती है ध्वंसावशेष रूप में पाया जाता है। बधाण की समृद्धि का एक शताब्दी पूर्व का वर्णन गढ़वाल जिले की दसवीं बन्दोबस्त रिपोर्ट में द्रष्टव्य है—"उत्तर की ओर मल्ला नागपुर तथा उर्गम के लोग तिब्बत के आयात किए हुए ऊन, नमक तथा सोहागा को चाँदपुर, देवलगढ़, दसौली ले जाकर उसके बदले में अनाज लेते हैं। बधाण विशेषतः पिंडर पार पट्टी में वहाँ के लोगों की आवश्यकता से बहुत अधिक अन्न उत्पन्न होता है। इस अन्न को वे लोग यातायात की कठिनाई के कारण कर्णप्रयाग ले जाकर बेचते हैं। गेहूँ और चावल हिमघाटों के पार से लाए हुए नमक के बदले उसी अनुपात में बदले जाते हैं। गावों में एक पँसेरी (काठ की माप) नमक के बदले दो पँसेरी चावल या गेहूँ दिया जाता है। मडुवा एक माप के बदले पाँच या छः माप लिया जाता है।" बधाण नाम जो अब पिंडर की घाटी के क्षेत्र तक ही सीमित है पूर्वकाल में अन्य क्षेत्रों में भी विस्तृत होगा क्योंकि नैनीताल जिले की एक चोटी का नाम ही बधाण चोटी है और यह चोटी भी कोटा भाबर की उर्वरा घाटी के मध्य है।

गरुड़ में प्राप्त सिक्कों के पृष्ठभाग पर जो चार सीधे खड़े चीड़ वृक्ष कहे गए हैं वे पाणिनि द्वारा वर्णित रूप चिह्न लगते हैं। मध्यवर्ती चौकोर के भीतर दुहरे चार का जो अंक है वह आहत मुद्राओं (पंच मार्कड) में अंकित प्लीहा का चिह्न है या फन उठाए हुए दो नागों का। एक सिक्के के परीक्षण से उसे ६०% ताँबा, ३०% लोहा, शेष जस्ता, निकिल आदि धातुओं के सम्मिश्रण से बना पाया गया है। इस भाँति ये सिक्के पुरातत्व तथा धातु विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। तथा

उत्तरापथ के किसी प्राचीन नाग शासक[८] के लगते हैं।

सन्दर्भ और टीपें

१—खस देश—केदारनाथ मंदिर से सम्बन्धित एक उक्ति है—केदारे खस मंडले अर्थात् केदारनाथ धाम खस मंडल में स्थित है।

२—राज तरंगिणी के अनुसार त्रिलोचन पाल नामक साही वंश के शासक ने जब गजनी पर आक्रमण किया था तो काश्मीर नरेश ने उसकी सहायता की थी।

३—कत्यूर–कार्तिकेयपुर–कत्यूर शासकों के आठवीं नवीं शताब्दी ईस्वी के पाँच ताम्रपत्र तथा एक शिलालेख उपलब्ध है। कुछ अन्य अभिलेखों का भी पता हाल ही में लगा है। काश्मीर का विद्वान विल्हण चालुक्य दरबार में राजकवि था।

४—राजतरिंगिणी में दी गई काश्मीर की वंशावली के अनुसार विक्रमादित्य वंश की समाप्ति पर मेधवाहन नामक गोनन्द वंश के राजा ने दुबारा काश्मीर में अपना राज्य स्थापित किया। मेधवाहन का प्रपौत्र मित्रगुप्त शकारि था। यही शकारि कुमाऊँ में सम्भवतः शक दत्त या शकादित्य कहलाता है।

५—दिल्ली के दैनिक हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित अंग्रेजी लेख—पुराने किले के पुरातत्विक उत्खनन से सम्बन्धित इस लेख में मयूर वंश के राजा तथा शक दत्त का उल्लेख हुआ है। (हिन्दुस्तान टाइम्स मैगेजीन० १९७२)

६—आर्क्योलौजी ऑफ कुमाऊँ-डाक्टर के० पी० नौटियाल—चौखम्बा सिरीज वाराणसी।

७—रिपोर्ट ऑन द टेन्थ सैटिलमेंट ऑफ द गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट-ई० के० पाव सी० एस०-इलाहाबाद नौर्थ वैस्टर्न प्रौविन्स एण्ड अवध गवर्नमेंट प्रेस १८९६।

८—पिंडवार क्षेत्र में मेकलताल और पांदुथल नामक स्थानों पर लोहे के तीरों तथा भालों के बड़े बड़े ढेर लगे हैं। स्थानीय लोग इन्हें आकाश से गिरी 'लू सैण' (लौह-सेना) कहते हैं।

गुप्त वंश के राजा और कुमाऊँ

कुषाण शासन के विघटन के उपरान्त उत्तर भारत में जिन राजाओं ने अपने छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए थे उनमें से एक राजा का नाम घटोत्कच गुप्त था। बारहवीं अखिल भारतीय ओरियण्टल कौंफरेंस में रीवा में पाए एक प्राचीन अभिलेख पर जिसमें घटोत्कच का उल्लेख हुआ है विचार विमर्श हुआ था उसमें उसे गुप्त वंश का संस्थापक कहा गया था। यों तो अपने नाम के अन्त में गुप्त शब्द को शातवाहन और शुंग राजा भी जोड़ते थे किन्तु घटोत्कच गुप्त के सभी वंशजों के नाम के अन्त में गुप्त शब्द जुड़ा हुआ है। कुछ इतिहासकार इस वंश के संस्थापक को श्री गुप्त भी मानते हैं। उसका पुत्र घटोत्कच गुप्त और पौत्र चन्द्र गुप्त प्रथम था। इस वंश के राजाओं के जो अभिलेख प्राप्त हैं उनमें महाराज श्री गुप्त, महाराज घटोत्कच गुप्त और महाराजाधिराज चन्द्र गुप्त लिखा मिलता है।

चन्द्रगुप्त के नाम के साथ महाराजाधिराज का लिखा जाना प्रमाणित करता है कि उसके दोनों पूर्वज क्षत्रप या महाक्षत्रप रहे होंगे अथवा किसी अन्य बड़े राजा के सामन्त, माण्डलिक या उपराजक रहे होंगे। (हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इन्डियन पीपुल-भारतीय विद्या भवन खण्ड ३) । श्री गुप्त का उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग (६७१-६९५ ईस्वी) ने किया है। उसके अनुसार चीन से भारत की ओर आने वाले यात्रियों के लिए श्री गुप्त के द्वारा ५०० वर्ष पूर्व बनाया गया एक मंदिर उसे मिला था।

घटोत्कच और कुमाऊँ

घटोत्कच का नाम काली कुमाऊँ के प्राचीन इतिहास के सन्दर्भ में भी हुआ है। आज भी काली कुमाऊँ की घाटी में घटोत्कच का मंदिर है और वहाँ घटकू एक देवता के नाम से पूजा जाता है। घटोत्कच का काली कुमाऊँ का मंदिर चम्पावत से एक मील पूर्व पुनगाड़ (फुंगर) के पास स्थित है। जनश्रुति के अनुसार घटोत्कच भीमसेन पांडव की राक्षसी पत्नी हिडिम्बा का पुत्र था। उसे अंग देश के राजा कूर्म ने पराजित करके मार डाला। अपने पुत्र की हत्या का बदला लेने के लिए भीमसेन काली कुमू आए और उन्होंने इस स्थान पर स्थित सरोवर को तोड़ कर लधिया (लोहावती) नदी का रूप दिया। (हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स-एटकिनसन १८८२ पृष्ठ ५०६) यद्यपि यह कथा पौराणिक भीम से सम्बन्धित हो चुकी है किन्तु अंग राजा का उल्लेख महत्वपूर्ण है और घटोत्कच के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का लक्षण है।

उसके सामन्त होने का एक और प्रमाण निकट ही डोमकोट के अति प्राचीन दुर्ग के अवशेषों से भी मिलता है। राहुल सांकृत्यायन कुमाऊँ के डोम कहे गए लोगों को रोमन नागरिकता प्राप्त लोग कहते हैं। सम्भवतः डोमकोट ग्रीको-रोमन शासक के घटोत्कच नाम के किसी महाक्षत्रप या क्षत्रप का दुर्ग रहा होगा। यह भी प्रमाणित हो सकता है कि रोमन काल में नमक की प्राप्ति का मुख्य स्रोत तिब्बत का यही सीमान्त क्षेत्र था और उत्तरापथ का यह राजमार्ग नमक मार्ग (साल्ट रोड) कहलाता था। अंग्रेजी का वेतन का समानार्थी सैलरी शब्द नमक के प्राचीन महत्व को प्रमाणित करता है। प्राचीन काल में यह एक मूल्यवान वस्तु थी इसीलिए नमक वेतन के रूप में दिया जाता था। आज भी नमक हलाल अथवा नमक हराम जैसे शब्द स्वामीभक्ति तथा विश्वासघात के लिए उपयोग में आते हैं।

श्रीगुप्त के पूर्वज व्रात्य

चन्द्रगुप्त के सिक्कों में एक ओर कुमारदेवी की आकृति भी उत्कीर्ण है। उसके अधिकांश अभिलेखों में उसे लिच्छवी वंश की कन्या से विवाहित कहा गया है। यह मानो बड़े गौरव की बात हो। इस विशेषण से लगता है कि वह लिच्छवी लोगों से भी नीच जाति का था। ईसा पूर्व की पाँचवी-छठी सदी में उत्तर भारत के गणतंत्रों में लिच्छवी गणतंत्र सुप्रसिद्ध था। कौटिल्य ने लिच्छवी गणराज्य को राजशब्दोपजीव संघ कहा है अर्थात् राज्य के कुछ प्रतिनिधियों द्वारा शासित संघ जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त थे। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार लिच्छवी राज्य का शासन आठ या नौ सदस्यों की समिति करती थी।

मनुस्मृति के अनुसार क्षत्रिय व्रात्यों (संस्कार हीनों) से उत्पन्न लोग झल्ल, मल्ल, लिच्छवी, नट, करन और खस हैं। इसी स्मृति के अनुसार वैश्य पिता और क्षत्रिय माता से उत्पन्न सन्तान मागध कही जाती है। डा० एस० सी० विद्याभूषण लिच्छवी लोगों को पश्चिम एशिया (ईरान) से आकर हिमालय में बसी हुई जाति कहते हैं। स्पष्ट है कि यह जाति कस्स जाति समूह की उन असुर अथवा शूद्र कही हुई जातियों में से एक होगी जिन्हें पश्चिम एशिया से निर्वासित होकर हिमालय की उपत्यका में आकर बसना पड़ा होगा। इस भाँति घटोत्कच का राक्षस या असुर कहा जाना उसके पश्चिम एशियाई खस अथवा उसके सम्बन्धी असुर जाति का वंशज होने का द्योतक है। चन्द्रगुप्त के साथ महाराजाधिराज आस्पद का लगना प्रमाणित करता है कि उसका विवाह लिच्छवी वंश के साथ होने से उसे मगध का राज्य भी मिल गया होगा। तदनन्तर चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के सम्मिलित शासन के सिक्के प्रचारित किए गए होंगे। काली कुमाऊँ का मगध के साथ दुलू (नैपाल) के माध्यम से परम्रागत सम्बन्ध के प्रमाण कराचल्लदेव के उस अभिलेख से भी मिलते हैं जिसका उल्लेख आगे किया गया है।

गुप्त राजधानी

आरम्भिक गुप्त राजाओं की ही नहीं, बाद के राजाओं की राजधानी के विषय में भी इतिहासकारों में मतभेद है। डा० बेणी प्रसाद के अनुसार समुद्र गुप्त के समय में राजधानी पाटलीपुत्र से उठकर अयोध्या आ गई थी। कुछ अन्य इतिहासकार राजधानी के प्रयाग, कन्नौज अथवा बनारस में स्थित होने की सत्यता को प्रमाणित करते हैं। (हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता-बेणीप्रसाद १९३१ पृष्ठ ३८४)। डा० बेणी प्रसाद के शब्दों में "पाटलीपुत्र में या कहीं आसपास तीसरी ईस्वी सदी में गुप्त नामक एक राजा राज्य करता था। उसका लड़का था घटोत्कच। घटोत्कच के बाद उसका लड़का चन्द्रगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा। उसने ३०८ ईस्वी के लगभग लिच्छवी राजकुमारी से विवाह किया और जान पड़ता है कि दोनों राज्यों को संयुक्त कर दिया। उसके सिक्कों पर कुमार देवी का चित्र है और पीछे लिच्छवयः लिखा हुआ है। शक्ति बढ़ जाने पर चन्द्रगुप्त ने तिरहुत, दक्खिन बिहार और अवध के आसपास के प्रदेशों पर भी अपनी सत्ता जमाई और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। ३२० ई० में शायद एक महान अभिषेक के बाद उसने एक नया सम्वत् अर्थात् गुप्त संवत् चलाया जिसका प्रयोग कई सदियों तक बहुत से प्रदेशों में होता रहा। चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य से गुप्त साम्राज्य प्रारम्भ होता है। ३३० या ३३५ ईस्वी स० में उसके मरने पर उसका लड़का समुद्रगुप्त जो लिच्छवी कुमारदेवी से था गद्दी पर बैठा। समुद्रगुप्त दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। आर्यावर्त में उसने बहुत से राजाओं पर अपनी प्रधानता जमाई और बहुतों के राज बिलकुल छीन लिये।" (वही पृष्ठ ३८१-३८२)

कर्तृपुर (कत्यूर)

समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के अशोक स्तंभ पर खुदी हुई हरिषेण की प्रशस्ति में पराजित राजाओं में कर्तृपुर का नाम नैपाल के बाद दिया गया है इसीलिए इतिहासकारों में इसे कार्तिकेयपुर अथवा कत्यूर कहा है। वास्तव में कत्यूर के ताम्रपत्रों में राजकर्मचारियों और अधिकारियों की जो सूची दी गई है उसकी नामावली पर गुप्त शासकों के अधिकारियों के पद नामों की स्पष्ट छाप है। समुद्रगुप्त को अपने पूर्वजों के काली कुमू राज्य से सम्बन्धित होने के कारण इस पर्वतीय भूभाग पर अधिकार करने में सुविधा हुई होगी। डा० बेणी प्रसाद के अनुसार "इनके अलावा और भी बहुतेरे राजाओं को समुद्रगुप्त ने जीता था। जंगली जातियों पर भी उसने सत्ता जमाई थी और सीमा प्रान्त के जाति नायकों को भी बस में किया था। पंजाब की ओर अनेक गणराज्य या प्रजातंत्र राज्य बन गए थे। उनके पास बड़ी-बड़ी सेनाएं थीं। उनके निवासी बहुत युद्ध प्रिय थे। वह ईस्वी पूर्व चौथी सदी के उन प्रजातंत्रों की याद दिलाते हैं जिन्होंने बड़ी वीरता से सिकन्दर का सामना किया था। इन सब

को जीतकर समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में मिला लिया। उत्तर के और राज्यों को जीतने के बाद समुद्रगुप्त ने दक्खिन में प्रवेश किया।" (वही पृष्ठ ३८२)

चन्द्रगुप्त द्वितीय

सन् ३७५ ईस्वी के लगभग समुद्रगुप्त के देहान्त के उपरान्त उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र को जीतकर अपने राज्य में मिलाया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उपरान्त सन् ४१३ ई० में कुमारगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा। इसी समय पुष्यमित्र नामक जाति के राजाओं ने गुप्त साम्राज्य से युद्ध छेड़ा और पुष्यमित्र की सेनाओं को पराजित होना पड़ा। कुमार गुप्त के उपरान्त स्कन्दगुप्त तथा उसके बाद हूणों के आक्रमण के कारण पुरगुप्त के समय में गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। पुरगुप्त का उत्तराधिकारी नरसिंह गुप्त हुआ जिसने नालन्दा के विश्व विद्यालय की स्थापना की। पुरगुप्त बालादित्य भी कहलाता है। उसके उपरान्त कुमार गुप्त द्वितीय के समय में लगता है कि फिर उत्तर में अनेक छोटे-छोटे राजाओं ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए थे।

तोरमाण

सन् ५०० ईस्वी के लगभग हूण सरदार तोरमाण ने मालवा तक अपना शासन स्थापित किया और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। तोरमाण के पुत्र मिहिरगुल (मिहिरकुल) की राजधानी शाकल सम्भवत: सहारनपुर देहरादून की सीमा पर स्थित भग्नावशेष शाकल है जो अब शाकम्बरी देवी के नाम से जानी जाती है। गुप्त साम्राज्य के विषय में चीनी यात्री फाहियान (४०५-४११ ई०) के यात्रा वर्णन से अनेक बातें ज्ञात होती हैं। गुप्त शासन काल के शिलालेखों में महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक उपाधियाँ राजाओं के नाम के साथ लिखी मिलती हैं। साम्राज्ञी महादेवी कहलाती थी और बड़ा लड़का कुमार भट्टारक या युवराज कहलाता था। साम्राज्य के मुख्य अधिकारियों में महासेनापति, भटाश्वपति, संधिविग्रहिक, महासन्धिविग्रहिक, महादण्ड नायक, दण्डाधिप आदि नाम कत्यूरी ताम्रपत्रों के समान हैं। जिले के लिए विषय नाम कत्यूरी शिलालेखों में भी है और गुप्त राजाओं के ताम्रपत्रों में भी।

फाहियान

फाहियान चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में स्थल मार्ग से चीन से भारत आया था और जल मार्ग के द्वारा चीन वापस गया था। उसके साथ चार अन्य यात्री भी भारत में आये थे। फाहियान ने लगभग सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और तीस देशों के विषय में विस्तृत सूचनाएँ दी हैं। उसके अनुसार गुप्त कालीन भारत की आर्थिक स्थिति कृषि परक थी। जमींदारी प्रथा नहीं थी। कृषि योग्य भूमि पर परि-

वारों तथा व्यक्तियों का अधिकार था। यही कृषि परक भूमि के जमींदार विहीन स्वामित्व की प्रथा कुमाऊँ में आज भी है तथा कत्यूरी राजाओं के शासनकाल में भी थी। चन्द्रगुप्त के शासन काल में भूमि की उपज पर उसकी उर्वरता के अनुसार चौथाई से सोलहवें भाग तक कर के रूप में लिया जाता था। समस्त प्रकार के धातु उद्योग इस समय उन्नति पर थे। लोहे की कला का उदाहरण दिल्ली में कुतुबमीनार के निकट की लोहे की मीनार है।

लौहित्यदेश—

गुप्त काल में विविध उद्योगों में लगे व्यवसायियों की श्रेणियों तथा व्यापारिक संघों का पर्याप्त महत्व था। कुमारगुप्त के मन्दसौर के लेख में एक पटकार श्रेणी का उल्लेख आया है। जो लाट देश से आकर दसपुर में निवास करने लगी थी। सम्भवत: इसी काल में काली कुमाऊँ में आये पटुवे (पटकार) लोग कालान्तर में इस नाम से कुमाऊँनी में जाने जाते रहे। इस काल के सिक्कों पर यूनानी सिक्कों का व्यापक प्रभाव भी यह सिद्ध करता है कि गुप्त वंश के राजा पश्चिमोत्तर भारत के ग्रीको रोमन कहे गए शासकों से सम्बन्ध थे। कुमू (काली कुमाऊँ) का लोहे के बर्तन बनाने का उद्योग बहुत पुराना है। कुमू के लोहारों के बनाए हुए भदेले और जबरिये (हंडे और बड़े कटोरे) आज तक भी मेलों में बिकने लाए जाते हैं। काली पार का क्षेत्र ताँबे के उद्योग के लिए प्रसिद्ध रहा है। नैपाल शब्द ताँबे का पर्यायवाची है। काली कुमू गुप्त राजाओं के समय में लोहे ताँबे के उत्पादन के लिए प्रसिद्धध रहा होगा। सम्भवत: धातुओं के उत्पादन के कारण ही इसे लौहित्य (लोहा घाट, लोहावती घाटी) देश नाम दिया गया होगा। कुमार गुप्त के पौत्र महासेन गुप्त द्वारा लौहित्य देश पर अधिकार करने का इतिहासकारों ने उल्लेख किया हैं। काली (शारदा) जो सरयू की सहायिका है काली कुमाऊँ को इस नदी मार्ग से अयोध्या से जोड़ती है।

बाण भट्ट का 'हर्ष चरित' और कुमाऊँ

गुप्त काल में कुमाऊँ रूहेलखंड के कत्यूरी राज्य को सभी इतिहासकार प्रयाग के अशोक स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति के विजित देश कर्तृपुर नहीं मानते हैं। इसका उल्लेख पहले भी हो चुका है। डा० राय चौधरी और मिस्टर फ्लीट इसे कर्तारपुर (पंजाब) मानते हैं किन्तु श्री भण्डारकर और डा० वासुदेव शरण अग्रवाल इसे कत्यूर घाटी ही मानते हैं। हर्ष के समय में बाण भट्ट कृत 'हर्ष चरित' में कर्तृपुर के शासकों को शक जाति के कहा गया है। राज शेखर कृत काव्य मीमांसा में इन्हें खस लिखा गया है। समुद्र गुप्त की दिग्विजय के समय पाँच सीमान्त पर्वतीय राज्यों का उल्लेख हुआ है। वे हैं दबाक, नैपाल, कामरूप, समतट और कर्तृपुर।

ये पाँचों राज्य समुद्र गुप्त को कर देते थे। नैपाल[1] को वर्तमान नैपाल के आकार का मानना एक भ्रान्ति होगी। तब नैपाल बागमती घाटी के अनेक राज्यों में से एक छोटा सा राज्य था जिसमें लिच्छवी वंश के राजा राज्य करते थे। अठारहवीं सदी तक भी यही स्थिति थी।

इतिहास के शोधकर्ता प्रवक्ता श्री तारा चन्द्र त्रिपाठी 'हर्ष चरित' में वर्णित कथा को कत्यूरी राजा से जोड़ते हैं। उनके अनुसार—"ऐसा लगता है कि समुद्र गुप्त की मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य की राजधानी से सुदूर स्थित इस राज्य ने कर देना बन्द कर दिया होगा और पिता के पद चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करते हुए नये सम्राट् शर्मगुप्त या रामगुप्त ने कर्तृपुर की ओर अभियान किया होगा किन्तु शकाधिपति ने एक अन्य पहाड़ी मार्ग से आकर उसे संकीर्ण पर्वतीय घाटी में घेर लिया और मुक्ति की आवश्यक शर्त के रूप में रामगुप्त से महारानी ध्रुव देवी को समर्पित करने के लिए कहा। क्लीव और कापुरुष रामगुप्त ने शकाधिपति की इस शर्त को मान लिया। (देखिए देवी चन्द्र गुप्तम् पर टिप्पणी श्री रमेश चन्द्र मजूमदार) शकाधिपति की इस उद्दण्डता और बड़े भाई की कापुरुषता से क्रुद्ध होकर चन्द्र गुप्त द्वितीय ने स्त्री के वेश में छिप कर शत्रु के ही नगर में दूसरे की पत्नी पर आशक्त शकाधिपति को मार डाला। (अरिपुरे च पर कलत्रकामुकं कामिनीवेश गुप्तः चन्द्रगुप्तः शकपत अशापयत—हर्ष चरित उ०—६) और इसके बाद ही नये षड्यत्रों में रत रामगुप्त को मार कर चन्द्र गुप्त द्वितीय ने गुप्त साम्राज्य की बागडोर एवं शकारि की उपाधि ग्रहण की। चन्द्र गुप्त का राज्याभिषेक एवं शकारि की उपाधि ग्रहण करने का महोत्सव जिस स्थान पर मनाया गया, लोगों ने उस स्थान का नाम भी शकारि रख दिया और कालान्तर में इस शकारि शब्द के अपभ्रंश होने से शकार शब्द बना। यह स्थान (शकार) अल्मोड़ा से ११ मील की दूरी पर स्थित है। इसके समीप ही कोसी के तट पर ब्रह्मेश्वर देवकुल का मंदिर जीर्ण शीर्ण अवस्था में आज भी स्थित है। ब्रह्मेश्वर देवकुल समीपे पट्टवायकदत्ति मध्यमारक क्षेत्र (विष्णु वर्मन का तालेश्वर ताम्रपत्र छठी शताब्दी) के अनुसार ब्रह्मेश्वर देवकुल के समीप ही (पट्ट) रेशम का व्यवसाय करने वालों ने मध्य भारत नाम का खेत वीरणेश्वर के मंदिर को अग्रहार (गूंठ) में दिया।" (श्री ताराचन्द्र त्रिपाठी का लेख—भारतीय इतिहास की विस्तृत रंगभूमि-"स्मारिका" अल्मोड़ा १९७३)

दस बारह मकानों के शकार जैसे छोटे से गाँव को शकारि के राज्याभिषेक से सम्बन्धित करना और निरे कल्पनाप्रसूत कथानक से कर्तृपुर को जोड़ना ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रान्तिमूलक है।

अन्तिम गुप्त राजा

अन्तिम गुप्त शासकों में कुमार गुप्त का उल्लेख अमसाड़ के शिलालेख में मिलता है। उसकी मृत्यु सम्भवतः मोखरी राजा के साथ हुए युद्ध में प्रयाग में हुई थी। उसके पुत्र दामोदर गुप्त और पौत्र महासेन गुप्त ने मौखरी राजाओं से संघर्ष किए। वाणभट्ट के हर्ष चरित में गौड़ देश को गुप्त शासकों से मुक्त करने वाले शशांक का उल्लेख है। यह शशांक एक ऐतिहासिक व्यक्ति ज्ञात होता है। रोहतासगढ़ की एक शिला पर खुदे लेख में इसे महासामन्त शशांक कहा गया है। शशांक की राजधानी कर्णसुवर्ण थी। शशांक के मूल स्थान तथा इस राजधानी की स्थिति का अभी तक पता नहीं लगा है। गुप्त काल में व्यापारिक काफिले स्थल मार्ग से पश्चिम एशिया की मंडियों तक आते जाते थे। इन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों की रक्षा आयुधजीवी संघ के लोग जो यौधेय कहलाते थे किया करते थे।

सम्भवतः शशांक गुप्त राजाओं का यौधेय सरदार रहा हो जिसने कालान्तर में स्वयं गौड़ देश पर अधिकार कर लिया हो। शशांक शब्द ईरान के तत्कालीन ससान (अंग्रेजी ससानिड) वंश से सम्बन्धित हो सकता है। गौड़ देश के शशांक का उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है। गुप्त वंश के एक अन्य राजा देव गुप्त ने शशांक से मिल कर कन्नौज के मौखरी राजा गृह वर्मन पर आक्रमण किया था। गृह वर्मन की हत्या करके उसकी पत्नी राजश्री को बन्दी बना लिया था। वह थानेश्वर के राजा की बहिन थी। अपनी बहिन को मुक्त करने के लिए जब थानेश्वर का राजा कन्नौज की ओर आ रहा था तो मार्ग में देव गुप्त से उसकी मुठभेड़ हुई और देवगुप्त मारा गया।

हर्ष का सम्बन्धी

शशांक के द्वारा गया में बौद्ध धर्म के विरुद्ध किए गए कार्यों का उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है। उड़ीसा के एक राजा शैलोद्भव ने शशांक को अपना अधिपति माना है। हूणों के आक्रमण से गुप्त कालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों को क्षति पहुँची। इन हूणों ने न केवल उत्तर भारत में वरन् योरुप तक जाकर रोमन राजमार्गों को नष्ट किया और रोम को भी लूटा। नैपाल में काठमांडू से उत्तर पूर्व आठ किलो-मीटर दूर चंगु नारायण के स्तम्भ पर सम्वत् ३८६ शाके का महादेव नामक राजा का एक अभिलेख है। इस राजा ने अपनी मां को मृत राजा की चिता पर सती होने से यह कह कर रोका था कि अन्यथा वह भी पिता की चिता पर कूद कर मर जायेगा। अंत में पुत्र की बात मानकर माता ने मृत राजा की अन्त्येष्टि की थी। नैपाल की राजवंशावली के अनुसार महादेव लिच्छवी वंश का बीसवां राजा था। इसी वंश के एक राजा जय देव को राजा हर्ष[२] की कन्या ब्याही गई थी। यह हर्ष

कौन था इसका निश्चय नहीं हो पाया है। इसी देव वंश के राजा शिव देव का सन् ७१४ ईस्वी का एक शिलालेख प्राप्य है जिसमें भोटविष्टि अथवा भोट देश को दिए जाने वाले वार्षिक कर का उल्लेख हुआ है। इससे पता चलता है कि नैपाल तब भोट (तिब्बत) का अधीनस्थ राज्य बन चुका था। (क्लासिकल एज भारतीय विद्याभवन)।

प्रभाकर वर्धन

हर्ष चरित के अनुसार कन्नौज पर शशांक तथा देव गुप्त ने मिल कर उस समय आक्रमण किया था जब थानेश्वर का रुग्ण राजा प्रभाकर वर्धन[3] मर रहा था और उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्य वर्धन सन्यासी होने की ठान रहा था। हर्ष चरित का रचयिता बाण भट्ट हर्ष का समकालीन था। उसने जैसा कि उसके लिए उचित भी था हर्ष के वंश की प्रशंसा की है और गुप्त वंश की हर्षवर्धन से शत्रुता होने के नाते गुप्त राजाओं की निन्दा की है। उसका वर्णन गुप्त वंश के प्रति पूर्वाग्रह पूर्ण है। प्रभाकर वर्धन को उसने छः विशेषण दिए हैं। हूण रूपी मृगों के लिए सिंह, सिन्धु राजा के लिए ज्वर, गुर्जरों के लिए महाविपत्ति, गान्धारों के लिए कफपित्त ज्वर, लाट देश के लिए नाशक तथा मालवा की लक्ष्मीलता के लिए कुठार। प्रभाकर वर्धन से पहले वर्धन वंश के तीन राजा आदित्य वर्धन, राज्य वर्धन और नर वर्धन हो चुके थे। आदित्य वर्धन की पत्नी का नाम महासेन गुप्ता देवी बताया जाता है। सम्भवत: तब वर्धन वंश गुप्तों का सम्बन्धी रहा होगा। प्रथम तीन वर्धनों के लिए केवल महाराज उपाधि प्रयुक्त हुई है जब कि प्रभाकर वर्धन के लिए महाराजाधिराज उपाधि का उपयोग हुआ है।

प्राग्ज्योतिष का राजदूत

राज्य वर्धन ने अपनी बहिन को विपत्ति में पड़ा देख कन्नौज की ओर प्रस्थान किया था। वह देवगुप्त पर विजयी हुआ था। किन्तु गौड़ राजा के विश्वासघात के कारण मारा गया था। इसी समय हर्ष वर्धन ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। मौखरी राजा को पराजित कर वह अपनी बहिन को जो विन्ध्याचल के जंगलों की ओर चली गई थी और चिता जला कर सती होने को थी उसने बचा लिया, कन्नौज लाकर उसे अपने पति के राज्य पर फिर शासन करने के लिए राजी कर लिया था। ह्वेनसांग का वर्णन इसके विपरीत है। वह हर्ष वर्धन को कन्नौज का राजा कहता है। थानेश्वर[४] का नहीं। पर्वत प्रदेश का उल्लेख हर्ष वर्धन की विजय यात्रा के सन्दर्भ में भी आता है। हर्ष चरित में कहा गया है कि प्राग्ज्योतिष के राजा ने अपना दूत हंसवेग हर्ष के पास भेज कर यह आश्वासन दिया था कि वह मालवा के विरुद्ध स्वयं थानेश्वर के राजा की सहायता करने के लिए आ रहा है।

संदर्भ और टीपें

१—राहुल सांकृत्यायन नैपाल शब्द को नेवाड़ी जाति से व्युत्पन्न नेवार, नेयार, नैपाल मानते हैं।

२ हर्ष नाम के पाँच राजा और भी हुए हैं जो लगभग उसी काल के हैं। जिस काल में हर्ष वर्धन ने राज्य किया। हर्ष गुप्त मौखरी (क्लासिकल एज-पृष्ठ ६७) हर्ष देव (वही-पृष्ठ १४१-१४४), हर्ष गुप्त (वही पृष्ठ २२१), हर्ष गुप्त जो सम्भवतः अन्तिम गुप्त वंशी राजा था (वही-पृष्ठ ७२) तथा हर्ष राज नाम का एक अन्य राजा (वही-पृष्ठ १६०)। इनमें से सम्भवतः हर्ष गुप्त मौखरी नैपाल में भी भाग कर गया अथवा रहा।

३—प्रभाकर वर्धन को कहीं-कहीं प्रतापशील भी कहा गया है।

४—प्रथम तीन वर्धन वंश के राजा थानेश्वर के ही शासक थे। तब थानेश्वर हर्ष चरित के अनुसार स्थानवीश्वर अथवा श्री कण्ठ भी कहलाता था।

———।

हर्ष के समय में कुमाऊँ

हर्ष के समय का समस्त भारत का वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरणों में सुरक्षित है। हर्ष ने सन् ६४१ ई० में अपना एक ब्राह्मण दूत कुछ अन्य आदमियों के साथ चीन के सम्राट् के पास भेजा था। चीन से भी सन ६४३ ई० में एक राजदूत तथा कुछ अन्य चीनी भारत में हर्ष के दरबार में आए थे। यह पारस्परिक सम्पर्क हर्ष के जीवनकाल तक ही बना रहा। हर्ष की मृत्यु के उपरान्त उसका मंत्री अर्जुन (अरुणाश्व) गद्दी पर बैठा। उसने चीन की ओर जाने वाले व्यापारिक काफिलों को लूट लिया। उनमें से अधिकांश को मार डाला। अनेक चीन वासी नैपाल के मार्ग से तिब्बत की ओर भाग गए। तिब्बत का राजा स्रोंगसन गम्पो चीन और नैपाल दोनों राजाओं से सम्बन्धित था। अर्जुन के हत्याकाण्ड पर उसने ७००० पर्वतीय सिपाहियों और १२०० तिब्बती सैनिकों को लेकर नैपाल स्थित चीन के राजदूत वंगह्यून्सी की अध्यक्षता में मगध पर चढ़ाई कर दी। कहा जाता है इस सेना ने तिरहुत पर अधिकार करके तत्कालीन भारत के ५३८ नगरों पर भी अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। अर्जुन को बन्दी बना कर चीन भेज दिया गया। इस प्रकार मगध और कुमाऊँ का हर्ष की मृत्यु के बाद नेपाल की ओर से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया।

ह्वेनसांग

ह्वेनसांग पश्चिमोत्तर मार्ग से कपिशा, बामियान होता हुआ भारत में आया था। वह लिखता है कि "प्राचीन काल में इस देश का नाम शिन्तु (सिन्धु ?) और फिर हीतनाव (हिन्दव ?) था। पर अब शुद्ध उच्चारण इन्तु है। इस देश के लोग अपने अपने प्रदेश के अनुसार विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। हम इस देश को इसके मुख्य नाम से इन्तु ही कहेंगे। इन्तु शब्द सुनने में भी सुमधुर है। चीनी भाषा में इसका अर्थ चन्द्रमा है। इन्तु देश पवित्र और महात्माओं का देश है जो चन्द्रमा के प्रकाश के समान समस्त संसार का मार्ग प्रदर्शन करते हैं। और इस देश की प्रतिष्ठा को बनाए हुए हैं। इसी कारण इसका नाम इन्तु है। इन्तु देश के निवासी वर्ण भेद के अनुसार विभक्त हैं। ब्राह्मण अपनी कुलीनता और सच्चरित्रता के कारण यहाँ विशेष प्रतिष्ठित हैं। इतिहास में इस वर्ण का नाम ऐसा आदरणीय है कि सामान्यतः इन्तु देश को ब्राह्मणों का देश कहा जा सकता है।"

सर्वप्रथम ह्वेनसांग काबुल घाटी में स्थित लैनपो, लमगान के पहाड़ी प्रदेश का वर्णन करता है। उसके अनुसार लमगान थोड़े ही दिनों से कपिशा के आधीन

है। लमगान के बाद वह नाक इलोहो (नगरहाट) का वर्णन करता है। जो सुर्खर और काबुल नदियों के मध्य के राज्य की राजधानी था। ह्वेनसांग की यात्रा का तीसरा देश गांधार है। गांधार से वह पुश्कलावती होता हुआ सोलाटुलो (शालतुरा) नगर में आता है। वह लिखता है—"यह वही स्थान है जहाँ पर व्याकरण शास्त्र के रचयिता महर्षि पाणिनि का जन्म हुआ था।" शालतुरा से उद्यान राज्य होकर वह सिन्धु नदी पर पहुँचा। पोलुलो में उसने सिन्धु नदी को पार किया और टचशिलो (तक्षशिला) पहुँचा।

गोविषाण

कनिंघम के अनुसार काशीपुर के निकट उज्जैन टांडा नामक ग्राम में जो प्राचीन किला है यही ह्वेनसांग द्वारा वर्णित किउपीश्वांगना या गोविषाण है। ह्वेनसांग के अनुसार यह राज्य 'क्षेत्रफल में २००० ली (परिधि में ४०० किलो मीटर) है। और इसकी राजधानी का क्षेत्रफल (परिधि) १४ या १५ ली है। चट्टानों और करारों से घिरे होने के कारण यह प्रान्त प्राकृतिक रूप से सुरक्षित है। इसकी जनसंख्या काफी अधिक है। चारों ओर पुष्प उद्यान और सुन्दर सरोवर हैं। जलवायु और उपज माटी पोलो के अनुसार है। यहाँ के निवासी सचरित्र और धर्मिष्ठ हैं। पर कुछ लोग असत्य सिद्धान्तों के अनुयायी संसारिक सुखभोग में लिप्त रहने वाले हैं। यहाँ दो संघाराम हैं और सौ हीनयान सम्प्रदाय के भिक्षु हैं। भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों के तीस मन्दिर हैं जिनमें पूजा पाठ में कोई भेद भाव नहीं पाया जाता। नगर के अतिरिक्त एक अन्य संघाराम और राजा अशोक का बनाया हुआ एक स्तूप है। यह लगभग २०० फीट ऊँचा है। यहाँ पर बुद्ध भगवान ने एक मास तक रह कर धर्मोपदेश दिया था। निकट ही गत चार बुद्धों के घूमने फिरने के चिह्न बने हुए हैं। इन पद चिह्नों के निकट दो और स्तूप १०–१० फीट ऊँचे हैं जिनमें तथागत भगवान के बाल और नख सुरक्षित हैं। यहाँ से पूर्व चार सौ ली चल कर हम ओही चीटालो प्रदेश में पहुँचे।" (ह्वेनसांग का भारत भ्रमण-ठाकुर प्रसाद शर्मा-इलाहाबाद १९२९)

अहिछत्रा

ओही चीटालो को सभी विद्वान अहिछत्रा मानते हैं। यद्यपि ओही चिटालो का जो वर्णन ह्वेनसांग ने दिया है वह उसके वर्तमान रामनगर (आँवला-बरेली) की स्थिति से मेल नहीं खाता। ह्वेनसांग लिखता है—"ओही चीटालो ३००० ली के घेरे में है। इसकी राजधानी १७ या १८ ली है। पहाड़ों के निकट होने के कारण यह प्राकृतिक रूप से सुरक्षित है। यहाँ पर गेहूँ की उपज होती है। जंगल और नदियाँ बहुत हैं। जलवायु भी अच्छा है। लोग धर्मात्मा सत्यनिष्ठ और विद्याव्यसनी हैं। यहाँ दस संघाराम और १००० हीन-यान सम्प्रदाय के भिक्षु रहते हैं। नौ देव मन्दिर हैं जिनमें

पाशुपत सम्प्रदाय के तीन सौ साधु रहते हैं। ये लोग ईश्वर के नाम पर वलि चढ़ाया करते हैं। नगर के बाहर एक नाग झील है जिसके किनारे राजा अशोक का बनाया हुआ स्तूप है। यहाँ पर तथागत भगवान ने नाग राजा को सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था। निकट ही चार और स्तूप हैं जहाँ पर गत चारों बुद्ध बैठते और घूमा फिरा करते थे। उनके पद चिह्न अभी तक वर्तमान हैं। यहाँ से दक्षिण की ओर दो सौ साठ या २७० ली चलकर और गंगा नदी पार करने के उपरान्त पश्चिमोत्तर दिशा की ओर चलते हुए हम पिलोशनन प्रदेश में पहुँचे।

ब्रह्मपुर

वर्णित स्थानों की स्थिति के विषय में विचार करने से पूर्व ह्वेनसांग द्वारा वर्णित तथा मध्य हिमालय में स्थित अन्य राज्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। गोविषाण से पहले ह्वेनसांग पओ-लोहिह-मो-पुलो गया था जिसे कनिंघम 'ब्रिटिश गढ़वाल-कुमाऊँ मानते हैं।' (ऐंश्येंट जौग्रफी-पृष्ठ ३५६) उनके अनुसार पओ-लोहिह-मो-पुलो प्राचीन ब्रह्मपुर राज्य है। ह्वेनसांग के शब्दों में—"इस राज्य का क्षेत्रफल (परिधि) ४००० ली है और इसकी राजधानी का क्षेत्रफल (परिधि) १२०० ली है। यह धनिकों की वहुत धनी वसी हुई नगरी है। यहाँ ताँबा और वैदूर्य मणि उत्पन्न होता है। भूमि उर्वरा है। मनुष्य असभ्य तथा जंगली हैं उनका ध्यान साहित्य की ओर नहीं हैं। पाँच संघाराम हैं और दस देव मंदिर। देश की उत्तरी सीमा हिमालय पर्वत है जिसके मध्य की भूमि को सुवर्णगोत्र कहते हैं। इस स्थान से उत्तम प्रकार का सोना आता है जो इस नामकरण का कारण है। यह देश पूर्व से पश्चिम की ओर अधिक फैला हुआ है। पूर्व में वह राज्य है जहाँ वर्षों से एक स्त्री राज्य करती है। इस स्त्री का पति राजा तो कहलाता है परन्तु राज्य शासन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यहाँ पर गेहूँ, वैल, भेड़ और घोड़े होते हैं। हिम प्रधान देश होने से जलवायु शीतल है। मनुष्य क्रोधी और जल्दबाज हैं। इस देश के पूर्व में वोद (ताबोद या तिब्बत) पश्चिम में सम्पह और उत्तर में खोतन राज्य है।"

स्त्रुघ्न

ह्वेनसांग ने सुलोकिनना नामक देश का भी उल्लेख पर्वत प्रदेश में किया है। इसे इतिहासकार प्राचीन स्त्रुघ्न देश (नाहन-सिरमौर) मानते हैं। ह्वेनसांग के अनुसार 'सेलोकिनना' का क्षेत्रफल ६००० ली है। सीमा उत्तर में हिमालय पहाड़, पूर्व में गंगा तथा यमुना नदियाँ हैं। नगर उजड़ रहा है। राजधानी का क्षेत्रफल (परिधि) २० ली है। जलवायु और उपज थानेश्वर के समान है। पाँच संघाराम है। अधिकांश लोग हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। लगभग १०० देव मंदिर है जिनमें विभिन्न मतावलम्बियों के लोग उपासना करते हैं। राजधानी के दक्षिण पश्चिम और यमुना

नदी के पश्चिम एक संघाराम है जिसके पूर्वी द्वार पर अशोक का बनाया हुआ एक स्तूप है। तथागत भगवान ने इस स्थान पर लोगों को अपने धर्म का उपदेश दिया था। पास ही एक दूसरे स्तूप में तथागत के बाल और नख सुरक्षित हैं। निकटवर्ती १० और स्तूपों में श्रीपुत्र, मुग्दलायन तथा अन्य अर्हतों के नख और बाल सुरक्षित हैं। तथागत भगवान के निर्वाण प्राप्त करने के उपरान्त यह प्रदेश अन्य मतावलम्बियों का केन्द्र स्थल बन गया था। लोग अपनी धार्मिकता को छोड़ कर असत्य सिद्धान्तों के जाल में फँस गए थे। उस समय देश विदेश के विद्वान बौद्धों ने आकर विधर्मियों और ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। जहाँ शास्त्रार्थ हुआ वहाँ पर पाँच संघाराम बना दिए गए हैं।

गंगा (भू-स्वर्ग)

"यमुना नदी के पूर्व आठ सौ ली चल कर हम गंगा नदी के तट पर पहुँचे। नदी की धार तीन या चार ली चौड़ी है। यह नदी दक्षिण पूर्व की ओर बहती हुई जहाँ समुद्र में मिलती है वहाँ इसकी चौड़ाई १० ली से भी अधिक है। जल का रंग समुद्र जल के समान नीला है। उत्ताल तरंगें भी उठती हैं। किन्तु मनुष्यों को हानि नहीं पहुँचातीं। जल का स्वाद मीठा और वह स्वच्छ है। उसके किनारे रेत भी बहुत स्वच्छ है। देश के इतिहास में इस नदी का नाम फौश्बुई है और यह अगणित पापों को नाश करने वाली मानी जाती है। जो लोग सांसारिक दुखों से दुखित होकर इस नदी में कूद कर प्राण त्याग करते हैं वे स्वर्ग में जाकर सुख को प्राप्त करते हैं। यदि मनुष्य अन्यत्र मर जाय और उसकी हड्डियाँ इस नदी में डाल दी जाय तो उसको नरकवास नहीं हो सकता। चाहे कोई अज्ञान से भी इस नदी में पड़कर बह जाय तो भी उसकी आत्मा स्वर्ग में पहुँच जायेगी। किसी समय सिंहल द्वीप निवासी देव नामक एक बोधिसत्व हो गया है जो सत्य के सिद्धान्तों से पूर्णतया अभिज्ञ था। वह लोगों की मूर्खता से दुखित होकर सत्य का उपदेश देने के लिए इस प्रदेश में आया। उस समय छोटे बड़े अनेक स्त्री पुरुष नदी के किनारे एकत्र थे। उस देव बोधिसत्व ने अपना असाधारण स्वरूप, जो अन्य लोगों से भिन्न था, लोगों को प्रदर्शित कर फिर सिर झुका कर नदी का जल लेकर उसे इधर उधर फेंकना प्रारम्भ किया। उस समय उसे ऐसा करते देख कर विधर्मी ने पूछा कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। बौधिसत्व ने उत्तर दिया कि उनके माता पिता लंका में रहते हैं, उन्हें चिन्ता है कि उन्हें भूख प्यास से पीड़ित होने के कारण मेरा फेंका हुआ यह जल सन्तुष्ट कर देगा।

"विधर्मी ने कहा आप ऐसी मूर्खता क्यों करते हैं। सिंहल देश यहाँ से बहुत दूर है। मध्य में बड़े-बड़े पहाड़ और बड़ी नदियाँ हैं। इतनी दूर से वहाँ के निवासी की

प्यास बुझाने के लिए जल उछालना वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति अपने सामने पड़ी हुई वस्तु को पीछे मुड़ कर ढूंढे। आपका किया यह उपाय तो कभी सुना तक नहीं गया।

"बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"वे लोग जो अपने पापों के फलस्वरूप नरक में पड़े हुए हैं यदि वे इस जल से लाभ उठा सकते हैं तो उन लोगों तक जिनके मध्य में केवल पहाड़ और नदियाँ हैं यह जल क्यों नहीं लाभ पहुँचायेगा ?"

"बोधिसत्व का उत्तर सुन कर विधर्मी से कोई उत्तर न बन पाया। उसने अपनी भूल स्वीकार की। अज्ञान को परित्याग कर सत्य धर्म को ग्रहण किया। दूसरे लोग भी बोधिसत्व के शिष्य होकर सुधर गए। नदी को पार करके उसके पूर्वी किनारे पर जाकर हम माटीपोलो प्रदेश में पहुँचे।"

माटी पोलो

माटीपोलो को बिजनौर जिले में स्थित मंडावर माना गया है। (कनिंघम एंश्य० पृष्ठ ३४६ तथा सेंट मार्टिन पृष्ठ ३४८) । ह्वेनसांग के वर्णन के अनुसार "माटी पोलो का क्षेत्रफल ६०० ली है और उसकी राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। यह देश अत्यन्त उर्वरा और नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर है। यहाँ के निवासी धर्मात्मा, सत्यपरायण, विद्याप्रेमी और तंत्र मंत्र में विश्वास रखने वाले हैं। राजा शूद्र है। बौद्ध धर्म को नहीं मानता है। देश में २० संघाराम और ५० देव मन्दिर हैं। राजधानी के दक्षिण ४ या ५ ली चल कर हम एक छोटे से संघाराम में पहुँचे जिसमें ५० भिक्षु निवास करते हैं। प्राचीन काल में गुणप्रभ नाम के शास्त्रवेत्ता ने इस संघाराम में रह कर तत्व विभंग शास्त्र तथा अन्य सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की। उसे अल्पायु में ही विद्या की प्रतिभा का प्रकाश प्राप्त हो गया था। उसने स्वावलंवन से ही विद्यापार्जन किया था। पहले वह महायान सम्प्रदाय का अनुयायी था। बाद को अपने पहले कर्म को त्याग कर हीनयान सम्प्रदाय का अनुयायी हो गया। उसने महायान सम्प्रदाय के विपक्ष में अनेक ग्रन्थ रचे हैं। वह कई बार सदेह स्वर्ग को जाकर लौट आया था। संघभद्र के अवशेष संघाराम से पश्चिमोत्तर दिशा में २०० कदम की दूरी पर आम्रकानन में बने एक स्तूप में अब भी सुरक्षित है।"

हरिद्वार

इसी सन्दर्भ में ह्वेनसांग वर्तमान हरिद्वार का वर्णन मायापुर नाम से करता है—" इस देश (माटी पोलो) की पश्चिमोत्तर सीमा पर गंगा नदी के पूर्वी किनारे पर मायापुर नामक नगर है। इसका क्षेत्रफल २० ली और निवासियों की संख्या पर्याप्त अधिक है। गंगा की धाराएँ इसके चारों ओर प्रवाहित होती हैं। यहाँ ताँबा और उत्तम बिल्लौर उत्पन्न होता है। धातु के बर्तन भी अच्छे बनते हैं। गंगा के

तट पर एक विशाल देव मन्दिर है जिसमें अद्‌भुत चमत्कार दिखलाई दिया करते हैं। देव मंदिर के मध्य में एक सरोवर है जिसे बड़ी कुशलता से पत्थरों को जोड़ कर बनाया गया है। गंगा जी का जल इस सरोवर में एक कृत्रिम नहर द्वारा पहुँचाया जाता है। इसको लोग गंगाद्वार कहते हैं। यही स्थान है जहाँ लोग अपने पापों से मुक्ति पाकर पुण्य को प्राप्त होते हैं। भारत के प्रत्येक प्रदेश के लोग यहाँ आकर स्नान करते हैं। उपकारी राजाओं ने यहाँ अनेक धर्मशालाएँ बनाई हैं जहाँ पर निराश्रित तथा विधवाएँ रहती हैं। इन लोगों को भोजन और औषधियाँ मिलने का प्रवन्ध भी उन्हीं धनिकों की ओर से होता है। यहाँ से ३०० ली के लगभग उत्तर दिशा में चल कर हम पओ-लोहिह-मो-पुलो (कनिंघम द्वारा वर्णित ब्रह्मपुर) प्रदेश में आए।''

नैपाल

नैपाल का वर्णन ह्वेनसांग ने फोलिसी (वृज्जि) के उपरान्त दिया है। वह वैशाली (बिहार) से वृज्जि और वहाँ से नैपाल गया था। वह लिखता है—', निपोलो राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४०० ली है। यह हिमालय पर्वत के अन्तराल में बसा है। राजधानी का क्षेत्रफल लगभग २० ली है। पर्वत भूमि और घाटियाँ एक दूसरे से सटी हुई हैं। घाटी में अन्न तथा फलफूल उत्पन्न होते हैं। लाल धातु (ताँवा) उत्पन्न होता है और याक और जीवन-जीवी (मुनाल) पक्षी भी यहाँ होता है। व्यावसायिक धन्धा ताँबे का व्यापार है। जलवायु अत्यन्त शीतल है। निवासी मिथ्यावादी और बेईमान हैं। स्वभाव से भी ये अनुदार और डरावने हैं। इनमें आत्म मर्यादा अथवा सत्यासत्य का विचार नहीं है। इनकी आकृति भी सुन्दर नहीं है। शिक्षा का प्रचार यहाँ बिलकुल ही नहीं है। निश्चय ही ये लोग अच्छे शिल्पी हैं। वौद्ध और उनके विरोधी मिलजुल कर रहते हैं। महायान, हीनयान तथा उनके विरोधी सम्प्रदायों के लगभग २०० भिक्षु यहाँ रहते हैं। निपोलो का राजा लिच्छवी वंश का है। वह स्वयं सदाचारी और बौद्ध धर्म का प्रेमी है। कुछ वर्ष पहले यहाँ अंशुवर्मन नामक एक राजा बड़ा विद्वान और बुद्धिमान हो गया है। उसने शब्द विद्या पर ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ के कारण उसके विद्याप्रेम की चर्चा चारों ओर होती है।

"राजधानी के दक्षिण पूर्व एक सोता और एक कुण्ड है। कुण्ड में यदि अंगारा फेंक दिया जाय तो तुरन्त ज्वाला प्रकट हो जाती है। अन्य वंस्तुओं के डालने पर भी वे जल कर कोयला हो जाती हैं।''

काशगर

ह्वेनसांग के समय में काशगर का नाम कस्सि देश रहा होगा। वह उसे भारत की ओर से गए राजवंश का राज्य मानता है। उसके अनुसार "कइश (काशगर) का

क्षेत्रफल लगभग ५००० ली है । भूमि-पथरीली और रेगिस्तानी है। किन्तु जुताई-बोआई अच्छी होने के कारण फल-फूल, अन्न, आदि की उपज अच्छी होती है। यहाँ बटे हुये तागे के बने ऊनी वस्त्र और सुन्दर कालीन की कारीगरी बहुत अच्छी होती है। मनुष्य असभ्य और कठोर स्वभाव के हैं। वे मिथ्यावादी और विश्वासघाती हैं। सभ्यता और सहृदयता अथवा विद्या का लेशमात्र भी नहीं है। इनकी आकृति भद्दी और कुरूप है। ये अपने शरीर और आँखों के चारों ओर चित्रकारी गोद लेते हैं। इनकी भाषा और इनकी बातचीत अन्य लोगों से भिन्न है। ये सभी बौद्ध धर्मावलंबी हैं। कई सौ संघाराम तथा १०००० हीनयान सम्प्रदाय के भिक्षु हैं। बिना मूल सिद्धांत को समझे हुए ये धार्मिक मंत्रों का पाठ करते हैं। कितने ही ऐसे भी हैं जो त्रिपिटक और विभाषा को कंठस्थ सुना सकते हैं। यहाँ से दक्षिण पूर्व की ओर लगभग ५०० ली चल कर सीता नदी तथा एक बड़े पथरीले पठार को पार करके हम चोक्यू-किया राज्य में पहुँचे।"

समुद्रगुप्त के पाँचों सीमान्त राज्यों में से ह्वेनसांग ने काम रूप को किया—मोलुपो, समतट को सनमोटाचा तथा नैपाल को निपोलो लिखा है। अयोध्या को उसने ओयूटो लिखा है। अयोध्या राज्य कौशल से भिन्न है। मगध के विषय में ह्वेनसांग का यात्रा विवरण सर्वाधिक सामग्री प्रस्तुत करता है। उसके अनुसार मगध के कुछ नगर हैराक्लीज (ग्रीक देवता) के बनाए हुए हैं। कौशाम्बी को वह कियावशंगमी लिखता है। कोशाम्बी और प्रयाग के मध्य की दूरी उसके अनुसार ५०० ली है। प्रयाग का वर्णन उसने पोलोयीकिया नाम से किया है। कान्यकुब्ज देश के वर्णन में वह अपने और शिलादित्य के मध्य हुए वाद विवाद को बड़े विस्तार से लिखता है। शिलादित्य का उसके द्वारा वर्णित विवरण उसी के शब्दों में इस प्रकार है—

शिलादित्य—आप किस देश से आए हैं और आपका इस यात्रा का प्रयोजन क्या है ?

ह्वेनसांग—में तंग देश से आया हूँ और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को खोजने की आज्ञा चाहता हूँ।

शिलादित्य—तंग देश कहाँ पर है ? आप किस मार्ग से चल कर यहाँ तक पहुँचे हैं ? आपका देश यहाँ से कितनी दूर है ?

ह्वेनसांग—यहाँ से कई सहस्र ली दूर पूर्वोत्तर दिशा में मेरा देश है। उसे भारत में महा चीन नाम से जाना जाता है।

शिलादित्य—मैंने सुना है कि महाचीन के राजा त्सिन हैं। वे बड़े ही वीर और दैवी शक्ति सम्पन्न हैं। दूसरे देश के लोग भी उनकी वीरता और उनके गुणों के आकर्षण से उनकी आधीनता सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। कुछ दिन पूर्व मैंने उनकी प्रशस्ति की

एक कविता सुनी थी, क्या उनके चरित्र से सम्बन्ध रखने वाली वह पूरी कविता सही है ? क्या यही तंग राज्य है जिनका वर्णन आप कर रहे हैं ?

ह्वेनसांग—चीन हमारे पहले राजाओं का देश है। तंग हमारे वर्तमान राजा का। प्राचीन काल में हमारा शासक वंश परम्परागत राजा होने के कारण त्सिन महाराज कहलाता था किन्तु अब सम्राट् (देवराज) कहलाता है। प्राचीन राज्य के समाप्त होने पर जब देश का कोई शासक न रहा, चारों ओर अराजकता और अशांति के कारण प्रजा दुखी रहने लगी तो उस समय त्सिन राजा ने अपने दैवी बल से सारी प्रजा को अपनी दया और अपने प्रेम का संरक्षण दिया। चारों ओर दुष्टों का नाश हो गया। आठों लोकों में शान्ति स्थापित हो गई। दस हजार राजा उनके आधीन हो गए। जो कुछ महत्वपूर्ण कार्य हमारे राजा ने किए उनका वर्णन करना कठिन है।

कान्यकुब्ज शब्द को ह्वेनसांग ने कइयो किओशी लिखा है। सम्भवतः वह वर्तमान कन्नौज से भिन्न कोई अन्य नगर रहा हो।

ब्रह्मपुर त्रिपाठी के अनुसार

ह्वेनसांग द्वारा वर्णित ब्रह्मपुर राज्य का नाम इतिहास के प्रवक्ता उपर्युक्त श्री त्रिपाठी के अनुसार पर्वताकर है। उनके अनुसार "ब्रह्मपुर की मौलिक स्थिति कार्तिकेयपुर के ही कहीं समीप जान पड़ती है। ब्रह्मपुर नरेश द्युतिवर्मा ने अनन्त के अवतार भगवान वीरणेश्वर को अल्मोड़ा जिले के ९४ गाँव अग्रहार में दिये हैं। वीरणेश्वर का यह मंदिर (बिनसर) कत्यूर घाटी में स्थित है। द्युतिवर्मा के ताम्रपत्र के अनुसार ताम्र पत्रों के निर्गमन स्थान (राजधानी ब्रह्मपुर) के दक्षिण पार्श्व में शरघा (खेरदा), विषयस्थापल्ली (विसौत), करवीरगत (करगाड़), कोल्लपुरी (कोल्यूड़), भेल मस्तक (भेला थोक) तथा पच्छिमी दून में उदुम्बरदास (पीपल खेत), मोहट्ट वाटक (गोरखुरया), वासन्तीवनक (बसौली), स्रोह्णावनक (खणऊ), मल्लवस्तुक (मलौज), मल्लिका (माला), करवीरिका (कबीर खेत), कराम शालिका (करासी बूंगा) गाँव अग्रहार में दिये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पर्वताकर राज्य की राजधानी ब्रह्मपुर खेरदा, बिसौत, करगाड़, मेला पीपल खेत, मलौज, माला, बसौली के पूर्व में और कोल्यूड़ा के उत्तर में स्थित थी। इस आधार पर ब्रह्मपुर को बागेश्वर के पूर्व में बमधार या बमचर के पास कहीं पर होना चाहिए। पर ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से इस स्थान का साम्य नहीं हो सकता। इस समस्या के निवारण के लिए भी कुछ संकेत सूत्र भारतीय इतिहास और स्वयं इस ताम्रपत्र में हैं। "इतिहास में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि पर्वताकर (ब्रह्मपुर) राज्य के उपरान्त इन पर्वतीय अंचलों में हूणों का एकाधिपत्य रहा। मेरे विचार से हूणों के आक्रमण के कारण ही ब्रह्मपुर के नरेशों को अपनी राजधानी कत्यूर घाटी से हटा कर पौड़ी गढ़वाल में कहीं पर

ले जानी पड़ी होगी। द्युतिवर्मा के ताम्रपत्र का एक संकेत सूत्र इस विचार को पुष्ट करता है……"

बिनसर

श्री त्रिपाठी का ब्रह्मपुर को बागेश्वर के समीप स्थित मानना तथा विनसर को अल्मोड़ा के निकट चौगर्खा का बिनसर मान लेना दोनों ही भ्रान्ति मूलक हैं। अल्मोड़ा के निकट का विनसर मंदिर ह्वेनसांग की यात्रा के एक हजार वर्ष से भी अधिक समय के बाद राजा कल्याण चन्द ने बनाया। उससे पहले बिनसर नाम का अत्यन्त प्रसिद्ध मंदिर गढ़वाल जिले में दूदातोली पर्वतमाला की एक ऊँची चोटी पर स्थित था। इसे विनेश्वर कहा जाता है। यही वह प्राचीन वीरणेश्वर है जिसके पक्ष में तालपुर के दान पत्र में दिए गए अग्रहार का उल्लेख हुआ है। यह मंदिर शालिवाहन सम्वत के आरम्भ होने के समय पर स्थापित किया बताया जाता है। यह कितना प्रसिद्ध और प्राचीन मंदिर है इसका अनुमान एटकिन्सन के हिमालियन डिस्ट्रिक्टस के इस उद्धरण से लग सकता है।—"मवालस्यूं पर्वतमाला में एक शिव मंदिर विनसर या बिनेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यह अपने प्रभाव के चमत्कार के कारण सभी निचली पट्टियों में सुविख्यात है। यही वह स्थान है जहाँ शिव ने रानी कर्णावती को उसके शत्रुओं से बचाया था। उन शत्रुओं को हिम तूफान लाकर शिव ने नष्ट कर दिया था। इस उपकार के लिए रानी ने यहाँ एक गोपुर और मंदिर का निर्माण किया। विनसर के सम्बन्ध में जो अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं उनमें से एक यह है कि देवता के उपासकों की अथवा उसकी कोई बस्तु किसी को नहीं उठा लेनी चाहिए। यदि कोई अज्ञानवश या जानबूझ कर भी दूसरे की वस्तु उठा ले तो उसकी आत्मा उसको तब तक पीड़ित करती रहेगी जब तक कि वह उठाई गई वस्तु का बीस गुना करके उसे उसके मूल स्वामी को वापस न कर दे। यही नहीं बेईमान और आस्थाहीन लोगों को विनसर की यात्रा से शिक्षा मिलती है। इसीलिए यह लोकोक्ति है—'भाई बिनसर का लोहा जान लो समझ लो'। यद्यपि यहाँ चतुर्दिक जंगलों में बहुत से बाघ हैं किन्तु देवता के प्रभाव से वे किसी यात्री पर कभी आक्रमण नहीं करते हैं।" (पृष्ठ ७७६-७७)

ब्रह्मपुर राज्य

ह्वेनसांग द्वारा वर्णित स्रुघ्न, अहिच्छत्रा, मायापुर आदि के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। ब्रह्मपुर को वह मायापुर से उत्तर की दिशा की ओर ३०० ली दूर बताता है। इससे उसके गढ़वाल में स्थित होने का संकेत मिलता है किन्तु वह उसकी उत्तरी सीमा में हिमालय पहाड़ तथा मध्यवर्ती भूभाग में सुवर्णगोत्र को स्थित बताता है। सुवर्णगोत्र निश्चय ही दारमा परगने से मिला तिब्बती सीमान्त का पिपीलिका स्वर्ण

के लिए प्रसिद्ध प्रदेश है। इसी से मिला हुआ प्राचीन स्त्री राज्य भी था। इस स्त्री राज्य को कालान्तर में ल्हासा ने अपने में विलय कर लिया था। यात्रा विवरण में कर्तृपुर (कार्तिकेयपुर) का कहीं उल्लेख नहीं है, इससे यह लक्षित होता है कि तत्कालीन ब्रह्मपुर पूर्वोत्तर कुमाऊँ का नैपाल तिब्बत की सीमा तक फैला ब्रह्म राजाओं का जिन्हें कुमाऊँ में बम राजा कहा जाता है, राज्य होगा। जहाँ तक क्षेत्रफल का प्रश्न है यह ली में दिए जाने के कारण परिधि का द्योतक है न कि क्षेत्रफल का।

क्रीत्य और कत्यूर

कुमाऊँ में ह्वेनसांग काश्मीर होता हुआ आया था। तक्षशिला तब काश्मीर राज्य के आधीन था। काश्मीर से वह सिंहपुर, उलसी के मार्ग से पहुँचा था। उसने कनिष्क द्वारा काश्मीर में बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के ताम्र पत्रों में लिखे जाने का उल्लेख किया है। इन ताम्रपत्रों को एक पत्थर की पेटी में बन्द करके उस पेटी पर मुहर लगा कर फिर उसने उसे एक विशाल स्तूप के बीच में सुरक्षित कर दिया गया था। इस स्तूप का भी ह्वेनसांग वर्णन करता है। कनिष्क के मरने पर काश्मीर में ह्वेनसांग के अनुसार क्रीत्य जाति ने फिर अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु वे लोग बौद्ध धर्मावलंबी नहीं थे। कदाचित ह्वेनसांग द्वारा क्रीत्य कहे गए लोग ही चित्राल घाटी के कतोर अथवा कुमाऊँ में कत्यूर कहे गए लोग हों। काश्मीर से वह पुनच (पूँच), राजौरी (होलीसोपोल), टक्का (टसिहकिया) और शाकल पहुँचा। शाकल के उपरान्त वह चीनापटी गया। इसे वह शीत ऋतु में तिब्बत की ओर से आए हुए लोगों की बस्ती बताता है। उस भाग के पर्वतीय लोग ह्वेनसांग के अनुसार आडू को चीनानी और नासपाती को चिनराजपुत्र कहते थे क्योंकि उसके अनुसार ये दोनों फल चीन वासियों द्वारा इस पर्वतीय भू-भाग में लाए गए थे। कुमाऊँ में खुबानी का चुँआरू (चीन आरू) नाम सम्भवतः इसी तथ्य का द्योतक हो। कदाचित चीना पाटी नाम की धुँधली छाया नैनीताल की चीना (चीनार) चोटी, महल्ला चीनाखान और अल्मोड़ा के चीनाखान जैसे स्थलों के नामों में जीवित है।

चीनापटी से ह्वेनसांग तामसवन, जालंदर, कुलूत (कियोटूलो), लाहुल, शतद्रु, बैराट (पार्यात्र), होता हुआ मथुरा पहुँचा। मथुरा से ५०० ली पूर्वोत्तर चल कर थानेश्वर और फिर स्त्रुघ्न गया। ली उस समय चीन में प्रचलित लम्बाई की इकाई थी। एक ली एटकिंसन के अनुसार ३७२ गज अथवा वर्तमान इकाई के अनुसार लगभग एक किलोमीटर के तिहाई भाग के बराबर है। ह्वेनसांग ने अपने देश को तंग (त-अंग) कहा है इसका कारण उस समय चीन में तंग वंश का शासन होना है। इस वंश ने चीन में ६१८ ई० से ६०७ ई० तक राज्य किया। चीन में चित्रलिपि

होने तथा स्वर और व्यंजनों के पृथक न होने से उसके स्वयं नाम के दो अलग-अलग उच्चारण हैं। कुछ इतिहासकार उसे ह्वेनसांग न कह कर युवान च्यांग भी कहते हैं। डॉ० वेणी प्रसाद ने उसे सर्वत्र युवान च्यांग ही लिखा है।

ह्वेनसांग के वर्णन के अनुसार काबुल नदी घाटी, बमियान, कपिशा, आदि राज्य तत्कालीन भारत के अंग थे। अपनी यात्रा के अन्त में भारत से विदा लेते समय वह लिखता है—"सिन्धु, मुल्तान (मुलोसन प उ लू मूलस्थानपुर), पार्वत (पोफाटो), ओ-रतन-प-ओ-चिलो, लंगकिलो, पोलस्से (पारसिक-फारस), पिटोशिलो, आफनच तथा फलन को छोड़कर उत्तर पश्चिम में बड़े-बड़े पहाड़ों और चौड़ी घाटियों को लांघ कर अनेक छोटे-छोटे नगरों में होते हुए लगभग २०० ली चल कर हमने इन्तु देश की सीमा का परित्याग किया और साउसूत (सारस्वत-आर्कोशिया) देश में पहुँचे।"

इस विवरण से भी स्पष्ट है कि प्राचीन भारत और पश्चिम एशिया के ईरान आदि देशों के मध्य कोई राजनैतिक सीमा नहीं थी। काबुल नदी घाटी के पूर्व और पश्चिम दोनों ओर के देश कभी भारत की ओर के अशोक या कनिष्क जैसे प्रभावशाली राजाओं के अधिकार में आ जाते थे और कभी पश्चिम के हिन्द यवन, ग्रीको-रोमन अथवा हख्मनीश जैसे प्रबल पारसिक शासकों के आधीन हो जाते थे। कुलू कांगड़ा से कुमाऊँ का चोली दामन का साथ रहा है। यही नहीं सन् १६३६ से १६४८ तक वर्तमान उत्तर काशी और टिहरी जिले पंजाब हिल स्टेटस् में माने जाते थे और टिहरी तब पंजाब की पहाड़ी रियासतों में गिनी जाती थी। पश्चिम एशिया के पार्थिक, आर्मीनिया (अराम दिमश्क), गांधार, कपिशा आदि राज्यों के निवासी इस्लाम के अभ्युदय तक तत्कालीन भारत के राज्यों की ही भाँति मित्र (सूर्य) अथवा अग्निपूजक पारसी लोग थे या बौद्ध धर्मावलम्बी हो चुके थे। समस्त भूभाग में विशेषत: पर्वतीय भूभाग में जो प्राकृत भाषा प्रचलित थी उसे दरदी या पैशाची कहा गया है। गान्धार से नैपाल तक उस प्राकृत भाषा में घाटी-घाटी में निश्चय ही कुछ अन्तर आता रहता था। जहाँ तक संस्कृति और धर्म का सम्बन्ध है तत्कालीन ईरान, अफगानिस्तान तथा भारत के पर्वतीय भूभागों में प्रकृति उपासना, मूर्ति पूजक प्राचीन सिन्धु घाटी (द्रविड़) सभ्यता, वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म की समय-समय पर मान्यता देश के अन्य भागों की भाँति घटती-बढ़ती रही। विभिन्न देशों के लोगों ने इन धर्मों को ह्वेनसांग के समय तक अपने अपने ढंग से अपना लिया था। वह पोफाटो के लोगों को पार्वत अथवा पहाड़ी लोग कहता है। पाणिनि ने भी तक्षशिला के निकट के इन पार्वतों का उल्लेख अष्टाध्यायी में किया है।

कुमाऊँ का लोक धर्म आदिम जातीय पश्चिम एशियाई सम्पर्क को प्रकट करता है। यह खस जाति के पश्चिम एशियाई मूल और कश्यप सागर से लेकर ब्रह्मपुत्र घाटी तक

हिमालय की दोनों उत्तरी और दक्षिणी पनढर की तिब्बत और भारत की घाटियों की समान सभ्यता को लक्षित करता है। तिब्बत पहली सदी ईस्वी से सत्रहवीं सदी तक स्वतन्त्र रहा है। मंचू शासकों ने जब १७ वीं सदी में उसे अपने अधिकार में किया तो वह भी केवल कागज पर। दोनों देशों के लिए कैलास मान-सरोवन तीर्थ है। जाति प्रथा, ऊँच-नीच जातियों के मध्य खान पान में भेद-भाव दोनों देशों के निवासियों में एक सा है। वर्तमान कुमाऊँ गढ़वाल की उत्तरी सबसे ऊँची हिम श्रेणियों की शृंखला के पार का भूभाग तो सत्रहवीं सदी तक भी कुमाऊँ के राजाओं के अधिकार में नहीं था। रुद्र चन्द या बाज बहादुर चन्द जैसे राजाओं ने हिम दर्रों तक अपना अधिकार बढ़ाने का निश्चय ही प्रयत्न किया किन्तु ये भूभाग इतनी शिथिलता से शासित थे कि वे तिब्बत के शासकों को भी कर देते थे और कुमाऊँ के शासक को भी। मध्यवर्ती उपर्युक्त पर्वतशृंखला के पार से ही तिब्बत की बौद्ध अथवा लामावादी सभ्यता का आरम्भ हो जाता था। वैसे तिब्बत में भी जिसे संस्कृत में भोट देश कहा गया है बौद्ध धर्म अथवा शैव धर्म का पाशुपत बौद्ध रूप प्रचलित रहा। पांडुकेश्वर ताम्रपत्र कहे गये दान पात्रों की भाषा संस्कृत निष्ठ है किन्तु उनके अक्षर देवनागरी के कम और भोट भाषा के अक्षरों से अधिक समानता लिए हुए हैं। तिब्बत में जिस लिपि में 'ऊँ मणि पद्मे हुम्' लिखा मिलता है वही भोट लिपि इन ताम्रपत्रों के लिखने में उपयोग में आई है। उसे कुटिल लिपि नहीं कहा जा सकता। लिपि शास्त्री बुहलर ने तो कुटिल लिपि जैसी किसी लिपि के अस्तित्व को ही नकारा है। यदि कुटिल लिपि है भी तो वह प्राचीन देवनागरी का घसीट में लिखा हुआ रूप है। जब कि ये ताम्रपत्र अलंकृत देवनागरी में लिखे गये हैं।

गोविषाण की स्थिति

एटकिन्सन गोविषाण की कनिंघम द्वारा निश्चित स्थिति से सहमत नहीं है। वह ढिकुली के ध्वंसावशेषों को जो काशीपुर से ३६ किलोमीटर रामनगर रानीखेत मार्ग पर स्थित हैं, गोविषाण मानता है। यही अधिक उपयुक्त भी लगता है। उज्जैन टांडा जैसा ह्वेनसांग के वर्णन से लगता है वैसा पहाड़ों से घिरा हुआ नहीं है। कनिंघम के अनुसार—"कत्यूरी राजाओं की पुरानी राजधानी लखनपुर या बैराट-पट्टन थी। यह रागगंगा से सीधी रेखा में लगभग ८० मील है। यदि हम कोटद्वार से जो मंडावर राज्य की उत्तरी सीमा पर होगा इस दूरी का मापन करें तो यह ह्वेनसांग के वर्णन के अनुसार २०० ली हो जाती है। तथापि मुझे ऐसा लगता है कि चीनी यात्री का तात्पर्य गोविषाण से है जो बैराट से ठीक ५० मील उत्तर में है।" (एटकिन्सन पृष्ठ ४५३) एक अन्य पुराविद विवियन डि सैंट मार्टिन ने ब्रह्मपुर को श्रीनगर गढ़वाल बताया है। यह और भी भ्रामक है क्योंकि सभी प्राप्त प्रमाणों के अनुसार इस नगर की स्थापना सत्रहवीं सदी में हुई थी। बाराहाट (उत्तरकाशी) भी

गोविषाण नहीं हो सकता क्योंकि उसकी मायापुर से बताई हुई दूरी ह्वेनसांग के वर्णन से मेल नहीं खाती। जहाँ तक ब्रह्मपुर का प्रश्न है जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है वह प्राचीन कुमाऊँ की सोर घाटी में स्थित ब्रह्म (बम) राजाओं का ही राज्य हो सकता है। इसी देश के राजा के नेतृत्व में सभी पहाड़ी राजाओं ने एकत्र होकर तैमूरलंग के आक्रमण का सामना किया था। इस राज्य का वर्णन 'चंपावत के कुमु राजा' शीर्षक अध्याय में आगे दिया गया है।

गोविषाण का वर्णन ऊपर हो चुका है। वह ढिकुली का पर्वतस्थल नहीं हो सकता क्योंकि जैसा गोविषाण शब्द से लगता है वह गोचर की समतल भूमि का स्थल रहा होगा। प्राकृत ग्रन्थों में दिल्ली नगर का नाम ढिल्ली या ढिल्याँ लिखा मिलता है। इसी प्रकार ढिकुली भी देवकुल शब्द रहा होगा। कमिश्नर रैमजे द्वारा रामनगर के बसाए जाने पर इन खंडहरों के अनेक सुन्दर पत्थर वहाँ से रामनगर में मकानों के बनाने में काम में लाएगए। कई सुन्दर पत्थर ढिकुली और उसके निकट के ग्रामवासियों द्वारा अपने उपयोग में लाये जा चुके हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक कुछ उत्कृष्ट मूर्तियाँ ढिकुली विश्राम गृह के हाते में रखी हुई थीं। पश्चिम की ओर जंगल में आज भी उजड़ी बावड़ियों, ढूहों, स्तूपों और दीवारों के खंडहर पुरातत्व अन्वेषकों के कुदाल की प्रतीक्षा में हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक इस जंगल में आधी तराशी हुई तथा कोई बिना तराशी हुई मूर्ति के इतने अधिक ढेर यहाँ थे कि लगता था कि मानो यह पूर्व काल में मूर्तिकारों की कर्मशाला रही हो। सिंह शब्द का कुमाऊँनी उच्चारण स्यू है। सम्भवतः अल्मोडा के उत्तर पूर्व स्यूनराकोट प्राचीन सिंहपुर कोट या स्यूंनगर कोट है। इसी भाँति पाली पछाऊँ की गेवाड़ पट्टी अति प्राचीन काल से बसे होने के कारण प्राचीन गोविषाण हो सकती है गेवाड़। (ग्वाड़) तथा गोविषाण दोनों समानार्थी हैं। पाली पछाऊँ में बारह खंभों की बीथी जो बारखम (रानीखेत से उत्तर पश्चिम ३५ किलो मीटर) गाँव में स्थित है, सैणू मानूर, सिलोर (शैलोद), तथा भिकिया (भिक्षु) सैण आदि में बौद्ध अवशेषों का आभास मिलता है। सभी स्थल पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

अंकित शब्द की पादटीका के लिए पुस्तक के अन्त में दी गई अनुक्रमिका का उपयोग किया जाए।

———

कत्यूर (कार्तिकेयपुर) के शासक

कत्यूर के शासकों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री उनके समय के ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों से ही उपलब्ध है। कुमाऊँ गढ़वाल में पाया जाने वाला सर्वाधिक प्राचीन अभिलेख तालेश्वर का माना जाता है। इसकी लिपि ब्राह्मी है तथा भाषा संस्कृत है जिसमें अनेक अशुद्धियाँ हैं। यह शासन पत्र ब्रह्मपुर से प्रचारित किया गया है। ऐपि० इंडिका खण्ड १३ पृष्ठ ११५-११७ में इस अभिलेख का वर्णन दिया हुआ है। उसी के आधार पर लेख का कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

विष्णु वर्मा प्रपो त्रस्य पोत्र स्य बृषवर्म्मण
श्रूग्निवर्म्म सुतस्यैह शासन द्विजवर्म्मण
····· नुग्रहात्र्थाय साधु संरक्षणाय च
सोमवंशोद्भवो राजा जयत्यमित विक्रम

यह राज्य की मोहर या मुद्रा ज्ञात होती है क्योंकि ताम्र शासन का मूल विषय इन चार पंक्तियों के उपरान्त आरम्भ होता है।

आगे लेख है- स्वस्ति .. पुरन्दरपुर प्रतिमाद्-ब्र ह्मपुरात सकल जगन्मूसोर्व्वी-चक्क्र-महाभार वहन-मूर्ते भंगवत् वरणेस्वर स्वामिनिश्चरण।

इस प्रकार की २७ पंक्तियों के उपरान्त अट्ठाईसवीं पंक्ति है-उत्कीर्णन्यक्षराणि सौर्वणिकानन्तनेतिका राज्य सं० ५ पौष दि० ३० ।

लेख का आशय खरक गाँव के कोण कलिका गंगा में गुणेस्यरा बलदीपक नाम क्षेत्र में खेती करने योग्य बंजर भूमि सहित चोर कटक, जामुन और साल के निकुजों से घिरे पर्वतक, भाविलान और कर्वीरकोटा गाँव, गक्सीकरण गाँव में महासाल, बुरासिका, दन्तबनिका नामक खेत, जाराणा गाँव में चोर पानी नामक खेत, भगना नूप मोड्डभा क्षेत्र में पुटवनक, कर्कटस्थूण, बंजाली, उत्तर गंगा, कपिलगर्ता, कोटर बंज, शिवमुखी, दाड़िमका और शिशपिका नामक पल्लियाँ, शरथ जिले में कर्वीरगर्ता, कोल्लपुरी और भेल के ऊपर की पल्लियाँ, कर्कोटा में खण्डाकपल्ली, मम्मदत्त, राज्य कतोली, श्रृंगाल, खोहणक भूतपल्लिका, गोग्गपल्लिका, वारुणाश्रम, प्रभीलापल्लिका, देवदासतोली, नारायणदेव, कुलक मालाखानक, श्री भाचर्प्पट तथा अनगगालगर्ता, कर्कोटा में उत्तर वास, ब्रह्मपुर जिले में कार्तिकेयपुर नामक गंवाड़ा और समज्जा-व्याथा नामक खेत, त्रयम्बपुर में सुवर्णिकारपल्लिका, दुष्पा, वृद्धपल्लिका और चन्द्र पल्लिका, विल्वक में जयभट्ट पल्लिका तथा बचाकरण गाँव, दीपपुरी में वृद्धतरी पल्लिका, क्रोड़शूर्पी में वद्र्थीक पल्लिका, उष्ट्रालमक, कटकभृष्टी, डिंडिक, चतुश्शाल, अरोहागल नामक पल्लियाँ, शोरा में बाहिरण्य चन्दुलाक और भट्टिट नामक पल्लिकाएँ

कार्तिकेय पुर में अतिवलाक, विशाखिल पल्लियाँ तथा निकटवर्ती अरिष्टाश्रम सकिन्नारा में दुर्ग के नीचे वाटक पल्ली जिसमें तुंगुल व्यवसाय है, पितृ गंगा के तट पर शीर्षारण्य, कण्ठारपार्श्व, राजपुत्र ओद्वाल के नाम पर बसा कर्वटक, उत्तरपथ और निकट के गंवाड़े, पश्चिमी द्रोणी में उदुम्बरवास, गोहट्ट वाटक, पुष्पदन्तिका, वासन्तीवनक, करवीरिका, खोह्वावनक, मल्ल वस्तुक, मल्लिका, शिवक, कराभशालिका तथा गोलथालक के दान से है।

इस लेख का लेखक दिविरपति विष्णुदास है और उत्कीर्ण करने वाला सुवर्णकार अनन्त है। दूतक सान्धिविग्रहिक प्रमातार सूर्यदत्त है।

तालेश्वर का ही दूसरा ताम्र शासन इपिग्राफिका इंडिया में पृष्ठ ११८ से १२० तक (खण्ड १३) में दिया गया है। यह भी ब्रह्मपुर से प्रसारित है। इसमें भी कुछ खेतों और गाँवों को दान में दिये जाने का उल्लेख है। ये गाँव गोमती सारी, देवश्यर्कर्षिका, चम्पकतोली, पाटलिका नामक स्थलों में हैं।

दोनों ताम्रपत्रों की मोहरों के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि वे वास्तविक नहीं हैं, कूटज (जाली) हैं तथा बाद में जोड़ी गई हैं।

बद्रीनाथ के मंदिर में सुरक्षित कत्यूरी राजा ललित शूर देव आदि के ताम्रलेख हैं। पहले ये पाँच ताम्रपत्र थे किन्तु कहा जाता हैं कि पंडित तारा दत्त गैरोला द्वारा इनके जर्मनी भेजे जाने पर वापस केवल चार आए हैं। लेखक ने इन चार ताम्रपत्रों को जो पांडुकेश्वर प्लेट्स' कहलाते हैं, ग्रीष्म १९७२ में बद्रीनाथ मन्दिर में देखा। इनकी भाषा शुद्ध संस्कृत तथा लिपि अलंकृत देवनागरी है। प्रथम ताम्रपत्र में ३० पंक्तियाँ हैं। पहली पंक्ति है-स्वस्ति श्रीमत्कार्तिकेयपुरात्सकलामर दितितनुजमनुज विभुभक्तिभावभारानमितामितोत्तमांग संगिविकटमुकुटकिरीट विटंककोटि कोटिशो लोकता।

लेख के अन्त में पंक्ति के प्रथम ९ अक्षरों के उपरान्त कुछ स्थान खाली है। फिर पाँच अक्षर है फिर कुछ स्थान खाली है फिर चार अक्षर हैं और फिर शेष-पंक्ति ताम्रपत्र की पूरी लम्बाई तक चली गई है।

ताम्रलेख साधारण बच्चों की पाटी के आकार का है। उसकी मुठिया बीच में परशु के आकार की है और गोल मुहर के ऊपर बड़ा ही सुन्दर राजचिह्न नन्दी (सांड) अंकित है। गोलाकार मुहर के बाहर 'श्री' लिखा हुआ है। नन्दी के पांव के नीचे तीन पंक्तियाँ हैं—

श्रीमिम्बरस्तत्पादानुध्यातः।
श्रीमदिष्टगणदेवः तत्पादानुध्यातः।
श्रीमल्ललितशूरदेवः क्षितीश:।

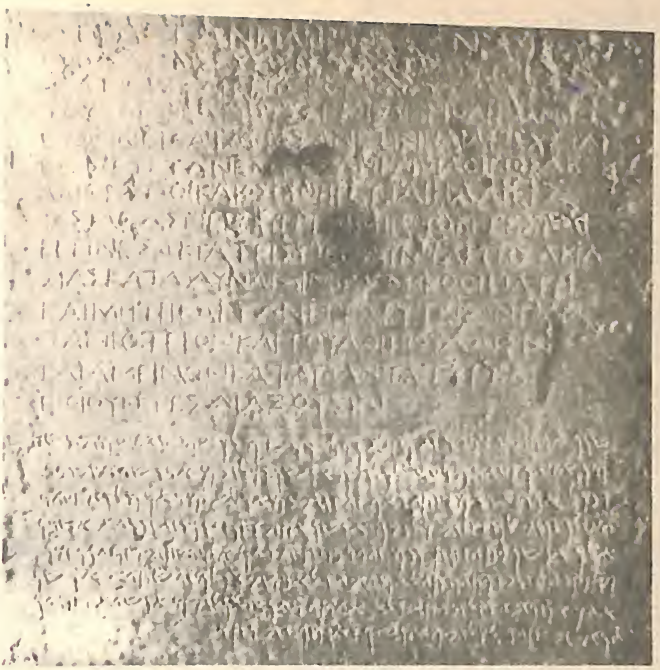

अशोक का ग्रीक आर्मीनी शिलालेख—गान्धार में पृष्ठ--११२—११३

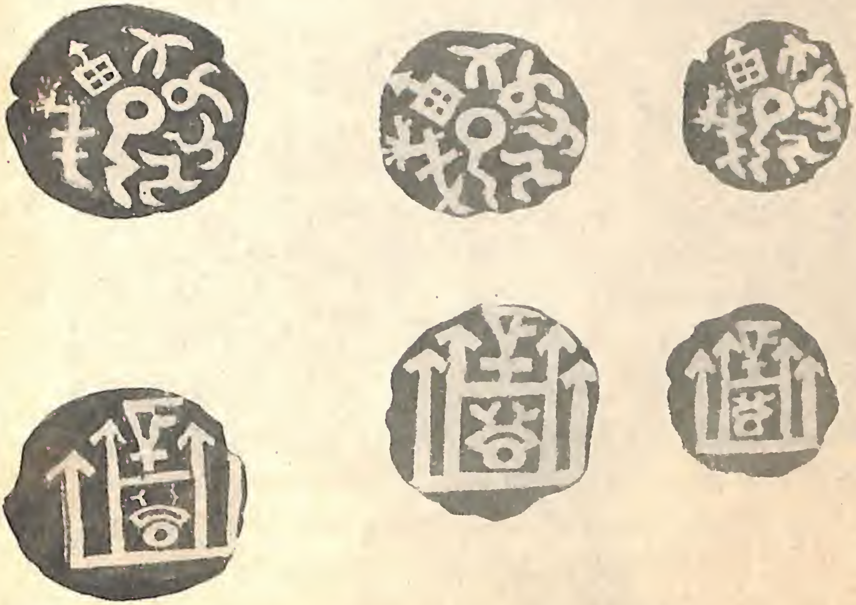

गरुड़ (अल्मोड़ा) में पाए गये सिक्के पृष्ठ—१२४—१२५

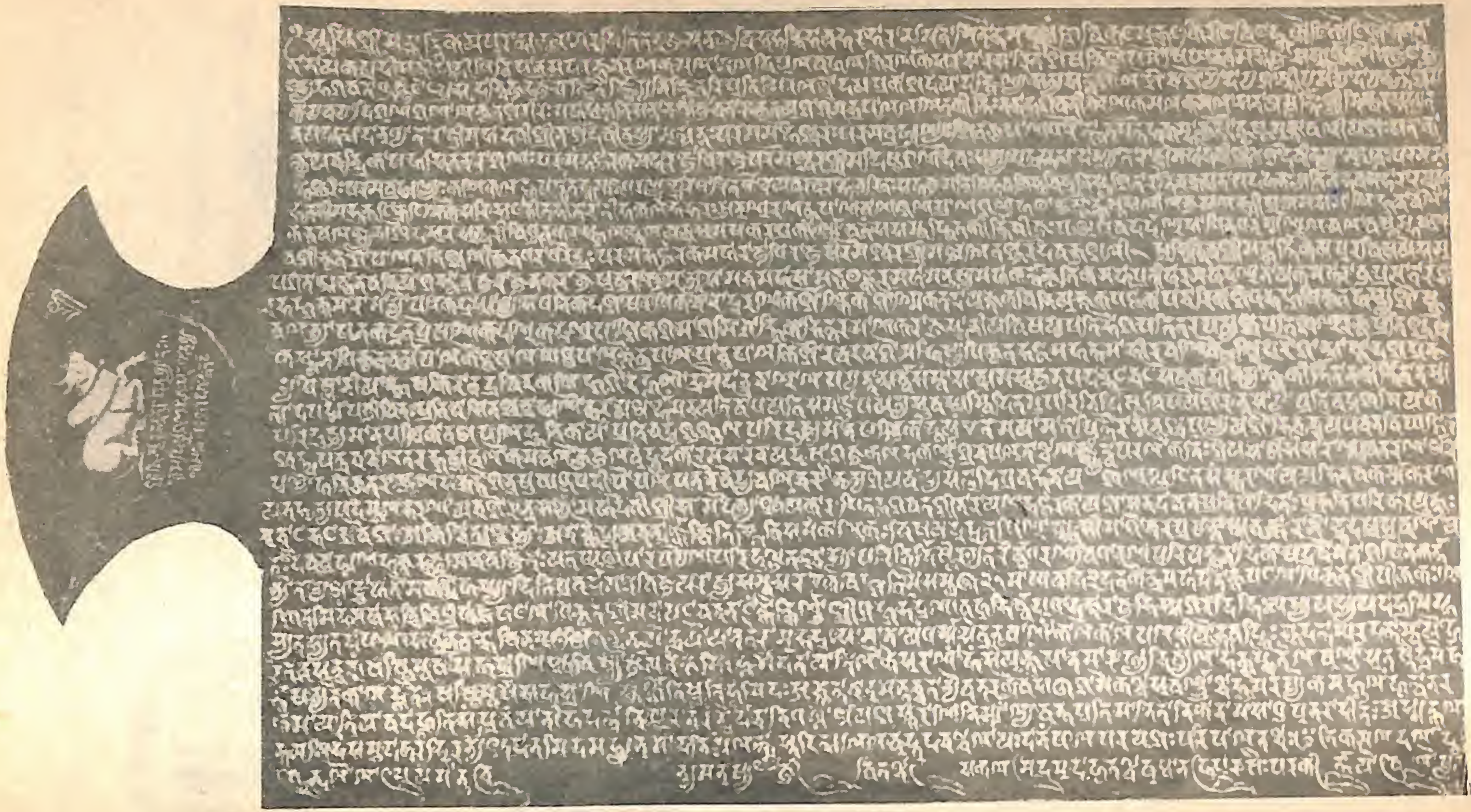

कत्यूरी ताम्रपत्र (पांडुकेश्वर प्लेट) पृष्ठ—१५४

लेख का आशय है स्वस्ति श्रीमत् कार्तिकेयपुर से भगवान धूर्जटि की कृपा से निजभुजा द्वारा उपार्जित............रानी वेगदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर परम ब्रह्मण्य परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् इष्टगणदेव उनके पुत्र रानी महादेवी उनसे उत्पन्न परम माहेश्वर परमब्रह्मण्य पृथु समान परमभट्टारक महाराजाधिराज ललितशूर देव ने कुशल पूर्वक इसी श्रीमत् कार्तिकेयपुर विषय में आकर सभी आज्ञानुवर्तियों राजा, राजानक, राजपुत्र, आसृष्ट, राजामात्य, सामन्त, महासामन्त, ठक्कुर, महामनुष्य, महाकर्ता, कृतिक, महाप्रतिहार, महादण्डनायक, महाराज प्रमातार, शरभंग, कुमारामत्य, उपरिक, दुस्साध्यसाधनिक, दशापराधिक, चौरोद्धरणिक, शौल्किक, गौल्मिक, तदायुक्तक, विनियुक्तक, पट्टकापचारिक, आशेधर्मगाधिकृत, हस्ति - अश्व - उष्टसेनाव्याप्रतिक, दूतप्रेषणिक, दण्डिक, दण्डपाशिक, गमा-गमीसांर्गिक, अभित्वरमाणक, राजस्थानीय, विषयपति, भोगपति, नरपति, अश्वपति, खण्डरक्ष, प्रतिसूरिक, स्थानाधिकृत, वर्त्मपाल, कोट्टपाल, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, किशोरबड़वाधिकारी, गौमहिष्याधिकारी, भट्ट महत्तम, आभीर, वणिक, श्रेष्ठि आदि प्रजाओं के अट्ठारह प्रकृति अधिष्ठाताओं को, खस, किरात, द्रविड़, उड्र, मेद, आन्ध्र, चाण्डाल तक सभी जातियों को समस्त जनपदों को भटचट सेवक आदि उक्त अनुक्त हमारे चरण कमल के दूसरे आश्रितों को, प्रतिवासी ब्राह्मणों आदि को यथायोग्य मानते सम्बोधित करते हुए आज्ञा दी जाती है—ज्ञात हो कि उपर्युक्त विषय में गोरुन्नासा में खसियाक द्वारा उपभोग की जा रही पल्लिका तथा पणिभूतिका से सम्बन्धित गुग्गुल द्वारा उपभोग की जा रही दो पल्लिकाओं को, इनको मैंने माता पिता तथा अपने पुण्य और यश की वृद्धि के लिए संसार को अश्वथपत्र की भाँति चंचल जानकर और संसार समुद्र से पार होने के लिए आज पुण्य दिन उत्तरायण संक्रान्ति को गंध, पुष्प, धूप, दीप, उपलेपन, नैवेद्य, वलि, चरु, नृत्य, गीत वाद्य, सत्र आदि के चलाने के लिए टूटे-फूटे की मरम्मत तथा नये भवन के निर्माण के लिए और सेवकों, आश्रितों को पालने-पोसने के लिए गोरुन्नासा में महादेवी श्री सामदेवी द्वारा बनवाए गए श्री नारायण भगवान के लिए शासन द्वारा प्रदान किया।

न प्रजा का अधिकार, न प्रचाटभट सेवक के प्रवेश के योग्य और न कुछ इसमें से लेने योग्य और न अपहरण करने योग्य है।

प्रबर्धमान विजय राज्य सम्वत्सर २१ माघ वदी ३ यहाँ दूतक महादान के अक्षपटल अधिकारी श्री बीजक ने इस ताम्र पत्र को लिखा। सन्धि विग्रह के अक्षपटल के अधिकारी श्री आर्यटपतु ने, उत्कीर्ण किया श्री गंगभद्र ने।

ताम्रपत्र की मुठिया पर नन्दी की छाप के नीचे तीन पंक्तियाँ हैं—श्री निम्बर, उनके पदानुचर, श्रीमत् इष्टगणदेव, उनके पदानुचर, श्रीमत् ललितशूर देव क्षितीश।

राजाओं की देव उपाधि

ताम्र पत्र से ललितशूर देव नामक इस राजा के राजकुल का पता नहीं लगता है। कत्यूर नाम तो इस राजवंश को बहुत बाद में दिया गया है, कार्तिकेयपुर में ललितशूर देव के राजदरबारियों, अधिकारियों प्रजाजनों का जो दृश्य उभरता है वह चकाचौंध कर देने वाला है। भारत के क्या विश्व के किसी भी देश में आठवीं, नवीं सदी ई० में ऐसा क्षितीश (पृथ्वीपति) बिरला ही हुआ होगा। राजा के राज्य शासन में अट्ठारह विभाग थे। उन्हें अष्टादश प्रकृति प्रतिष्ठान कहा गया है। राजा का विदेश मंत्री सन्धि विग्रह अधिकारी कहा गया है। उसके कार्यालय को अक्षपटल कहा गया है। राजा के सामन्त, महासामन्त, आमात्य, महाप्रतीहार आदि के अतिरिक्त महादण्ड नायक, दण्ड नायक, शुल्क वसूल करने वाले शौल्किक, दुर्गों की रक्षा करने वाले कोट्टपाल, घाटों और दर्रों की रक्षा करने वाले घट्टपाल, मार्गो के रक्षक वर्त्मपाल, जिलों के अधिकारी विषयपति, छोटे इलाकों के अधिकारी भोगपति, अपराधियों को पकड़ने वाले दण्ड पाशधारी दण्ड पाशिक आदि लगभग साठ अन्य पदाधिकारियों का उल्लेख एक अत्यन्त व्यवस्थित शासन प्रणाली का द्योतक है। प्रजाजनों में जिन जातियों का उल्लेख हुआ है उसमें दक्षिण के आन्ध्र, पश्चिम के मेद, पूर्व के ओड् (उड़ीसा के निवासी), उत्तर के खस—किरात भी उपस्थित हैं। इन सब में किस जाति का उल्लेख नहीं हुआ है उसी को ढूंढने पर हम राजा के वास्तविक वंश का पता लगा सकते हैं। राजा का स्वयं नाम संस्कृतनिष्ठ है अन्यथा उसके दादा निम्बर और पिता इष्टगणदेव का नाम तथा उसकी माता सामदेवी का नाम उतना संस्कृतनिष्ठ नहीं है। इससे लगता है कि यह राजा निश्चय ही उस हिन्द–यवन शासकों का वंशज होगा जिसने कभी उत्तर भारत में अपनी कीर्तिध्वजा फहराई होगी। ताम्रपत्र में यवन जाति का उल्लेख नहीं हुआ है। देव उपाधि के यवन शासक कालान्तर में उत्तर भारत में थे। स्वयं सिकन्दर ने भी कोरिन्थ में अपने को देव घोषित किया था। पश्चिम में ऐसे यवन शासक के नाम के अन्त में 'थियौस' की उपाधि जोड़ी जाती थी। जिसका संस्कृत रूपान्तर देव है। इस वंश के अन्य राजाओं के नामों का उल्लेख अन्य ताम्रपत्रों में हुआ है जिन पर आगे विचार किया गया है।

दूसरा ताम्रपत्र

ललितशूर देव का ही दूसरा ताम्र पत्र कार्तिकेयपुर से ही प्रचारित है। इसकी भाषा भी संस्कृत है और लिपि कुटिला। इस दूसरे ताम्रपत्र का आशय है—

···'विषवत् संक्रान्ति के पुण्य दिवस पर पलसारी गाँव में देन्द्रवाक द्वारा उपयोग की जा रही भूमि को मैंने गरुड़ाश्रम में भट्ट श्री पुरुष द्वारा स्थापित भगवान श्री नारायण के मंदिर में गंध, पुष्प, धूप, लेपन, वलि, चरु, नृत्य, गीत, गेय वाद्य, सत्र आदि चालू रखने तथा टूट-फूट की मरम्मत करने के लिए इस ताम्र शासन द्वारा प्रदान

कर दिया है। ......उक्त सम्पत्ति पर न प्रजा का अधिकार रहेगा, न वह प्रचाट भट के प्रवेश के योग्य रहेगी और न इसमें से कुछ लेने योग्य तथा न अपहरण करने योग्य रहेगी।

उस देव के विजय राज्य सम्वत्सर २२ कार्तिक सुदी १५ दूतक महादान अक्ष-पटल अधिकारी श्री बीजक महासंधिविग्रह अक्षपटल अधिकारी श्रीमत् आर्यट के वचन के अनुसार श्री गंगभद्र ने उत्कीर्ण किया।

तीसरा ताम्रपत्र

कार्तिकेयपुर से ही तीसरा ताम्रपत्र प्रचारित किया गया जो पद्मटदेव नामक शासक द्वारा उत्कीर्ण कराया गया। इस ताम्रपत्र का आशय है—टंकणपुर में द्रुमती क्षेत्र में दीर्घादित्य, बुद्धाचल, यिदादित्य और गुणादित्य द्वारा उपभोग की जा रही पल्लिका में द्रुमती के पंगरखेत का पन्द्रहवाँ भाग, योशिगाँव में अपोगलावृत्ति तथा गंगा के पश्चिम तट पर खप्रोद उपरिउलिका खेत, काकस्थली गाँव के पार वटवृक्ष के तल के भाग में देशाचर मान से दो द्रोण बीज वाली भूमि क्रय करके भगवान बद्रिकाश्रम भट्टारक के लिये प्रतिपादित की। ...... वृक्षवाटिका और जलाशयों सहित सब छोटे बड़े गाँवों की भूमि तथा उसके साथ गौचर भूमि उत्तरायण की संक्रान्ति को अपने माता पिता और पुण्य यश की वृद्धि के लिये संसार को नाशवान समझ कर भगवान बद्रिकाश्रम में गंध, पुष्प, धूप, लेपन, बलि, चरु, नृत्य, गीत, गेय, वाद्य, सत्र आादि चालू रखने तथा टूटफूट की मरम्मत करने के लिये इस ताम्र-शासन द्वारा प्रदान कर दिया है इस सम्पत्ति पर न प्रजा का अधिकार रहेगा, न वह प्रचाटभट के प्रवेश के योग्य रहेगी न इसमें से कुछ लेने योग्य तथा न अपहरण करने योग्य रहेगी।

प्रवर्धमान विजयराज सम्वत्सर २५ माघ वदी १३, दूतक महादान अक्षपटल अधिकारी श्री भट्टधणः, महासंधिविग्रह अक्षपटल अधिकारी श्री नारायण दत्त, इसे श्री नन्द भद्र ने उत्कीर्ण किया।

चौथा ताम्रपत्र

पाण्डुकेश्वर प्लेट नाम से ख्यात चौथा ताम्रपत्र सुभिक्ष राज नामक राजा द्वारा अपने ही नाम के नगर सुभिक्षपुर से प्रसारित किया गया है। इस ताम्रलेख का आशय है—नम्बर गाँव में बच्छरक के पास नडिमलाक भूमि में छः नाली बीज बोने योग्य भूमि, भेटसारी में आठ नाली भूमि, बाडियालिक में चार द्रोण भूमि, भागरू के पास तीन नाली का बनोलका नामक खेत, सुभट्टव के पास दो द्रोण वाला सरपंखोन, प्रस्तराक भुत्तिरोड के पास शठिक खेत, गोवितंग के पास तीन द्रोण का कवच्छश्रद्धा खेत, बेनवाक के पास क्षीरानावा, सोशिजीवाक के पास आठ द्रोण का गंगरक तथा

जीवाक सीमादित्य खेत, इच्छवला के पास तीन द्रोण का पेट्टक खेत ·····। उपर्युक्त भूमि और गाँव श्री हर्षपुर में श्री दुर्गाभट्ट के क्षेत्र में ·····विष्णुगंगा के तट पर स्थित श्री नारायण भगवान को अर्पित कर दी है। उसके लिये यह लेख लिखा जा रहा है।

भूमि को सभी करों से मुक्त करने की वाक्यावली पहले ताम्रपत्रों की भाँति ही है। केवल ये नये शब्द जोड़ दिए गए हैं–अन्यथा व्यतिक्रमे महान् द्रोहस्यात अर्थात् जो इसमें बाधा डालेगा वह महान द्रोह समझा जायेगा।

यह ताम्रपत्र प्रवर्धमान विजय राज सम्वत्सर ४ ज्येष्ठ वदी ५ को लिखा गया। दूतक महादान अक्षपटलाधिकारी श्री कमला ·· ··हैं तथा महासंधिविग्रह अधिकारी श्री ईश्वरी दत्त और उत्कीर्ण करने वाले श्री नन्द भद्र हैं।

शिलालेख

उक्त चार ताम्र पत्रों के अतिरिक्त कत्यूरी शासकों का एक अन्य शिलालेख बागेश्वर मन्दिर में उपलब्ध था। जो अब प्राप्त नहीं है। इस शिलालेख का अनुवाद एटकिंसन के गजेटियर में अंग्रेजी में हुआ है। इसकी भाषा भी संस्कृत है और लिपि भी ताम्रपत्रों की भाँति कुटिला है। इसे भूदेव नामक राजा ने उत्कीर्ण कराया है। शिलालेख का आशय है—'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मसन्तनदेव नामक राजा हुए। उनकी पति परायणा पत्नी रानी सज्यनरादेवी से उत्पन्न पुत्र परमसम्मानित, श्रद्धाभाजन, अति-विभव-सम्पन्न, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमन् ···· हुए। वे परमेश्वर (शिव) के पूजार्थ अनवरत वृत्ति-प्रदाता जयकुलभुक्तिकी ओर जाने वाले कई सार्वजनिक मार्गों के निर्माता ···· आदि आदि थे। उन्होंने अपने पिता द्वारा दिए गए गाँव और पुषादिदृव्य उन्हीं देव को प्रदान किया ····इस प्रकार इस शिलालेख में कत्यूरी राजवंश की वंशावली का उल्लेख है। और कुल आठ शासकों के नाम दिए हुए हैं। वे इस प्रकार हैं—मसंतनदेव (वसंतनदेव ?), खरप्परदेव, कल्याणराज देव, त्रिभुवनराज देव, निम्बरटदेव, इष्टगणदेव, ललितेश्वर देव तथा भूदेव देव।

जिन रानियों के नाम इस शिलालेख में आए हैं उनमें नाथू देवी, धरा देवी (वेंग देवी), लटा देवी (लथा देवी) आदि हैं। शिलालेख की एक पंक्ति है–निनुनानुटी नाम से प्रसिद्ध द्वार पर पारादेव को नमस्कार। यह राम्य गाँव में पावपिद्दत स्थान पर है। एक राजा था जिसका नाम मसंतनदेव था जो सब राजाओं का राजा तथा बड़ा ही धनवान तथा बड़ा ही पूजनीय था। उसकी रानी का नाम सज्यनारा देवी था।

इस वाक्य में दिया सम्भवतः नीनुनानटी ही कर्णप्रयाग के पास का नैणिनौटी गाँव है

जहाँ नन्दा देवी के पुजारी रहा करते हैं तथा जहाँ से पूर्व काल में प्रति बारहवें वर्ष-नन्दाक हिम पर्वत के मूल तक बड़ी जात (बड़ी यात्रा) आरम्भ होती थी। इस शिलालेख में यह नहीं दर्शाया गया है कि यह किस स्थान से प्रचारित किया गया। न इसमें अधिकारियों के नाम आए हैं। एक स्थल पर लिखा गया है कि 'राजा के परममित्र किरात पुत्र ने उक्त देव तथा गंवियर्पिड देवता के लिए ढाई द्रोण भूमि दान दी। अधिधज के दूसरे पुत्र ने भर के देवता को एक द्रोण भूमि दी। दो······ भूमि के दान का सम्वत् ११ में शिलालेख कराया। व्याघ्रेश्वर देव को एक द्रोण और चण्डालमुण्डा देवी को चौदह ···भूमि प्रदान की। व्याघ्रेश्वर देव के सम्मान में प्याऊ स्थापित किया।······वह परब्राह्मण भक्त, बुद्धश्रवण, शत्रुसत्यप्रिय सुन्दर विद्वान तथा धर्मानुष्ठान तत्पर हैं। उनके पास कलि नहीं फटक सकता। वह सुवर्ण वर्ण तथा उनके नेत्र नील सरोज के समान सुन्दर चपल हैं।······उनके महान शस्त्र ने अन्धकार को ध्वस्त कर दिया। उन्होंने अपने कृपापात्र सेवकों को वृत्ति (पेंशन) प्रदान की। उन्होंने······'

जो राजवंशावली इस शिलालेख में दी गई है वह ताम्रपत्रों में दी गई वंशावली से कुछ भिन्न है। तीसरे ताम्रपत्र में जो वंशावली है वह सलोनादित्य से आरम्भ होती है। सलोनादित्य की पत्नी का नाम सिंहवली देवी है। दूसरे राजा का नाम इच्छटदेव और उसकी पत्नी का नाम सिंधुदेवी है। तीसरा शासक देशटदेव और उसकी रानी पद्मल्ला देवी है। चौथा शासक पद्मटदेव है और उसकी रानी इशालदेवी है। पाँचवा शासक सुभिक्षराज देव है। उसकी रानी का नाम नहीं दिया गया है। पांडुकेश्वर के दूसरे ताम्रपत्र में निम्बरटदेव और उसकी रानी नाथूदेवी, उसके पुत्र इष्टगणदेव और उसकी रानी देश (वेग) देवी का उल्लेख है।

इन सभी प्राचीन अभिलेखों का अनुशीलन करने के उपरान्त एटकिंसन ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं- "मुगेर के पाल राजा के अभिलेख, भागलपुर के देवपाल देव के अभिलेख तथा नारायण नामक पाल वंश के अभिलेखों का यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक है। मुगेर के अभिलेख में देवपाल को सौगत कहा गया है। उसकी वंशावली गोपाल से आरम्भ होती है। गोपाल का पुत्र धर्मपाल था जिसके विषय में कहा जाता है कि वह दुष्टों का दमन करने और सज्जनों का पालन करने वाला था। उसके सेवकों ने केदार भूमि के दर्शन करके नीति के दुग्ध का पान किया। उसके पुत्र देवपाल ने शान्ति पूर्वक अपने पिता के राज्य को उसी भाँति प्राप्त किया जैसे सुगत से बोधिसत्व ने प्राप्त किया था। उसने गंगा के उद्गम से लेकर दस्यु लोगों को पराजित करने के लिए बने सेतु तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। पाँचों अभिलेखों की लिपि कुटिल अथवा टेढ़ी-मेढ़ी है। ऐसी लिपि के आठवीं से दसवीं शताब्दी ईस्वी तक के लिखे अनेक अभिलेख मिलते हैं। मुगेर और भागल-

पुर के अभिलेखों की लिपि भी इसी प्रकार की है । सभी छः अभिलेखों के लेखकों की उपजाति भद्र है । ललितशूर देव के अभिलेख का लेखक गंगभद्र है, दैषटदेव के अभिलेख का भी कोई भद्र है, पद्मदेव और सुभिक्षराज देव के दानपत्र का लेखक नन्द भद्र है तथा पाल शासकों के ताम्रपत्रों का लेखक विन्द भद्र तथा एक अन्य में भट्ट गुरव है। बुद्दलपाल के अभिलेख का लेखक भी विन्द भद्र है । सभी अभिलेखों में अधिकारियों के नाम समान हैं । उनका क्रम इतना समान है कि उसे आकस्मिक नहीं कहा जा सकता । लगता यह है कि ऐसा लिखना भद्र जाति के लेखकों की विशेषता थी । लेखों की प्रशस्तियाँ और देवताओं की स्तुतियाँ भी समान हैं । इन सब नामों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि छोटे से पहाड़ी राज्य में इनका एकत्र होना सम्भव नहीं था । विशेषतः ऊँटों और हाथियों के रक्षकों और घुड़सवारों के सेनापति का पर्वत प्रदेश में पहुँचना । यह लेखन शैली का अनुकरण मात्र ही लगता है । दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन ताम्रपत्रों में जिस सम्वत्सर प्रणाली का उल्लेख किया गया है वह कुमाऊँ में प्रचलित नहीं थी । इसे बंगाल के राजाओं से ही लिया गया है । जिन लोगों के पास ये ताम्रपत्र आजकल हैं उनमें से कोई भी इसका एक अक्षर भी नहीं पढ़ पाता है । अतः यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं कि ये असली नहीं, जाली हैं । इस तरह की जालसाजी सम्भव भी नहीं हो सकती ।

"पांडुकेश्वर प्लेट के देखने से लगता है कि निम्बरटदेव को किसी विदेशी शत्रु का सामना करना पड़ा । निम्बरदेव के विषय में कहा जाता है कि उसने शत्रुओं को ऐसे पराजित किया जैसे सूर्य कोहरे को नष्ट कर देता है । उसके इष्टगणदेव ने 'अपनी तलवार की नोक से क्रुद्ध हाथियों का संहार किया' । पहाड़ी प्रदेश में शत्रु का हाथी पर सवार होकर आना सम्भव नहीं है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कत्यूरी शासकों को मैदान से आए हुए किसी शत्रु का पहाड़ी दर्रों के आस पास सामना करना पड़ा ।"

ललितशूर देव को इन लेखों के अनुसार युद्धों में प्राप्त सफलता के लिए सबसे अधिक प्रशंसा मिली है। अपने युद्ध अभियान में सदा तत्पर और अपने अपार धन से वह अजेय हो गया था । उसने पृथ्वी के राजाओं को ठिकाने लगा दिया था । पाल अभिलेख में गोपाल की तुलना राजा पृथु से की गई है । और कत्यूरी अभिलेख में ललितशूर देव को यह उपमा दी गई है । बंगाल में बुद्दल के अभिलेख में गौरव भट्ट नामक मंत्री ने देवपाल के द्वारा अपने राज्य का विस्तार दक्षिण में महेन्द्र पर्वत से लेकर उत्तर में हिमालय तक करने का उल्लेख किया है । दैषट देव और पद्मठदेव के ताम्रपत्र क्रमशः कार्तिकेयपुर में तथा सुभिक्षराज देव का ताम्रपत्र सुभिक्षराजपुर में लिखे गए हैं। उनमें किसी पूर्ववर्ती राजा का उल्लेख नहीं है । एटकिंसन

का अनुमान है कि सुभिक्षराजपुर सम्भवतः कार्तिकेयपुर का ही कोई महल्ला था। प्रथम दो लेखों के समय में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों में सलोनादित्य की विजय का उल्लेख है। पद्मट देव के विषय में कहा गया है कि "उसने अपने शस्त्र-अस्त्रों से चारों ओर के अनगिनत प्रदेशों पर अधिकार किया। उन देशों से उसे हाथी घोड़े, रत्न आदि इस भाँति उपहार में मिले कि उसने इन्द्र को भी निष्प्रभ कर दिया। वह पृथ्वी पर अपने व्यवहार के कारण दधीचि तथा चन्द्र गुप्त के समान था।"

दैंषट देव का ताम्रपत्र एसाल विषय (जिले) के लोगों को सम्बोधित है। पद्मट-देव का ताम्र पत्र तंगणपुर के लोगों को और सुभिक्षराज का ताम्रपत्र भी तंगणपुर और अंतराग जिले के लोगों को सम्बोधित है। अन्तराग जैसा कि इस नाम से स्पष्ट है दो नदियों का मध्यवर्ती भू-भाग रहा होगा। एटकिंसन का अनुमान है कि यह भागीरथी और अलकनन्दा के मध्य का वर्तमान देव प्रयाग से उत्तर का क्षेत्र है। मुगेर के देवपाल देव के अभिलेख में कुमाऊँ के अभिलेखों के अतिरिक्त चार और जातियों का उल्लेख हुआ है। ये जातियाँ हैं गौराः, मालवाः, लाशटाः तथा भोटाः। लाशटा और भोटा ल्हाशा और भोट अर्थात् तिब्बत के देश हैं। तिब्बत की ओर से मगध के बौद्धों का उस काल में कुमाऊँ के बौद्धों से भी सम्बन्ध रहा होगा। चन्द्रगुप्त का उल्लेख भी कुमाऊँ के मगध से हुए सम्पर्कों का द्योतक है।

तंगणपुर की स्थिति पर विचार करने से पूर्व कत्यूरी ताम्रलेखों के समान भागलपुर, मुगेर तथा दीनाजपुर के अभिलेखों का संक्षिप्त वर्णन देना आवश्यक है। भागलपुर में गोपाल नामक राजा की प्रशस्ति के उपरान्त धर्मपाल वाकपाल, देवपाल तथा जयपाल नामक राजाओं के नाम आते हैं। लेख के अनुसार जयपाल को ही प्रयाग और उड़ीसा को अपने राज्य में मिलाने का श्रेय दिया गया है। देवपाल की मृत्यु के बाद विग्रंहपाल, फिर नारायणपाल नामक राजा हुए। आलोच्य अभिलेख नारायणपाल का है। इसका पात्र शिव भट्टारक है। सन् १७८० में दीनाजपुर तथा बोघरा जिलों की सीमा पर दीनाजपुर से लगभग ८० किलोमीटर दूर एक और ताम्र पत्र मिला था। इसका लेखक भी बिन्द भद्र है। इस अभिलेख में "पूर्व भारत, बंगाल और उड़ीसा तक चन्द्र वंश के राजाओं के पराभव के बाद एक क्षत्रिय, एक ब्राह्मण और एक वैश्य ने मिलकर शासन किया। सारे देश में कोई केन्द्रीय शासक नहीं रहा। अंत में गोपाल नामक राजा ने सभी सम्भावी शासक बनने योग्य व्यक्तियों की हत्या करके बंगाल में अपना शासन आरम्भ किया और उसने मगध को भी अपने राज्य में मिला लिया। उसने नालन्दा की स्थापना की।" इन शब्दों से एर्टकिंसन ने गोपाल वंश के संस्थापक का परिचय दिया है। एटकिंसन आगे लिखता है—"उस समय काश्मीर में श्री हर्ष का राज्य था। बनारस में पाई गई

एक बुद्ध मूर्ति के नीचे सम्बत् १०८३ का एक लेख है जिसमें महिपाल नामक राजा की प्रशस्ति है। कनिंघम के अनुसार इस लेख में गौड़ राजा महिपाल के द्वारा काशी में अनेक बुद्ध स्मारक बनाने का तथा उसके भाई स्थिरपाल, वसंतपाल आदि की बनाई हुई कुटी और मीनार का उल्लेख है।" (एट० ४८६)

तंगण परतंगण

प्रायः सभी प्राचीन धर्मग्रन्थों में तंगण लोगों को हिमालय प्रदेश के निवासी कहा गया है। वायु पुराण, वामन पुराण तथा बृहत्संहिता में तंगणों को कुलूत तथा खस लोगों के साथ वर्णित किया गया है। महाभारत में भी तंगणों का उल्लेख हुआ है। कहीं-कहीं इन तंगणों को टंकण म्लेच्छ भी कहा गया है। टंकण शब्द का संस्कृत कोश में वही अर्थ दिया है जो आजकल बर्तन राँझने अथवा टाँका लगाने के धातुकर्म का अर्थ है। आप्टे के संस्कृत कोश में तंगण तो कोई शब्द नहीं है। टंकण के लिए लिखा है— घोड़े की एक जाति तथा एक देश के निवासी विशेष। टंकण का दूसरा अर्थ इसी कोश के अनुसार सोहागा भी है। सोहागा तिब्बती व्यापार की सबसे प्रमुख वस्तु थी। ब्रिटिश शासन से पूर्व सोहागे को साफ करने के लिए कई स्थलों पर भट्टियाँ बनी हुई थीं। अतः तंगण और टंकण दोनों सोहागा और सोहागे का व्यापार करने वाले सीमान्तवासी पर्वतियों के लिए प्रयुक्त होते होंगे।

अल्बरूनी ने भी तंगण लोगों को उदीच्य लोग कहा है। तंगण देश के निवासी मार्कण्डेय पुराण में तुंगण कहे गए हैं। एपिग्राफिका इंडिका में तंगणपुर को जोशीमठ के निकट गढ़वाल जिले में बताया गया है। (एपि० इंडि० खण्ड ३१ पृष्ठ २८६)

लगता यह है कि पणि अथवा व्यापारी लोगों की वह शाखा या जन समुदाय जो हिमालय के दोनों ओर के सोहागे के व्यापार में सदियों तक लगा रहा तुंग पणि कहलाता होगा जो श्रुतिलाघव के कारण तुंग पणि से तुंगण कहलाया। इस नाम परिवर्तन में हजार बारह सौ वर्ष की अवधि बीती क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय भी तंकण या टंकण लोगों का उल्लेख टालमी द्वारा हुआ है। (टालमी ८-११-१३) प्राचीन काल में धातुओं को गलाने, औषधियों का निर्माण कराने, बर्तनों को काचित (ग्लेज या इनैमल) करने के लिए सुहागे की बड़ी मांग थी। सुहागे की खानें तिब्बत में ही थीं। और यह रसायन हिमालय के दर्रों से भारत के बाहर पश्चिम एशिया, मिस्र तथा योरोप तक जाता था। तंगण लोगों का उल्लेख स्वर्णधूलि के व्यापारियों के लिए भी महाभारत के पिपीलिका स्वर्ण के सन्दर्भ में हुआ है। महाभारत काल में तंगण कुनिन्दों के ही पडौसी थे। पिपीलिका स्वर्ण के मुगल बादशाहों को भेंट किए जाने का उल्लेख अल्मोड़े के चन्द राजाओं की बहियों में भी मिलता है। जिन छोटी-छोटी थैलियों में एक तोले भर स्वर्ण धूलि रखी रहती थी वे पेटांग

कहलाते थे। टंक या टंका शब्द भी तिब्बत में प्रचलित है और यह चाँदी का एक सिक्का था। तंगण शब्द से ही कुछ पुराविद् तांगा को व्युत्पन्न मानते हैं। हर्ष की सेना में तंगण घोड़ों का 'जिनकी सुन्दर दुलकी चाल ऐसी थी कि सवार के शरीर पर तनिक भी कम्पन नहीं होता था। यहाँ तक कि उसके हाथ पर लिया पानी भी नहीं छलक सकता था' (इडि० अग्रवाल पृष्ठ ८७) उल्लेख हुआ है।

कत्यूरी राजाओं के शासनकाल में तंगणपुर निश्चय ही हिम दर्रों का दोनों ओर का भू-भाग रहा होगा। कत्यूरी राजाओं के वैभवहीन होने के समय का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में ललितशूर देव तो एक चक्रवर्ती सम्राट् लगता है जो कार्तिकेयपुर विषय में केवल एक ही बार आया होगा। कार्तिकेयपुर विषय का शासन स्थानीय राजानक या उपराजा के उस वंश के हाथ रहा होगा जिसके पूर्वज मासन्तिदेव (वासन्तिदेव) कहे जाते हैं। ऐसे छोटे-छोटे राजा जो सभी अपने को कत्यूर वंश के मानने हैं कालान्तर में प्रायः सभी नदी घाटियों में स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए। कार्तिकेयपुर के अन्तिम शासक धाम देव और वीर देव (विरम्देव) के अत्याचार ही उनके विनाश के कारण वने। कहा जाता है कि वीर देव ने अपनी ही चाची से विवाह कर लिया था। इसी राजा ने कौसानी से बैजनाथ तक के दस किलोमीटर के मार्ग में प्रजाजनों की टोली को इस भाँति खड़ा किया था कि 'हतमाल' से हतछीना के नौले (बावड़ी) का पानी राजधानी पहुँच जाता था। ये लोग एक के उपरान्त एक दूसरे को पानी का कलस देते हुए उसे राजा के रसोई घर तक पहुँचाते थे। इसी राजा के विषय में वह जनश्रुति है कि उसने ब्राह्मणों को अपनी डोली (पालकी) ढोने को विवश किया। उनके द्वारा विरोध किए जाने पर उसने उनके कंधों पर पालकी रख कर ऊपर से कीलें ठोक कर कन्धों को पालकी के डंडों से जोड़ दिया। अंत में पीड़ा से कराहते हुए पालकी ढोने वालों ने जन कल्याण के लिए एक दिन पालकी सहित राजा को भी लेकर पहाड़ के ऊपर एक संकरे मार्ग से घाटी की ओर कूद कर अपनी तथा राजा की हत्या कर दी।

परितंगणपुर हिमालय प्रदेश की तंगणपुर से मिली हुई पूर्व अथवा पश्चिम की कोई दूसरी हिमघाटी रही होगी। पूर्व काल में नीती घाटा तथा माना घाटा दो व्यापारिक मार्ग चमोली में थे तथा ऊँट धूरा और लीपू लेख के दो मार्ग पूर्व की ओर कुमाऊँ में तिब्बत से आने जाने के लिए थे। इनमें से एक तंगण होगा और दूसरा परितंगण।

काश्मीर के कस (खस) और कुमाऊँ

कस्सी (खस), डोम और नाग जातियों से काश्मीर और कुमाऊँ समान रूप से सम्बन्धित हैं। काश्मीर का पुराना नाम कस्सीर था। भारत के अन्य प्रदेशों की भाँति काश्मीर का नाम इतिहास में बदलता नहीं आया है। लगभग २५०० वर्ष पहले पाणिनि के समय में भी कश्मीर (काश्मीर) नाम का ही प्रयोग हुआ है। यद्यपि कुछ ग्रन्थों में इसे कस्मीर लिखा गया है फारसी के प्रचलन के कारण कश्मीर कशीर हो गया। भाषाविदों के अनुसार पूर्ववर्ती ऊष्म के सारूप्य और अन्तिम स्वर के पतन के साथ संस्कृत की बोलियों के मध्य का म व के रूप में परिवर्तित हो जाता है इस भाँति कशीर पहले प्राकृत में कस्वीर फिर कस्मीर बोला जाने लगा। टॉलमी ने कस्पीर या कस्पीरिया से इस प्रदेश को अभिहित किया है।

कश्यप

मुगल सम्राट् बाबर ने भी अपने जीवन वृतान्त में लिखा है कि काश्मीर नाम पड़ने का कारण इस प्रदेश में रहने वाली कस जाति है। हैदर मलिक ने अपने विवरण 'तारीखे कश्मीर' में यह अनुमान लगाया है कि कश्मीर शब्द कश्यप-मर (संस्कृत का मठ) से व्युत्पन्न है। अथवा उसके अनुसार काश्मीर के अन्तिम पद मीर का अर्थ पर्वत है। सर ऑरेल स्टाइन के अनुसार भी कश्यप और मीर से कस्मीर शब्द व्युत्पन्न है। विलसन, रिटर, लैस्सन और हम्बोल्ड्ट आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी कश्यप से ही काश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति होने का अनुमान लगाया है। उनके अनुसार कश्यप ऋषि ने सर्व प्रथम कश्यपपुर नामक इस उपनिवेश को बसाया होगा। नीलमत पुराण में वर्णित उपाख्यान में भी कश्यप द्वारा इस भूखण्ड में बसने का उल्लेख है।

काश्मीर (कस्पीर) तथा काश्मीरो (कस्पीरोई)

भारत के अन्य स्थानों की अपेक्षा काश्मीर की लोक परम्परा अभी तक बहुत कुछ अपने मूल प्राचीन रूप में सुरक्षित है। अनेक प्राचीन स्थानों के ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व की पड़ताल इन प्राचीन स्थानों से हो सकती है। प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा नहीं रही थी परन्तु काश्मीर इसका अपवाद है। काश्मीरी विद्वानों द्वारा लिखी गई अधिकांश प्राचीन पुस्तकें अभी तक सुरक्षित हैं। सिकन्दर के आक्रमण के जो विवरण मिलते हैं उनमें काश्मीर के समीपवर्ती प्रदेश अर्सेकीज और अविसारीज का उल्लेख मिलता है जिन्हें पुराविद उरसा और अभिसार के ग्रीक रूपान्तर मानते हैं। पाश्चात्य लेखकों में टॉलमी (दूसरी शताब्दी)

ने ही सर्वप्रथम अपने भारत के भूगोल में काश्मीर नाम का कस्पीरिया के रूप में उल्लेख किया है। से मॉस के एक अज्ञात कालीन कवि डायोनिसियास की एक खोई हुई कविता **बैस्सारिका** में कस्पीरोई नाम की जाति का उल्लेख है जिसके सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि वह भारत की जातियों में सबसे विलक्षण है। एक अन्य ग्रीक इतिहासकार हिकेटियस (५४६-४८६ ई० पू०) ने लिखा है कि कैस्पिटिरौस नामक नगर उस स्थान पर स्थित है जहाँ सिन्धु नदी नाव खेने योग्य हो जाती है। हख्मनीश शासक दारयवहुश (डेरियस) ने अपनी पूर्वी क्षत्रपी (प्रान्त) हिन्द में अपने एक नाविक को जिसका नाम स्काईलैक्स था सिन्धु नदी के जल मार्ग की छान-बीन करने के लिए भेजा था। हिरोडोटस के अनुसार वह केस्पिटिरौस नामक नगर में उतरा था।

बौद्ध यात्री

चीनी यात्रियों के वृतान्तों में भी कश्मीर का उल्लेख मिलता है। सन् ५४१ ईस्वी में भारत से जो राजदूत चीन भेजा गया था उसने लिखा है कि काश्मीर "एक बहुमूल्य हीरे की भाँति चारों दिशाओं से हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है।" सन् ६३१ ईस्वीं के लगभग प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग कुमाऊँ में गोविषाण होता हुआ काश्मीर गया था। उसने लिखा है "पर्वतों को पार करके वह गहरी घाटियों के किनारे-किनारे चल कर इस राज्य के पश्चिमी द्वार पर पहुँचा तो काश्मीर के राजा दुर्लभ भद्र ने नगर से बाहर आकर उसका स्वागत किया और उसे वह अगवानी करके अपने राज महल में ले गया।" ह्वेनसांग ने दो वर्ष काश्मीर में बिता कर अनेक बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसके कथनानुसार काश्मीर की राजधानी के पश्चिम में एक नदी बहती है। राजधानी १२ ली (चार किलो मीटर) लम्बी और चार ली (लगभग डेढ़ किलो मीटर) चौड़ी है। काश्मीर के पंडितों की विद्वता से ह्वेनसांग बहुत प्रभावित हुआ। उसने लिखा है कि "सदियों से इस राज्य में पाण्डित्य और विद्या का सम्मान होता आया है। यहाँ के लोग विद्याव्यसनी हैं। उनमें बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा तो है ही अन्य धर्मों के प्रति भी समुचित आदर है।"

कुषाण

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार काश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रचारक अर्हत मध्यान्तिक नामक भिक्षु आया था। उसके साथ पाँच सौ अर्हत थे। सम्राट् कनिष्क के समय में कश्मीर में बौद्ध धर्म की चौथी महासभा बुलाई गई थी जिसमें बौद्ध धर्म पर तीन पुस्तकें लिखी गई थीं। ह्वेनसांग काश्मीर से परणोत्स और राजपुरी होता हुआ भारत की ओर लौटा। कनिष्क के समय में कुषाण साम्राज्य हिमालय के दोनों ओर एक ओर गान्धार और दूसरी ओर कुमाऊँ के पूर्व तक की पहाड़ियों तक फैला था। चीन के तंग वंश के विवरण में काश्मीर के राजा चेन-तो-लो-पी-ली (चन्द्रापीढ़)

के दरवार में राजदूत भेजे जाने का उल्लेख है। चीनी सम्राट् ने सन् ६३६ ईस्वी के लगभग वाल्टिस्तान पर आक्रमण किया था। ललितादित्य ने चीनी सैनिकों की सहायता माँगने के लिए चीन के सम्राट् के पास एक राजदूत भेजा था।

अलबरूनी

काश्मीर का विवरण अलबरूनी ने भी किया है। वह सन् १०२१ ईस्वी में महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। यद्यपि वह काश्मीर नहीं गया उसने काश्मीर के सम्बन्ध में अनेक प्रामाणिक सूचनाएँ एकत्र की थीं। उसके अनुसार महमूद गजनवी के आक्रमण के भय से हिन्दुओं ने अपने अनेक ग्रन्थ काश्मीर और बनारस जैसे सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिये थे। उसका कहना है "काश्मीरियों को अपने देश की प्राकृतिक किले बन्दी की पूरी जानकारी है। वे अपने प्रदेश में आने वाले भागों पर कड़ा पहरा रखते हैं। इसी कारण उनके साथ व्यापारिक सम्बन्ध करना कठिन है। वे बाहर के व्यापारियों को हिन्दुओं और यहूदियों को छोड़ कर, अपने देश में आने नहीं देते हैं। आजकल तो बिना पूर्व परिचय के हिन्दू व्यापारियों को भी नहीं प्रवेश करने देते। अन्य लोगों का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।"

यहूदी आप्रवासी

इसी उद्धरण का उल्लेख मुगल दरवार के फ्रांसिसी चिकित्सक डा० बर्नियर ने भी अपनी काश्मीर यात्रा के विवरणों में किया है। यहूदियों के प्रति उदारता का कारण वह काश्मीरियों का यहूदी वंशज होना बताता है। उसने यह भी लिखा है कि काश्मीरियों का रूप रंग, नाक-नक्श तथा उनके नामों के अन्त में लगा जू अक्षर (यथा काटजू, किचलू, गंजू, आदि उनके ज्यू या यहूदी होने का एक और प्रमाण हैं। काश्मीर का प्राचीन त्यौहार अग्दुस कहलाता है। यह त्यौहार यहूदियों के त्यौहार हग्गौस (अंग्रेजी में इक्सोडस) का ही रूपान्तर है। राम चन्द्र काक के अनुसार अग्दुस सम्भवतः काश्मीरी ओक्दोह का अपभ्रंश है। अलबरूनी ने बताया है कि अग्दुस त्यौहार चैत्र मास की द्वितीया को मनाया जाता है। औग्दोह का काश्मीरी में अर्थ हैं पड़वा का दिन। इसलिए यह मानना भ्रान्तिजनक है कि अग्दुस चैत्रमास की पड़वा या नवरात्रि का प्रथम दिन है। यह तो स्पष्टतः उस विजय तिथि का स्मारक है जिसे यहूदी अपने मिस्र देश से मुक्ति के दिन के रूप में सभी देशों में मनाते आए हैं तथा जो हिब्रू भाषा में हग्गौस कहा जाता है। रात को बनी अधपकी रोटी और अंडा इस त्यौहार के मुख्य प्रतीक हैं। यह इसलिए किया जाता है कि यहूदी अपने प्रवास की तैयारी में जल्दी में अधपका भोजन ही लेकर मिस्र से अपने स्वप्नों के 'दुग्ध, और मधु के देश' की ओर लौटे थे।

काश्मीर की राजधानी

जैसा अन्यत्र कहा गया है काश्मीर की राजधानी का नाम श्रीनगर नहीं था। औरंगजेब के समय तक भी काश्मीर की राजधानी काश्मीर नगर कहलाती थी। (देखिए बर्नियर का वृतान्त) अलबरूनी के अनुसार काश्मीर की राजधानी का नाम अधिष्ठान था। काश्मीरी तीर्थों के विषय में सबसे प्राचीन पुस्तक जो कुमाऊँ के स्कन्द पुराण की भाँति है, नीलमत पुराण है। कल्हण ने इसी पुस्तक को आधार माना है। पुराविद बुहलर का कथन है कि नीलमत पुराण छठी या सातवीं शताब्दी ईस्वी की रचना है। नीलमत पुराण में काश्मीर की घाटी की उत्पत्ति का वर्णन दिया हुआ है। उसमें काश्मीर के नाग राजाओं के सम्राट् नील नाग द्वारा जलोद्भव को मारने के बाद बितस्ता (झेलम) की घाटी से जल का निकास करने का वर्णन दिया गया है। उसमें प्रमुख नागों के भी नाम दिये हैं। जो नाग नाम से सम्बन्धित स्थानों और नगरों के नाम काश्मीर में हैं लगभग वही कुमाऊँ में भी हैं। बेनो (बेरी) नाग, अनन्त नाग, नागदेव आदि स्थान काश्मीर और कुमाऊँ में एक समान हैं।

राजतरंगिणी

कल्हण की राजतरंगिणी काश्मीर का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसमें काश्मीर के गोनन्द वंश का इतिहास लिखा गया है। कल्हण के पिता चम्पक पंडित काश्मीर के राजा हर्ष (१०८९-११०१ ईस्वी) के मंत्री थे। राजतरंगिणी की रचना ११५० के लगभग हुई है। इस पुस्तक में आठ तरंग (खण्ड) हैं। प्रथम तीन तरंगों में गोनन्द वंश के राजाओं की वंशावली दी गई है। बीच-बीच में ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया गया है जो पौराणिक हैं और ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखती। क्रकोटक वंश तक पहुँचते-पहुँचते उसमें ऐतिहासिक विवरण स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं। अवन्ती वर्णन के राज्यकाल से, जहाँ से पाँचवा तरंग आरम्भ होता है, ऐतिहासिक सामग्री प्रामाणिक है। सम्पूर्ण राज तरंगिणी में ८००० श्लोक हैं। उसमें अशोक और कनिष्क दोनों का उल्लेख है। तोरमाण और मिहिरकुल, हूण आक्रमणकारी जिन्होंने पाँचवी शताब्दी में उत्तर भारत को रौंद डाला था, राजतरंगिणी में उल्लेखनीय हैं। इन राजाओं का उल्लेख इस प्रकार हुआ है मानो वे काश्मीर के ही हों। अशोक की राजधानी का नाम पुराणधिष्ठान दिया गया है। क्रकोटक वंश के राजा प्रवरसेन ने अपने नाम पर इस नगर का नाम प्रवरसेनपुर रखा था। यही प्रवरसेनपुर आजकल का श्रीनगर है। कल्हण के अनुसार प्रवरसेनपुर वितस्ता (झेलम) नदी के दाहिने तट पर था।

कुनिन्द या गोनन्द वंश

क्रल्हण के अनुसार गोनन्द वंश का राज्य ११८४ ईस्वी पूर्व से आरम्भ होता है।

प्रथम राजा गोनन्द तथा उसके उपरान्त विभीषण, इन्द्रजीत, रावण, विभीषण द्वितीय, नर अथवा किन्नर, सिद्ध, उत्पलक्ष, हिरण्याक्ष, हिरण्यकुल, वासुकुल, मित्रकुल, वक, क्षितीन्द्र तथा वसुनन्द हुए। उसके उपरान्त ४६१ ईस्वी पूर्व नर द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः अक्ष्य, गोपादित्य, गोकर्ण और नरेन्द्र तथा युधिष्ठिर हुए। गोनन्द वंश के उपरान्त १६६ ईस्वी पूर्व काश्मीर में विक्रमादित्य वंश का शासन आरम्भ हुआ। इस वंश में प्रतापादित्य, जलौकस, तुजिन, विजय, जयेन्द्र तथा सन्धिमति राजा हुए। गोनन्द वंश के राजा मेघवाहन ने २४ ईस्वी पूर्व विक्रमादित्य वंश के राजा को पराजित करके गोनन्द वंश को पुनः स्थापित किया। यह वंश ३६६ ईस्वी तक राज्य करता रहा। तदुपरान्त क्रकोटक वंश ने सत्ता संभाली। क्रकोटक वंश का पहला शासक दुर्लभ वर्धन प्रज्ञादित्य नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। इसी वंश में ललितादित्य मुक्तापीढ़ नाम का शासक हुआ जिसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। इस शासक की कन्नौज के राजा से हुई सन्धि का उल्लेख गहड़वाहो (गौड़वाहो) नामक प्राकृत ग्रन्थ में भी हुआ है।

पर्वत प्रदेश के कुलिन्द या कुणिद नामक राज्य का उल्लेख ग्रीक इतिहासकारों ने भी किया है। कुनिन्दों के सिक्के उत्तर भारत में विशेषतः कुमाऊँ गढ़वाल में बहुत अधिक संख्या में मिले हैं। कुनिन्द शब्द को ही राज तरंगिणी में गोनन्द लिख दिया गया है। जैसा अन्यत्र उल्लेख हुआ है पहाड़ी जातियों को पुराणों में नन्दिनी गौ से उत्पन्न माना है। नन्दिनी-गौ या गौनन्द कुनिन्द शब्द का ही संस्कृतीकरण है। यही कुनिन्द शब्द कहीं कुलिन्द और कहीं कुणिन्द भी लिखा गया है। क ध्वनि का ग हो जाना साधारण प्रवृत्ति है। प्रकट को प्रगट शाक को शाग उच्चारण किया जाता है। पंजाबी में घोड़ा शब्द का उच्चारण कोड़ा है। इसी प्रकार ल का न हो जाना भी एक साधारण प्रवृत्ति है। यथा लवण या लोन, नोन (कुमाऊँनी में लूण)। अतः गौनन्द और कुनिन्द मूलतः एक ही शब्द है।

कत्यूर काश्मीर का अंग

कुमाऊँ के आठवीं दसवीं शताब्दी ईस्वी के देशठ देव, इच्छट देव, निम्बर देव आदि नाम निश्चय ही उन राजाओं के हैं जो उस काल में काश्मीर में भी राज्य करते होंगे। मुक्तापीढ़ (७१५-७५२ ईस्वी) की उपाधि ललितादित्य थी। लोक परम्परा के अनुसार ललितादित्य भारत की विजय यात्रा को निकला था और उसने भारत के कोने-कोने को जीता था। वह गांधार के मार्ग से मध्य एशिया होता हुआ दक्षिण चलकर कन्नौज तक गया। बारह वर्ष की विजय यात्रा के बाद उसने मगध से नेपाल होते हुए सिंधु घाटी के मार्ग से काश्मीर में पूर्वोत्तर दिशा से प्रवेश किया था। यह तो सभी इतिहासकार मानते हैं कि उसने कन्नौज पर आक्रमण करके यशोवर्मन को पराजित किया था। सम्भवतः यही ललितादित्य ताम्रपत्रों में वर्णित 'कत्यूर

घाटी में समुपागत' ललितसूर देव नामक राजा है। वह ब्राह्मणों और बौद्धों को समान रूप से आदर की दृष्टि से देखता था। उसने अपनी राजधानी को परिहासपुर नाम दिया था। उसके राज्यकाल में देश के विभिन्न भागों के पंडित और विद्वान पर्वत प्रदेश में आए थे। यही कत्यूर के ताम्रपत्र में वर्णित विद्वान द्रविड़, ओड्र आदि होंगे। ललितशूर देव के शिलालेख में काश्मीर का पृथक से उल्लेख नहीं हुआ है इसका कारण यही है कि उस समय और उससे पूर्व भी कनिष्क के समय से ही पर्वतीय राजा एक ही केन्द्रीय सत्ता या चक्रवर्ती राजा के आधीन थे। जो खस, हिन्द-यवन, नाग, यौधेय अथवा कुनिन्द शासक पर्वत प्रदेश के छोटे-छोटे भूभागों पर शासन करते थे उन्होंने ललितादित्य को अपना सम्राट् मान लिया होगा।

ललितादित्य के उपरान्त काश्मीर में अवन्तीवर्मन, शंकरवर्मन, चक्रवर्मन आदि शासक हुए। अन्तिम हिन्दू शासक हर्ष (१०८९-११०१ ई०) हुआ। हर्ष के समय में देश में राजसत्ता प्रायः नष्ट हो चुकी थी। अराजकता के कारण मँहगाई अत्यधिक बढ़ गई थी। कहा जाता है कि हर्ष ने अकाल और अन्न की दुष्प्राप्यता के कारण त्रस्त होकर अपने परिवार और अपने सामन्तों के परिवारों को आत्महत्या करने की आज्ञा दे दी थी। हर्ष के भतीजे उच्छल और मुच्छल नामों में हमें कत्यूर के इच्छट और देशठ नामों की समानता दृष्टिगोचर होती है। उच्छल ने बारहवीं शताब्दी के प्रथम दस वर्षों तक और उसके उपरान्त सुस्सल ने ११२० ईसवी तक राज्य किया। इसके उपरान्त जयसिंह नामक राजा हुआ। कल्हण इसी जयसिंह का समकालीन था।

बौद्ध से इस्लाम

इसी काल में रिंचन नामक तिब्बती ने काश्मीर में अपना राज्य स्थापित किया वह बौद्ध था और उसने काश्मीर के सिंहासन पर अधिकार करने के उपरान्त हिन्दू धर्म को ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। काश्मीरी पण्डितों ने भोट देश का निवासी होने के कारण उसे यह अनुमति नहीं दी। हताश होकर वह गान्धार के दुलुच नामक मुसलमान अधिकारी के प्रभाव में आकर मुसलमान हो गया। उसके उपरान्त शाह मीर ने सन् १३१३ ईस्वी में काश्मीर में मुसलमान शासन की नींव डाली। इसी काल में उदयन नामक राजा हुआ यद्यपि उसकी सत्ता पूरे काश्मीर में नहीं थी और वह केवल एक छोटे से भूभाग पर शासन करता था। सन् १३३८ ईसवी में जब उदयन मरा तो उसकी मृत्यु के बाद कोटादेवी नाम की उसकी विधवा ने गद्दी संभाली। शाहमीर देश का वास्तविक राजा बन गया। कोटादेवी के योग्य मंत्री भट्ट भिक्षण को शाहमीर ने धोखे से मरवा दिया, रानी निरुपाय हो गई। निस्सहाय अवस्था में शाहमीर के साथ विवाह करने का वचन देकर कोटादेवी मुक्त हुई परन्तु जब वह विवाह मंडप में आई तो उसने कटार से अपनी आत्महत्या कर ली। इस प्रकार काश्मीर का अन्तिम हिन्दू शासन समाप्त हुआ।

सिकन्दर बुत शिकन

शाहमीर के वंश में शाहबुद्दीन, सिकन्दर 'बुत-शिकन' तथा जैनुल आब्दीन महत्वपूर्ण सुल्तान हुए। सिकन्दर ने एक हिन्दू महिला श्री शोभा से विवाह किया। उसके समय में अनेक विदेशी मुसलमान मौलवी काश्मीर में आए जिनके कारण सिकन्दर की धर्मांधता और कट्टरता में वृद्धि हुई। मौत या इस्लाम इनमें से किसी एक को चुनने की शर्त देशवासियों को दी गई। मुसलमानों के अत्याचारों से हजारों निरीह पंडित और विद्वान देश छोड़ कर भाग निकले। सन् १३९८ में तैमूर लंग और उसके तातारों का आक्रमण हुआ। तैमूर लंग ने सिकन्दर को पूरा भरोसा दिया। जब तैमूर लौट रहा था तो सिकन्दर को तटस्थ रहने के पुरस्कार स्वरूप उसेने दो हाथी दिए। सिकन्दर बुत शिकन के अत्याचारों के कारण देश में राज्य के विरुद्ध इतनी घृणा पैदा हो गई थी कि उसका उत्तराधिकारी जैनुल आब्दीन (१४२१-१४७२) जब बीमार हुआ तो उसे कोई वैद्य या हकीम अपना उपचार करने के लिए नहीं मिल पाया। बड़ी कठिनाई से सूर्यभट्ट नामक एक वैद्य उपचार करने के लिए तत्पर हुआ। आरोग्य लाभ करने पर जैनुल आब्दीन ने उसे न्यायाधीश और कोषाधिकारी नियुक्त किया। इस मंत्री ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों को नष्ट करने की आज्ञा को वापस ले लिया जो ब्राह्मण देश छोड़कर बाहर चले गए थे उन्हें लौट आने का आमंत्रण दिया। देवताओं को बलि चढ़ाना और तीर्थ यात्रा करना धर्म सम्मत और वैध कर दिया गया। हिन्दुओं के दाह कर्म पर लगाई गई रोक भी हटा दी गई। जैनुल आब्दीन स्वयं हिन्दू मंदिरों में जाता था, संस्कृत पढ़ता था और योगवाशिष्ट के पठन-पाठन में मन लगाता था। वह विद्वानों का सम्मान करता था। बौद्ध तिलकाचार्य को भी उसने अपना मंत्री नियुक्त किया। उसके दरबार में कर्पूरभट्ट, रूप भट्ट तथा रामानन्द आदि विद्वान थे। युद्ध भट्ट नामक विद्वान ने अथर्ववेद की एक प्रति सुल्तान को दी थी।

मुगल शासन के दिल्ली में स्थापित होने पर गांधार देश की ओर से काश्मीर पर सन् १५३३ में बाबर के एक सम्बन्धी शाह के द्वारा आक्रमण किया गया। इसी समय लद्दाख की ओर से भी काशगर के सिकन्दर खाँ ने आक्रमण किया। जब शेरशाह ने हुमायूँ को खदेड़ा उस समय काश्मीर में बाबर के उक्त संबधी ने हुमायूँ के नाम के सिक्के जारी किए। इसी समय चक (दरद) और मागर लोगों ने हथियार उठाये। चक हबीब शाह ने कुछ दिन तक काश्मीर पर अपना अधिकार कर लिया। सन् १५८७ ईस्वी में काश्मीर पर अकबर की सेनाओं ने अधिकार कर लिया।

सन् १८१९ में पंजाब के सिख महाराजा रणजीतसिंह ने काश्मीर के प्रतिष्ठित पंडित बीरबल दर की सहायता से काश्मीर पर अधिकार कर लिया। काश्मीर पर सन् १८४६ तक सिखों का आधिपत्य रहा। सिखों का स्थानीय जनता के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। विलियम मूर क्राफ्ट ने लिखा है कि सिख काश्मीरियों को

पशुओं से अच्छा नहीं समझते हैं। मूर क्राफ्ट सन् १८२४ में काश्मीर गया था। सन् १८४६ में जम्मू के डोगरा राजा गुलाबसिंह ने काश्मीर को खरीद लिया। सन् १८४६ में अंग्रेजों के साथ लाहौर में एक संधि हुई जिसमें एक शर्त यह भी थी कि अंग्रेज अपने स्वामी भक्त गुलाबसिंह की वफादारी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए उसके साथ पृथक संधि करेंगे। इस संधि के अनुसार सिख दरबार और अंग्रेजों ने गुलाबसिंह को काश्मीर का महाराजा स्वीकार कर लिया। गुलाबसिंह को बदले में १५ लाख पौंड देने पड़े। काश्मीर में गिलगित, बल्तिस्तान और लद्दाख का इलाका सम्मिलित किया गया।

कराचल या फराजल

काश्मीर और कुमाऊँ का एक ही सन्दर्भ में मुहम्मद तुगलक के तिब्बत अभियान के सम्बन्ध में उल्लेख किया जाता है। इतिहासकार बर्नी के अनुसार मुहम्मद तुगलक का यह आक्रमण कराचल पर हुआ था जो भारत और चीन का मध्यवर्ती राज्य था। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार यह मुहम्मद तुगलक का चीन पर किया गया आक्रमण था। इतिहासकार बदाऊँनी ने लिखा है—कोहे हिमाचल कः मियाँ विलायत चीन व हिन्दुस्तानः हायल अस्त कराचल हम मोगोयन्द नाम जद फरमूदः (कलकत्ता टैक्स्ट पृ० २२९)। इस अभियान में सुल्तान को पहले तो कुछ सफलता मिली किन्तु वर्षा ऋतु के आगमन से पहाड़ी राजा ने सुल्तान की सेना को इतनी भारी क्षति पहुँचाई कि युद्ध क्षेत्र में भेजे गए कई हजार सैनिकों में से केवल दस अश्वारोही इस दुखद पराजय की सूचना देने दिल्ली लौट सके। कराचल को कहीं फराजल भी लिखा गया है। डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार कराचल कुमाऊँ में कोई राज्य था मुहम्मद तुगलक का यह अभियान सन् १३३५ के लगभग का है। हो सकता है उस समय काली (शारदा) नदी का उद्‌गम का डोटी-दुलू का क्षेत्र १२२३ ईस्वी के लगभग के शासक कराचल्ल देव नामक पहाड़ी राजा के नाम पर कराचल कहा गया हो। वैसे सन् १३८० ईस्वी में फिरोज तुगलक कटेहर के प्रमुख खड़गू को उसके द्वारा बदायूँ के अमीर सैयद मुहम्मद की हत्या करने के कारण उसे दंड देने पहुँचा था। खड़गू जब कुमाऊँ के पर्वतों की ओर भागा था तो सुल्तान की सेना ने पहाडों तक उसका पीछा किया था सुल्तान की सेना वर्षा ऋतु के आरम्भ होने तक पहाड़ों पर खड़गू* की ताक में रही थी फिर बहुत सा लूट खसौट का सामान लेकर लौट गई थी।

---

*खड़गू (खड़कसिंह) का भाई हरिसिंह कत्यूरियों का सम्बन्धी था उसको भी दौलतखाँ लोदी ने कटेहर से भागने को विवश किया। वह डोटी के राजा के पास सहायता माँगने पहुँचा। उसने साधु का वेश धारण कर गाँव-गाँव में भिक्षाटन कर लोदी शासकों से लड़ने का प्रयत्न किया, ऐसी जनश्रुति कुमाऊँ में प्रचलित है।

कुमाऊँ के राजा और जागेश्वर

काली कुमू (चम्पावत) के चन्द वंशीय राजाओं के विषय में केवल जनश्रुतियों को छोड़कर और कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है कि वे आठवीं या दसवीं शताब्दी में शारदा नदी की घाटी में आकर बस चुके थे। अधिक सम्भावना यह है कि जब कत्यूर का शासन मगध देश तक था तथा जब कार्तिकेयपुर में ललितशूर देव का आगमन हुआ तो उस समय चम्पावत में खस राजा शासन करते होंगे। जनश्रुतियों के आधार पर चम्पावत में चन्दों को पहली बार आठवीं या दसवीं शताब्दी[1] में आकर राज्य करने फिर स्थानीय खस लोगों द्वारा निष्कासित किए जाने का उल्लेख मिलता है। यह भी कहा जाता है कि खसों द्वारा निष्कासित किये जाने पर २२५ वर्ष की अवधि तक चन्द शासक कुमाऊँ से बाहर भटकते रहे। फिर दिल्ली के मुसलमान शासकों की सहायता से चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी में स्थानीय खस राजाओं को पराजित कर अपना राज्य पुनः स्थापित करने में सफल हुए।[2]

पन्त आप्रवासी

आठवीं शताब्दी में गुजरात में मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा सत्ता हथिया ली गई थी। यह सम्भव है कि उस समय कोई जनसमुदाय अथवा कोई गुजरात के राज्य परिवार का व्यक्ति मथुरा, कन्नौज से होता हुआ चम्पावत तक पहुँचा हो। इस काल में ईरान पर मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा अधिकार किए जाने पर पारसी लोग भी बहुत बड़ी संख्या में गुजरात और बम्बई के निकट आकर बसे थे। अन्यत्र यह दर्शाया गया है कि मिस्र देश के लोग ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में पूर्व की ओर के किसी हरे-भरे पुंट देश से आकर नील नदी घाटी में बसे थे। पुंट नाम का वह देश भारत का पाण्ड्य देश था या अफ्रीका का सुमाली लैण्ड इसमें विद्वानों में मतभेद है।[3] वैसे पश्चिमी एशिया में ईसा के जन्म के समय पौंट्स नाम का एक रोमन साम्राज्य का सूबा अवश्य था। इस प्रान्त के लोग अग्निपूजक जरथुस्त्र (पारसी) धर्म के अनुयायी थे।

ईरान में मुस्लिम धर्मावलंबियों के अत्याचार से पीड़ित जो पारसी लोग जल-मार्ग से गुजरात के नगर संजन में उतरे उनका उल्लेख पारसिक ग्रन्थों में हुआ है। सन् ७८५ ई० में एक ऐसा ही शरणार्थी पारसी दल गुजरात के राजा जाधव राना (जादीराना) के राज्य में पहुँचा। जादी राना ने उन्हें गुजरात में पाँच शर्तों पर बसने की अनुमति दे दी। इन पाँच शर्तों में दो मुख्य थीं – गुजराती भाषा को अपनाया जायेगा और हिन्दू वेश-भूषा को धारण किया जायेगा। बम्बई गजेटियर में

इन शरणार्थियों को पंतक समुदाय के लोग कहा गया है ।[४]

इस निष्क्रमण का वर्णन 'किस्सा संज्जन' नामक पारसी धर्मग्रन्थ में दिया गया है । बम्बई गजेटियर के अनुसार शरणार्थी पारसियों ने गुजरात में आकर खेती, छोटी-मोटी दुकानदारी, बढ़ई गिरी तथा कपड़ा बुनने का धंधा अपना लिया । प्रति वर्ष पारसी पर्व नव रोज (मार्च तृतीय सप्ताह) के अवसर पर पत्र-पत्रिकाओं में पारसियों के उक्त निष्क्रमण के सम्बन्ध में लेख प्रकाशित होते रहते हैं । एक ऐसे ही लेख के अनुसार 'सन् ७८५ ईसवी के बाद पारसी लोगों की छोटी-छोटी बस्तियाँ भारत के समूचे पश्चिमी समुद्र तट तक फैल गईं । उन्होंने हिन्दू पंचायत प्रणाली को ग्रहण किया किन्तु अपनी धार्मिक बिरादरी को अक्षुण्ण रखा । छोटी पारसी बिरादरी कोल और बड़ी पंतक (पंथक) कहलाई । अपनी नई अपनाई जन्म भूमि में पारसी स्थानीय लोगों से ऐसे घुलमिल गए कि सन् १२०० ईस्वी में पारसी पुरोहित नेरियोसंग धवल ने समूचे पारसी धर्मग्रन्थों का, जो अवेस्ता कहलाते हैं, अपने समय के हिन्दू पंडितों के लाभार्थ संस्कृत में अनुवाद किया । नेरियोसंग का यह संस्कृत अनुवाद आज भी उपलब्ध है ।' (पी०नानावती—"हिन्दुस्तान टाइम्स" २२ मार्च सन् ७६ का लेख) [५]

गजेटियर ऑफ बम्बे प्रेसीडेंसी के अनुसार खम्बात की खाड़ी में माही नदी के मुहाने पर कुमारिका क्षेत्र में बसे पारसी कालान्तर में ऐसे धनवान और ऐसे प्रबल हो गए कि उन्होंने वहाँ के हिन्दुओं को भगा दिया । पारसियों के इस अत्याचार का बदला लेने के लिए मोतियों के व्यापारी कल्याणराय ने उन पर आक्रमण किया और उनकी बस्ती को आग लगा दी । कई पारसी मौत के घाट उतार दिये गए । इसी गजेटियर के अनुसार रतनपुर के राजा ने भी पारसियों पर अत्याचार किए और उन्हें भागने को विवश किया । तथा पारसियों पर तीसरा बड़ा आक्रमण महमूद बेगदा (१४५९-१५११) के सेनापति द्वारा किया गया । पुर्तगाल के व्यापारियों के समुद्रतट पर शासन जमा लेने पर पुर्तगालियों ने पारसियों को रोमन कैथलिक धर्म ग्रहण करने के लिए विवश किया ।[६] उक्त गजेटियर के अनुसार पारसियों ने अपनी स्वीकृति दे दी किन्तु अपने धर्म के अन्तिम बार अनुष्ठान करने के लिए चार दिन का समय माँगा । इस चार दिन के समय में वे अपनी पवित्र अग्नि लेकर चुपचाप अपनी बस्तियों से भाग निकले ।

कुमू के राजा सोमचन्द गुजरात से आये बताए जाते हैं । कुमाऊँ में कोनकन से आए हुए पंत कुछ अभिलेखों में पाण्डे लिखे गए हैं और कुछ में हाटवाल । हाटवाल शब्द व्यापारी का बोधक है । पंतों के पाराशर गोत्र से भी उनके मूलतः पारस (फारस) या ईरान से आने का आभास होता है । तथ्य जो भी हो मूलतः पंत शब्द जाति बोधक नहीं था । पंतों के मूल स्थान की खोज हमें पश्चिमी एशिया की ओर

ले जाती है। महाराष्ट्र में भी पंत, सावरकर, रानाडे आदि जातियाँ चितपावन ब्राह्मण कहलाती हैं जो मूलतः पश्चिमी एशिया से आई ब्राह्मण जातियाँ मानी जाती हैं। कभी इन्हें पंच द्रविड़ ब्राह्मण भी कहा जाता है। द्रविड़ जैसा अन्यत्र दर्शाया गया है सुमेरी सभ्यता के समकक्ष अति प्राचीन सभ्यता है। आर्यों से भी अधिक संस्कृत सम्पन्न सभ्यता को कालान्तर में दिया गया नया नाम द्राविड़ सभ्यता था जिसके अवशेष प्राचीन नदी घाटियों के ध्वंसावशेषों में पाए जाते हैं।

प्रथम आप्रवासी राज्य शासन

काली कुमाऊँ में प्रथम चन्द शासक और उसके दस वंशजों का शासनकाल ९७५ ई० से १०६५ ई० तक माना जाता है। इन राजाओं के नाम क्रमशः सोमचन्द, आत्मा चन्द, पूर्ण चन्द, इन्द्र चन्द, संसार चन्द, सिद्ध चन्द, हमीर तथा वीना माने जाते हैं। इस अवधि में एक मात्र उल्लेखनीय घटना राजा इन्द्र चन्द्र का चीन की किसी राज कन्या से विवाह होना और उसके द्वारा काली कुमू में रेशम के कीड़े लाकर रेशम का व्यवसाय आरम्भ करना बताया जाता है। जन श्रुतियों के अनुसार वीना के समय में स्थानीय खस (एटकिंसन के अनुसार खसिया) लोगों ने विद्रोह कर दिया तथा राजा और उसके साथ आए आप्रवासी ब्राह्मण और राजपूत अधिकारी काली कुमू को छोड़ कर तराई के मैदान की ओर भागने को विवश हुए। इस बीच खस लोगों ने अपना राज्य काली कुमाऊँ में स्थापित किया। इन खस राजाओं के नाम बीजड़, जीजड़, जाजड़, जार, कालू आदि हैं। लगभग २०० या २५० वर्ष की खस सत्ता के उपरान्त आप्रवासी चन्द वंशज लगभग सन् १३६५ ई० में फिर काली कुमाऊँ लौट आए। जनश्रुतियों के ही आधार पर उस समय काली कुमाऊँ में खस राजा सोनपाल राज्य कर रहा था।

मल्ल शासन के मांडलिक

चम्पावत के आरम्भिक चन्द वंशीय राजपूतों के शासन के विषय में कोई ऐतिहासिक लिखित प्रमाण नहीं है। यद्यपि खस राजाओं के नामों से मिलते-जुलते नाम तत्कालीन नैपाल के इतिहास में मिलते हैं। कुमाऊँ में पाए जाने वाले सबसे प्राचीन अभिलेखों में मल्ल वंशीय नैपाल के राजा अनेक मल्ल का सन् ११९१ ईस्वी तथा सन् १२०९ ई० का बाराहाट (उत्तरकाशी) तथा गोपेश्वर (चमोली) के त्रिशूलों पर अंकित लेख हैं। लगभग ६ मीटर लम्बे इन त्रिशूलों पर उसी प्रकार के नैपाल के एक त्रिशूल की ही भाँति के लेख उत्कीर्ण हैं।[७]

सबसे प्राचीन लेख जो त्रिशूलों पर अंकित उपर्युक्त लेखों से भी पुराना है जागेश्वर मन्दिर में मगध के सेन वंश के राजा का है। (प्रिंसेप- २-२७२) इस लेख की तिथि ११२३ ईस्वी है। यह मगध के तत्कालीन सेन वंश के राजा मुकुन्द सेन के नैपाल

और कुमाऊँ तक के प्रभुत्व का द्योतक है। यह इस प्रस्थापना को भी पुष्ट करता है कि कत्यूरी राजा ललित शूर देव के समय में कुमाऊँ नैपाल तथा मगध का भूभाग एक ही शासन के अन्तर्गत था। आठवीं सदी ईस्वी में आदि शंकराचार्य मगध से नैपाल होते हुए जागेश्वर, बैजनाथ, बद्रीनाथ तथा केदारनाथ गए थे। जागेश्वर में दारुकावन[८] में उन्होंने शक्ति पीठ की स्थापना की थी। तब तक जागेश्वर नैपाल तिब्वत के महायान बौद्ध धर्म का तीर्थ या आश्रम था। इस बौद्ध धर्म को तिब्वत में बौन या पौन मत भी कहा जाता है। शैव धर्म की स्थापना करने पर स्थानीय गौण देवताओं को द्वारपाल का स्थान देने की प्रथा कुमाऊँ में शंकराचार्य द्वारा प्रचारित की गई। स्थानीय भैरव देवता को शिव के मन्दिर के बाहर स्थान मिला। बद्रीनाथ में यह स्थान स्थानीय देवता घंटाकर्ण को मिला। जागेश्वर में बौद्ध देवता पौन की स्थापना शैव-शक्ति पीठ के मन्दिर से कुछ दूर की गई थी। यह वही पौन देवता है जिसकी मूर्ति सन् १९७४ में जागेश्वर से चुराई गई थी। जागेश्वर की महत्ता शंकराचार्य के आगमन के उपरान्त अगली दो सदियों में इतनी अधिक थी कि मगध की ओर के अनेक यात्री इस मन्दिर की यात्रा करते थे।

पक्षपात या प्रतिनिधि

कुछ यात्री अपने ही पुण्य लाभ के लिए तीर्थों की यात्रा करते थे तथा कुछ अन्य यात्री अपने राजा या सम्पन्न स्वामी के पुण्य लाभ के लिए तीर्थाटन पर भेजे जाते थे। सम्भवतः ये दूसरे प्रकार के यात्री अपने आश्रयदाता स्वामी के बीमार हो जाने पर उसके स्वास्थ्य लाभ के लिए अथवा उसकी मृत्यु हो जाने पर उसकी आत्मा को स्वर्ग में सुख पहुँचाने के लिए तीर्थाटन करने भेजे जाते थे। ऐसे तीर्थयात्री को अमुक का पक्षपात (पक्षधर) कहा जाता था।[९] जागेश्वर मन्दिर में आठवीं से दसवीं शताब्दी ईस्वी तक तीर्थाटन के लिए आए हुए यात्रियों के अभिलेख इपिग्रफिका इंडिका में संग्रहीत हैं। (डी० सी० सरकार एपि० इ० ३४-२४९-२५७) इन लेखों को उसी क्रम से यहाँ दिया जाता है।

पहला अभिलेख	१—श्री सदार···व गन्धहस्ति ··बसन्तली·· २—ल-हर्षवर्धन् पक्षपातः ३—पूर्व्वदेशीय व .ल .वर्मण ४—लिखित तम्ब्र घटेन	श्री सदार्णव, गन्धहस्तिन, बसन्तलील, हर्षवर्धन के पक्षपात या प्रतिनिधि पूर्व देश के निवासी वलवर्म्मण द्वारा ताम्र-घट लिखित।
दूसरा अभिलेख	१—श्री पेट्टाणर्थ लवऋचभंड २-- द्याधर च्बज्राह पक्षपात ३— व स्वरस्य पूर्वदेशी	पेट्ट, अनर्थ, लव, ऋच, भंड, विद्याधर चुर्ग और बज्राह के पक्षपात अर्थात् प्रतिनिधि पूर्व देश के बटेश्वर के।

तीसरा अभिलेख	१—श्री प्रकम्..ट भंडअभिमाण २—चंग खड्गानर्थ अर्ज ३—न पक्षपात वघेकथा ४—नुराग जेज्जटस्य ५—पूर्वदेशि प्रभुदत्तसय ६— ति	प्रकटभंड, अभिमान, चंग खड्ग अनर्थ और अर्जन (पक्षपात बधेश्वर द्वारा कहे जाने पर अर्थात् उसके कथनानुसार जेज्जट के अनुसार पूर्व देश के निवासी प्रभुदत्त के द्वारा लिखित
चौथा अभिलेख	१—श्री विशिष्ट २—..काल	(श्री विशिष्ट (कंकाल ।
पांचवा अभिलेख	१—श्री नेत्रहरिष बाच्छराजस्य	(श्री नेत्रहरिष बाच्छराज)
छठा अभिलेख	१—श्री ग्राम हेरि	(श्री ग्राम हेरि)
सातवां अभिलेख	१—श्री समर महिष २ माणप्रकासव ल ३—कदम्ब	श्री समर महिष, श्री मानप्रकास वाबाल, कदम्ब)
आठवां अभिलेख	१—कल णि य	(कल्याणीय)
नौवां अभिलेख	१—श्री सभार्थ सलोण	(श्री सभार्थसलोण)
दसवां अभिलेख	१—श्री ग्राम हेरि	(श्री ग्राम हेरि)
ग्यारहवां अभिलेख	१—श्री.. न् .. त्र हरिस	(श्री नेत्र हरिस)
बारहवां अभिलेख	१—श्री ग्राम हेरि	(श्री ग्राम हेरि)
तेरहवां अभिलेख	१—श्री सुजूमसुत श्री शंकरगणस्व	(श्री सुजूमलुत श्री शंकरगण)
चौदहवां अभिलेख	१—श्री रणविग्रह	(श्री रण विग्रह)
पन्द्रहवां अभिलेख	१—···नंदचन्द्र	(श्री सुनन्द चन्द्र)
सौलहवां अभिलेख	१—बिजेन्द्रि महायोगि भट्ट..रक	(श्री बीरेन्द्रमहायोगी भट्टारक)
सत्रहवां अभिलेख	१—श्री सुजूमसुतः श्री शंकरगणस्व	(श्री सुजूमसुत श्री शंकरगण)
अठारहवां अभिलेख	१ —श्री रणविग्रह	(श्री रणविग्रह)
उन्नीसवां अभिलेख	१—निबृ. ड. चण	(निवृत हृण्ण चण्ड)
बीसवां अभिलेख	१—ओदिषंड	(ओदिषंड)
इक्कीसवां अभिलेख	१—म..गलचण्ड	(मंगल चण्ड)
बाईसवां अभिलेख	१—श्री चलविग्रह	(श्री चलविग्रह)
तेईसवां अभिलेख	१—श्री ग्राम हेरि	(श्री ग्रामहेरि)
चौबीसवां अभिलेख	१—श्री यश भ ण्डार कास्थायनीडाख २—थकस्य	(श्री यशभण्डार कास्थायानी दास के कथनानुसार)
पच्चीसवां अभिलेख	१—विची·····	(विचीरव)

उक्त अभिलेख मृत्युंजय मन्दिर की शिलाओं पर अंकित हैं। अन्य मन्दिरों पर भी इसी काल के कुछ लेख हैं जिनमें पहला अभिलेख तीन पंक्तियों का-सिद्धम् श्री नन्दा भगवति मरण-प्रत्याशाघोरशिव-विषनिध्र्धात है। जिसका अर्थ 'सिद्धधम्-अघोरशिव उपनाम विषनिर्धात श्री नन्दा भगवती के समक्ष आत्मघात की कामना करता हुआ' है। इस लेख से लगता है कि पाण्ड्वों की परम्परा के अनुसार कुछ तीर्थ यात्री जागेश्वर होते हुए रूप कुण्ड (प्राचीन रुद्र कुण्ड) की ओर जाकर नन्दा देवी के मूल में नन्दाकना पर्वत में सीधे स्वर्ग जाने के लिए आत्मघात करते थे।

इसी मन्दिर में एक अन्य पंक्ति का लेख कल्याणसूत्रधारेण कृतंक है जिसका अर्थ सम्भवतः मन्दिर के निर्माणकर्ता कल्याण नामक सूत्रधार से है। तीसरा लेख दो पंक्तियों का है-श्री रणथम्भ वनकरभ-ये दो नाम सम्भवतः दो यात्रियों के हैं। अन्य नाम श्री रणभद्र वढ़, श्री समर्थकेसरि, सिद्धम् विपरीत चण्ड, श्री सजूमसुत, श्री शंकर गणस्य, श्री रणविग्रह हायोगि, श्री विजेन्द्र भट्टारक तथा अन्तिम पंक्ति में क. न्. र.. ण्ड (किन्नरचण्ड) हैं।

इन सभी लेखों की भाषा ब्राह्मी है तथा श्री डी० सी० सरकार ने इनका समय आठवी शताब्दी आंका है।[१०] श्रीशंकरगणस्य शब्दों से लगता है कि ये लोग सम्भवतः आदि शंकराचार्य के अनुयायियों में से थे। और सम्भवतः उन्हीं के साथ इस ओर आए थे।

चम्पावत के चन्द शासन के पुनः स्थापित हो जाने पर प्रथम दो तीन शासक सात आठ वर्ष तक शासन कर पाए। इनमें से राजा विक्रमचन्द के समय का एक ताम्रपत्र शाके १३४५ का बालेश्वर मन्दिर में उपलब्ध है। इसके उपरान्त गरुड़ ज्ञान चन्द (१३७४-१४१९ ई०) नामक शासक हुआ। राजा विक्रम चन्द और राजा गरुड़ ज्ञान चन्द के शासन काल में ही पश्चिम की ओर के हरद्वार, चाण्डी भाबर में तैमूर लंग का आक्रमण हुआ होगा। इस समय यमुना के पार वर्तमान हिमाचल प्रदेश में राजा रतनसेन का शासन था। मुसलमान इतिहासकारों ने बरहुज तथा हुर्दिज नामक जिन पहाड़ी राजाओं का उल्लेख किया है वे सम्भवतः ब्रह्मदत्त और हरिदत्त थे।

कुमाऊँ नैपाल में श्री क्राचल्ल देव नामक जिस पर्वतीय शासक ने तेरहवीं सदी ई० में राज्य किया था उसी के अन्तर्गत तत्कालीन काली कुमाऊँ (चम्पावत) के खस राजा माण्डलिक थे। बालेश्वर मन्दिर के ताम्रलेख के अंत में जिन दस साक्षियों के नाम हैं उनमें से आठ माण्डलिक लिखे गए हैं और दो राजा।

लेख इस प्रकार है -(देवनागरी लिपि में लिखे संस्कृत का अनुवाद) "सिद्धि हो। भरौत [११] राज्य की समृद्धि।

"युद्ध में वलात् आकृष्ट उसके भटों के भालों द्वारा निहत निपातित शत्रु गजों के कपाल से विखरे अनर्घ मोतियों द्वारा प्रभासित, नाकपति द्वारा ही जेय, विजयशील स्वस्वामी के द्वारा सदा दृढ़ीकृत, गोब्राह्मणहित-रक्षा-प्रवणा श्रीमती सिरा स्वर्ग का शासन कर रही हैं। उसका पुत्र महावीर राजा क्राचल्ल हुआ, जो सभी शस्त्रधारियों और शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ, प्रमुख तथा शील-दानपरायण था। पृथ्वीपति क्राचल्ल देव भाले, तलवार और पाश द्वारा नये दाँत निकले हाथी से युद्ध करने में पाण्डवों की भाँति अद्भुत था। वह परमसौगत जिनिकुलकमल का प्रभासमान सूर्य शस्त्र-अस्त्र में और पराक्रम में प्रचण्ड था।

"परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् क्राचल्ल देव नृपति ने अपने विजय राज्य के सोलहवें वर्ष में अपने अधिकार क्षेत्र में शस्त्रास्त्र से अपने सारे शत्रु मण्डल को पराजित किया और कीर्तिपुर को विध्वंश करके वहाँ के राजाओं को परास्त कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। तदन्तर उसने पुराने राजाओं द्वारा समर्पित भूमि का निरीक्षण किया। उन सभी को उनके धन आगम के साथ अव परम वंदनीय एक रुद्र श्री बालेश्वर-वंगज [१२] ब्राह्मण भट्टनारायण को योगक्षेमार्थ दान किया।" जागिकेभ्यं--"

इसके उपरान्त एक श्लोक है। उसके बाद के लेख के अंश का अनुवाद है—"इस शासन के द्वारा। ... दानादिगुण श्रेष्ठ हैं किन्तु वह नारी और भी (श्रेष्ठ) है जो स्वधर्म परायण सदा पतिव्रता है क्योंकि काल-मुख सबका भक्षण करता है। महाराज ने अपने आमात्यों तथा प्रमुख दरबारियों की समिति के मध्य बैठ कर जिनमें से मुख्य —श्री याहद देव माण्डलिक, श्री चन्द्र देव माण्डलिक, श्री हरिराज रौत्त राजा, श्री अनिलादित्य रौत्त राजा, श्री विनय चन्द्र माण्डलिक, श्री विद्या चन्द्र माण्डलिक, श्री जय सिंह माण्डलिक, श्री जीहल देव माण्डलिक, श्री वल्लालदेव माण्डलिक, श्री मूसादेव माण्डलिक, हैं से मंत्रणा करके तथा अपने इष्टगणों और मंत्रियों के परामर्श से अपने धर्म कर्तव्य पर विचार करके उपर्युक्त दानपत्र नैतिक, तांत्रिक पारिषद शत्पुरुष शांत, विवेकी, कलियुग में गद्य-पद्य काव्य रचना में प्रसिद्ध कवि, कुल्यानुष्ठान परायण, जातक फलगणना आदि में चतुर, शकुन शास्त्र में पटु तथा लोक प्रसिद्ध नन्द पुत्र को प्रदान किया। उक्त दान भूमि की सीमा इस प्रकार है—पूर्व में सुहार गढ़ी, दक्षिण में कहुड़कोट, पश्चिम में तला कोट तथा उत्तर में लधोल। इस प्रकार की सीमाओं से बद्ध कोनदेव में स्थित आकर, नदी, तट, जंगल, उनकी उपज को इस दान पत्र द्वारा जब तक चन्द्र सूर्य आकाश में स्थित हैं तब तक जारी रहने के लिए दे दिया। सभी शक्तिशाली राजा जो समय-समय पर मेरे वंश में पैदा होंगे तथा दूसरे राजा भी इस दान की सदा रक्षा करें।

श्री क्राचल्ल देवस्य यावद् अम्भोजिनिपति
विहरत भुवि तावत् कीर्तिरस्य नृपकुमुदाकरस्य।

इसके उपरान्त एक और श्लोक है तथा अंत में "इति शक संवत् ११४५ पौष कृष्ण द्वितीया सोमवार जब कि कर्क राशि में चन्द्रमा धनु राशि में सूर्य है तथा शनि उसका अनुगमन कर रहा है, कन्या राशि में मंगल, वृश्चिक राशि में वृहस्पति और शुक्र, कुम्भ राशि में बुध, मेश राशि में आरूढ़ और दक्षिण पूर्व में अवरूढ़ है, यह दूलू के समीप ऐश्वर्य सम्पन्न नगर में लिखा गया। सभी लोकों का कल्याण हो।" [13] शब्द ताम्रपत्र में हैं।

इस लेख से ज्ञात होता है कि क्राचल्ल देव तत्कालीन जिन (अब जीना) नामक राजपूत वंश का था और उसकी राजधानी दूलू में थी, जीना शब्द से यह भी लगता है कि सम्भवत: पूर्व काल में वह राजवंश जिन नामक बौद्ध धर्म की शाखा का अनुग्रायी था। इस लेख में जिन माण्डलिकों के नाम आए हैं उनमें रौत राजा का उल्लेख तथा जिहाल और जय नामों से यह भी प्रकट होता है कि ये लोग तत्कालीन काली कुमाऊँ के खस राजा थे जो क्राचल्ल देव के आधीन उसके करद उप राजा रहे होगें।

सन्दर्भ और टीपें

१—काली कुमाऊँ में सोमचन्द नामक व्यक्ति के आने के विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जनश्रुतियों में भी बहुत अन्तर है कुछ उसे कन्नौज के बैस राजवंश का मानते हैं और उसके काली कुमाऊँ आने का समय सातवीं आठवीं सदी ईस्वी। कुछ अन्य उसे सोम वंशी राजपूत जो झूंसी (इलाहाबाद) से स्थानीय प्रजा के मुखियों द्वारा बुलाया गया था मानते हैं। दूसरे मत के अनुसार सोमचन्द को तब बुलाया गया जब कत्यूरी राजा ब्रह्मदेव (बिरमदेव) का शासन निर्बल हो गया और काली कुमाऊँ में अराजकता व्याप्त हो गई। यह घटना बारहवीं सदी की हो सकती है।

२—काली कुमाऊँ में चन्द राजाओं के द्वारा अपना अधिपत्य स्थापित करने के विषय में अगले अध्याय के पृष्ठ १९३-९५ में विस्तार से लिखा गया है।

३—प्राचीन मिस्र के संदर्भ में पुण्ट देश को श्री चन्द्र गुप्त विद्यालंकर ने दक्षिण भारत का प्राचीन पांड्य देश माना है। (वृहत्तर भारत पृष्ठ २९५-२९९) किन्तु पाश्चात्य विद्वान सैग्स इसे पूर्वी अफ्रीका तट का देश सुमाली लैण्ड मानता है।

४—पंतक पारसियों की उप जाति थी। हिमालय क्षेत्र में बसे पंत भी अपने को सूर्य उपासक पारासर गोत्रीय मानते हैं। पारासर और पारसिक शब्दों में केवल ध्वनि साम्य ही नहीं है वरन् दोनों लोगों के रीति रिवाजों तथा विधिनिषेधों में भी साम्य है।

५—देखिए नानावती लिखित नवरोज के अवसर पर प्रकाशित हिन्दुस्तान टाइम्स तथा गजेटियर ऑफ बाम्बे।

६—उपर्युक्त संख्या ५ के अनुसार।

७—देखिए पुरातत्व संग्रह पत्रिका अंक १० पृष्ठ ५६-६०

८—दारुकावन का उल्लेख 'द्वादश ज्योतिर्लिंगों' की स्थापना के संबन्ध में इस प्रकार हुआ है—

सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने।
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गोमती तटे।
हिमालये तु केदारं धुश्मेशं च शिवालये।
एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः।

जनश्रुतियों के अनुसार द्वाराहाट, आदि बद्री तथा जोशीमठ आदि कुमाऊँ के ज्योतिर्लिंगों की स्थापना भी आदि शंकराचार्य ने की है। तथापि उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि हिमालय क्षेत्र में केवल केदारनाथ ज्योतिर्लिंग स्थापित किया गया तथा दारुकावन में नागेश नामक ज्योतिर्लिंग स्थापित हुआ। दारुकावन ही आजकल दारुण कहलाता है। नागेशं का उल्लेख तत्कालीन नाग किरात राज्य के अन्तर्गत दारुकावन के स्थित होने का संकेत है।

९—पक्षपात शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्रायः सभी कवियों ने किया है। किरातार्जुनीय ३/१२, रघुवंश, आदि उल्लेखनीय हैं। यह शब्द प्रतिनिधि के अर्थ में ठीक उसी आशय का है जैसा अंग्रेजी में प्राक्षी शब्द है। पक्षपातमत्र देवी मन्यते (मालवि०)।

१०—देखिए एपिग्रा० इंडिका। अभिलेख में हर्ष नाम के राजा के प्रतिनिध या पक्षपात के हस्ताक्षर से लगता है कि वह उन चार हर्ष नाम के राजाओं में से होगा जिसका उल्लेख हर्षवर्धन से संवन्धित पिछले अध्याय में हो चुका है। यदि वह वर्धन वंश का हर्ष ही था तो इन लेखों का समय एक शताब्दी पहले भी हो सकता है।

११—भरौत—बंगाली पुरोहित ने संभवतः भरत को भरौत लिख दिया है। जैसा कि पादटीका १२ से स्पष्ट है।

१२—वंगज ब्राह्मण अर्थात् बंगाली ब्राह्मण, यह कुमाऊँ के वंग देश से संबन्धित होने का एक और प्रमाण है।

१३—देखिए एटकिन्सन गजे० हिमा० डि० पृष्ठ ५१८, जिसके अनुसार भरौत पे संबन्धित पंक्ति का पाठान्तर है—समृद्धिशाली भरौत का राज्य।

नैपाल और कुमाऊँ

गढ़वाल, कुमाऊँ, डोटी, तराई, मधेश, मांझ किरात, पल्लो किरात, पाटन, सन्याल, देलेख, दुलू, जुमला, इलाम, भगवानपुर, सिघुली, उदयपुर, दाँग, देवखुरी, सुनारखेत तथा खास नैपाल आदि अनेक प्राचीन राज्य न केवल भौगोलिक स्थिति में समान थे वरन् इनका इतिहास और इनकी संस्कृति भी लगभग समान है। जिस प्रकार पूर्व-काल में ईरान और भारत के बीच कोई राजनीतिक सीमा रेखा नहीं थी और सिन्धु नदी के दोनों ओर एक ही प्रकार की जातियों के जनपद और राज्य थे उसी प्रकार हिमालय के दक्षिण पार्श्व में पूर्वकाल में काश्मीर से ब्रह्मपुत्र तक की घाटी में किरात या खस कहे गये लोगों की अपनी सत्ता थी। अनेक छोटे-छोटे रजवाड़े थे। कुछ तो केवल दो चार गाँवों के ही स्वामी थे। कभी इन राजाओं में से कोई राजा अपने आस-पास के राजाओं को पराजित कर उनसे कर वसूल करता तो कभी स्वयं भी पराजित होकर पड़ोसी राजा की आधीनता स्वीकार कर लेता। वर्तमान नैपाल की भाँति कुमाऊँ, गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश और काश्मीर के उत्तरी सीमान्त के लोगों में मंगोल रक्त है। नैपाल में मुस्तांग मनाँग क्षेत्रों में आज भी कुछ वन जातियाँ बसती हैं। ये इस सदी के आरम्भिक दशकों तक पिथौरागढ़ के अन्तराल में रहने वाली राजीकिराती जाति की भाँति कन्दराओं में रहती हैं।

नैपाल (नेपाल)

गोरखा शब्द का प्रचलन बारहवीं सदी में गोरखनाथ संतके जन्म के बाद हुआ। पार्जिटर गोरखा शब्द को घोरका से व्युत्पन्न मानता है। नाथ सिद्ध लोग घोर पन्थी या अघोर पन्थी भी कहलाते हैं। घोरका शब्द के प्रथम अक्षर घ की महाप्राण ध्वनि अन्तिम अक्षर क में मिल जाने से उनके अनुसार गोरखा[1] शब्द बना। नैपाल को वे निप या पड़ौसी शब्द का अपत्यवाचक कहते हैं। नैपाल में इस शब्द के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ में से एक यह है कि ने नामक मुनि ने पशुपति नाथ मंदिर की स्थापना की। उनके द्वारा पालित होने से यह देश नैपाल कहलाया। पाल शब्द का बंगाल के पाल वंशी राजाओं से भी संवध जोड़ा जाता है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कभी पाल वंश के राजा मगध नैपाल होते हुए केदारनाथ-बदरीनाथ तक यात्रा पर आए थे। काशी प्रसाद श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक "नैपाल" में लिखा है—"हिमालय पर्वत के उत्तरी भागों के अनार्य हिमालय की तराई के पहाड़ी भूभाग को अपनी भाषा में "पालदेश" कहते हैं। पाल शब्द तिब्बती भाषा में पश्मीना (ऊन) का पर्याय है। नैपाल में ऊन बहुत मिलती है इसलिए तिब्बत वालों ने नैपाल को पालदेश कहा है। ने शब्द का

अर्थ भोट प्रदेश के लामाओं की भाषा में पवित्रगुफा और देवताओं का वास स्थान होता है। नैपाल में असंख्य बौद्ध तथा हिन्दू मूर्तियाँ पाई जाती हैं। इसलिए इस प्रदेश का नाम नैपाल पड़ गया।" (पृष्ठ ८)

किरात वंश

जनश्रुतियों के अनुसार नैपाल में किरात वंश का राज्य द्वापर युग के अन्त से आरम्भ हुआ। प्रथम किरात राजा का नाम पलम्बर कहा जाता है। कुमाऊँ में पाण्डवों के वनवास की कथा पाली पछाऊँ के विराट नामक स्थल से जोड़ी जाती है। नैपाल में किरात राजा के कौरव पाण्डव युद्ध में सम्मिलित होने तथा हती और हुमती नामक किरात राजाओं के समय में पाण्डवों के वनवास में विराटनगर के समीप रहने की कथा प्रचलित है। यह भी कहा जाता है कि किरात राजा गली और पुष्कर के राज्य-काल में शाक्यसिंह बुद्ध नैपाल में पधारे।

किरात राजा थुंको के समय में सम्राट् अशोक के नैपाल आने की जनश्रुति भी प्रसिद्ध है। "सम्राट् अशोक ने एक स्तूप पत्तन में दूसरा कीर्तिपुर में बनाया। सम्राट् अशोक के भय से स्थुङ् के पीछे किरात वंशीय राजाओं ने गोकर्ण जंगल में एक दुर्भेद्य दरबार में छिपकर शरण ले ली। सम्राट् अशोक की पुत्री चारुमती ने चाबेल नगर बसाया।" (उपर्युक्त "नैपाल"—पृष्ठ—११)

खस तथा दमाई

नैपाल के ठकुरी क्षत्रियों में साह, साही, सेन, मल्ल, खान तथा चन उपजातियाँ हैं। खस लोग भी क्षत्रिय हैं और उनकी उपजातियाँ पाँडे, थापा, वस्नेत, विष्ट और कँवर हैं। कुमाऊँ के खस कहे गए राजपूतों की भाँति नैपाली खस अन्य राजपूत जातियों द्वारा अनादर की भावना से नहीं देखे जाते। कुछ बर्ष पूर्व तक विदेश से लौटने पर प्रति व्यक्ति को राजा को तीन रुपया मुण्ड कर देना पड़ता था। यह "पानी पनिया" कहलाता था। जो इस कर को न देता उसको जाति च्युत कर दिया जाता था।[२] इस प्रकार कुमाऊँ की भाँति नैपाल में भी जाति और उपजातियों का निर्धारण शासक द्वारा ही होता आया है। नैपाल शब्द की व्युत्पत्ति कुछ विद्वान नेवार से करते हैं। राहुल सांकृत्यायन भी इस मत के थे। नेवारी लोग मूलतः दक्षिण से आए शैव मतावलम्बी नायर लोग थे। इनकी भाषा नेवारी भोट भाषा से बहुत कुछ मिलती है।

जनजातियों के संस्कार आज तक भी लिम्बू और राई लोगों में पाए जाते हैं। गुरुँग तथा मगर जातियों को केवल नाममात्र के लिए ही हिन्दू माना जाता है। मूलतः वे बौद्ध रहे होंगे। वे अपने मुर्दों को गाड़ते हैं। इनमें तलाक की भी प्रथा है। जिस प्रकार कुमाऊँ के प्राचीन चन्द राजा अपने दरबार में राजचेलियाँ (दासियाँ या कूटनियाँ) रखते थे उसी प्रकार की प्रथा नैपाल दरबार में भी थी। खस जाति के लोग

प्राचीन कुमाऊँ की भाँति नैपाल में भी यज्ञोपवीत नहीं धारण करते थे। नैपाल में खत्री, तकला और दुरस जातियाँ भी हैं। घुमक्कड़ जीवन बिताने वाली चेपाङ ओर कुसुण्डा जाति के लोग गण्डक घाटी की ओर के हैं। कुमाऊँ के सीमान्त वासी दम लोगों की भाँति की दमाई तथा लोहे के काम में निपुण आगरी भी काठमाण्डू घाटी में हैं। खस जाति की बीसियों शाखाएँ नैपाल में हैं। मतवाल खस यज्ञोपवीत धारण नहीं करते। मगर जाति की उपशाखाओं में बुडाथोकी, घरती, पुन, राना तथा थापा उपजातियाँ बड़ी बहादुर और स्वामीभक्त मानी जाती हैं।

थारू

कुमाऊँ की तराई की भाँति नैपाल की तराई में भी थारू जाति बसती है। द्रोणवार, लम्पच्छा, कोचिला, राना, दंगवरिया, रऊतार थारू जाति की उपजातियाँ हैं। तराई में बसे लोगों को मधेसिया नाम दिया गया है। गढ़वाली, मोरंगिया, चितवनिया, कंचनपुरिया आदि लोग नैपाल में आकर बसे अपने मूल देश के नाम पर इस भाँति कहलाये जाने लगे हैं। कुमाऊँ के जोशी, पन्त, पाण्डे लोहनी, भट्ट, कर्नाटक आदि सभी ब्राह्मण नैपाल में भी बस गये हैं। कुमाऊँ की भाँति वे भी आप्रवासी ब्राह्मण हैं।

मल्ल

इतालियन पुराविद तथा प्राच्य विद्या विशारद गुइसेप टुच्ची ने मल्ल राजाओं की वंशावली को एक विशाल प्रस्तर स्तम्भ पर खुदा हुआ पाया। यह प्रस्तर उसे जुमला के पास एक जंगल में मिला। जनश्रुतियों के अनुसार राजा आनन्द मल्ल ने सन् ८८० ई० में नैपाली सम्वत् का आरम्भ किया।

कहा जाता है कि मल्ल नयाकोट के वैश्य ठाकुरी कहे गये लोग थे। मल्ल उपाधि इस राजवंश के दसवें राजा ने धारण की थी। कुछ जनश्रुतियों में मल्ल लोगों को सूर्यवंशी कहा गया है। सूर्यवंश के अठाहरवें शासक वृषदेव वर्मा के शासनकाल में आदि शंकराचार्य नैपाल घाटी में आये थे। उस समय तक सारा नैपाल बौद्ध धर्मावलम्बी था। लगभग ८४००० बौद्ध श्रमणों में से कोई भी शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित नहीं कर सका फलतः बौद्ध धर्म के स्थान पर शैव धर्म का प्रचलन हुआ।

आदि शंकराचार्य के चलाए शैव धर्म को मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ ने तान्त्रिक धर्म का रूप दिया। आज नैपाल में बौद्ध और शैव सम्प्रदाय में कोई भेद नहीं है। मगध का नैपाल घाटी से निरन्तर निकट सम्बन्ध रहा इसका प्रमाण बहाल शब्द है। बहाल बिहार का अपभ्रंश है और काठमाण्डू में महल्ले का पर्यायवाची है। नैपाल में कुमाऊँ की घाटियों की भाँति पहाड़ी बोली की अनेक "कुरा" या उपभाषाएँ हैं। 'नैपाली कुरा' को ही गोरखाली कहा जाता है। देवनागरी समस्त नैपाल की

राष्ट्रलिपि है । नैपाली में अरबी और फारसी भाषाओं के सैकड़ों[3] शब्द हैं । वैसे कुछ काल तक नैपाल में नेवारी और हिन्दी का प्रयोग सरकार की ओर से वर्जित कर दिया गया था ।

मल्ल-गुईसेप टुच्चो के अनुसार

इस शती के तीसरे दशक में उक्त इतालियन विद्वान ३१ दिन की पैदल यात्रा के उपरान्त जुमला पहुँचा था । उसे जुमला तथा निकटवर्ती गाँवों के निवासियों के पास अनेक ताम्रपत्र मिले । उस के अनुसार 'वे ग्रामवासी इस प्रदेश तथा गढवाल भूखंड के विजेताओं के वंशज थे।' जुमला से पश्चिम की ओर कुमाऊँ की ओर जाने वाले प्राचीन राज मार्ग पर सात पड़ाव के उपरान्त टुच्ची दुल्लू या दुल्लु नामक एक अन्य ऐतिहासिक स्थल पर पहुँचा । दुल्लु के विषय में वह लिखता है-' दुल्लु का अपने को किसी भारतीय शासक का वंशज कहने वाला राजा अब इस इलाके का आजन्म गवर्नर नियुक्त कर दिया गया है । यद्यपि इस पुराने राजा के भाग्य ने बड़ा पलटा खाया है और उसके पास केवल आठ कर्मचारी हैं तथापि तीन रानियाँ हैं और राजधानी के नाम पर एक दुमंजिला मकान है तथापि महामहिम महाराजा ने मेरे आतिथ्य में कोई कमी नहीं की । मेरे अन्वेषणों में रुचि ली और मुझे अपने राजवंश के अभिलेख दिखाए । . . . दुल्लु बड़े पुरातात्विक महत्व का स्थल है। यह मेरे सौभाग्य की बात है कि इसकी खोज का श्रेय मुझे मिला । यहाँ एक लम्बे शिला स्तभ पर मल्ल राजवंशावली और विभिन्न राजाओं की विजयों का वर्णन खुदा हुआ है। एक विशाल कुंड जो गोलाकार पत्थरों से निर्मित है राजाओं तथा उनके मंत्रियों की दानशीलता की प्रशस्तियों से अभिलिखित है। इन राजाओं ने इटली से भी बड़े इलाके पर राज्य किया था और हिमालय के शिखरों को पार करके उस ओर तिब्बत में भी अपने माँडलिक राजा नियुक्त किये थे । इन शिला-लेखों में पहले शासक का नाम, जिसने पश्चिमी तिब्बत तक अपने राज्य का विस्तार किया था नागदेव दिया गया है । इस शासक ने पूर्वोत्तर क्षेत्र में ल्हासा पर भी अधि-कार किया था । इस वंश के चौंतीसवें राजा पृथ्वी मल्ल के समय में साम्राज्य उन्नति की पराकाष्ठा पर था । प्रथम राजाओं में अशोक नाम का भी एक राजा हुआ है । अभिलेखों में उसके द्वारा बौधिगया को दिये गये दान का उल्लेख है । शिलालेखों का आरम्भ बौद्धबीजमंत्र 'ऊँ मणिपद्मे हुम्' शब्दों से हुआ है। उनके अक्षर तिब्बत में प्रचलित ब्राह्मी लिपि जैसे हैं प्रत्येक लेख में लेखक का नाम भी खुदा हुआ है । राजाओं की प्रशस्तिओं में हिन्दू और बौद्ध परम्पराओं का सम्मिश्रण है ।

शिलालेखों का जंगल

"उस प्राचीन राजमार्ग पर जो पश्चिम की ओर गर्तोक जाता है मिचि गांव नामक स्थल है जहाँ कहीं आधे और पूरे लिखे इतने अधिक शिलास्तम्भ और चोरतेन

(तिब्बती और भारतीय स्थापत्य के चैत्य) हैं कि उसे अभिलिखित शिलालेखों का घना जंगल कहा जा सकता है। इन शिलाओं को जिनके लिखित अंश कहीं कहीं भूमि के अन्दर धँस गए हैं मैंने खुदवा कर पढ़ा। इनमें पाल और मल्ल वंशीय राजाओं के कार्यकलापों के साथ-साथ उनके दानपत्रों की तिथियों और उनके शासनादेश बड़ी विधि सम्यक् भाषा में अंकित किये गये हैं। इन लेखों के अध्ययन से मुझे पता चला कि इन शासकों ने कर्नाली नदी के मार्ग से तिब्बत में स्थित तोक-जालंग और पश्चिमी तिब्बत की नमक और सुहागे की खानों के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। इन्होंने अपने संस्कृत नामों के साथ साथ तिब्बती नामों का भी उल्लेख किया है। पश्चिमी तिब्बत में इन्होंने लामा धर्म और हिन्दू धर्म का अद्‌भुत समन्वय किया है और जो मन्दिर और चैत्य बनाए हैं उनमें भारतीय और तिब्बती भवन निर्माण कला का मिश्रण है।" (नेपाल—द डिस्कवरी ऑफ मल्ल।)

मल्ल शासकों ने पुराने अजपथों को चौड़ा करके पश्चिमी तिब्बत की ओर जाने वाले मौर्य कालीन उत्तरा पथ को राजमार्ग का रूप दिया। इस राज पथ पर स्थान-स्थान पर उसके किनारे खुदे हुए चट्टान टुच्ची को मिले। इन अभिलेखों में सड़क के निर्माता शासक का नाम दिया गया है। साथ ही बौद्ध धर्म का अशोक की शैली में उत्कीर्ण उपदेश वाक्य भी है—'यह राज मार्ग अमुक राजा ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए निर्मित किया।' ये व्यापार मार्ग ही मल्ल शासकों की समृद्धि के मुख्य साधन थे।

मल्ल खस थे

मल्ल शासकों के मूल स्थान के विषय में टुच्ची का कथन है—"मल्ल मूलतः कहाँ से आए यह निश्चयात्मक रूप से नहीं बताया जा सकता किन्तु इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे उन खसिया लोगों में से थे जो काश्मीर और उसके समीप शिमला गढ़वाल क्षेत्र में सर्वत्र व्याप्त हैं तथा जिनका भारतीय साहित्य में अनेक बार उल्लेख हुआ है। मल्लों ने अनेक राज्य स्थापित किए जिनमें नैपाल और पश्चिमी तिब्बत का उनका साम्राज्य अन्य सबसे विस्तार में बड़ा था। साम्राज्य की दो राजधानियाँ थीं पहली ताकलाकोट में जहाँ उनके बनाए किलों के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। आज ताकलाकोट एक छोटा सा गाँव रह गया है। वहाँ अपनी हिमालय की यात्राओं में मैं दो बार जा चुका हूँ।" (नैपाल-द डिस्कवरी ऑफ मल्ल पृष्ठ ३८)।

अपनी इन यात्राओं के विषय में टुच्ची आगे लिखता है—'हिमालय के पार १९२६ का चला मैं पश्चिम तिब्बत के चैत्यों और मंदिरों तक १९३१ में पहुँचा। मैं मल्लों की उन इमारतों द्वारा उद्‌घाटित तथ्यों को प्रकाश में लाया जो मुझे

पश्चिम तिब्बत में मिलीं। अब अपनी लगभग ३० वर्ष की इन यात्राओं की समाप्ति पर, दुनियां की छत पर १२००० मील से भी अधिक पैदल चल कर, हिमालय को कई बार विभिन्न दिशाओं से इस पार से उस पार और फिर उस पार से इस पार लांघ कर मेरी कथा यात्रा वहीं पर आकर समाप्त होती है, वहीं छोटी सी झील (पोखरा नैपाल) मेरे निकट है जिसके समीप यात्रियों के साथ मैं भी सहज भाव से घुटने टेक कर बैठा था क्योंकि प्रकृति के साथ हुई इन मूक् मुठभेड़ों में मुझे कुछ ऐसे अलौकिक अस्तित्व का अनायास बोध हुआ था जिससे मुझे अपनी क्षुद्रता और महानता दोनों का बोध हुआ था। (वही पुस्तक पृष्ठ ७१)।"

नायर या नैवारी

इतिहासकार राइट के अनुसार बारहवां मल्ल शासक जब भाटगाँव में और उसका पिता काठमाँडू और पाटन में सिंहासनारूढ़ था उस समय दक्षिण भारत के कर्णाटक देश का राजा नारायणदेव नैपाल आया और उसने पूरी नैपाल घाटी पर अधिकार कर लिया। कर्णाटक राजा ही अपने साथ नैवारी लोगों को लाया था। विश्वास किया जाता है कि नैवारी लोग दक्षिण भारत के नयेरी निवासी अथवा नायरों की भाँति की जाति के लोग थे। वे नैपाल में ब्राह्मण और क्षत्रियों के अन्तर्जातीय विवाहों की सन्तति माने जाते हैं। कर्णाटक राजवंश का अन्त खस या खसिया और मगर जाति के बुड़बल और पल्पा के राजा मुकुन्द सेन ने किया। कहा जाता है कि कर्णाटक राजा मुकुन्द सेन के भय से सन्यासी का वेश धारण कर देश से भाग निकला। अपने १०० वर्ष के आधिपत्य में कर्णाटक शासकों ने पर्वत प्रदेश में दक्षिणात्य प्रभाव की छाप छोड़ी है। नेवाड़ी कहलाए जाने वाले क्षत्री और कर्णाटक ब्राह्मण आज भी नैपाल और कुमाऊँ में हैं।

मल्ल दूसरी बार

मल्ल जिस देश पर विजय प्राप्त करते थे उसके स्थानीय शासक को पदच्युत न करके उसकी सत्ता उसी को सौंप कर उससे अपनी अधिसत्ता स्वीकार करा लेते थे। टुच्ची के अध्ययन से पता चलता है कि मल्ल शासकों के अभिलेख सातवीं सदी तक मिलते हैं और उसके उपरान्त दसवीं सदी के बाद। बीच के काल के अभिलेख तथा सिक्के टुच्ची को अपनी यात्राओं में कहीं भी नहीं मिले। इस शून्यता का कारण सन् ८७९ में सत्ता का नेवारियों द्वारा हथिया लिया जाना था। मल्लों ने ग्यारहवीं सदी में पर्वतप्रदेश पर दुबारा अपना अधिकार स्थापित किया। ये मल्ल तिरहुत (भारत) के शासकों के मांडलिक थे। इन मल्ल शासकों में जयस्थिति मल्ल अपने बनाये नीति विधान के लिए प्रसिद्ध है। जयस्थिति ने समाज के विभिन्न वर्गों के लिए आचार संहिता बनाई और ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य और शूद्रों के लिए

पृथक नियम बनवाए। अपने राज्य में अपने बनाए इन नियमों का कड़ाई से पालन कराने की व्यवस्था की।

गोरखा शासन

नैपाल के गोरखा शासक चित्तौड़ से भाग कर नैपाल की तराई में आ बसने वाले क्षत्रिय हैं। वंशावली नामक नैपाली इतिहास ग्रन्थ के अनुसार मुगल शासक अकबर द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण किए जाने पर चित्तौड़ का तत्कालीन राजा भूपति मारा गया और उसके पुत्रों ने उज्जैन में शरण ली। राजा भूपति के छोटे पुत्र मनमथ के दो पुत्रों में से भूपाल नामक छोटा पुत्र नैपाल की तराई में आकर नानकोट में बस गया वहाँ राजवंश की एक कन्या से विवाह करके उसने मगर और मिंच जातियों के प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। गोरखा शासन के आरम्भिक दिनों में नैपाल में छोटे-बड़े अनेक राजा और सामन्त थे। इनमें से प्रमुख की गणना पश्चिम से पूर्व की ओर इस प्रकार की जा सकती है—

(१) बाईसी (२२) राजा, जिनमें से मुख्य जुमला का राजा था।
(२) चौबीसी (२४) राजा, जिनमें से एक गोरखा राजा था।
(३) नेवारी लोगों की रियासतें जो बागमती की घाटी में थीं।
(४) मकवानपुर के राजा के अधीन रियासतें और किराती राजा।
(५) सिक्किम के राजा की लिम्बू और लेपचा जातियों के सामन्त।
(६) तराई के राजा लोग जिनमें से कुछ बुटवल के राजा के आधीन थे।

बाईसी राजा लोग घाघरा की घाटी में शासन करते थे। उनकी संख्या २२ थी और उनमें से प्रमुख डोटी जुमला, सिलगढ़ी आदि थे।

चौबीसी के राजा जो गंडक की घाटी के प्रदेश में शासन करते थे संख्या में २४ थे। पल्पा, गोरखा, नयाकोट, पियूथान आदि रियासतें इसी में थीं।

बागमती की घाटी में, जो नेवारी लोगों की घाटी थी, काठमांडू, पाटन, भाटगाँव, कीर्तिपुर तथा चौकोट की रियासतें थीं।

वर्तमान नैपाल का संस्थापक गोरखा राजा पृथ्वी नारायण था। उसका जन्म सन् १६५२ ई० में हुआ था। उसने नैपाल की विभिन्न रियासतों को जीतकर अपने ३२ वर्ष के शासन में नैपाल को एक सत्ता के अधीन कर दिया। (नैपाल एण्ड द ईस्ट इंडिया कम्पनी—बी० डी० सनवाल)

मल्ल जाति का विनाश

सभी बड़े साम्राज्यों की भाँति मल्ल साम्राज्य की विशालता भी उसके लिए अभिशाप बनी। मुक्तिशाही और जीवन भानु नामक दो मल्ल राजकुमार सिंहासन के

लिए आपस में लड़ने लगे। जुमला की केन्द्रीय सत्ता बिखरने लगी। उत्तर की ओर के प्रदेश पर एक अन्य मल्ल शाखा के सामन्त गणेश्वर और बाली राज ने पृथक राज्य की स्थापना की। इसकी राजधानी समजा थी। पृथ्वीमल्ल के समय में पश्चिमी तिब्बत के माण्डलिक राजा ने भी अपने को मल्लों से स्वतन्त्र कर लिया। सम्पूर्ण मल्ल साम्राज्य जिन अनेक राज्यों में विभक्त हुआ उनमें से १२ तो नैपाल के भीतर ही बने। कुछ राज्य तिब्बत के अपने व्यापार से वंचित हो जाने और भारत से सम्पर्क टूट जाने से आर्थिक संकट में जा फँसे। विपन्नता इतनी अधिक बढ़ती गई कि कुछ पुराने शासकों के वंशज आदिवासियों का सा जीवन यापन करने के लिए विवश हो गए। अगली सदियों में सभ्य संसार से विलग हो जाने के कारण कुछ कबीले अपने गौरवमय इतिहास तक को भूल गए।

वनमानुष

आज भी नैपाल के जंगलों में वनमानुषों का सा जीवन बिताती मानव जातियाँ मिल जाती हैं। भारत के अन्य प्रान्तों में जनसंख्या की वृद्धि और जीवन संघर्ष के कारण ऐसी जातियाँ बहुत पहले मिट गई हैं। इस सदी के आरम्भ तक कुमाऊँ के नैपाल से मिले पूर्वी सीमान्त के अन्तराल में किराती अथवा राजी किराती जाति के कुछ सौ लोग थे जिन्हें स्थानीय निवासी वनमानुष कहा करते थे। वे लोग संकेतों से ही स्थानीय जनता से अपने बनाए काठ के वर्तनों के बदले अनाज का विनिमय कर ले जाते थे। इनकी संख्या प्रति वर्ष घटती जा रही थी। सम्भवत: अब कुछ ही दर्जन लोग रह गए हों जो कि जंगल की कन्दराओं में जा बसे हैं। ये लोग अपने को किसी राजा की सन्तान मानते थे जो विदेशी आक्रमण के कारण जंगलों में शरण लेने के लिए विवश हुआ।

नैपाल[५] में सबसे पुरानी जातियाँ चेपांग, कुसुंडा और हयु हैं। ये जातियाँ न किसी सरकार को जानती हैं और न किसी शासन को मान्यता देती हैं। सरकार को किसी प्रकार का कर या लगान देने का उनके लिए कोई प्रश्न ही नहीं क्योंकि धनुष बाण ही इनकी सम्पत्ति है। वस्त्र के नाम पर ये आज भी जंगली पशुओं को मार कर उनकी खालों से अपने तन ढकते हैं। आखेट ही इनका पेट भरने का एकमात्र साधन है। जिन जंगलों में ये शिकार करते हैं उस पर वे अपना पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न स्वामित्व समझते हैं। खेती का ज्ञान इन्हें बिलकुल नहीं हैं। इनकी वाह्य आवश्यकता अपने बाणों के लिए लौह फलक है। वे अपने मारे हुए कस्तूरी मृगों के बीड़े लाकर निकट के किसी गाँव के लोहार को उन्हें देकर बदले में लोहे के टुकड़े प्राप्त कर लेते हैं जिन्हें घिसकर अपने बाणों के सिरे बनाते हैं। इन लोगों के आवास पहाड़ों के अन्तराल में बनी प्राकृतिक गुफाएँ हैं जिनको वे पेड़ों के कटे तनों या बड़े-बड़े पत्थरों

से बन्द करते हैं। जहाँ कहीं गुफाएँ नहीं हैं कुछ कबीले पेड़ों की शाखाओं को जोड़ कर बड़े सुन्दर छप्पर बना लेते हैं। शिकार की खोज में जब ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो छप्परों के साज सामान को भी अपने साथ ले जाकर दूसरे स्थान पर ले चलते हैं। उक्त तीन जातियों के अतिरिक्त नैपाल की तराई में पहले वर्णन की गई थारू वर्ग की जातियाँ हैं जो न केवल नैपाल में वरन् भारत नैपाल के सम्मिलित सीमान्त में पूर्व में चम्पारन से लेकर पश्चिम में गढ़वाल-बिजनौर की तराई में भी बसे हैं। ये उपर्युक्त वन्य जातियों से कहीं अधिक सभ्य और सम्पन्न हैं।

कुमाऊँ नैपाल के आधीन

सन् १७६८ में पृथ्वीनारायण शाह ने कान्तिपुर (काठमांडू) और पाटन को भी अपने अधिकार में कर लिया। काठमांडू को उसने अपनी राजधानी बनाकर युद्ध अभियान जारी रखा। जब वह भाटगाँव के बूढ़े मल्ल राजा रणजीत मल्ल के दरबार में पहुँचा तो उसने रणजीत मल्ल स अपना राज्य स्वयं चलाते रहने तथा उसे केवल कर देते रहने का अनुरोध किया किन्तु रणजीत मल्ल का एक मात्र पुत्र मर चुका था और वह स्वयं अपना राजपाट पृथ्वीनारायण को सौंप कर काशी जाकर सन्यासी का जीवन बिताने का निर्णय करके चला गया। इस प्रकार नैपाल घाटी में अपना अधिकार जमा कर पृथ्वीनारायण शाह पूर्व में लिम्बू और किरात प्रदेश में पहुँचा। सन् १७७२ में उसने सिक्किम तक गोरखा शासन का विस्तार कर लिया।

सन् १७७४ में पृथ्वीनारायण शाह की मृत्यु के उपरान्त उसके बड़े पुत्र सिंह प्रताप शाह ने गद्दी सम्भाली किन्तु तीन ही वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसके छोटे भाई बहादुर शाह तथा रानी राजेन्द्र लक्ष्मी ने सिंह प्रताप शाह के बालक पुत्र रणबहादुर शाह को गद्दी पर बिठाकर स्वयं उसके संरक्षकों की हैसियत से गोरखा शासन की बागडोर सम्भाली। नैपाल का इतिहास इसके उपरान्त थापा और राणा वंश के प्रधान मंत्रियों का इतिहास है जिन्होंने नैपाल के राजा के नाम पर स्वयं ही शासन को अपने हाथ में ले लिया।

सन् १७६० में चौंतरिया बहादुर शाह, काजी जगजीत पाण्डे तथा अमरसिंह थापा ने मल्लों के उसी प्राचीन पश्चिम दिशा के राजमार्ग से काली नदी को पार कर कुमाऊँ पर आक्रमण किया। कुमाऊँ को ले लेने के बाद गोरखा सेना गढ़वाल की ओर बढ़ी। गढ़वाल में लंगूरगढ़ी तक जाकर वह नैपाल में चीन के आक्रमण की आशंका से गढ़वाल के राजा से २५००० रुपये वार्षिक कर देने की संधि करके वापस लौट गई। यह संधि बारह वर्ष तक चली। सन् १८०३ में गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा ने हस्तिदल तथा बमशाह चौंतरिया के साथ गढ़वाल के राजा प्रद्युम्न शाह पर आक्रमण करके उसे देहरादून के युद्ध में पराजित किया। सन् १८०५ में गोरखा

सेना ने यमुना पार करके वर्तमान हिमाचल प्रदेश के नालागढ़ और सिरमौर राज्यों को अपने शासन में सम्मिलित कर लिया। अमरसिंह थापा सतलज पार करके कांगड़ा किले तक जा पहुँचा। उस क्षेत्र में वह सन् १८०६ तक मंडराता रहा अंततः राणा रणजीतसिंह ने स्वयं कांगड़ा को हथियाकर गोरखा शासक को सतलज के बाँये तट तक ही अपना अधिकार सीमित रखने के लिए विवश किया। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में सिक्किम से लेकर सतलज के किनारे तक के पूरे पर्वत प्रदेश पर गोरखा शासन हो गया था।

किरात राज्य का अंत

नैपाल युद्ध से पहले नैपाल दरबार ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से बातचीत करने के लिए चन्द्रशेखर उपाध्याय नामक व्यक्ति को कलकत्ता भेजा था। इस व्यक्ति के पास नैपाल दरबार और ईस्ट इंडिया कम्पनी के पारस्परिक सम्बन्धों का एक विस्तृत विवरण था। उस विवरण में १७ अनुच्छेद थे। पहले अनुच्छेद में किरात राज्य से सम्बन्धित अंश का उल्लेख पहले किया जा चुका है। किरात राजा अपने राज्य को वापस पाने के लिए लार्ड हेस्टिंग्ज और लार्ड कार्नवालिस से भी मिला था।

सन्दर्भ और टीपें

१—गोरखा--कुमाऊँ मे जागेश्वर के आस-पास का क्षेत्र जिस इलाके में है, उसे सरकारी अभिलेखों में चौगर्खा लिखा जाता है। चौगर्खा अर्थात् चार गर्ख या परगनों का समूह। यह शब्द गोरखा शासन में जिले का पर्यायवाची था। नैपाली में गर्खी शब्द का अर्थ घनी बस्ती है। इसी से कुछ लोग गोरखा शब्द को व्युत्पन्न मानते हैं। (नैपाल की कहानी-काशी प्रसाद श्रीवास्तव-पृष्ठ ६८)

२—पानी पनिया--इस गोरखाली शब्द का अर्थ वही है जो हिन्दी में हुक्का-पानी का है। कुमाऊँ के चन्द शासकों की भाँति नैपाल में भी जाति और उपजातियां और उनमें ऊँच-नीच का भेद-भाव राजा द्वारा ही निश्चित किया जाता था। यदि कोई व्यक्ति राजा द्वारा निर्धारित जाति व्यवस्था को भंग करके विवाह सम्बन्ध कर लेता या अस्पृश्य व्यक्ति के हाथ का पानी पी लेता तो उसे 'पानी को मुद्दा' नामक दंड देना पड़ता था। इसी भाँति अपनी जाति बिरादरी में विदेश यात्रा के बाद बने रहने के लिए जो राज कर देना पड़ता था वह पानी पन्याल कहलाता था।

३—कुमाऊँनी की भाँति नैपाल में भी अरबी-फारसी के मूल शब्दों का अर्थ बदल गया है। यथा कुमाऊँनी में रकम का अर्थ लगान, मुकर्रर का अर्थ मुकदमा, मौका का अर्थ निरीक्षण हो गया है। नैपाल में वेतन को रवानगी, उपहार को उलामी और रिश्वत को पानफूल कहते हैं।

४ —गुइसेप टुच्ची--इस इतालियन पुराविद और प्राच्य भाषा विशारद को इस वर्ष नेहरू पुरस्कार से अलंकृत करने के लिए चुना गया है।

५—नैपाल पूर्वकाल में कोसल जनपद का अंग था। (हिस्ट्री ऑफ इंडिया-पॉवेल प्राइस)

———

चम्पावत के कुमू राजा

कार्तिकेयपुर (वैजनाथ-गरुड़) में कत्यूरी साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता की समाप्ति के उपरान्त पूर्व में करनाली नदी घाटी, भुजांग, डोटी, अस्कोट आदि से लेकर पश्चिम में सल्ट-धूमाकोट तक के क्षेत्र में अनेक छोटे-छोटे राजाओं ने अपनी स्वतंत्र सत्ता जमा ली थी। इनमें से अधिकांश कत्यूरी राजाओं के ही वंशज थे। चम्पावत में काली नदी के किनारे सोमचन्द के तथाकथित वंशजों का राज्य जो कभी कत्यूरी राजा ने अपने गुजरात से आए हुए दामाद को दहेज में दिया था दिल्ली के लोदी और तुगलक शासकों की सहायता से अपनी पृथक सत्ता जमाने में सफल हुआ। किंवदन्तियों के अनुसार राजा सोमचन्द गुजरात से आठवीं शताब्दी ई० में चम्पावत में आकर बसा था। एक और लोकोक्ति के अनुसार डोमकोट के राउत राजा ने ब्रह्मदेव नामक कत्यूरी राजा को कुमू का शासक मानने से इन्कार कर दिया था। ब्रह्मदेव को कहीं-कहीं बैछलदेव भी कहा गया है। धामदेव और ब्रह्मदेव नामक सोमवंशी राजपूत बैछलदेव के वंशज बताए जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि कत्यूरी शासन की शिथिलता के कारण चम्पावत में प्रत्येक कबीले में अपने छोटे-छोटे राजा और सरदार हो गये थे। उन लोगों ने अन्त में यह निर्णय किया कि उत्तर भारत के सबसे प्रभावशाली कन्नौज के राजा के पास सन्देश भेज कर वहां से कुमाऊँ पर राज्य करने के लिए किसी राजकुमार को बुला लिया जाय।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार सोमचन्द इलाहाबाद के निकट प्रतिष्ठानपुर या झूँसी का राजकुमार था। झूँसी से ही वह एक ज्योतिषी की नये राज्य की प्राप्ति की भविष्य वाणी पर चम्पावत के पहाड़ी प्रदेश में अपना भाग्य आजमाने के लिए आ गया था। दूसरी कहानी जो सोमचन्द के विषय में प्रचलित है वह उसे कन्नौज के तत्कालीन शासक का भाई बताती है। इस कथा के अनुसार सोमचन्द बद्रीनाथ की यात्रा पर आया था तथा उसने कत्यूरी राजा ब्रह्मदेव की कन्या से विवाह करके चम्पावत में सुई के दुर्ग सहित पन्द्रह बीसी भूमि दहेज में पाई साथ ही भाबर और तराई के कत्यूरी राज्य के दक्षिण पूर्वी भूभाग में जमींदारी अधिकार भी प्राप्त किया। इन कहानियों का कोई भी लिखित प्रमाण प्राप्त नहीं है। सोमचन्द के आगमन का समय भी एक तो सातवीं-आठवीं शती ई० और दूसरा १२३५ सम्वत् (११७८ ई०) माना जाता है। इतिहासकार एटकिंसन दूसरी तिथि को ही प्रामाणिक मानता है। दुलू (दूलु) के राजा कराचल्लदेव के बालेश्वर ताम्रपत्र में जिन साक्षियों का उल्लेख हुआ है, वे सभी मांडलिक राजा हैं। इस सूचि से पता लगता है कि चन्द

नाम धारी तीन मांडलिक तत्कालीन डोटी के राजा के करदाता या उपराजा थे। उक्त ताम्रपत्र में राउत नाम के साक्षी का उल्लेख भी है केवल इसी राउत[1] के साथ राजा उपाधि जुड़ी हुई है।

खस विद्रोह

इतिहासकार एच०एम० ईलयट सोमचन्द को चन्दवंशी न मान कर झाँसी से आया हुआ चन्देल[2] राजपूत मानता है। स्थिति जो भी हो कुमू का चन्दवंश का शासन अधिक वर्ष टिकने नहीं पाया। उसे स्थानीय खस राजाओं ने अपने अधिकार में कर लिया। यह खस विद्रोह की घटना सोमचन्द के वंशज वीना चन्द के समय की बताई जाती है। सोमचन्द के पुत्र आत्माचन्द के उपरान्त सुधा, हमीर, हरि तथा उक्त वीना-चन्द नामक राजा हुए। वीना अपने कर्मचारियों सहित तराई भावर की ओर भागने पर विवश हुआ इस बीच नैपाल में भी अशांति रहीं। चन्द खस शासक पर आक्रमण करते रहे किन्तु अपनी राजसत्ता वापस पाने में सफल नहीं हुए। खस शासकों ने सोमचन्द के वंशजों के समय के आप्रवासी ब्राह्मण दरबारियों को भी चम्पावत छोड़ने को विवश किया। जिन खस या खसिया राजाओं ने चम्पावत में इस बीच राज्य किया, उनकी संख्या पन्द्रह बताई जाती है। उनके बीजड़, जी जड़, जाजड़ आदि नाम और राज्यकाल का विवरण एटकिंसन ने अपने गजेटियर के पृष्ठ ५१० पर दिया है। पं० बद्रीदत्त पांडे ने भी अपने इतिहास में इसी उद्धरण का रूपान्तर किया है। इन दोनों के अनुसार खस शासकों ने कुल मिला कर २२५ वर्ष राज्य किया। एटकिंसन इन खसों को राजपूत नहीं मानता और न उन्हें डोमकोट के रावतों से संबन्धित ही समझता है। खस राजाओं के उक्त नाम वास्तव में नैपाल के पिछले पृष्ठों में वर्णित किरात वंश के राजाओं के नामों के समान हैं।

तैमूर का आक्रमण

मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिमालय के पाद क्षेत्र में जो पहले पहल आक्रमण किए, उनके विवरणों में सिवालिक पर्वत पर नागौर किले का उल्लेख किया है। एक इतिहासकार ने लिखा है "पृथ्वीराज की पराजय और मृत्यु के उपरान्त उसकी राजधानी अजमेर, सारी शिवालिक पर्वत माला, हांसी, सरस्वती तथा अन्य जिले" मुसलमानों के हाथ (११९२ ई०) लगे। 'मांडूर (जोधपुर) का किला जो सिवालिक पर है, उसे शमसुद्दीन ने सन् १२२७ ई० में फतह किया और उलूग खां ने मेवात और कोह-पाया (पर्वत पाद प्रदेश-फुट हिल्स) में स्थित अपनी सेना को पुनर्गठित करने के लिए सिवालिक पर्वत की ओर प्रस्थान किया।"[3] इस प्रकार सिवालिक नाम यहाँ अरावली पर्वतों के लिए आया हुआ जान पड़ता है किन्तु जहाँ तक अजमेर नाम का सम्बन्ध है, यह डोटी के रैनका राजा की राजधानी का भी तत्कालीन नाम था।

नामों की इस गड़बड़ी का आभास तैमूर के हरिद्वार पर हुए आक्रमण के संदर्भ में भी सिवालिक के उल्लेख से होता है। तैमूर लंग ने सन् १३९८ ई० में गंगा और यमुना के मध्यवर्ती दोआबे में हरिद्वार के निकट जो युद्ध लड़े, उनमें राजा बरहुज का उल्लेख मिलता हैं। बरहुज शब्द ब्रह्म राजा हो सकता है। ब्रह्म वंश के राजाओं का राज्य चम्पावत के उत्तर में सोर घाटी में था। कुमाऊँनी में इन ब्रह्म राजाओं को बमराजा कहा गया है। इनका उल्लेख आगे किया गया है। तैमूर लंग ने हरिद्वार में एकत्र हुए हजारों तीर्थ यात्रियों का कत्लेआम किया। अगले दिन वह गंगा पार करके छः कोस दूर चंडी (चांडी) की ओर बढ़ा। इस स्थान पर अनेक पहाड़ी राज्यों की सेनाएँ उसका सामना करने को एकत्र थीं। अगले दिन तैमूर ने पाँच कोस आगे बढ़कर लूट का आदेश दिया। एटकिंसन ने अपने गजेटियर में तैमूर के साथ हुए युद्ध का उसी के शब्दों में यह वर्णन किया है—'एक दर्रे में बरहुज नाम का **राई** था। वह पहाड़ के सब सरदारों से अधिक बलवान था। उसकी सेना बड़ी विशाल थी और उसके सैनिक ऊँचे, हट्टे कट्टे और ऐसे दुर्द्धर्ष थे कि वह **राई** वास्तव में सारे हिन्दुस्तान के शासकों से बढ़ कर था। मेरा आगमन सुन कर उसने अपनी सारी सेना बुला ली थी और अपने आस पास के सभी **राई** लोगों को भी जुटा लिया था। अपनी विशाल सेना और उस दर्रे की दुर्गमता के गर्व के कारण बरहुज ने मुझ से लड़ने का निश्चय कर लिया था। लड़ाई के ढोल-दमामे बजने पर मैं दर्रे की ओर बढ़ा और वहाँ जा कर अपने घोड़े से उतर कर मैंने अपने सैनिकों को पहाड़ी सेनाओं पर आक्रमण करने का आदेश दिया। भूतों की भाँति छिपे हुए उन पहाड़ी सिपाहियों ने चारों ओर से आकर मेरे सैनिकों पर पत्थरों और तीरों से आक्रमण कर दिया; किन्तु बहुत से पहाड़ी सैनिकों को मेरे सैनिकों ने तलवार के घाट उतार दिया। हिन्दू भाग गए कुछ गुफाओं और कन्दराओं में जा छिपे। बहुत से बन्दी बना दिए गये। अपार लूट का सामान, धन-दौलत, गाएँ, भैंसें, औरतें और बच्चे हमारे हाथ लगे, जिन्हें लेकर हम उसी रात लौट आए। अगले दिन पाँच कोस चल कर हमारी सेना बहरा पर आकर रुकी और दूसरे दिन सरसावा पहुँच गई।' (हिमालयन डिस्ट्रि० एटकिंसन पृष्ट ५२५)

तैमूर द्वारा वर्णित बरहुज (ब्रह्मराज) संभवतः सोर घाटी का शासक ब्रह्मराजा रहा होगा जिसने सभी पहाड़ी सरदारों की सम्मिलित सेना का नेतृत्व किया होगा। तैमूर के आक्रमण के समय सारे उत्तर भारत में उथल पुथल मची हुई थी। पृथ्वीराज की हार के बाद तो कन्नौज और उसके आस-पास के अनेक राजा और सरदार पहाड़ों की शरण में आ गए थे। बालेश्वर मन्दिर के ताम्रपत्र के मूल लेख में **पटनवीस** शब्द का **नवीस** शब्द दुलू जैसे दूरस्थ राज्य की राजभाषा संस्कृत पर मुसलमान शासन के प्रभाव का द्योतक है। इसी उथल-पुथल के समय निर्वासित चन्द शासक के वंशज

चम्पावत में अपने पुराने राज्य पर फिर अधिकार करने में सफल हो गए । अथवा सोमचन्द की कथा कपोल कल्पित हो और चम्पावत में आकर शासन करने वाले विक्रमचन्द नाम धारी राजपूत सरदार ने अपने को कुमू का वैध राजा सिद्ध करने के लिए अपने को, कत्यूरियों के पुरानी लोकोक्तियों में वर्णित, सम्बन्धी का वंशज घोषित कर दिया हो।

बात जो भी रही हो, काली कुमाऊँ के कुमू राज्य का वास्तविक इतिहास चन्द वंश के अपने ढाई तीन सौ वर्ष के निर्वासन से लौटने पर पन्द्रहवी सदी ईस्वी के आरम्भिक वर्षों के वालेश्वर मन्दिर के पुर्ननिर्माण से ही मिलता है जब विक्रमचन्द ने एक गुजराती ब्राह्मण को बुला कर इस मन्दिर के निकट उसे कुछ भूमि प्रदान की यह घटना सन् १४२१ ई० के लगभग की है। सन् १४२३ ई० के कराचल्लदेव के ताम्रपत्र के नीचे अंकित विक्रमचन्द के दूसरे लेख का वर्णन पहले हो चुका है । विक्रम-चन्द के उपरान्त कुमू की गद्दी पर भारती चन्द (१४३७-१४५० ई०) बैठा उसके समय में भी कुमू राज्य काली नदी के तटों पर स्थित एक छोटा सा रजवाड़ा मात्र था । उत्तर में रेनका राजा और उसी के सम्बन्धी सीरा और सोर के राज्य थे । भारती चन्द के समय में उसके पुत्र रतन चन्द ने पूर्वोत्तर की ओर चौगर्खा इलाके पर अधिकार कर लिया ।

कुमू राज्य का विस्तार

काली कुमाऊँ के चन्द राज्य को एक प्रतिष्ठित और शक्ति सम्पन्न पहाड़ी राज्य बनाने का श्रेय रतन चन्द (१४५०—१४८८ ई०) को है। डोटी के रैनका राजा के एक सम्बन्धी नागमल ने जब रैनका राजा को पराजित करके उसे चम्पावत की सहायता माँगने के लिए विवश किया तो राजा रतनचन्द डोटी राजा की सहायता करने के लिए उत्तर पश्चिम की ओर वर्तमान सिलगुड़ी डोटी गया । उसने नागमल को पराजित कर रैनका राजा को फिर अपना राज्य वापस दिलाया । विजयी रतन-चन्द ने चम्पावत लौटते समय भुजान, जुमला, सोर, और थल के राजाओं को कुमू को कर देने पर विवश किया था । इस भूभाग में उसने पँच पूर्वीया जातियों को बसाया । संभवतः अवध की ओर से बुलाई गई ये जातियाँ, सुरारी, द्योपा, पूर चूनी, पडेरू तथा चाराल थीं । बाहर से बुलाई गई इन जातियों के रामगंगा और महाकाली की मध्यवर्ती उर्वरा भूमि में बसाए जाने से राजा रतनचन्द की आप्रवासियों के प्रति सहानुभूति इस तथ्य की द्योतक है कि विक्रम चन्द का ३०० वर्ष पुराने गुजरात या झूँसी से आये हुए तथाकथित सोमचन्द से कोई वंशगत सम्बन्ध नहीं था । वरन् वह तुगलक और लोदी मुसलमान शासकों की सहायता से चम्पावत पर अधिकार करने में सफल हुआ कोई नया ही या कटेहर के किसी राजपूत सरदार का वंशज था। दिल्ली के

मुसलमान शासक उन दिनों शिकार के लिए तराई भाबर आते थे चन्दौसी के पास वर्तमान बिलारी जहाँ कभी कत्यूरी राजा की अन्तिम चौकी थी, दिल्ली के शासकों का अन्तिम किला आखरीनपुर कहलाता था। विक्रमचन्द ने इन मुसलमान शासकों की तराई भाबर में अच्छी आवभगत की और चम्पावत पर अधिकार करने में उनकी कृपा का वड़ा हाथ था।

ढिकुली

वर्तमान रामनगर-रानीखेत मोटर मार्ग के किनारे रामनगर से लगभग १६ कि० मी० उत्तर जंगल विभाग के ढिकुली नामक वन विश्राम गृह के निकट किसी अति समृद्ध प्राचीन नगरी के अवशेष हैं। इससे कुछ पश्चिम जंगल के मध्य ढिकाला नामक एक अन्य स्थल भी है। एटकिन्सन का अनुमान है कि यह स्थान कत्यूरी राजाओं की राजधानी रहा है। ढिकुली शब्द मूलतः ढिकुल हो सकता है जो देवकुल शब्द का स्थानीयकरण है। कुमाऊँनी बोली में द ध्वनि का ढ हो जाना एक सामान्य भाषा विकार है। जैसी—धेनु शब्द से कुमाऊँनी धिनाई (दही-दूध) शब्द बना हैं। धिनाई को ढिनाई भी उच्चारित किया जाता है वह आलमारी जिसमें धिनाई रखी जाती है, ढिनाव कही जाती है। धर्षित (घृणित) शब्द से कुमाऊँनी में ढ्यर शब्द बना है जो मरी हुई गाय-भैंस के मांस के लिए प्रयुक्त कुमाऊँनी शब्द है। धवल से कुमाऊँनी ढौल (कपड़ा धोने के लिए बना हुआ सज्जी राख पानी का घोल) शब्द से बना है। यह प्रवृति ढीट (धृष्ट) तथा ढोर (धोरेय) शब्दों में हिन्दी में भी दृष्टव्य है। संक्षेप में ढिकुल शब्द का तालेश्वर अभिलेख में वर्णित राजधानी देवकुल होना असम्भव नहीं है।

ब्रह्म राजा

कत्यूरी राजा वसंतन देव तथा असन्तीदेव के लिए एक लोकोक्ति कही जाती है—

आसन वीका बासन वीका सिंहासन वीका
वीका ब्रह्मा वीका लखनपुर।

ब्रह्मा शब्द से लगता है कि सोर के ब्रह्म राजा भी कत्यूर से संबन्धित थे। कत्यूरियों की चौकोट और द्वाराहाट वंशावलियों में भी आसन्ति देव और वासन्ति देव नामक राजाओं के नाम मिलते हैं। कालान्तर में कत्यूरी वंशज डोटी के राजाओं ने अपने को साही लिखना आरम्भ किया, अस्कोट के शासक पाल या रजवार कहे जाने लगे। डोटी की ही एक अन्य शाखा ने गंगोली में मणकोट को राजधानी बना कर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। डोटी की राजवंशावली में शालिवाहन, शक्तिवाहन, हरि वर्म देव, श्री ब्रह्म देव, विक्रमादित्य देव, भोज देव आदि ५३ राजा हुए हैं। सोर के ब्रह्म राजा स्थानीय रूप से बम राजा कहे जाते हैं। इनकी ग्रीष्म कालीन राजधानी उदयपुर और शीतकालीन विलोरकोट थी। इनका राज्य अपनी उर्वरा

भूमि और धन-धान्य की सम्पन्नता के कारण सभी पहाड़ी राज्यों में बढ़-चढ़ कर था। ब्रह्म (बम) राजाओं की वंशावली के कराकिल, काकिल, चन्द्र बम, हरक बम, अनि बम, शक्ति बम, विजयबम तथा हरिबम नाम एटकिन्सन ने दिए हैं। जैन्दा नामक प्रसिद्ध भू सर्वेक्षक बम राज्य का ही कर्मचारी था। उसके विषय में यह लोकोक्ति है।

भरि गया जंदा जलाई हाली बई, जसि जसि सोर्याल कौनी,
तसि तसि भई।

यह लोकोक्ति बम राजाओं के उत्तम शासन प्रवन्ध पर प्रकाश डालती है। जैन्दा के भूसर्वेक्षण के उपरान्त लगाए भूमि कर से सोरयाल (सोर घाटी के निवासी) ऐसे त्रस्त हुए कि उन्होंने इस सर्वेक्षक के मरने की खबर उसकी पत्नी को जाकर दे दी। इस दुखद समाचार को सुन कर जैन्दा की स्त्री ने चिता जलाई और सती हो गई लोगों ने जैन्दा की खेती की नाप जोख की बही (अभिलेख) चिता पर डाल कर जला डाली।

अस्कोट

सीरा और सोर से मिला हुआ एक और राज्य जिसमें किसी समय अस्सी किले थे, अस्कोट कहलाता है। इस शताब्दी के सातवें दशक तक अस्कोट के रजवार कुमाऊँ के एकमात्र ताल्लुकेदार थे। इस राजवंश को सन १२८९ ई० में कत्यूर शासन के संस्थापक के ५३ वें वंशज राजकुमार अभयदेव के द्वारा स्थापित किया बताया जाता है। अभयदेव ने पाल उपाधि धारण करके अपना नाम अभयपाल रखा था तथापि इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण तो उपलब्ध नहीं है। लगता यही है कि प्राचीन कुमु के पश्चिम एशियाई कस्साइट अथवा असुर लोगों की किसी शाखा ने यहाँ आकर अपनी स्वंतत्र सत्ता स्थापित की होगी। वैसे रजवार के पास एटकिंसन के समय अपनी राजवंशावली सुरक्षित थी वे अपने को सूर्यवंशी तथा प्रजापति कश्यप की सन्तान मानते थे। कुछ का कहना था कि उनके पूर्वज राजा शालिवाहन अयोध्या से अस्कोट आए थे।

बारामंडल पर अधिकार

राजा किराती चन्द्र (१४८८-१५०३ ई०) ने अपने पिता के राज्य के विस्तार के कार्य को उसी उत्साह के साथ जारी रखा। उसने वर्तमान अल्मोड़ा के निकट खगमरा और विशौद के कत्यूरियों के मांडलिक राजाओं को पराजित किया। स्यूनराकोट को लेकर कोशी नदी की सोमेश्वर घाटी पर आक्रमण किया। स्यूँ शब्द कुमाऊँ में सिंह (व्याघ्र) का बोधक है। कोशी के बाँए तट पर स्थित स्यूनरा कोट कदाचित तालेश्वर ताम्रपत्र में वर्णित सिंहकोट (सिंह नगर स्यूनरा) किराती चन्द के समय में कुमू राज्य के अधिकार में आ गया। सोमेश्वर घाटी में किराती चन्द ने अपने बोहरे

सैनिकों को बसाया। सोमेश्वर के निकट फल्या गाँव में बोहरों के अर्जुन राठ, भाना राठ, नाभाराठ, रतु राठ आदि राठ हैं। सम्भवतः ये राठ या राष्ट्र किरातीचन्द की सैनिक टुकुड़ियों के सरदारों के नामों पर बने हुए हैं। इन लोगों को बैटन की बन्दोवस्त रिपोर्ट में **बोहरा** लिखा गया है। यद्यपि ये आजकल अपने नाम के साथ जातिनाम बोरा लिखते हैं। इन्हीं सैनिकों के नाम पर सोमेश्वर घाटी बोरा की रौ (आवास) या बौरारौ कहलाई। किरातीचन्द ने पश्चिम की ओर बढ़ कर गगास घाटी पर भी अधिकार किया। गगास घाटी को जिन सैनिकों ने बसाया वे कैड़ (बैटन के अनुसार खेड़) थे। उस घाटी का कैड़ जाति के नाम पर नामकरण कैड़ारौ हुआ।

ज्ञातव्य है कि बहराइच जिले का नामकरण भी बोहरा ज़ाति के नाम पर हुआ है। चम्पावत के कुमू शासकों ने इन वीर सैनिकों को अवध की ओर से ही अपनी सेना में भर्ती किया होगा। फरसी में लिखे गए इतिहास ग्रंथों में बोहरा शब्द को बहोर, बहड़ या भड़ लिख दिया गया है। वास्तव में इन तीनों शब्दों की फारसी वर्तनी समान ही है। बोहरा जाति ने कभी नैपाल की तराई से लखनऊ, अवध तथा प्रतापगढ़ जिलों तक राज्य किया था। ब्रिटिश कालीन सभी अवध के जिलों के गजेटियरों में बोहरा लोगों के इस शासन का उल्लेख हुआ है। अंग्रेजी गजेटियरों में फारसी वर्तनी का ही अंग्रेजी रूपान्तर बहर किया गया जो कालान्तर में बहड़ या भड़ हो गया है।

फल्दाकोट

किरातीचन्द ने गगास घाटी को लेकर अपने राज्य का विस्तार पश्चिम की ओर कोस्यां घाटी तथा तराई भावर तक किया। पाली के प्रान्त पर अधिकार करने तक कुमू सेनाओं को विशेष कठिनाई नहीं हुई। पाली के उपरान्त तामाढौन और फल्दाकोट पर आक्रमण करते समय काठी राजपूतों ने कुमू का डट कर सामना किया। ये काठी जो कालान्तर में खाती कहे जाने लगे, सम्भवतः उसी प्राचीन कठ (ग्रीक काठोई) जाति से सम्बन्धित हैं जो सिकन्दर के आक्रमण के समय यूनानी सेना से पराजित होकर पंजाब, काठियाबाड़ (गुजरात) और हिमालय की पहाड़ियों की ओर बिखर गई थी। किरातीचन्द को काठी शासक को पराजित करने के लिए चम्पावत से कुमुक बुलानी पड़ी। घमासान युद्ध के उपरान्त काठी मैदान छोड़ने को विवश हुए। किरातीचन्द ने पराजित सैनिकों की सामूहिक हत्या का आदेश दे दिया और फल्दाकौट का राज्य भी अपने सरदारों में वितरित कर दिया। वह फिर तराई भावर की ओर बिजनौर जिले की पूर्वी सीमा तक पहुँचा। जसपुर के निकट उसने कुमू राज्य की सीमा चौकी स्थापित की। कोटा और कोटुली के गढ़ों में अपनी सेना रख कर वह ध्यानी रौ नदी के मार्ग से चम्पावत लौटा।

सन् १५०३ ई० में राजा किरातीचन्द की मृत्यु के समय कुमू की राजधानी चम्पा-

वत थी और उसमें वर्तमान कुमाऊँ मण्डल के पिथौरागढ़, नैनीताल जिलों का लगभग सम्पूर्ण भाग था किन्तु अल्मोड़े जिले का दक्षिण पूर्व का ही भाग था। सोमेश्वर घाटी के उत्तर हल्छीना के पार कत्यूर की चारों पट्टियाँ, दानपुर परगना, जोहार दारमा, व्यांस चौदांस, सोर सीरा तथा अस्कोट में उस समय तक भी कत्यूरी मांडलिक राजा राज्य कर रहे थे। इन भू क्षेत्रों में कुमाऊँ की सत्ता राजधानी के चम्मावत से अल्मोड़ा लाए जाने के बाद ही स्थापित हुई। यदि चम्पावत के कुमू राज्य के विस्तार का श्रेय रतनचन्द और किरातीचन्द को है तो उत्तर पूर्वी हिम क्षेत्रों तक कुमू राज्य के विस्तार का श्रेय राजा रुद्रचन्द और उसके सेनापति पुरुखू पन्त को है। पुरुखू पन्त का सैन्य संगठन और उसका अतुल पराक्रम उसे अपने मातृ कुल से मिला था। उसके मामा और नाना सीराकोट के राज्य में उच्च सैनिक पदों पर नियुक्त रहे थे। पुरखू पन्त का बाल्यकाल भी सीराकोट में बीता था।

सन्दर्भ और टीपें

१—एटकिन्सन के अनुसार राउत राजा 'खसिया' था। चन्द वंश के साक्षी जिनके नाम ताम्रपत्र में आए हैं वे तेरहवीं सदी ई० में चम्पावत में मांडलिक थे। वे डोटी के राजा के आधीन थे तथा अपने पड़ौसी 'खसिया' सरदारों से किसी प्रकार भिन्न नहीं थे। (हिमा० पृष्ठ ५०३)

२—बीम लिखित ईलियट पृष्ठ ७३, उद्धरण एट० हिमा० पृष्ठ ५०४ से।

३—सिवालिक नाम की भ्रामकता के ये उदाहरण एटकिन्सन के ग्रंथ हिमा० डिस्ट्रिक्स पृष्ठ ५२४ से लिए गए हैं।

४—हरिद्वार के निकट लालढांग (बिजनौर) के पास किसी प्राचीन नगरी के अवशेष हैं। एटकिन्सन के अनुसार इस नगरी की अनेक भव्य मूर्तियों को लोग उठाकर ग्वालियर और जयपुर ले गए हैं। (उपर्युक्त ग्रंथ पृष्ठ ४४३)

५—चौकोट पट्टी में स्थित तामाढोन मूलतः तांबा ढुंग है। प्रयत्न लाधव से यह तामाढोन हो गया। इसी स्थान पर प्राचीन काल में ताँबे की खान थी। ताँबे के खनिज पत्थर, कुमाऊँनी में ढुंग, का स्थान होने से यह तामाढौन कहलाया। इस स्थान पर कुलदेवी के मन्दिर पर शाके १३४२ (सन् १४२० ई०) का किसी सारंग

गोसाई का लिखवाया लेख प्राप्त हुआ है। (एटकिन्सन-हिमालयन डिस्ट्रिक्टस गजेटियर पृष्ठ ५३६)

६—रामगढ़ भीमताल के खस सरदारों ने कुमू के विरुद्ध १५६० ई० में विद्रोह किया। बालो कल्याण चन्द्र ने खगमरा से वहाँ जा कर विद्रोह को दबा दिया तथा निकटवर्ती सभी खस सरदारों को पकड़ कर उनकी हत्या कर दी।

७—बालो कल्याण चन्द के द्वारा अल्मोड़ा, तत्कालीन आलम नगर, की स्थापना तथा राजमहल के निर्माण का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है।

८—कल्हण पंडित से सम्बन्धित एक लेख बैजनाथ के लक्ष्मीनारायण मंदिर के निकट स्थित भोगमंदिर से प्राप्त हुआ है। यह सन् १३६५ ई० का है। यह हमीर देव नामक राजा के समय का है। (हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स गजेटियर एटकिन्सन पृष्ठ ५४०)।

दिल्ली सल्तनत और कुमाऊँ

कुमाऊँ के मध्ययुगीन इतिहास में चन्द वंशीय शासकों का नाम राजनीति, इतिहास, धर्म, आध्यात्म आदि अनेक सन्दर्भों में बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। धार्मिक सहिष्णुता और शरणागत की अपने राज्य और जीवन की बाजी लगाकर भी रक्षा करना उन चन्दवंशी शासकों की परम्परा रही है। यों तो मुहम्मद गौरी के आक्रमण के उपरान्त मैदानी भूभाग से राजपूत शासकों और सरदारों के भागकर पहाड़ी राजाओं के शरण में आने की अनेक घटनाएँ घटी हैं और पहाड के राजाओं ने उन्हें शरण दी किन्तु खवास खाँ नाम के अफगान सरदार को जो दिल्ली के सुल्तान इस्लामशाह (१५४५-१५५३ ई०) का कट्टर विरोधी था, मानवता के नाते राजा कुली कल्याण चन्द (१५४२-१५५५ ई०) ने शरण देकर जिस पौरुष और धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया वह पहाड़ी संस्कृति का एक अनूठा दृष्टान्त है।[1]

पर्वत प्रदेश में तेरहवीं सदी ईस्वी से ही काली कुमाऊँ (कुमू), सोर, अस्कोट, डोटी, दानपुर आदि अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। उनके मध्य भारत, नैपाल जैसी कोई राजनैतिक सीमा नहीं थी। डोटी के मल्ल शासक मगध से सम्बन्धित थे और कुमू राज्य को कर देते थे। कुमू के खस राजाओं के आधीन हो जाने पर वे अपने को स्वतंत्र ही नहीं समझने लगे थे वरन स्वयं कुमू से कर मांगने लगे थे। सोर और सीरा के बम साही नामक राजा भी अपने को स्वतंत्र समझने लगे थे। कुमू में गुजरात से आए चन्द वंशीय राजाओं के शासन के पुनः स्थापित होने पर भारती चन्द (१४३७-१४५० ई०)[2] नामक शासक ने डोटी राज्य पर आक्रमण किया और उसकी सेनाएँ कट्टकवाली चौकुर नामक स्थान पर लगभग १२ वर्ष तक पड़ाव डाले आसपास के भूभाग में लूट-पाट करती रहीं। इस अवधि में भारती चन्द का पुत्र कुमू की राजधानी चम्पावत में अपने पिता की अनुस्थिति में शासन चला रहा था। राजकुमार रत्नचन्द ने (१४६१-१४८८ ई०) अपने पिता की सहायता के लिए कटेहर (बरेली, शाहजहाँपुर) के राजपूतों की सहायता से डोटी के लिए कुमुक भेजी और मल्ल वंशीय राजाओं को कर देने के लिए विवश किया।

रत्नचन्द की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र किराती चन्द (१४८८-१५०३ ई०) के शासन काल में डोटी के राजा ने पुनः स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। किराती चन्द जब स्वयं मोर्चे पर जाने की तैयारी कर रहा था तो नागनाथ नामक एक संत ने अपना कोड़ा राजा को देकर कहा मल्ल शासक रेनका की सेनाओं के लिए यह कोड़ा काफी है, आपको स्वयं युद्ध क्षेत्र में जाने की आवश्यकता नहीं है, आप राजधानी में

रहें। किराती चन्द ने बड़ी अन्यमनस्कता से नागनाथ की राय मानी किन्तु सेनापति ने नागनाथ के कोड़े के प्रयत्न से डोटी के शासकों को पराजित करने में चमत्कारिक सफलता प्राप्त की। नागनाथ इस घटना के उपरान्त कुमू के राजा का प्रमुख परामर्श दाता बन गया। उसने राजा को निर्देश दिया कि यदि वह पश्चिम के पहाड़ों पर आक्रमण करके वहाँ के राज्यों को भी कुमू में सम्मिलित करना चाहे तो उसके गुरु सत्यनाथ उसकी सहायता करने के लिए तत्पर रहेंगे। नाथ सिद्ध सम्प्रदाय अर्द्धसैनिक संगठन था। उसकी सहायता से किराती चन्द ने तराई भाबर में कत्यूरियों के पुराने भूभाग पर अधिकार किया।

नाथ सिद्ध लोगों के विषय में एक दूसरी भी जनश्रुति है। बाबा नागनाथ की वंशावली का उद्धरण देते हुए पंडित बद्रीदत्त पाण्डे लिखते हैं—"राजा से नागनाथ नामक कनफटे जोगी ने यह कहा कि जहाँ तक उनके 'नाद' का शब्द होगा, वहाँ तक कोई शत्रु खड़ा नहीं रहेगा, और देश पर विजय होगी।" एक स्थल पर पर्वतीय भाषा में यह लेख है—"नागनाथ जोगी द्वारा बैठियों छियो। जोगी लै अपनो बानों सेलीनाद भगवा कपड़ा करी, कीर्तिचंद का ७०० कटक करा। यों कयो कि जाँ तक नाद को शब्द सुनाले ताँ तक मुल्क फतह होई, तेरा राज्य होई जालो। राजा मुल्क सर करणासूँ लगाई दियो। राजा लै पैली चौभैंसी मारी, फिर सालम मारो, फल्दाकोट, उचाकोट, धनियाँकोट मारा। कोटौली छखाता, कोटा मारी, बारामंडल पँछौ मारो। गढ़ मारी गढ़ को राजा भाजीबेर दुमाक गयो। जोगी का प्रभाव लै कैले ठाड़ी नी करी। फिर गढ़ को राजा बुलाई वीको राज्य दियो और वीका सिर सुनै को कर ठहरायो।"

अर्थात्—"नागनाथ बाबा राजद्वार पर बैठे थे। बाबा ने अपने कपड़े भगवा रंग में रंगाये और राजा कीर्तिचन्द की ७०० फौज इकट्ठी की। यह कहा कि जहाँ तक बाजे का शब्द सुनाई देगा, वहाँ तक राज्य उसका होगा। राजा को मुल्क फतह करने को भेजा। राजा ने पहले चौभैंसी जीती, फिर सालम, फल्दाकोट, उचाकोट, धनिया-कोट पर अधिकार किया। कोटोली, छखाता, कोटा, बारामंडल व पाली पछाऊँ पर भी विजय पाई। गढ़वाल को भी सर किया। गढ़ का राजा भाग कर छिप गया। बाबा जी के प्रभाव से कोई राजा के सामने न ठहर सका। फिर गढ़वाल के राजा को बुला कर उनका राज्य उन्हें वापस दिया और उनको सोना राज्य-कर में देने को बाध्य किया।"

राजा मणिकचन्द और उसके पुत्र कल्याणचन्द (१५४२-१५५१) का उल्लेख उनकी महानता और उदारता के लिए खवास खाँ को शरण देने के सन्दर्भ में मुसलमान इतिहासकारों ने भी किया है। कल्याणचन्द नाम के ५ कुमाऊँनी राजा

हुए हैं। खवास खाँ के सन्दर्भ में जिस कल्याणचन्द का उल्लेख हुआ है वह अपने क्रोधी स्वभाव के कारण कलि कल्याणचन्द कहलाया जाता है। कलि कल्याणचन्द के उपरान्त इस वंश में राजा पुनीचन्द उसके उपरान्त राजा भीष्म चन्द और भीष्म चन्द के पुत्र कल्याणचन्द चतुर्थ का नाम उल्लेखनीय है। चतुर्थ कल्याणचन्द (१५६०-१५६८) को बालो कल्याणचन्द कहा जाता है। अल्मोड़ा नगर को बसाने वाला यही बालो कल्याणचन्द था।

आलमनगर की स्थापना

बालो कल्याणचन्द ने अपने पिता भीष्म चन्द की इच्छा के अनुसार खसिया खोले डाँडे के ऊपर जो नया नगर बसाया उसका नाम आलमनगर रखा गया। पंडित बद्रीदत्त पाण्डे के अनुसार राजा ने कहा 'यह स्थान उनके राज्य के मध्य में है। वहाँ जल भी बहुत है। पत्थर भी चिनाई व छवाई का बहुत उत्तम है। देवदारु का जंगल लकड़ी के लिए काफी है। इसलिए देवलीखान, त्याड़ीखान, सिटौलीखान वा चीनाखान के बीच शहर बनाना निश्चित हुआ। पर यह जगह श्रीचन्द तिवाड़ी की थी। कत्यूरी राजा ने दान में दी थी। इस कारण राजा ने उनकी सनद मँगाई। उनकी जमीन तथा खालसा जमीन अलग करवाई। कुछ मुआविजा दिया। राजा ने इस जगह से दसगुनी जमीन छखाते के परगने के नदीगाँव में दी।''

अल्मोड़ा राजधानी बनते-बनते चन्द शासकों ने दक्षिण में कोटा भावर से आगे बिजनौर जिले की सीमा तक अपने राज्य का विस्तार किया। जसपुर के निकट अपने नाम पर स्थापित किरातीपुर सीमा चौकी कुमू राज्य की पश्चिमी सीमा बन गई थी।

किराती चन्द के उपरान्त उसका पुत्र प्रताप चन्द (१५०३-१५१७ ई०) तथा पौत्र ताराचन्द हुए। मानिक चन्द अपने पिता ताराचन्द के १६ वर्ष के शासनकाल के बाद सन् १५३३ ई० में कुमू की गद्दी पर बैठा। उन दिनों कुमू की राजधानी वर्तमान चम्पावत थी। कुमाऊँ को विष्णु के कूर्मावतार से सम्बन्धित करके उसका कूर्माचल नाम पड़ना न तो किसी पौराणिक गाथा से सिद्ध होता है और न ऐसा एटकिन्सन के गजेटियर या किसी अन्य प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ में ही उल्लेख है। एटकिन्सन ने पंडित रुद्रदत्त पंत के सन्दर्भ से लिखा है कि अंगदेश के राजा कूर्म ने भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को जिसने उसके इस प्रदेश पर आक्रमण किया था मार डाला था। इस प्रकार कूर्म कच्छप से सम्बन्धित नहीं है वरन अंगदेश के राजा का नाम है। बालेश्वर के मन्दिर के दान पत्र में पहली बार इस भूखंड को कूर्म पर्वत प्रदेश कहा गया है। इस पर्वतीय कुमू राज्य के लिए कुमाऊँ अथवा कुमायूँ शब्द का प्रयोग तारीखे दाऊदी में इतिहासकार अब्दुल्ला ने पहली बार खवास खाँ की उक्त घटना के सन्दर्भ में किया है।[3]

खवास खाँ

इस्लाम शाह शेरशाह का उत्तराधिकारी और उसका कनिष्ट पुत्र था। शेरशाह लोहानी वंश के सूबेदार बहार खाँ के मरने पर उसके पुत्र जलाल खाँ का संरक्षक और दक्षिण बिहार का उप सूबेदार नियुक्त हुआ था। सन् १५२६ ई० में जब बंगाल के शासक[४] नुशरत शाह ने दक्षिण बिहार पर आक्रमण किया था तो शेरशाह (तब शेर खाँ) ने उसे पराजित किया था। इस विजय से उल्लसित हो उसने चुनार के किले पर अधिकार करके किलेदार की पत्नी से विवाह किया था। सन् १५३२ में उसने महमूद लोदी के अफगान संगठन से हट जाने पर स्वयं अफगानों को संगठित करके मुगलों से लोहा लेने की ठानी थी। सन् १५३२ में जब हुमायूं ने चुनार के किले पर घेरा डाला था और चार महीने के घेरे के उपरान्त भी वह उसे लेने में सफल न हो सका था तो उसने गुजरात के शासक बहादुर शाह की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर शेरखाँ से संधि करना ठीक समझा। चुनार का किला शेरखाँ के पास ही रहा और उसने अपने लड़के कुतुब खाँ के नेतृत्व में ५०० सैनिक हुमायूँ की सेवा में भेज दिये। शेरखाँ के लिए यह समझौता हानिकारक न था क्योंकि उसका लड़का मन्दसौर के युद्ध के बाद हुमायूँ को छोड़कर उसके साथ आ मिला था और मुगलों की बहुत सी भेद की बातें जान चुका था।

जब हुमायूँ गुजरात और मालवा में व्यस्त था शेर खाँ ने बंगाल पर आक्रमण कर दिया और महमूद शाह से १३ लाख सोने के सिक्के लेकर उससे संधि कर ली। सन् १५३७ में शेरखाँ ने महमूद शाह पर फिर आक्रमण कर दिया। इस समय तक शेरखाँ बंगाल के राज्य को समाप्त करने का निश्चय कर चुका था। हुमायूँ से उसे कोई भय न था। उसका गुजरात के शासक बहादुर शाह से भी पत्र-व्यवहार चल रहा था। सन् १५३७ में हुमायूँ शेरशाह की शक्ति को दबाने के लिए पूरब की ओर बढ़ा। उस समय शेरखाँ ने गौड़ को जीतकर लूट लिया और दक्षिण बिहार के रोहतासगढ़ नामक किले पर भी अधिकार कर लिया। इसी किले में अपने परिवार और खजाने को सुरक्षित करके उसने हुमायूँ से संघर्ष की तैयारी की। और सन् १५३९ में चौसा का युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ पराजित होकर भाग गया। सन् १५४० में कन्नौज (बिलग्राम) के युद्ध में शेरशाह ने फिर हुमायूँ को परास्त किया। इसके पश्चात् शेरशाह ने आगरा दिल्ली, सम्भल, ग्वालियर. लाहौर आदि सभी स्थानों पर अधिकार करके हुमायूँ को भारत से बाहर निकल भागने के लिए बाध्य किया। मारवाड़ की ओर उसने अजमेर, जोधपुर, नागौर, मेरटा, आबू आदि सभी नगर और किले जीत लिए। मारवाड़ का छोटा सा भाग मालदेव के पास रह गया। अपने विश्वासपात्र सरदार खवास खाँ को उसने जोधपुर से लेकर मेवात तक की सूबेदारी दे दी। परन्तु शेरशाह की मेवाड़ विजय स्थायी न रह सकी। शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् खवास खाँ ने विद्रोह कर

दिया और मालदेव ने धीरे-धीरे मेवाड़ पर अधिकार जमाना आरम्भ किया।

जिस समय शेरशाह की मृत्यु हुई उसके दोनों पुत्रों में से कोई भी उसके पास न था। उसका बड़ा लड़का आदिल खाँ रणथम्भौर में था और छोटा लड़का जलाल खाँ रीवाँ के निकट था। शेरशाह ने अपने बड़े लड़के को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था किन्तु बहुत से सरदारों ने जलाल खाँ को बादशाह बनाना उपयुक्त समझा। जलाल खाँ को शीघ्र बुलाया गया और उसके आ जाने पर २७ मई सन् १५४५ को इस्लाम शाह के नाम से उसे सुल्तान घोषित कर दिया गया। आदिल खाँ, खवास खाँ और ईसा खाँ जैसे सम्मानित सरदारों के आश्वासन पर आगरा गया और अपने भाई से मिलकर बयाना की जागीर पर वापिस चला गया। आदिल खाँ ने खवास खाँ से संरक्षण और सहायता माँग कर आगरे पर पुनः आक्रमण करने की तैयारी की। आगरा के शहर के बाहर जो युद्ध हुआ उसमें आदिल खाँ की हार हुई। खवास खाँ भाग कर सरहिन्द की ओर चला गया। इस्लामशाह ने उन सभी सरदारों को समाप्त करने का निश्चय किया जिन्होंने आदिल खाँ की सहायता की थी।

खवास खां कुमू (काली कुमाऊँ) के शासक कल्याण चन्द की शरण में आ गया। इस्लाम शाह ने सम्भल के सूबेदार ताज खाँ के द्वारा कल्याण चन्द के पास सन्देश भिजवाया कि वह खवास खाँ को दिल्ली के सुल्तान को सौंप दे। कल्याण चन्द ने उत्तर दिया, "जिस व्यक्ति ने मेरे पास आकर शरण ली है उसको मैं कैसे बेड़ी हथकड़ी पहना दूँ ? जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं मैं ऐसा नीच काम नहीं कर सकता"। (एटकिन्सन-मूल संस्करण पृष्ठ ५३८)। इस्लामशाह ने कुमाऊँ के राजा का यह उत्तर पाकर ताजखाँ को आदेश दिया कि किसी भी प्रकार छल कपट या कूटनीति से खवास खाँ को पकड़ में लाया जाय। उसने ताज खाँ के द्वारा खवास खाँ से मैत्री प्रदर्शित करने के लिए अपनी पगड़ी भी भिजवाई और यह कहलवाया कि उसकी सल्तनत में उदयपुर के राजा को पराजित करने के लिए खवास खां के समान वीर, अनुभवी और साहसी कोई दूसरा सरदार नहीं है।

इस सन्देश के मिलने पर खवास खाँ ने पहले तो सुल्तान की आज्ञा को तत्काल मानकर दिल्ली जाने की तैयारी कर ली किन्तु राजा कल्याण चन्द ने उसे ऐसा करने से मना किया और कहा कि दिल्ली का सुल्तान बड़ा ही धूर्त और चालाक है, वह अपने किसी विरोधी को जीवित नहीं छोड़ता, खवास खाँ को भी उस पर विश्वास करके अपने प्राण गंवाने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। कुछ दिनों के उपरान्त सुलतान के व्यक्तिगत आश्वासन मिलने पर खवास खाँ दरबार में जाने के लिए तैयार हो गया। जब वह अपने मार्ग में जा रहा था तो सम्भल के सूबेदार ने उस पर अचानक आक्रमण करके उसे मार दिया। और उसकी खाल में भुस भरकर उसे दिल्ली भेज दिया।

एक और शरणार्थी राजकुमार—खवास खां की उक्त घटना के लगभग १२५

वर्ष उपरान्त एक मुगल राजकुमार फिर भाग कर पहाड़ों की शरण में आया। यह घटना औरंगजेब और उसके भाइयों के मध्य शमसावाद (आगरा) में उत्तराधिकार युद्ध के बाद हुई। युद्ध में हारने के उपरान्त राजा जयसिंह के परामर्श से राजगद्दी का असफल प्रत्याशी सुलेमान शिकोह पहाड़ी राजा की शरण में आया। मुगल दरबार के फ्रांसिसी चिकित्सक डा० बर्नियर ने उसे श्रीनगर के राजा के दरबार में शरण मिलने का उल्लेख किया है। कुमाऊँ के इतिहास में पंडित बद्रीदत्त पाण्डे ने लिखा है कि शाहजादा सुलेमान शिकोह भागकर कुमाऊँ के राजा बाज बहादुर चंद (१६३८–१६७८) की शरण में आया। राजा ने पहले तो उसकी खूब खातिर की पर बाद को उसे बादशाह औरंगजेब के विरुद्ध देखकर बहुत से नजरानों तथा धन से लाद कर गढ़वाल को भेज दिया। राजा को औरंगजेब ने धमकी दी थी कि यदि कुमाऊँ का राजा शाहजादा सुलेमान शिकोह को बादशाह को न सौंप दे तो उससे सारा तराई का क्षेत्र छीन लिया जाएगा और कुमाऊँ का राज्य उजाड़ दिया जाएगा।

पाण्डे जी के अनुसार राजा बाज बहादुर चन्द उस समय तराई में थे। बाज बहादुर चन्द ने अपने हेड़ी जाति के एक सरदार को भेजकर सुलेमान शिकोह के शिविर से रात को उसके वस्त्र, दुशाले, खंजर और पगड़ी आदि चुरा लिए। इन वस्त्रों को बाज बहादुर चन्द ने औरंगजेब के पास भेज कर यह लिखा कि यदि वह चाहता तो जिस प्रकार उसने शाहजादे के वे वस्त्र पाए हैं उसी भाँति शाहजादा को भी पकड़ कर भेज देते। औरंगजेब ने बाज बहादुर चन्द का विश्वास कर लिया और कुमाऊँ पर आक्रमण करने के लिए भेजी जाने वाली फौज को वापस बुला लिया।

वस्तु स्थिति क्या थी इसके लिए पर्याप्त शोध की आवश्यकता है। क्योंकि सर यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक औरंगजेब इस में घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है—सन् १६६५ में एक सेना कुमाऊँ के राजा बाज बहादुर चन्द के विरुद्ध भेजी गई। तराई पर शीघ्र ही मुगल सम्राट् औरंगजेब की सेना का अधिकार हो गया। (अक्टूबर १६६५) किन्तु पहाड़ों पर अधिकार करना खेल न था। मई सन् १६६६ में एक लाख रुपये तथा दो सौ पत्थर कट्टे (बेलदार) मुगल सेना के लिए भेजे गए। श्रीनगर के राजा ने मुगलों का साथ दिया किन्तु उसके भतीजे ने जो कुमाऊँ के राजवंश में व्याहा था कुमाऊँ के राजा का साथ दिया। राजा बाज बहादुर चन्द ने एक पत्र मुगल सम्राट् को लिखा कि वह बादशाह का पुराना गुलाम है। उसने शाहजहाँ के समय से ही परवरिश पाई है, उसका राज्य ही सम्राट् का है तो उसे क्यों उजाड़ने पर वे तुले हुए हैं। राजा श्रीनगर ने उसकी झूठी शिकायत की है कि

उसके पास बहुत सा धन है। इतना सोना सारे पहाड़ों में भी एकत्र नहीं हो सकता है। वह अपने शब्दों को सत्य कर दिखाए। दूसरी बात जो मेरा बिना आपकी अनुमति के श्रीनगर जाना है उसके लिए में सम्राट् को जुर्माना देने को तैयार हूँ।

पाण्डे जी के अनुसार अक्टूबर सन १६७३ में राजा बाज बहादुर चन्द को मुगल सम्राट् द्वारा क्षमादान कर दिया गया और कुमाऊँ का राजकुमार मुगल सम्राट् के दरबार में भेजा गया। तराई का क्षेत्र राजा बाज बहादुर चन्द को बहुत प्रिय था। उसने अपने नाम पर बाजपुर नगर की स्थापना की। कोटा तथा बाड़ाखेड़ा में राज प्रासादों का निर्माण किया। तराई भाबर के लिए पृथक सूबेदार की नियुक्ति की गई और उसे बारी बारी से ग्रीष्मकाल में कोटा, बाड़ाखेड़ी और शीतकाल में रुद्रपुर और बाजपुर रहने की आज्ञा दी गई। इस क्षेत्र की रक्षा के लिए हेड़ी और मेवाती जाति के मुसलमान फौजदार नियुक्त किए गए। उन्हें प्रजा से करों की बसूली करने का काम सौंपा गया और जागीरें भी दी गई।

मुगलकाल में कुमाऊँ की शासन व्यवस्था—रुद्र चन्द के उपरान्त अल्मोड़ा की राजगद्दी पर राजा लक्ष्मी चन्द (१५९७—१६२१) बैठे। उनके समय में सब खेती योग्य भूमि की माप हुई। भाँति-भाँति के कर लगाए गए। भू-स्वामी चन्दों के समय में थातवान कहा जाता था। खेती करने वाले कृषक खैकर (खायकर) और सिरतान कहे जाते थे। खैकर प्रत्येक फसल के उपरान्त अपनी उपज का कुछ भाग तथा लगान भी थातवान को देता था जब कि सिरतान केवल नगद भूमिकर ही अदा करता था। भूमिकर, ज्यूल्या, सिरती, रछ्या, कूत, भात, बैकर आदि छत्तीस प्रकार के जो कर इस काल में लगाए गए उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जाता है।

ज्यूलिया या झूलिया—	नदियों के पुलों को पार करते समय यात्रियों से लिया जाने वाला कर।
बैकर—	राज दरबार में अन्न के रूप में दिया जाने वाला कर।
राखिया—	रक्षा बन्धन के समय दिया जाने वाला वार्षिक कर।
कूत—	नकद भूमिकर के बदले अनाज के रूप में दिया जाने वाला कर।
भेंट—	राजा या राजकुमार के आने पर दर्शनार्थी द्वारा दिया जाने वाला कर।
सिरती—	नगद दिया जाने वाला भूमिकर जो कालान्तर में रकम कहा गया।
घुड़ियाली-कुकरियाली—	राजा के घोड़ों या कुत्तों के लिए की जाने वाली वसूली।

वाजदार—	महाजन के लिए की जाने वाली वसूली ।
वाजनिया—	राजदरबार की नर्तक या नर्तकियों के लिए की जाने वाली वसूली ।
भुक्कड़िया—	अश्वारोहियों के वेतन की वसूली ।
साहू-रतगली—	राज दरबार के लिपिकों के वेतन की वसूली ।
कटक—	सेना के लिए वसूल किया जाने वाला धन
कमीनचारी-सयानचारी—	कमीन (कर्मचारी) व सयाने (एक प्रकार के कर्मचारी) के वेतन के लिए वसूल किया जाने वाला कर ।
गर्खानेगी—	पटवारी, भूमापक आदि के लिए वसूल किया जाने कर।
सोके या स्यूक—	निश्चित समय पर राजा को अर्पित किया जाने वाला कर ।

इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर राजा प्रजा से मांगा नामक कर भी वसूल करता था । अकाल के समय अनेक कर मुआफ कर दिये जाते थे । थातवान अपनी भूमि कर न दे सकने वाले कृषक से छुड़ाकर आसानी से दूसरे कृषक को दे सकता था । ऊँची जातियो के लोग जो स्वयं खेती नहीं करते थे अपने कैंनी (दास) लगाकर खेती कराते थे । ऐसे उच्च वर्ण के लोग गर्खा कहलाते थे । थातवान भी कैंनी हो जाता था यदि वह खेती को संकल्प करके ब्राह्मण को दे देता अथवा वह भूमि युद्ध में मरने वालों को रौत (जागीर) मिल जाती या उसे कोई राज दरबारी जागीर में पा लेता ।

सन्दर्भ और टीपें

अगले अध्याय के साथ दी गई हैं ।

राजा रुद्रचन्द और उसका सेनापति पुरुखू पंत

रुद्रचन्द जब अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त सन् १५६५ ई० में आलमनगर[५] (अल्मोड़ा) की गद्दी पर बैठा तो वह अपने ही समकालीन मुगल बादशाह अकबर की भाँति अल्प वयस्क था और उसी की भाँति उसे भी रनिवास की स्त्रियों और राजगुरु के नियंत्रण में शासन संभालना पड़ा। उसकी माँ डोटी[६] के मल्ल राजा की बहिन थी। यद्यपि राजधानी को चम्पावत से हटाकर आलमनगर लाए पाँच वर्ष हो गये थे तथापि अधिकाँश कमीन (कर्मचारी), दीवान (मंत्रिगण) और बख्शी (सेनापति) चम्पावत से ही लाए हुए लोग थे। चम्पावत का बालेश्वर मन्दिर भी पूर्ववत् राजकुल के इष्ट देवता का मन्दिर था। अतः रुद्रचन्द ने अपने शासन का पहला काम उस मन्दिर तक की यात्रा का किया। वहाँ जाकर इष्ट देव की गूंठ[७] तथा विधिवत दैनिक पूजा की व्यवस्था की। नाथ सिद्ध सम्प्रदाय के रामदत्त गिरि को उस मन्दिर का पुजारी नियुक्त किया। रामदत्त के लिए निकटवर्ती गाँवों को फसल के बाद एक नाली (लगभग दो किलोग्राम) प्रति परिवार भेंट चढ़ाने का आदेश दिया। इस आदेश के सम्बन्ध में प्रचलित एक लोकोक्ति है।

जो रुद्रचन्द के आली, तो रामदत्त के नाली

सिद्धनाथ रामदत्त के वंश का कुमाऊँ चन्दवंश पर चार सौ वर्ष तक आध्यात्मिक प्रभाव रहा। कालान्तर में रामदत्त के वंशजों ने गणानाथ को अपना मुख्य स्थान बनाया। इसी स्थान पर सारे पर्वत प्रदेश के राजाओं को शतरंज के मोहरों की भाँति नचाने वाले कूटनीतिज्ञ तथा कुमाऊँ के किंग्सलिंग हरखदेव ने सन् १८१५ में अपनी वसीयत लिख छोड़ी। यहीं गोरखा सेनापति हस्तिदल ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना के साथ हुई मुठभेड़ में मारा गया। यह सेना हरखदेव के नेतृत्व में मुरादाबाद-काशीपुर-रानीखेत कोसी होती हुई गणानाथ पहुँची थी जिसका विस्तृत वर्णन अगले अध्यायों में दिया गया है।

राजा कल्याणचन्द ने अपनी पत्नी से अनुरोध किया था कि वह अपने भाई से डोटी राज्य का सीरा परगना उसे दहेज में दे दे।

कल्याणचन्द के अनुरोध को रानी ने अपने भाई तक पहुँचाया ही नहीं यह भी धमकी दी कि यदि डोटी के राजा अपने बहनोई कुमाऊँ के राजा को उक्त भूभाग नहीं देते तो कुमाऊँ के सैनिक उस पर बलपूर्वक अधिकार कर लेंगे।

उधर कुमाऊँ के शासक ने मुगलों की आधीनता स्वीकार ली। उनके लिए तीन हजार घुड़सवार और पचास हजार पैदल सैनिक अपने राज्य से युद्ध के समय तैयार रखने की शर्त मान ली। जब संभल और काँठ-व-गोला के मुगल सूबेदारों

ने तराई पर अधिकार जमाना आरम्भ किया तो राजा रुद्रचन्द ने मुगल सम्राट् के दरबार में लाहौर जाकर उन सूबेदारों के अनधिकार हस्तक्षेप के लिए उन्हें दण्ड देने की प्रार्थना की। फारसी इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूँनी ने कुमाऊँ के राजा के लाहौर दरबार में पहुँचने का इन शब्दों में वर्णन किया है "कुमाऊँ का पहाड़ी राजा रुद्रचन्द लाहौर में मुगल शाहंशाह को खिराज पेश करने आया। वह सिवालिक के पहाड़ों की ओर से सन् १५८८ ईस्वी में लाहौर पहुँचा। न उसने और न उसके पुरखों (खुदा का कहर उन पर गिरे) ने कभी शाहंशाह के रूबरू खड़े होकर उनसे बात करने की आशा की होगी। वह अनेक दुर्लभ वस्तुएँ सम्राट् को उपहार में देने के लिए लाया था। इनमें एक तिब्बती गाय (याक) थी। एक कस्तूरा (मृग) था। यह गर्मी के कारण बाद को सड़क पर मर गया। मैंने इसे अपनी आँखों से देखा। इसकी शकल सियार की जैसी थी। इसके मुख से दो छोटे-छोटे दाँत बाहर निकले थे। सिर में सींगों के स्थान पर गुम्मट थे। इस जानवर के पिछले अवयव कपड़े से ढके हुए थे। इसलिए मैं इसका अच्छी तरह निरीक्षण नहीं कर पाया। लोग कहते हैं कि उन पहाड़ों में ऐसे लोग हैं जिनके पंख होते है और जो उड़ भी सकते हैं। और वे कहते हैं कि वहाँ ऐसा आम होता है जिसमें वर्ष भर फल आते रहते हैं। ईश्वर ही जानता है कि यह सच है या नहीं।" (ईलियट -५-५४१ तथा ६-३५२ उद्धरण एट० पृष्ठ ५४६-५४७)

जहाँगीर ने भी अपने संस्मरणों में लिखा है "लक्ष्मीचन्द के पिता ने उसके पास एक अर्जी भेजी थी कि राजा टोडरमल को आज्ञा दी जाए कि वे उसे मुगल दरबार में सम्राट् के सम्मुख पेश करदें और उसकी अर्जी मंजूर की गई।" एक अन्य स्थल पर जहाँगीर के ही संस्मरणों में "लक्ष्मीचन्द द्वारा अपने पिता की भाँति मुगल दरबार में उपस्थित होने और इस काम के लिए इतमाद्-उद्-दौला को नियुक्त करने की प्रार्थना की और इस काम के लिए शाहपुर को नियुक्त किया गया" का उल्लेख है। आगे लिखा है "पहाड़ी राजा मेरे लिए अनेक दुर्लभ उपहार लाया। वह अनेक बलबान घोड़े लाया जो गूँठ[६] कहे जाते हैं। कई बाज, श्येन, अनेक कस्तूरी के बीड़े तथा कस्तूरे की पूरी खालें जिन पर कस्तूरी के नाभे थे, लाया। खाण्डे और कटार कहे जाने वाले हाथियार भी लाया। यह राजा पहाड़ी राजाओं में सबसे धनी है। इसके देश में सोने की एक खान भी बताई जाती है।" (डौसन्स ईलियट - ६-३२२ तथा हिमालय डि० एटकिन्सन पृष्ठ ५५७)

मुगल दरबार के सम्पर्क से कुमाऊँ के राजा की महत्वाकांक्षा और भी बढ़ गयी थी। उस समय तक रामगंगा (पूर्वी) के पार का सारा इलाका डोटी के रैनका राजा का था। रैनका राजा ने अपनी बहिन के सीरा मांगने के अनुरोध का उसको उत्तर दिया कि सीरा तो डोटी[७] का सिर (शीर्ष) है उसे तो नहीं सोर को राजा कल्याण चन्द

को दहेज में दिया जा सकता है। कल्याणचन्द ने सोर पर अधिकार कर लिया किन्तु उसे सन्तोष नहीं हुआ। सन् १५६५ में कल्याणचन्द की मृत्यु हुई तो रानी ने पति की चिता पर सती होने का पुण्य कार्य यह कह कर स्थगित कर दिया कि पति की इच्छा सीरा कोट लेने की थी, उनकी इच्छा पूरी करके ही वह प्राण त्यागेगी उससे पहले नहीं। वह अपने बेटे रुद्रचन्द से बार-बार अनुरोध करने लगी कि सीरागढ़ को बलपूर्वक ले लिया जाए।

रुद्रचन्द को तराई भावर की ओर काँठ-व-गोला के सूबेदार हुसैन खाँ टुकुड़िया से लोहा लेना पड़ा। दानपुर की ओर प्रत्येक गाँव अपने को कत्यूरी शासन से स्वतन्त्र करके अपने ही छोटे-छोटे राजकों के आधीन हो गया था। तराई भावर के अभियान से लौटने पर राजमाता के आग्रह पर उसने सीराकोट पर आक्रमण कर दिया। डोटी के राजा हरि मल्ल ने सीराकोट से उसका डट कर मुकाबला किया। रुद्रचन्द को करारी हार का सामना करना पड़ा। वह भाग कर गंगोली चला गया। सारी सेना तितर-बितर हो गई थी। "गंगोली में एक पेड़ के नीचे बैठा राजा दिवा स्वप्न देख रहा था कि उसकी दृष्टि एक मकड़ी पर पड़ी। उस मकड़ी ने छः बार पेड़ पर चढ़ने का प्रयत्न किया और छहों बार वह नीचे गिर पड़ी। सातवीं बार फिर उसने तागा पिरोया फिर चढ़ना आरम्भ किया और वह सफल होकर अपना जाल बुनकर मक्खियों का भक्षण करने लगी।" (एट०-पृष्ठ-- ५३१)

राजा अल्मोड़ा लौटा और दरबारियों को बुलाकर उसने अपनी पराजय के साथ-साथ मकड़ी के प्रयत्न का भी बखान किया। दरबार में काशी और काश्मीर से बुलाकर उसी के द्वारा नियुक्त किए गए पण्डित और दैवज्ञ थे। काँगड़ा और ज्वालामुखी के लेखवार थे। सब ने कहा कि यह तो अच्छा शकुन है किन्तु पहले गुप्तचर भेजकर सीराकोट में डोटी के राजा के सैन्यबल का भेद जानने का प्रयत्न करना चाहिए। इस काम के लिए उसी ओर का कोई जानकार व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिए।

राजा के दूतों ने कुछ दिन बाद उसे सूचना दी कि सीराकोट में एक बिचराल ब्राह्मण है। उसकी बहिन का लड़का गंगोली में रहता है। इस युवक का नाम पुरखू पन्त (पुरुषोत्तम या पुरखू) है। वह न केवल सीराकोट की पूरी जानकारी रखता है वरन् उसके पास मणकोटी के राजाओं से अर्जित अपार धन है। पुरखू को बुलाया गया किन्तु वह दरबार में नहीं आया। राजा ने दुबारा उसे बुलाने का आदेश भेजा। इस बार भी उसने आने में आना-कानी की तो राजा ने आदेश दिया कि राजाज्ञा की अवेहलना के लिए पुरखू को एक लाख रुपया जुर्माना किया जाता है। जुर्माना न देने पर उसे पकड़ लिया जाए।

पुरखू को पकड़ कर राज दरबार में लाया गया। उसने राजा के सम्मुख आकर उनका समुचित आदर से अभिवादन किया और हाथ जोड़ कर कहा —"मेरे

पास धन नहीं है। मैं निपट धनहीन हूँ। यदि आप जुर्माना न देने के कारण मेरा वध करना चाहें तो मेरा यह शरीर प्रस्तुत है। इस पर अब आपका ही अधिकार है। यदि आप चाहें तो मैं इस शरीर को आपके पास बन्धक रखकर बदले में आपके लिए सीरागढ़ और बधानगढ़ तथा उनके आधीन भूभाग को प्राप्त कर सकता हूँ।" यह प्रस्ताव राजा रुद्रचन्द ने स्वीकार कर लिया और कुमाऊँ की सेना को पुरखू के नेतृत्व में करके उसे सीराकोट (सीरागढ़) पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया।

पुरखू के नेतृत्व में कुमाऊँ की सेना ने सीराकोट लेने के चार विफल प्रयत्न किए। प्रत्येक बार हरिमल्ल की सेना ने कुमाऊँनी सैनिकों को रामगंगा के पार धकेल दिया। गंगोली में अपनी पराजय पर अपने राजा की ही भाँति निराश हो जब पुरखू एक बुढ़िया के छप्पर के नीचे लेटा था तो उसने एक गुबरीले कीड़े को देखा जो अपने बनाए गोबर के गोले को अपने बिल की ओर ले जा रहा था।। चार बार गोला लुढ़क कर नीचे गिरा और पाँचवीं बार गुबरीला उसे अपने बिल में ले जाने में सफल हुआ। इस दृश्य को भविष्यवाणी समझ कर पाँचवीं बार किले पर आक्रमण करने की तैयारी करने के लिए पुरखू ने खाना मँगवाया। उसे केले के एक पत्तल में खीर परोसी गई। आधी से भी अधिक खीर पत्तल से बाहर निकल गई और बीच के ही कुछ ग्रास पुरखू के पेट में जा सके। उसे इस प्रकार खाते देख बुढ़िया ने जो उसे नहीं जानती थी कहा—"अरे, तू तो पुरखू की भाँति निरा मूर्ख है। तू नी खै जाणनी खीरा-पुरखू नी ल्ही जाणन सीरा।[10] किनारों से आरम्भ करके पहले बाहर किनारों की ओर खीर समेट कर खाते हुए बीच की खीर बाद में खा। खीर बरबाद नहीं होगी। पुरखू को भी बाहर जोहार की तरफ से आने वाली रसद पर सीरा के बाहर से अधिकार करके तब नदी की सुरंग के बीच से घुसना था कैसे न लिया जाता सीराकोट ?"

बुढ़िया को बिना अपना परिचय दिए पुरखू ने फिर मोर्चा संभाला, सेना एकत्र की। कुछ दिन की तैयारी के बाद उसने जोहार के मार्ग को अपने अधिकार में किया फिर चुनापाथ के नदी की ओर से किले में जाने के मार्ग पर अपना अधिकार कर लिया। हरिमल्ल की सेना को जब अन्न और जल न मिल पाया तो वह सीराकोट को त्यागने को विवश हुई। पुरखू पन्त ने सीराकोट पर अधिकार करके वहाँ कुमाऊँनी सेना को स्थापित किया। रुद्रचन्द ने इस पराक्रम के लिए पुरखू पन्त को अनेक गाँव जागीर में दिए। पुरखू पन्त के वंशजों के पास शाके १५१२ का राजा रुद्रचन्द का प्रदान किया वह ताम्र पत्र है जिसमें संस्कृत के पाँच छन्द हैं। प्रथम चार छन्दों में राजा कल्याण चन्द और रुद्रचन्द की प्रशस्ति है। अन्तिम छन्द का अनुवाद है—'राजा के राज्य के विस्तार के लिए अनेक देशों को जीतने वाले, मंत्रियों में सबसे योग्य, सबसे श्रेष्ठ, डोटी के राजा के घमंड का चूर करने वाले, शत्रु को शेर की भाँति दबोच रखने वाले विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान पुरुषोत्तम को………'।

पुरखू पन्त को सन् १५८० में गढ़वाल के राजा के बधान गढ़ दुर्ग पर आक्रमण करने में सीरागढ़ के आक्रमण से भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बधान गढ़ का मार्ग कत्यूर घाटी होकर था। कत्यूर में तब तक पुराने राजाओं का वंशज सुखालदेव नामक राजा था। जब कुमाऊँनी सेना इस राजा के राज्य से होकर आगे ग्वालदम के पार पिण्डर की घाटी में पहुँची तो राजा सुखालदेव ने अल्मोड़े से रसद के मार्ग को रोक दिया। उधर गढ़वाल के राजा ने घोषित किया कि जो कुमाऊँनी सेनापति का सिर काटकर लाएगा उसे गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर तक की यात्रा के प्रत्येक पड़ाव के लिए एक एक गाँव उपहार में दिया जाएगा। पुरखू ग्वालदम के निकट लड़ते-लड़ते एक पड्यार राजपूत के हाथ मारा गया। इस हार का समाचार सुनकर राजा रुद्रचन्द ने स्वयं ही सेना का नेतृत्व हाथ में लेने का निश्चय किया। गढ़वाल पर आक्रमण करने से पहले उसने कत्यूर के राजा सुखालदेव के राज्य पर अधिकार करके बैजनाथ की लड़ाई में उसको मौत के घाट उतार कर उसके सभी वंशजों को कत्यूर की घाटी से निर्वासित कर दिया। बधानगढ़ी पर रुद्रचन्द अपना अधिकार नहीं कर पाया।

रुद्रचन्द (१५६५-१५९७ ई०) का शासन काल वास्तविक कुमाऊँ राज्य की स्थापना का काल है। यद्यपि राजधानी चम्पावत से अल्मोड़ा उसके पिता के समय में लाई गई थी किन्तु उस राजधानी को मैदान की ओर से लाए गए पण्डितों और विद्वानों को बुलाकर शिक्षा और साहित्य का केन्द्र बनाने का श्रेय उसी को है। प्रजा के विभिन्न वर्णों के लिए रुद्रचन्द ने स्वयं जिस नीति संग्रह की रचना की वह त्रैवर्ण्य धर्म-निर्णय नामक ग्रन्थ अगली पीढ़ियों के कुमाऊँ के राजाओं द्वारा नियुक्त धर्माधिकारियों का पथ प्रदर्शन करता रहा।

तत्कालीन उत्तर भारत के राजाओं में रुद्रचन्द एक गौरवपूर्ण स्थान पाने में समर्थ हुआ। इतिहासकार फिरिश्ता ने इसी काल के कुमाऊँ की गणना भारत के पाँच प्रमुख राज्यों में की है (एटकिंसन हिमालयन डिस्ट्रि० पृष्ठ ५४२)। इस समृद्धि और ख्याति के अर्जन में रुद्रचन्द के सेनापति परखू पन्त का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ और टीपें

१—दिल्ली के खिलजी राजवंश के शासक अलाउद्दीन (१२९६--१३१६) ने गुजरात पर ही नहीं रणथंभौर, चित्तौड़, मालवा, मारवाड़, जालौर आदि पर भी आक्रमण

किया था। संभवतः काली कुमाऊँ में शासन करने वाले चन्द वंश के राजा सन् १२९७ ई० में गुजरात के राजपूत थे जो तुर्कों के आक्रमण के उपरान्त कुछ वर्षों तक तराई के आस-पास भटकते रहने के बाद फिरोज तुगलक (१३५१–८८ ई०) के समय में काली कुमाऊँ में राजसत्ता हथियाने में सफल हुए। चन्द शासकों के पूर्वज सोमचन्द के नवीं दसवीं सदी ईस्वी में काली कुमू में आकर राज करने की कथा कपोल कल्पित हो सकती है।

२—भारतीचन्द बहमनी वंश के शासक अलाउद्दीन (१४३५–१४५७ ई०) का समकालीन था। इस वंश के राजाओं ने भी कोंकण (कोनकन) और गुजरात पर आक्रमण किए थे। अलाउद्दीन ने कोंकण के राजा संमगेश्वर को पराजित करके उसकी पुत्री से विवाह किया। पंत जाति के लोग इसी काल में कोंकण छोड़ने को विवश हुए थे।

३—रत्नचन्द बहलोल लोदी (१४५१--१४८९ ई०) का समकालीन था और किराती चन्द सिकन्दर लोदी का। मुगलों के आगमन से पूर्व के उत्तर भारत के हिन्दू राज्यों को तत्कालीन स्थिति के परिप्रेक्ष्य में काली-कुमू और डोटी के राज्य पर्याप्त समृद्ध और सुशासित थे।

४--पानीपत के युद्ध (१५२६ ई०) और उससे पहले के बाबर के द्वारा किए गए आक्रमणों की कोई प्रतिक्रिया कुमाऊँ पर नहीं हुई। यह तराई-भावर के जंगलों और दलदलों द्वारा प्रदत्त दुर्भेद्य दक्षिणी सीमा का परिणाम था।

५—अल्मोड़ा (आलम नगर) की स्थापना मुगल सम्राट् अकबर के राज्यकाल में हुई। उस समय अकबर को गद्दी पर बैठे ७ वर्ष हुए थे।

६—एटकिन्सन ने इस लोकोक्ति में वीका के स्थान पर वाका शब्द लिखे हैं।

७—उस समय वर्तमान पिथौरागढ़ जिले का रामगंगा के पार अर्थात् पूर्व की ओर का भू-भाग तथा काली या शारदा के पार का नैपाल का डोटी बैताड़ी क्षेत्र और उससे मिला तराई भाबर का इलाका डोटी कहलाता था।

८—ब्रह्मपुर के संबन्ध में एटकिन्सन के ग्रन्थ' हिमालियन डिस्ट्रि० ऑफ नार्थ वैस्टर्न प्राविन्सेज—१८८२, संस्करण पृष्ठ ३५९, ३६२ तथा ४५२ देखिए।

९—गूँठ का अर्थ आरम्भ में राजा, या देवता को अर्पित था, गोरखा शासन के उपरान्त गूँठ देव मन्दिर को चढ़ाई गई भूमि के सीमित अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। मुगल सम्राट् को दी गई वस्तुओं की एक सूची राजा की बही (डायरी) से प्राप्त है। उसमें गूँठ शब्द देय कर या देय राजस्व के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

१०—तू खीर खाना नहीं जानता, पुरखू सीरा लेना नहीं जानता।

————

शक्ति गोसाईं और सियार राजा

रुद्रचन्द की मृत्यु के उपरान्त उसके बड़े पुत्र शक्तिचन्द ने जो अंधा किन्तु बड़ा ही प्रतिभावान और परिश्रमी था अपने पिता के आदेश के अनुसार सारे राज्य के भू-मापन का कार्य पूरा किया। वह बड़ी धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति था और अपने नेत्रों की ज्योति को प्राप्त करने के लिए मन्दिरों और तीर्थ स्थलों पर जाकर बहुधा उपवास किया करता था। वह राजगद्दी पर स्वयं नहीं बैठा वरन् उसने अपने छोटे भाई लक्ष्मीचन्द को राज सिंहासन पर बैठने और विधिसम्मत राजा बनने को राजी किया। कठोर तपस्या के बल पर शक्तिचन्द की अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ इतनी शक्तिसम्पन्न थीं कि वह सारे राजकाज को सम्भाले रहता था। उसने बीसी को इकाई मानकर कृषि-भूमि की नयी माप कराई। राजकर्मचारियों के तीन वर्ग बनाए। ये थे सरदार, फौजदार और नेगी। मुख्य मंडल अधिकारी सरदार कहे जाते थे, सरदार कर की वसूली और सैनिकों की आपूर्ति का प्रबन्ध देखते थे। राज्य के छोटे कार्यालयों के नागरिक प्रशासक और सैनिक कर्मचारी नेगी कहलाते थे।

राजा के दरबार के अधिकारियों के वेतन की वसूली जिन गाँवों के भूमिकर से होती थी उनकी पृथक व्यवस्था की गई। ये गाँव 'बुतकरा'[1] गाँव कहलाते थे। राजा और उसके परिवार के भोजन तथा फल-फूल के लिए पृथक भूमि थी। मुगल शैली के अनुसार यद्यपि उससे पर्याप्त छोटे पैमाने पर इसी काल में राज-उद्यान लगाए गए। इन उद्यानों को बाड़ी कहा जाता था। प्रत्येक बाड़ी में बाड़िया (बागवान) नियुक्त किए गए। लक्ष्मेश्वर, कपीना, हौलबाग आदि बाग इसी समय लगाए गए। जीते हुए इलाकों के गाँवों की कर व्यवस्था 'बीसी-बन्दूक' प्रणाली के अन्तर्गत की गई जिससे सैनिकों को उन गाँवों से रसद और फल बराबर मिलते रहें। शक्ति गोसाईं की भू-मापन और कर-व्यवस्था ऐसी अचूक थी कि निर्धन लोगों ने मकानों की छतों पर मिट्टी बिछा कर उनमें फसल उगाना आरम्भ किया क्योंकि वही ऐसा बचा स्थान था जहाँ भूमिकर[2] नहीं लगा था।

लक्ष्मीचन्द ने अपने पिता के गढ़वाल विजय के कार्य को पूरा करने का प्रयत्न किया। वह गढ़वाल की लड़ाई पर जाने के पूर्व बागेश्वर में संगम पर स्नान करता, देवताओं की उपासना करता किन्तु हर बार उसको हार का ही मुख देखना पड़ता। सातवें विफल अभियान में तो वह एक सैनिक की पीठ पर एक डोके के भीतर गन्दे कपड़ों के नीचे छिपकर राजधानी लौटा। मार्ग में उस डोके (टोकरे) के वाहक को उसने आपस में बात करते पाया। वे लोग उसे गीदड़ और उसके किले को सियार बूंगा (गीदड़

का व्यूह) कह रहे थे। राजधानी में आकर अपनी पराजय से त्रस्त होकर उसने अपने गणक और पौराणिक पुरोहित को बुलाकर कहा "तुम्हारा दिया विजय मन्त्र बेकार है। मुझसे अब और अधिक अपमान नहीं सहा जाता। मैं राजपाट छोड़कर सन्यासी हो जाता हूँ।"

पुरोहितों को अपनी नौकरी के खत्म हो जाने का डर था। एक ने कहा कि वह अब नए अचूक मन्त्र को लाकर राजा को देगा। एक तान्त्रिक पुरोहित नये मन्त्र की खोज में नदिया (बंगाल) गया। वहाँ से कुछ नये तन्त्र सीखकर उसने राजा के गले में तावीज बाँधा। तदनन्तर लक्ष्मीचन्द आठवीं बार कुछ मन्दिरों को गाँव गूंठ (धर्मादा) चढ़ाकर फिर गढ़वाल की सीमा की ओर बढ़ा। वहाँ अधिक सफलता तो नहीं मिली किन्तु कुछ सीमावर्ती गाँवों पर उसका अधिकार हो गया।

लक्ष्मीचन्द के समय में अल्मोड़ा का कुमाऊँनी राजदरबार मुगल बादशाह के दरबार की प्रतिकृति बन चुका था। राजा के भोजन के लिए सुस्वाद व्यंजनों और फलों के अतिरिक्त सरयू-पिण्डर के हिम-प्रदेश से प्रतिदिन बर्फ आता था। यह बर्फ हिमानी से लेकर अल्मोड़ा तक हाथों हाथ ढोया जाता था। मार्ग के दोनों ओर बसे ग्रामवासी यह बेगार करते थे जो ह्यूं-पाल कहलाती थी। लक्ष्मीचन्द की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र दिलीपचन्द सन् १६२१ ई० में गद्दी पर बैठा। इस राजा के विषय में कहा जाता है कि वह पूर्व जन्म में मणकोटी के पन्त लोगों द्वारा पीड़ित एक उप्रेती था जिसने चार धामों की यात्रा करके प्रयाग में बटवृक्ष से नीचे कूदकर आत्मघात करते समय यह इच्छा प्रकट की थी कि वह अगले जन्म में कुमाऊँ के राजकुमार के रूप में उत्पन्न हो ताकि वह पन्त जाति को दण्ड दे सके। इसी अन्धविश्वास का शिकार राज मन्त्री वासुदेव को पदच्युत करके जैतराम पन्त को जिन्दा जलाकर पन्तों के मुखिया वासुदेव पाण्डे को फांसी[3] का दण्ड देकर सन् १६२४ में दिलीपचन्द परलोक सिधारा।

दिलीपचन्द का उत्तराधिकारी विजयचन्द रणिवास के कुचक्रों में फँसकर रह गया। केवल एक वर्ष के अपने शासनकाल में उसने राज परिवार के कई लोगों की हत्या करवा दी। कुछ को निर्वासित किया और कुछ अन्य की आँखें फोड़वा दीं। विजयचन्द के उपरान्त लक्ष्मीचन्द के निर्वासित पुत्र तिमलचन्द ने गढ़वाल से लौटकर अल्मोड़े की गद्दी संभाली। उसकी कोई सन्तान नहीं थी। उसने निर्वासित नारायण-चन्द के पुत्र बाजा को गोद लिया। यही बाजा उसके मरने पर सन् १६३८ ई० में कुमाऊँ का राजा अभिषिक्त हुआ। बाज बहादुर नाम से ख्यात इस राजा के समय में कुमाऊँ, विशेषतः तराई भाबर ने बड़ी उन्नति की। दिल्ली दरबार में जाकर बाजबहादुर चन्द ने शाहजहाँ को खिराज पेश की। वह राजा तराई भाबर की भूमि पर अपना

कुमाऊँ के राजाओं का वंशगत और परंपरागत अधिकार सिद्ध करने में सफल हुआ। शाहजहाँ ने कुमाऊँ के इस "जमीदार" को एक फरमान भी दिया तथा चौरासीमल की उपाधि प्रदान की।

गढ़वाल

शाहजहाँ नामा नामक ग्रन्थ का लेखक लिखता है "सन् १६५४-५५ में शाहजहाँ ने खलीलुल्ला खाँ को ८ हजार सेना सहित श्रीनगर के जमींदार के विरूद्ध कार्यवाही करने भेजा। उसके साथ सिरमौर का जमींदार राजा सुभाक प्रकाश भी मार्ग में हो लिया। यमुना और गंगा के मध्यवर्ती भाग पर अधिकार करके जब मुगल सेना चाण्डी पहुँची तो कुमाऊँ के जमींदार बाज बहादुर चन्द ने भी शाही फौज के साथ युद्ध में भाग लिया। गढ़वाल के जमींदार के सिपाही कुछ भाग गए कुछ मारे गये। दून चतुर्भुज को सौंपा गया। चाण्डी का थाना नागर दास को दिया गया जो हरद्वार का मुखिया था।" (हिमालियन डि० एटकिन्सन- १८८२- पृष्ठ ५६२-६३) गढ़वाल पर यह आक्रमण सुलेमान शिकोह को शरण देने के लिए किया गया था। गढ़वाल के राजा पृथ्वी शाह ने कालान्तर में जयसिंह के कहने पर उसके पुत्र कुँवर रायसिंह के साथ शिकोह को वापस भेजा। मैदान में पहुँचने पर वह ग्वालियर के किले में कैद कर लिया गया जहाँ सन् १६६० ई० में औरंगजेब ने उसकी हत्या करवा दी।

मुगल प्रभाव

बाजबहादुर चन्द ने तराई में बाजपुर नामक नगर बसाया। तराई में दो सूबेदार नियुक्त किए। जाड़े में वे रुद्रपुर और बाजपुर में रहते थे तथा ग्रीष्म काल में बारा-खेड़ी और कोटा की पहाड़ियों पर अपने मुख्यालय बना लेते थे। अल्मोड़ा लौटकर राजा ने उसी प्रकार के शिष्टाचार को बरतने और दरबारी ताम-झाम रखने आदि का आदेश दिया जैसा उसने खलीलुल्ला के शिविर में गढ़वाल के विरुद्ध हुई लड़ाई में देखा था। वह अपने साथ मुसलमान नगार्ची, चोबदार और अन्य कर्मचारी लेकर आया। तराई भाबर में इसी समय हेड़ी और मेवाती वैतनिक मुसलमान कर्मचारी कर की वसूली के लिए नियुक्त किए गए। राजा की रसोई के लिए मिठाई बनाने वाला हलवाई भी मैदान से बुलाया गया। ड्योढ़ी पर दरबान नियुक्त किए गए। गोला बारूद बनाने का कारखाना खोला गया और इसके संचालन के लिए कुछ गाँवों (महर्यूड़ी का इलाका) का कर निर्धारित किया गया।

उत्तर में तिब्बत के दर्रों तक के भू-भाग पर अधिकार करके बाज बहादुर चन्द ने गढ़वाल पर आक्रमण किया। सन् १६७८ में उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का उद्योत चन्द गद्दी पर बैठा। उसने पूर्व की ओर डोटी के प्रदेश पर तथा दक्षिण में तराई भाबर की अव्यवस्था पर नियंत्रण किया। कुमाऊँ के बाहर से आए अनेक

विद्वानों को कुमाऊँ में बसने की सुविधा प्रदान की। इसी राजा के समय में मतिराम सम्भवतः शिवाजी के कवि भूषण भी अल्मोड़ा आए। उद्योतचन्द[४] की प्रशस्ति में बनाया गया कवित्त उसके दानशील और विद्याव्यसनी होने का द्योतक है।

कल्याणचन्द के अत्याचार

सन् १६९८ में उद्योतचन्द की मृत्यु के उपरान्त गरुण ज्ञानचन्द और सन् १७०८ में जगतचन्द गद्दी पर बैठे। दोनों ने गढ़वाल पर आक्रमण किए जिनका गढ़वाल के राजा फतेहशाह ने डटकर सामना किया। कुमाऊँ के राजा देवीचन्द (१७२०-२६) के समय में तो गढ़वाली सेना ने कत्यूर घाटी के कुछ भाग पर भी अधिकार कर लिया था। तराई के क्षेत्र में भी अजमत-उल्ला ने रुद्रपुर और काशीपुर पर आक्रमण कर दिया। राजा की मृत्यु के बाद काली-कुमू के फर्तयाल और महर धड़ों ने तीन वर्ष अजित चन्द को और उसके बाद डोटी में चन्द राजा के किसी कल्याण नाम वंशज को ढूँढकर सन् १७३० ई० में उसे अल्मोड़ा की गद्दी सौंप दी। इस राजा ने अपने दरबारियों के कहने पर "अपने विरुद्ध षड्यन्त्र करने के सन्देह में इतने ब्राह्मणों की आँखें निकलवा दीं कि उन निकली आँखों से ७ भदेले (लोहे के कुण्डे वाले कढ़ाह) भर गए। उन ब्राह्मणों के अनुयायी अनेक खसियों को फाँसी पर लटका कर उनकी लाशों को सुवाल नदी में फैंककर चील और सियारों को खिला दिया। इस कुकृत्य में द्वाराहाट के निकट बैड़ती के निवासी भवानी पाण्डे का हाथ था ऐसा कहा जाता है।" (एट० पृष्ठ ५८५)

इस बीच पूर्व की तराई के सरबना और बिल्हरी क्षेत्र पर नवाब मंसूर अली खाँ ने अधिकार जमा लिया था अल्मोड़े के पिछले शासक द्वारा पीड़ित हिम्मत गोसाईं (दुलीचन्द) जिसकी आँखें उस राजा ने निकाल दी थीं आंवला के अली मुहम्म्मद खाँ रुहेला के पास जाकर उससे कुमाऊँ के राजा के विरुद्ध आक्रमण करने की सहायता याचना करने लगा। चारों ओर बढ़ती आशान्ति को देखकर कल्याणचन्द ने झिझाड़ के शिवदेव जोशी को तराई में अपना प्रतिनिधि (एटकिंनसन के शब्दों में बायसराय) बना कर अपने सारे अधिकार उसको सौप दिए। अल्मोड़ा में हरिराम जोशी तथा कोटा में रामदत्त अधिकारी को प्रशासक नियुक्त किया गया। पूर्व में डोटी के रैनका राजा ने भी काली कुमाऊँ पर अधिकार करने की ठानी। कल्याणचन्द ने बड़ी चालाकी से आँवला के एक शिविर में हिम्मत गोसाईं की हत्या करवादी।

रुहेलों का राज्य

अपने शरणागत मेहमान की हत्या से कुपित होकर अली मुहम्मद खाँ ने सन् १७४३ में कुमाऊँ पर तराई के तीन छोरों से आक्रमण करके शिवदेव जोशी को पराजित कर दिया। अल्मोड़ा में इस समाचार के पहुँचने पर कल्याणचन्द ने कुछ

सैनिक भेजे किन्तु रुहेला सैनिकों ने उनको पछाड़ कर रामगढ़ और प्यूड़ा तक उनका पीछा किया। हाफिज रहमत खाँ ने आगे बढ़कर अल्मोड़ा नगर पर अधिकार कर लिया। राजा कल्याणचन्द भागकर गैरसेन के मार्ग से गढ़वाल की ओर चला गया। अल्मोड़ा पर अधिकार जमाकर रुहेला सैनिक कटारमल, लखनपुर, द्वाराहाट, भीमताल आदि की ओर जाकर मन्दिरों की मूर्त्तियों को तोड़ने और लूटपाट मचाने लगे। उन्होंने सभी पुराने अभिलेख जला दिए। शिवदेव जोशी ने तराई से वापस आकर कैड़ारौ जाकर जहाँ मुसलमानों का पूरा अधिकार था गढवाल की ओर भागे हुए राजा से संपर्क किया। उसको बुलाकर शिवदेव ने रुहेला सरदारों को तीन लाख रुपये देकर कुमाऊँ को छोड़ देने के लिए राजी किया। सात महीने कुमाऊँ पर अधिकार करने के वाद रुहेला सैनिक लूट की अपार सम्पत्ति सहित वापस लौटे किन्तु रजबखाँ के नेतृत्व में फिर सन् १७४५ में उन्होंने तराई के किले बाराखेड़ी पर आक्रमण कर लिया। इस बार शिवदेव जोशी ने उन्हें हरा कर वापस भेज दिया।

राजा कल्याणचन्द रुहेला आक्रान्ताओं के विरुद्ध मुगल वादशाह से फरियाद करने के लिए जागेश्वर के मन्दिर से ऋण लेकर शिवदेव जोशी को साथ लेकर संभल गया जहाँ तत्कालीन मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह पड़ाव डाले था। ठाकुरद्वारा और कटेहर के राजाओं ने भी शाहंशाह से कुमाऊँ के राजा की सहायता करने का अनुरोध किया। मुगल वादशाह ने उनकी बात ध्यान से सुनी और सहायता करने का आश्वासन दिया। शीघ्र ही कल्याणचन्द को तराई भावर पर उसके ही अधिकार होने की नई सनद मिल गई। मुगल वजीर कुमुरुद्दीन खाँ को इस कृपा के लिए धन्यवाद देने के लिए राजा कल्याणचन्द उसके शिविर में गया। उस शिविर के पास ही अवध का नवाब मंसूरअली खाँ भी पड़ाव डाले था। कुमुरुद्दीन और नवाब में अनबन थी। कल्याणचन्द ने नवाब के शिविर में स्वयं न जाकर अपने प्रतिनिधि द्वारा उसको अपना अभिवादन भिजवाया। इससे नवाब चिढ़ गया।

अवध के नवाब से झगड़ा

कल्याणचन्द ने तराई भाबर का शासन शिवदेव जोशी को सौंप कर रुद्रपुर और काशीपुर के किलों की मरम्मत कराई। इस बीच मरहट्टों ने गढ़वाल के तराई क्षेत्र और देहरादून में लूटपाट आरम्भ कर दी थी। शिवदेव जोशी ने काली कुमाऊँ की तराई तथा तल्लादेश में लूल लोगों को तथा संभल मुरादाबाद से मिले भू-भाग में कर वसूली के लिए पुराने हेड़ी और मेवाती लोगों को नियुक्त किया। ये कार्य पूरे भी नहीं हुए थे कि अवध के नवाब ने तराई के सरबना-खटीमा इलाके पर अधिकार करके उसको तेजू गौड़ नामक व्यक्ति को सौंप दिया। शिवदेव जोशी ने अवध के नवाब को लिखा कि उस क्षेत्र पर मुगल बादशाह द्वारा दी गई सनद के अनुसार कुमाऊँ का

अधिकार है इसीलिए अवध के नवाब को वहाँ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु मंसूर अली खाँ ने उसकी एक न सुनी। शिवदेव जोशी ने तेजू गौड़ के किले पर आक्रमण करके उस इलाके को बलपूर्वक वापस लेने का प्रयत्न किया। इस युद्ध में शिवदेव हार गया और बन्दी बनाकर अवध ले जाया गया। एक वर्ष के लगभग अवध के नवाब के बन्दीगृह में पड़ा रहा। अंत में मुगल बादशाह के बीच-बचाव करने पर शिवदेव मुक्त हुआ और तराई भावर का क्षेत्र फिर कुमाऊँ को वापस मिल गया।

पानीपत का युद्ध

मराठों के गुप्तचर इस बीच अल्मोड़ा आ रहे थे। वे उत्तर भारत के सभी हिन्दू राजाओं को संगठित करके मुगलों के विरुद्ध लड़ने को उकसा रहे थे। कुछ कुमाऊँनी तो मरहटा सेना में नियुक्ति भी पा चुके थे। उधर कल्याणचन्द अन्धा हो गया था। कहा जाता है कि उन सैकड़ों लोगों की आह के कारण जिनके नेत्र उसने निकाल दिये थे दैव ने उसे भी नेत्रहीन कर दिया। अन्धे कल्लाणचन्द से सन् १७४८ में अपनी मृत्यु से पूर्व शिवदेव जोशी को अल्मोड़ा बुलाकर राजकुमार दीपचन्द का अभिभावक नियुक्त किया। इसी वर्ष मुगल बादशाह मुहम्मद शाह की मृत्यू हुई।

सन् १७६१ में पानीपत का युद्ध छिड़ने पर शिवदेव जोशी ने मुगलों के पक्ष में लड़ने के लिए आठ हजार सैनिक हरिराम जोशी तथा बीरबल नेगी के नेतृत्व में भेजे। कुमाऊँनी सेना ने हथगोलों और आग के ख्योंतारों (रॉकेट) के प्रयोग में अपूर्व कौशल प्रदर्शित किया। (एट० पृष्ठ ५६०) रणक्षेत्र में वे रुहेलों के साथ ही जिनसे कुछ ही वर्ष पूर्व तक उनकी कट्टर दुश्मनी थी एक ही दल बनाकर कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़े।

संदर्भ और टीपें

१—बुत शब्द कुमाऊँनी तथा रोमनी (जिप्सी) बोली में श्रम का बोधक है। देखिए 'संस्कृति संगम उत्तरांचल'।

२—सतराली के गाँवों में भूमि कर से बचने के लिए छत पर खेती होने लगी थी।

३—वासुदेव के नाम के साथ पांडे आस्पद लगा हैं यद्यपि वह पन्त था। स्पष्ट है कि पन्त पारसी पंतक की भाँति सम्प्रदाय का बोधक था।

४—कवि मतिराम कुमाऊँ और गढ़वाल दोनों राज दरबारों में रहे। इन दरबारों में रहकर रचे गए उनके दो काव्य ग्रंथ उपलब्ध हैं।

दीपचन्द और उसका राजप शिवदेव जोशी

मृत राजा कल्याणचन्द द्वारा नियुक्त राजकुमार दीपचन्द के राजप (रीजेंट) की हैसियत से शिवदेव जोशी[1] ने सबसे पहले जागेश्वर के मन्दिर से राजा के द्वारा लिए गए ऋण को चुकाया और आठ गाँव उस मन्दिर को प्रदान किए। राजा ने जिन अन्य लोगों की सम्पत्ति का बलपूर्वक अपहरण किया था उनकी भी यथा सम्भव क्षतिपूर्ति की। अलमोड़े में अपने पुत्र जय किशन को अपना काम सौंप कर फिर वह माल (तराई भावर) की ओर चला। जिस माल की रक्षा के लिए उसे अवध के नवाब के कारागार में भी कई मास काटने पड़े थे वहाँ उसके चचेरे भाई हरी राम जोशी ने अपना काम काज एक मुसलमान लुटेरे को सौंप दिया था। वह लुटेरा अपनी मनमानी कर रहा था। मारा (महर) और फर्त्याल दलों में आपस में पूर्ववत् प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। फर्त्याल दल भी माल के असन्तुष्ट लोगों को भड़का कर शिवदेव के विरुद्ध करने को उतारू था।

शिवदेव जोशी भावर पहुँचा भी न था कि मारा (महरा) दल ने अलमोड़े की गद्दी पर दीप चन्द के स्थान पर अमरसिंह रौतेला नाम के एक व्यक्ति को बिठाने का षड़यंत्र किया। शिवदेव जोशी ने इस विद्रोह को विफल कर दिया। इस बीच शिवदेव के एक और सम्बन्धी ने फर्त्याल दल के साथ मिल कर गढ़वाल के राजा प्रदीप शाह को अलमोड़ा पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। गढ़वाल का राजा श्रीनगर से चल कर अपने सीमान्त किले जुनियागढ़ में आ पहुँचा। शिवदेव जोशी को तराई से लौट कर पाली पछाऊँ में नैथाना के पास किले बन्दी करनी पड़ी। अलमोड़ा से राजा दीप चन्द को बुला कर उसने नैथाना किले में सेना को उसके नेतृत्व में रख कर स्वयं मासी की ओर से जसपुर पर अधिकार कर लिया। वहाँ से उसने अपनी स्थिति दृढ़ करके राजा गढ़वाल से पूछा कि कुमाऊँ पर आक्रमण करने का उसका उद्देश्य क्या है ? प्रदीप शाह ने उत्तर दिया कि कल्याणचन्द से उसका भाई-चारा था अतः दीपचन्द उसका भतीजा है। वह अभी अल्प वयस्क है। अतः चाचा की हैसियत से वह कुमाऊँ और गढ़वाल दोनों का राजा है। यदि दीपचन्द उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करे तो वह वापिस चला जायेगा। केवल इस आश्वासन पर कि भविष्य में रामगंगा नदी गढ़वाल और कुमाऊँ की मध्यवर्ती सीमा होगी।

इस उत्तर का व्यवहारिक आशय यही था कि कुमाऊँ का राजा गढ़वाल के आधीन कार्य करे। अतः शिवदेव जोशी ने उत्तर दिया कि राजा दीपचन्द के राजप की हैसियत से वह कुमाऊँ को गढ़वाल के हवाले नहीं कर सकता है। अलबत्ता वह राम-

गंगा को गढ़वाल और कुमाऊँ राज्यों की सीमा मानने को तत्पर है। इस पर प्रदीप शाह ने धौंस दी कि वह सारे कुमाऊँ पर अधिकार करने के लिए बल का प्रयोग करेगा। तामाढौंन के निकट विचला चौकोट में गढ़वाल और कुमाऊँनी सेनाओं के मध्य युद्ध ठन गया। इस युद्ध में ४००० गढ़वाली सैनिकों को खोकर प्रदीप शाह ने हार मान ली। वह भाग कर श्रीनगर चला गया। वहीं से उसने सन्धि प्रस्ताव के साथ अपनी एक पगड़ी शिवदेव जोशी के लिए और दूसरी दीपचन्द के लिए भेज दी।

शिव देव जोशी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर काशीपुर का प्रशासक हरी राम जोशी कुढ़ने लगा। उसका मुसलमान कारिन्दा काशीपुर में प्रजा को मनमाने ढंग से लूट रहा था। हरी राम जोशी पानीपत के युद्ध का विजयी सरदार था। अतः उसी गर्वीले ढंग से शिव देव जोशी की छाती पर मूंग दलने का प्रयत्न करता रहता था। शिव देव जोशी ने उसे सन्तुष्ट करने के लिए उसका स्थान काशीपुर में स्वयं लेकर उसे अपना रुद्रपुर का प्रशासक का पद प्रदान कर दिया। इससे भी हरी राम जोशी सन्तुष्ट होने के बजाय और क्रोधित हो गया। दोनों चचेरे भाईयों में ऐसी ठनी कि सशस्त्र युद्ध की नौबत आ गई। कहा जाता है कि दोनों चचेरे भाइयों में सात युद्ध हुए। अंतिम और सातवां युद्ध गगास और दोसांद गाड़ के मध्य बाँसुली सेरा (बाँस का सेरा) में हुआ।

बांसुली सेरा के युद्ध में हरी राम जोशी का पुत्र जयराम अपने १५०० सैनिकों सहित मारा गया। इस पराजय से हरी राम जोशी का घमंड चूर-चूर हो गया। उसने अपने को शिव देव जोशी के हवाले कर दिया। शिव देव ने उसे फिर भी सद्भाव के साथ अपने अंक में लिया और कहा कि हम दोनों के बीच हाफिज रहमत खाँ जो भी समझौता करा दे वह हमें मान लेना चाहिए। हाफिज रहमत खां ने दोनों पक्षों की सुनकर हरी राम को ही दोषी पाया और उसे बाध्य किया कि वह लिख कर दे कि भविष्य में शिव देव जोशी के आधीन कार्य करेगा और उसकी आज्ञा का पालन करेगा। इस प्रकार शिव देव जोशी कुमाऊँ का वास्तविक राजा बन गया।

काली कुमाऊँ के फर्त्याल दल ने अपने कुचक्र समाप्त नहीं किए थे। इस धड़े के राय मल्ल नामक एक बूढ़े (मुखिया) ने काशीपुर के अपने एक सम्बन्धी को लिखा कि यदि वह शिव देव जोशी के विरुद्ध आन्दोलन करे तो सारा काली कुमाऊँ उसका साथ देगा। यह पत्र शिव देव जोशी के हाथ पड़ गया। शिव देव जोशी ने जाँच आरम्भ कर दी और उन सब लोगों का पता लगा लिया जो इस षड्यंत्र में सम्मिलित थे। उसे यह भी पता चला कि दनिया के कुछ जोशियों का भी इसमें हाथ है। सभी षड्यंत्रकारी पकड़ लिए गए। उन्हें बाँध कर बागेश्वर ले जाया गया। वहाँ सरयू गंगा के ऊपर बलिघाट नामक चट्टान के ऊपर से नीचे बहती सरयू गंगा के भंवर में धकेल दिया। इससे उपद्रव तो शांत हो गया किन्तु शिव देव के इस भयानक कृतित्व

की एक लहर सारे कुमाऊँ को कंपा गई। बूढ़ा राय मल्ल भाग कर डोटी चला गया।

कुछ दिनों के लिए फर्त्याल लोग शान्त हो गए किन्तु फिर उन्होंने तराई भावर में नियुक्त शिव देव की सेना को भड़काना आरम्भ कर दिया। पानीपत के युद्ध के बाद से ही यह सेना माल प्रान्त के किलों में रखी गई थी। इसमें पश्चिम की सभी पहाड़ी रियासतों के भर्ती किए गए सिपाही थे। नगर कोट, जम्मू, बढेपुर, कांगड़ा और जुव्वल के भी सिपाही इस सेना में थे। सिपाहियों की मुख्य माँग थी कि उनका वेतन बढ़ना चाहिए। उनकी माँग पर विचार करने के लिए शिव देव जोशी काशीपुर पहुँचा। वहाँ उसने अपने समर्थकों की एक बैठक बुलाई। बैठक की कार्यवाही आरम्भ भी न हो पाई थी कि बलवाई सिपाहियों ने शिव देव के आवास को घेर लिया और फिर उस पर तथा उसके परिवार पर आक्रमण कर दिया। शिव देव और उसके दो लड़के इस विप्लव में मारे गए। यह घटना पौष की एकादशी सम्वत् १८२१ (सन् १७७४) की है।

इस घटना के उपरान्त कुमाऊँ में गृहकलह की आग इतनी जोर से भड़की कि वह सन् १७९० में गोरखाली शासन के अन्तर्गत कुमाऊ के आने पर ही शांत हो पाई। मृत शिव देव जोशी का बड़ा पुत्र माल प्रान्त में राजा दीपचन्द का प्रतिनिधि (एटकिन्सन के अनुसार वाइसराय) तथा प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया। रानी श्रृंगार मंजरी का पुत्र उस समय पैदा हो गया था। भावी राजकुमार की माँ होने से उसने चाहा कि कुमाऊँ के शासन प्रबन्ध के चलाने में उसका भी हाथ होना चाहिए। इसमें भी फर्त्यालों की चाल थी। रानी की पहली मांग थी कि जय किशन के अधिकार राज कुमारी के मंगेतर कटेहर के राजपूत जोधासिंह को दे दिए जाएँ। रानी ने इस आशय का एक पत्र जोधासिंह के माध्यम से हाफिज रहमत खां को भी लिखवाया। जय किशन रानी के व्यवहार से खिन्न होकर अल्मोड़ा छोड़कर चल दिया। अल्मोड़े में बख्शी (रक्षा मंत्री) का कार्य रानी ने मोहन सिंह नामक व्यक्ति को सौंप दिया। रानी का एक प्रेमी परमा नन्द विष्ट राज प्रतिनिधि (वाइसराय) नियुक्त होकर माल भेजा गया। एक अन्य भाई किशन सिंह प्रधान मंत्री बना और काशीपुर का प्रकाशक कटेहरी जोधा सिंह नियुक्त किया गया।

यह प्रबन्ध भी एक वर्ष से अधिक नहीं चला। परमानन्द ने मोहन सिंह को पदच्युत करके अल्मोड़े से भागने को विवश किया और बख्शी (रक्षामंत्री) का पद कुछ दिन अपने पास रख कर फिर शिव देव जोशी के पुत्र जय किशन को बुला कर उसे दे दिया। मोहन सिंह इस बीच कटेहर की और राजपूतों और बिसौली के मुसलमान दोनों से मिलकर अल्मोड़ा पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा रहा था। अवसर मिलते ही उसने अल्मोड़ा आकर किले पर अधिकार कर लिया। रानी के अवैध प्रेमी परमानन्द

कुमू, कत्यूर तथा खस राज्य

१००० ई०

१४०० ई०

कुमू राज्य | कत्यूर राज्य | खस राज्य

१५०० ई०

१५६७ ई०

कुमाऊँ राजनैतिक

लक्ष्मी चन्द (१५९७ १६२१ ई०) के समय

दलीप चन्द (१६२१—१६२४ ई०) के समय कुमाऊँ

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित
© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार १९७६

जागेश्वर पौन राजा की मूर्ति

कुमाऊँ का सबसे प्राचीन बौद्ध शैली का मन्दिर, नव दुर्गा जागेश्वर

गिलगमिश की बेलनाकार मुहर

बेलनाकार मुहर जिसमें सूर्य की आकृति है

चम्पावत के एक मन्दिर की प्रतिमा

की हत्या कर दी। कुछ दिन बाद जब उसे यह संदेह हुआ कि रानी उसके विरुद्ध षड्यंत्र करने में लगी है तो उसने राजमहल के रणिवास में घुसकर खिड़की से उसे चोटी पकड़ कर बाहर धकेल दिया। राजा दीप चन्द मोहन सिंह के हाथ की कठपुतली बनकर रह गया।

हाफिज रहमत खाँ ने अपने मित्र कल्याणचन्द के पुत्र दीपचन्द की दुर्गति देख कर हरखदेव को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए उकसाया। रोहेल्लों की कुछ सेना लेकर हरखदेव ने अल्मोड़े पर आक्रमण किया। मोहन सिंह इस युद्ध में ज़ोशी भाइयों का सामना न कर सका और अल्मोड़ा छोड़ कर रोहेलखंड के जबीता खाँ के पास गया। वहाँ से कुछ भी न पाकर अवध के नवाब की शरण में चला गया। दीपचन्द जोशी भाइयों की स्वामी भक्ति से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने दोनों भाइयों को शासन के प्रमुख स्थान देकर माल में किशन सिंह को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। जय किशन ने जब किशन सिंह के आधीन रहना स्वीकार न किया तो प्रधान मंत्री पद पर उसे ही नियुक्त किया गया। काशीपुर का प्रशासक शिरोमणि दास नियुक्त किया गया। वह सम्भवतः नगरकोट का था और विप्लवी सैनिकों का सरगना था। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र नन्दराम दीवान नन्दराम के नाम से काशीपुर का प्रशासक बना। इस दीवान वंश ने कालान्तर में काशीपुर को अपना पृथक राज्य बनाने की चाल चली। वह इस इलाके पर अपना पैतृक अधिकार जताने लगा। हरि राम जोशी का पुत्र मनोरथ जोशी रुद्रपुर का प्रशासक नियुक्त किया गया।

सन्दर्भ और टोपें

१—राजा दीपचन्द द्वारा शिवदेव जोशी के नाम लिखा गया ताम्र पत्र –

महाराजाधिराज श्री राजा दीपचन्द जू ताम्र-पत्र करी बेर शिवदेव जोईसी माल पर्वत जागीर बगसी। बारामंडल, स्यूनरा का गर्खा में विशि २० गंगोला कोटली थात करी बगसी। मुड़िया का परगना में मौजे देहरी ढुली बगसी। इन गाऊन लगतो बाड़, घट, लेख, ईजर, धुरा, डाँडा, सुद्धा धरका मानसा राहिया मिली रछ्या। रोहिला की फौज कुमाऊँ लवाई लाछया। अमरुवा रौतेला राजा करी ज्याद्या गोलीली ली लड़ाई भई। इनले तन दियो। माल बटीफौज ल्याया। गौलौली रोहिला की फौज को कुमों का रोहिला संग जाई रद्वया तन संग लड़ाई मारी। येक दिन में आई बेर लड़ाई मारी।

फते करी हमरो राज तनले कायम करो। फिर आजी मानसन में चाल वे उठायो। गढ़वाल का राजा प्रतीप शाही लवाई ल्याया। जुनिया में प्रतीपशाही और लाख गढ़ लो वेर आयो। हमरा राज्य का मानस और कुमय्या लो लवाई ल्याछा। तों लग गढ़वाल को राजा संग लड़ाई सूँ आया। तामाढोन ली लड़ाई भई। शिव देव जोइसी ले अपने जीउधन लायो। लालच किछु बात को नैं करो। गढ़वाल की फौज मारी। गढ़वाल को राजा भाजी पड़ो। डेढ़ हजार गढ़वाली मारो पड़ो। फते करी तैं निन लग हमरो राज्य कायम करो। रोहिला ले माल टीपी लीछी। रोहिला संग सलूक करी वेर माल छुटाई तैं रौत को गंगोला कोटुली ढुली देहरो सर्वकर अकर करी बगसो। वड़ाखेड़ी अलीमहम्मद को जमादार नजीव खां चार हजार फौज रोहिलान का ली वेर लड़ाई सूँ आछ्यो। हमरी तरफ शिवदेव जोइसी हजार सिपाही ली वेर लड़ाई सूँ गया। फते भई। रोहिला मारो। कोटा की तरफ को रोहिला को थानु उठायो। ये वात की रौत यो जागीर सही राखी। गंगोला कोटुली को सेरुक, म्वाल, बहादुर, गरखा सरह सर्व तोड़ी दीनों। श्री महाराजधिराज श्री राजा दीप चन्द देव ज्यू की संतती ले भुचौणी शिवदेव जोइशी की संतती ले भुचणो। जो कोई राजा येशी रौत की जागीर ले तैं राजा कन तैंका इष्ट देवता की दश हजार दुहाई। शाके १६७७ ज्येष्ठ अधिमास सुदी ६ शनो मुकाम राजपुर लिखित स्वयं केडारितं करोई शुभम्।

उन दिनों अल्मोड़े का नाम राजापुर प्रचलित था। इस ताम्र पत्र में शिव देव के आस्पद को पुरानी प्रथा के अनुसार ज़ोईसी लिखा गया है न कि जोशी। एटकिन्सन ने एक स्थल पर लिखा है कि झिझाड़ के जोशी जिस इतर पर्वतीय भू-भाग से कुमाऊँ में आए थे वहाँ वे नीच जाति के ब्राह्मण थे। अल्मोड़ा आकर राज सत्ता प्राप्त करने के उपरान्त वे चौथानी लोगों की कन्याओं से विवाह संबंध करके भाल वामण वर्ग में आ गए। (एटकिन्सन-कुमाऊँ १८७७ संस्करण पृष्ठ २४) झिझाड़ के जोशियों को अन्य अभिलेखों में भी जोइसी लिखा गया है। व्रज की ओर जोशी उस ब्राह्मण को कहते हैं जो गाँवों में हाथ देख कर ग्रह दशा आदि बताकर जीविकोपार्जन करता है। रमोले अथवा विदेश में गए भारत मूलक जिप्सी (रोमनी) लोग भी इसी व्यवसाय से जीविकोपार्जन करते आए हैं। डाक्टर सनवाल ने भी झिझाड़ के जोशियों की भाल बामण बनने की प्रथा का उल्लेख किया है। (सोशल स्ट्रेटिफिकेशन इन रूरल कुमाऊँ- आर० सनवाल पृष्ठ ३६) डाक्टर सनवाल ने इसी भाँति तड़ागी लोगों के विषय में भी लिखा है कि वे मूलतः शूद्र थे किन्तु चार बूड़ा राजपूतों में विवाह सम्बन्ध स्थापित करके राजपूत कहलाये जाने लगे। चन्द शासकों के दरबार में पानी की घड़ी (घटिका यंत्र) पर निगरानी रखने वाले ज्योतिषी या गणक भी जोइसी कहलाते थे। कालान्तर में इन्हें डागी जोशी कहा जाने लगा।

कूटनीतिज्ञ दीवान, हरखदेव जोशी

पानीपत के युद्ध के समय कुमाऊँ में बख्शी (रक्षा मंत्री) शिवदेव जोशी था। उसने अपने मझले लड़के हरखदेव को नजीबुद्दौला की अनुपस्थिति में उसके किले नज़ीबाबाद की रक्षा के लिए नियुक्त किया था। इसका उल्लेख पहले हो चुका है। पानीपत के युद्ध के बाद के कुछ वर्ष कुमाऊँ के इतिहास की सुख-समृद्धि के वर्ष थे। माल (तराई भावर) से नौ लाख रुपये लगान मिलता था। वहाँ कुमाऊँनी वैतनिक सेना दक्षिण सीमान्त की मराठों और सिखों से रक्षा करने के लिए नियुक्त थी। इसी सेना में नगर कोट, गुलेर तथा जम्मू से भर्ती किए गए युवा थे। अल्मोड़ा के शासन में फर्त्याल दल ने अपना प्रभाव घटते देख एक षड्यन्त्र रचा और उक्त सेना को उकसाया कि वे अपने वेतन की वृद्धि की मांग करें। शिवदेव ने इस मांग पर विचार करने के लिए काशीपुर जाकर अपने समर्थकों की एक सभा बुलाई। सभा की बैठक हो भी न पाई थी कि विद्रोही सिपाहियों ने शिवदेव पर आक्रमण कर दिया। इस बलवे में शिवदेव और उसके दो पुत्र मारे गए। शेष दो पुत्र जयकिशन और हरखदेव किसी प्रकार जान बचाकर रोहिला सरदार हाफिज मुहम्मद खां की शरण में जा पहुँचे।

दोनों जोशी भाइयों ने अलमोड़े की गद्दी पर फर्त्याल दल द्वारा विठाए गए मोहन सिंह नामक राजा के ऊपर आक्रमण किया और दीपचन्द को फिर उसकी गद्दी वापस दिलाई। इस बीच जयकिशन फिर अपने पिता के स्थान पर बख्शी (राज रक्षा मन्त्री) नियुक्त हुआ। दुष्चरिता राजरानी श्रृंगार मंजरी का इस बीच पहला पुत्र हुआ। उसने राजकुमार की माता होने के नाते अपने पति पर दबाव डाला कि वह उस पद पर जयकिशन के बजाए अपने भावी दामाद कटेहर के जोधासिंह की नियुक्ति करे। जयकिशन रानी के व्यवहार से खिन्न हो फिर वापस नजीबाबाद चला गया। हाफिज रहमत खां ने जोशी बन्धुओं की सहायता की। दोनों भाई फिर अपने पूर्वजों का पद पाने में सफल हुए। मोहनसिंह भाग कर अवध चला गया था किन्तु उसका छल प्रपंच जारी था।

वह तराई भाबर में फैली अशान्ति से जोशी बन्धुओं को व्यग्र देख उनकी चाटुकारी करने लगा कि उसे कुमाऊँ में वापस आने की अनुमति दे दी जाए तो वह तराई में शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखने में जोशियों की सहायता करेगा। उनके दोनों के आधीन वह कोई भी काम पाने पर संतुष्ट होगा। हरखदेव ने उसके पत्रों

पर ध्यान नहीं दिया किन्तु अविवेकी जयकिशन उसके धोखे में आ गया। उसने मोहन सिंह पर विश्वास करके उसे वापस आने का सन्देश भेज दिया। मोहन सिंह अल्मोड़ा आते समय काशीपुर के प्रशासक नन्दराम से मिलता हुआ उसको भी अपने षडयन्त्र में मिलाने में सफल हुआ। उसने हरखदेव और जयकिशन दोनों भाइयों को अपने खेमे में कुमखेत नामक स्थान पर मंत्रणा के लिए बुलाया और वहीं जयकिशन को मौत के घाट उतार दिया। हरखदेव भाग निकला। मोहन सिंह ने इस भाँति सदियों पुरानी चन्द राजाओं की गद्दी को तीसरी बार हड़प लिया। राजा दीपचन्द को दोनों राजकुमारों सहित सीराकोट कारावास में बन्द कर दिया जहाँ वह तीनों भूखों मर गए।

तीसरी मुक्ति—अपने कारावास से हरखदेव जोशी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी, डोटी (नैपाल) तथा श्रीनगर (गढ़वाल) के राजाओं को पत्र लिखे। कांगड़ा के राजा और पंजाब के सिखों से भी अल्मोड़ा पर आक्रमण करके मोहनसिंह के चुंगल से कुमाऊँ को मुक्त करने की गुप्त मंत्रणायें कीं। अंग्रेज उस समय अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम में उलझे थे। कलकत्ता कुमाऊँ से बहुत दूर था। सन्देश वाहक को कलकत्ते से उत्तर प्राप्त करने में कई महीने लग गए। हरखदेव ने विवश होकर गढ़वाल के राजा ललित शाह को ही निकट पाकर उसको कुमाऊँ पर आक्रमण करने के लिए राजी कर लिया। राजा ललित शाह एक बड़ी सेना लेकर लोहावा, गैरसैंण, द्वाराहाट के मार्ग से बगवाली पोखर पहुँच गया। मोहन सिंह यह नहीं जानता था कि हरखदेव की चाल से ही राजा ललित शाह ने कुमाऊँ पर आक्रमण किया है। अतः उसने हरखदेव को कारावास से यह आश्वासन देकर मुक्त कर दिया कि वह उसके प्रति किए गए इस उपकार के बदले बगवाली पोखर जाकर गढ़वाली सेना को पछाड़ने में मोहन सिंह की सेना की सहायता करेगा।

मोहन सिंह रणक्षेत्र में हरखदेव की प्रतीक्षा करता रहा किन्तु हरखदेव वहाँ नहीं पहुँचा। युद्ध में मोहनसिंह की हार हुई वह भाग कर पहले लखनऊ और फिर रामपुर में फजीउल्ला खाँ की शरण में चला गया। हरखदेव ने फजीउल्ला खाँ को रोहिलों और पठानों से अपनी पुरानी मैत्री का स्मरण करा कर मोहन सिंह को शरण न देने का अनुरोध किया। फजीउल्ला खाँ मान गया। मोहन सिंह रामपुर से लखनऊ फिर यात्रा के बहाने प्रयाग जाकर वहाँ से कुमाऊँ पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। उधर हरखदेव ने गढ़वाल के राजा ललित शाह के पुत्र प्रद्युम्न शाह को प्रद्युम्न चन्द के नाम से अल्मोड़ा की गद्दी पर बिठा दिया।

नागा साधुओं का आक्रमण—सन् १७८५ ई० में मोहन सिंह ने यात्रियों के वेश में लाए गए १४०० सशस्त्र व्यक्तियों का जत्था लेकर अल्मोड़े पर आक्रमण कर दिया। हरखदेव ने बड़ी वीरता से किले की रक्षा की। इस युद्ध में जोगी वेश-

धारी मोहन सिंह के ७०० सैनिक मारे गए। मोहन सिंह हार तो गया किन्तु उसने काशीपुर जाकर नन्द राम से मिल कर एक और चाल चल दी। गढ़वाल का राजा ललित शाह उस समय मर गया था। उसका ज्येष्ठ पुत्र जय कीरत शाह श्रीनगर की गद्दी पर बैठा तो मोहन सिंह के परामर्श से उसने अपने छोटे भाई प्रद्युम्न शाह के स्थान पर अल्मोड़ा की गद्दी पर भी ज्येष्ठ राजकुमार होने से अपना अधिकार जताकर दोनों राज्यों पर स्वयं शासक बनने का दावा प्रस्तुत कर दिया। हरखदेव ने दोनों भाइयों के बीच संधि कराने के उद्देश्य से दल बल सहित गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर की यात्रा की।

गढ़वाल पर आक्रमण

राजा जय कीरत शाह ने जब हरखदेव की बात नहीं मानी तो हरखदेव ने राजधानी श्रीनगर पर धावा बोल दिया। गढ़वाल में यह आक्रमण 'जोशियाना' कहलाता है। इस युद्ध में राजा जय कीरत शाह पराजित हुआ और भागते समय मार्ग में मर गया। हरखदेव ने कुमाऊँ और गढ़वाल दोनों का राजा प्रद्युम्न शाह को घोषित किया। काशीपुर के नन्द राम और मोहन सिंह ने फिर एक और चाल चल दी। प्रद्युम्न शाह के एक और भाई पराक्रम शाह को अल्मोड़े की राजगद्दी संभालने और प्रद्युम्न शाह को गढ़वाल की गद्दी देने का आग्रह किया। नन्द राम और मोहन सिंह के सहयोग से सन् १७८६ ईस्वी में गढ़वाली सेना ने अल्मोड़ा पर आक्रमण किया। हरखदेव युद्ध में पराजित होकर तराई भावर की ओर सेना जुटाने लगा। उधर प्रद्युम्न शाह अल्मोड़ा छोड़कर गढ़वाल भाग गया। कुमाऊँ की शासन सत्ता एक बार फिर मोहन सिंह के हाथ आ गई। हरखदेव ने सहायता के लिए चारों ओर हाथ पैर फैलाये केवल मौखिक सहानुभूति के और कुछ भी कहीं से प्राप्त न हुआ।

हरखदेव के कठपुतली राजा

सन् १७८८ ईस्वी में अपने ही बलबूते पर एक बड़ी सेना एकत्र कर हरखदेव हवालबाग और रेलकोट की ओर से अल्मोड़ा की ओर बढ़ा। इस युद्ध में उसने मोहन सिंह को पराजित कर दिया। हरखदेव ने प्रद्युम्न शाह को पत्र लिखा कि वह अल्मोड़ा आकर अपनी गद्दी संभाले। उसने प्रद्युम्न शाह को यह भी आश्वासन दिया कि मोहन सिंह मार दिया गया है तथा उसके सभी सहयोगी कुमाऊँ से बाहर खदेड़ दिए गए हैं। प्रद्युम्न शाह ने काटों के ताज कुमाऊँ के राज मुकुट को धारण करने से साफ इनकार कर दिया तो हरखदेव ने शिव सिंह नामक एक व्यक्ति को कुमाऊँ की राजगद्दी पर बिठा दिया।

मोहन सिंह के भाई लालसिंह ने रामपुर जाकर नवाब फजीउल्ला खाँ को किसी प्रकार कुमाऊँ पर आक्रमण करने के लिए राजी कर लिया। लाल सिंह के

नेतृत्व में कुमाऊँनी सेना का एक दल भीमताल की ओर से अल्मोड़े की ओर बढ़ा। शिवसिंह और हरखदेव रामपुर के नवाब और लालसिंह की सेना के सम्मुख टिक न पाए। गढ़वाल की ओर पीछे हटते गए। सीमा पर पहुँचने पर हरखदेव ने गढ़वाल के राजा प्रद्युम्न शाह द्वारा भेजी हुई कुमुक की सहायता से उल्कागढ़ के पास लालसिंह को पछाड़ दिया। हरखदेव और शिवसिंह प्रद्युम्न शाह की समय पर भेजी गई सहायता से आश्वस्त होकर श्रीनगर पहुँचे। प्रद्युम्न शाह को धन्यवाद देकर हरखदेव ने शिवसिंह को कुमाऊँ की गद्दी फिर प्रद्युम्न शाह को सौंप देने के लिए राजी कर लिया किन्तु जिद्दी प्रद्युम्न शाह अल्मोड़ा आने को किसी भाँति राजी नहीं हुआ। इस बीच पराक्रम शाह ने दूसरी कुमुक लाल सिंह को भेज दी और स्वयं अल्मोड़ा तक जाकर मोहन सिंह के पुत्र महेन्द्र सिंह को राजगद्दी पर बिठा दिया। हरखदेव गढ़वाल से भी भागकर बरेली में नवाब मिर्जा मेंहदी की शरण में चला गया। वहाँ से वह नैपाल के गोरखों को अल्मोड़ा पर आक्रमण करने और कुमाऊँ की राजगद्दी पर अधिकार करने की मंत्रणा करने लगा। गोरखा सेना ने कुमाऊँ पर सोर और विसुंग (काली कुमाऊँ) की ओर से आक्रमण किया। महेन्द्र सिंह इस युद्ध में पराजित हुआ।

महेन्द्रसिंह भाग कर कोटा चला गया। कोटा में उसे लालसिंह भी मिल गया जो रुद्रपुर से उस ओर भागा था। अपना रास्ता साफ देखकर गोरखा सेनाएँ हवालबाग की ओर बढ़ीं और सन् १७९० के मार्च मास में हवालबाग पहुँच गईं। उन्होंने बिना किसी कठिनाई के अल्मोड़े पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष गोरखों की सहायता से हरखदेव ने गढ़वाल पर आक्रमण करने की तैयारियाँ कीं। इस बीच नैपाल पर चीन का आक्रमण हो गया था। नैपाल के शासकों ने अल्मोड़े में स्थित अपने सेनापतियों को आदेश दिया कि वे गढ़वाल और कुमाऊँ के शासकों के साथ संधि करके नैपाल चले आएं। यह तय हुआ कि गढ़वाल का राज्य वहाँ के राजा को २५ हजार रुपया वार्षिक राजस्व देने पर सौंप दिया जाय तथा अल्मोड़े का प्रशासन हरखदेव के हाथों छोड़ दिया जाय।

गढ़वाल के राजा ने तो कर देना स्वीकार कर लिया किन्तु वह हरखदेव जोशी के हाथ गोरखों द्वारा कुमाऊँ का शासन सौंपने के विरुद्ध था। इस बीच नैपाल की चीन के साथ संधि हो गई। हरखदेव के व्यवहार से सशंक नैपाली सेनापति ने प्रस्ताव रखा कि कुमाऊँ का शासन अमर सिंह थापा के पास रहे तथा काजी जगजीत पाण्डे हरखदेव को साथ लिए नैपाल वापस जाये। थापा से हरखदेव के सम्बन्ध वैसे भी अच्छे न थे। हरखदेव को भय था कि कहीं ऐसा न हो कि नैपाल जाकर उसे बन्दी बना दिया जाय। वह चुपचाप जोहार की ओर चला गया। जोहार के एक मुखिया ने जो फत्र्याल धड़े का था हरखदेव को बन्दी बना लिया और लाल सिंह और महेन्द्र

सिंह को सूचना भेजी। दोनों व्यक्तियों ने यह जान कर कि उनका शत्रु पकड़ लिया गया है पदमसिंह नामक व्यक्ति को जोहार भेजा कि वह हरखदेव को पकड़ कर ले आए।

चौथी मुक्ति

पदम सिंह जब हरखदेव जोशी को पकड़कर तराई भाबर की ओर ले जा रहा था तो अति चतुर हरखदेव ने उसको फुसलाकर इस आश्वासन पर श्रीनगर (गढ़वाल) चलने को राजी किया कि गढ़वाल के राजा की सहायता से अल्मोड़ा पर आक्रमण किया जायेगा तथा गोरखों को भगाकर पदमसिंह को ही कुमाऊँ की राजगद्दी सौंप दी जायेगी। हरखदेव और पदम सिंह दोनों श्रीनगर पहुँचे। वहाँ राजा प्रद्युम्न शाह से परामर्श हुआ। प्रद्युम्न शाह ने कुमाऊँ की राजनीति में भाग लेने से साफ इन्कार कर दिया। निराश हो पदमसिंह वापस चला गया। गढ़वाल के पातली दून की तराई में अवध के नावाब के कुछ दल लूट-पाट मचा रहे थे। प्रद्युम्न शाह ने उनको भगाने में हरखदेव की सहायता चाही। उधर सन् १७६४ में गुलाम मुहम्मद खाँ ने रामपुर के नवाब मुहम्मद अली खाँ की जो उसका भाई था हत्या कर दी। ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी फतेहगढ़ से बरेली की ओर हत्यारे को दंड देने के लिए पहुँची। ब्रिटिश सेना की टुकड़ी अवध के नवाब की सेना तथा अंग्रेज एजेंट चेरी के साथ वहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा कर रही थी कि रोहिला सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया। बिठौरा के युद्ध में गुलाम मुहम्मद की करारी हार हुई। वह बन्दी बना कर बनारस भेज दिया गया। उसकी टूटी-फूटी सेना को एकत्र करके महेन्द्र सिंह ने कुमाऊँ पर आक्रमण करने की तैयारी की। अमर सिंह थापा ने किलपुरी की ओर जाकर उसका सामना किया। महेन्द्र सिंह इस युद्ध में हार कर फिर अवध के नवाब की शरण में गया। मिस्टर चेरी ने गोरखों और अवध के नवाब के मध्य सुलह करा दी। यह तय हुआ कि अवध का नवाब गोरखों को कुमाऊँ का वैध शासक होने की मान्यता देगा। बदले में गोरखे तराई भाबर में अवध के नबाव के शासन को स्वीकृति देंगे। लाल सिंह और उसके सम्बन्धियों को पीलीभीत तराई और चचैत की तराई जागीर में दी गई।

कुमाऊँ में गोरखा शासन

कुमाऊँ का प्रशासन सन् १७९१-९२ में सुब्बा जोगा मल्ल के हाथ में रहा। उसने कुमाऊँनी प्रजा पर मुण्डकर (पॉल-टैक्स) लगाया। यह कर प्रत्येक वयस्क पुरुष पर एक रुपया ढाई आने प्रति वर्ष था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बीसी कृषि भूमि पर एक रुपया वार्षिक कर लगाया गया। सन् १७९३ में काजी नरशाही और उसका सहायक रामदत्त शाही कुमाऊँ के प्रशासक बने। इस काल में पाली, बारामण्डल और सोर के परगनों में गोरखों ने नृशंस अत्याचार किए। पाली और बारामण्डल के ही लोग

महेन्द्र सिंह की सहायता कर रहे थे। अतः वह उनकी राजभक्ति के प्रति शंकित था। एक दिन उसने गाँव के सब प्रधानों को अल्मोड़ा आने का आदेश दिया और यह कहा कि नये करों की वसूली के लिए उन्हें यथोचित आदेश राजधानी में जाकर प्राप्त करने होंगे। लगभग १५०० ग्राम प्रधान लोगों के एकत्र होने पर उसने उस रात उन सबकी हत्या करवा दी। यह 'मंगल की रात' अथवा 'नरशाही का पाला' कहलाती है। नरशाही के इस अत्याचार की सूचना जब नैपाल पहुँची तो उसे नैपाली शासकों ने वापस बुला लिया। कुमाऊँ के नये शासक अजबसिंह, खवास थापा और श्रेष्ठ थापा नियुक्त किए गए। जसवन्त भंडारी को सैनापति बनाया गया।

नैपाल में आपस में फूट

नैपाल में सन् १७८९ तथा १७९५ के मध्य दो धड़े हो गए। बहादुर शाह को प्रबल राणा ने कैद कर दिया तथा शासन सत्ता अपने हाथ में संभाल ली। एक दूसरा दल चौंतरिया दल कहलाता था जो अपना सम्बन्ध राज परिवार से जोड़ता था। सन् १७९७ में चौंतरा पार्टी शक्ति में आ गई तथा अल्मोड़ा में उसी पक्ष का थापा दल शासन चलाने लगा। थापा दल ने अल्मोड़े के ब्राह्मणों पर जो अब तक कर से मुक्त थे पाँच रुपया प्रति झूलू लगान लगा दिया। जब कोई ब्राह्मण इस कर को न देता था तो वह बन्दी बना दिया जाता था। करों के न दे सकने के फलस्वरूप अनेक नागरिक बन्दी बनाकर दास मंडी में भेज दिए जाते थे। वहाँ उनका नीलाम हुआ करता था। एक ऐसी दास मंडी हरिद्वार में थी जहाँ कहा जाता है कि गढ़वाली और कुमाऊँनी दासों का नीलाम होता था। अंग्रेजों के शासन काल से पहले की गढ़वाल की स्थिति के बारे में एटकिन्सन लिखता है "गोरखों ने गढ़वाल पर निरंकुश शासन किया। इस प्रदेश की दशा दयनीय हो गई। गाँव उजड़ गए और खेती नष्ट हो गई। कहा जाता है कि दो लाख व्यक्ति गुलाम बना कर बेच डाले गए। बहुत ही कम परिवार गाँवों में रह गए। जो बचे वे या तो स्वयं ही अपने घरों को छोड़ कर भाग गए या प्रशासन द्वारा भगा दिए गए। गढ़वाल के गोरखा शासक बाम शाह और हस्तिदल थे। वे प्रजा के दुखों के प्रति नितान्त उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करते थे।" (पृष्ठ ६२१)

सन् १८०३ ईस्वी में थापा दल ने गढ़वाल पर आक्रमण किया। बारह वर्ष पूर्व सन् १७९२ ईस्वी में गढ़वाल की संधि हुई थी और गढ़वाली राजा २५ हजार रुपये वार्षिक कर देने को तत्पर था तो इस दूसरे आक्रमण का कोई कारण नहीं था। उस समय सम्भवतः चीन का नैपाल पर आक्रमण करने के कारण गोरखा लंगूर गढ़ी (लैंसडाउन से १५ किलो मीटर दूर) से लौट आए थे। गोरखों द्वारा लंगूर गढ़ी को लेने के अनेक प्रयत्न सन् १८०३ में किए गए। राजा प्रद्युम्न शाह उनका सामना न कर पाया। प्रद्युम्न शाह इस युद्ध में पराजित हुआ और देहरादून की ओर भाग

गया। गोरखा सेना ने उसका पीछा किया। सन् १८०३ में खुड़बुड़ा के युद्ध में वह दुबारा पराजित हुआ। सन् १८०४ में गूजर राजा राम दयाल सिंह ने बारह हजार सैनिक एकत्र करके फिर गोरखों का सामना किया किन्तु इसमें भी उसकी हार हुई। प्रद्युम्न शाह का भाई प्रीतम शाह गोरखों द्वारा बन्दी बनाकर नैपाल भेज दिया गया। पराक्रम शाह ने कांगड़ा के राजा संसार चन्द के पास जाकर शरण ली।

राजा गढ़वाल का वकील

हरखदेव ने सन् १७८४ ईस्वी में गढ़वाल के राजा की ओर से अवध के दरवार में जाकर रोहेलों से गढ़वाल की रक्षा करने की प्रार्थना की थी। जब हरखदेव को यह ज्ञात हुआ कि गोरखों ने अवध के नवाब के साथ संधि कर ली है तथा तराई भावर का इलाका अवध के नवाब को दे दिया गया है तो वह मन ही मन बड़ा कुपित हुआ। सन् १७९७ ईस्वी में वह बनारस में ब्रिटिश प्रतिनिधि के पास गया। उसने गोरखों के द्वारा किए गए अत्याचारों का वर्णन ब्रिटिश रेजीडेंट से भी किया। ब्रिटिश रेजीडेंट ने पंडित बद्रीदत्त पाण्डे जी के अनुसार, उसे ५० रुपये मासिक पेंशन दी और कहा कि जब ब्रिटिश सेना कुमाऊँ पर आक्रमण करेगी तो उसकी सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। एटकिन्सन के अनुसार हरखदेव ब्रिटिश रेजीडेंट से निराश होकर कांगड़ा के राजा संसार चन्द के पास पहुँचा। इस बीच नैपाल के एक धड़े का पदच्युत शासक रणबहादुर बनारस पहुँचा और यह जानकर कि हरखदेव थापा दल के विरुद्ध है उसने हरखदेव की खोज की। कहा जाता है कि हरखदेव संसारचन्द से भी कोई आशा न पाकर कनखल में साधु वेश में रहने लगा था।

पाँचवीं मुक्ति

जब रण बहादुर थापा का सन्देश-वाहक कनखल पहुँचा तो हरखदेव उसके साथ वापस बनारस चला आया। रण बहादुर थापा के कुछ सैनिकों के साथ हरखदेव ने अपने पुत्र जैनरायण के नेतृत्व में एक सेना नैपाल की ओर से जुमला होती हुई जोहार के हिम दर्रें से कुमाऊँ में भेजी। यह टुकड़ी बड़ी कठिनाइयों के उपरान्त मिलम पहुँच गई। जैनरायण के सभी सैनिक इस लम्बी हिम यात्रा के कारण थके हुए थे। उधर जोहार के लोगों ने उनके मार्ग में पड़ने वाला एक पुल नष्ट कर दिया। यद्यपि जैनरायण की सेना में गढ़वाली कुमाऊँनी और कुछ नैपाली भी थे। किन्तु जोहार के लोगों ने जैनरायण की किसी प्रकार सहायता न की। उल्टे उसकी सूचना गोरखाली सीमा चौकी को दे दी। गोरखों ने आक्रमणकारियों को सुगमता से बन्दी बना लिया। जैनरायण नैपाल ले जाया गया। हरखेदव निराश होकर फिर कनखल चला गया। कनखल जाकर उसने दिल्ली के अंग्रेज रेजीडेंट मिस्टर फ्रेजर को कुमाऊँ गढ़वाल को गोरखों द्वारा किए अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए अनेक प्रार्थनाएँ

भेजीं। वह रणवहादुर से भी पत्र व्यवहार करता रहा।

साँच को आँच नहीं

कुमाऊँ में गोरखा शासन के अन्तर्गत नियमित न्याय व्यवस्था नहीं थी। छोटे-मोटे अपराधों तथा मुकदमों का निर्णय सैनिक अधिकारी करते थे। ये सैनिक अधिकारी अधिकांश अपने सैनिक कर्तव्यों में संलग्न रहते थे अत: उनके स्थान पर उनके प्रतिनिधि जो विचारी कहलाते थे न्याय व्यवस्था का कार्य करते थे। मुकदमों का कोई लिखित अभिलेख नहीं रखा जाता था। गवाह की गवाही पर सन्देह होने पर उसके सिर पर हरिवंश (महाभारत का परिशिष्ट पुराण) रखा जाता था और उसे सच-सच कहने का आदेश दिया जाता था। दण्ड के साधारण भेद ये थे—(१) गोल दीप—इसमें अपराधी को, अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए लाल लोहे की छड़ को अपने हाथों में कुछ दूर तक ले जाना पड़ता था। कड़ाई दीप—इसमें अपराधी को अपने हाथ उवलते हुए तेल की कढ़ाई में डालकर अपनी निर्दोषता सिद्ध करनी होती थी। यह विश्वास किया जाता कि निर्दोष व्यक्ति को आँच नहीं लगेगी। (३) तराजू का दीप—इसमें अपराधी को एक तराजू में तोला जाता था। तराजू के दूसरे पलड़े में पत्थर रखे जाते थे। ये पत्थर फिर एक स्थान पर जमा कर दिए जाते थे। दूसरे दिन अथवा उसी शाम दुवारा उन्हीं पत्थरों से वह व्यक्ति तोला जाता था। यदि वह दुवारा तोलने पर पहले की अपेक्षा अधिक भारी होता था तो यह मान लिया जाता था कि वह निर्दोष है। (४) तीर का दीप—इसमें अपराधी पानी के भीतर अपना सिर डुवाए रहता था। इस बीच एक व्यक्ति अपना धनुषवाण साध कर तीर छोड़ता और वापस आ जाता था। यदि तव अपराधी पानी के भीतर जीवित रहता तो वह निर्दोष मान लिया जाता। दीप शब्द संस्कृत दिव्य (दैवी परीक्षा) का पहाड़ी रूप है।

कुमाऊँ पर आक्रमण

ब्रिटिश सरकार ने सन् १८१४ के अन्त में नैपाल के युद्ध के समय कुमाऊँ पर अधिकार करने के लिए हरखदेव जोशी का उपयोग किया। पहले बाम शाह को मुरादाबाद बुला कर उसे गोरखों के शासक दल के विरुद्ध ब्रिटिश सेना की सहायता करने के लिए कहा गया। इस कार्य में सफलता न मिली तो हरखदेव से संम्पर्क स्थापित किया गया। ब्रिटिश सेना के जनरल मार्टिन डेल का पोलिटिकल एजेन्ट मिस्टर फ्रेजर था जिसके साथ हरखदेव का पत्र-व्यवहार पहले से ही हो रहा था। हरखदेव के विषय में मिस्टर फ्रेजर ने लिखा--"वह गोरखा शासन से पूर्व अल्मोड़ा के परम्परागत मंत्री परिवार का है और अल्मोड़े पर उसकी अखंड सत्ता रही है। वह कुमाऊँ का 'अर्ल आफ वार्विक' कहा जा सकता है। गोरखा शासन में उसके अधिकारों का हनन हुआ है। वह अपनी उसी शक्ति का उपगोग गोरखों को कुमाऊँ से भगाने में

अंग्रेजों की सहायता करने में कर सकता है। अब वह लगभग ७० वर्ष का है किन्तु कुमाऊँ पर आज भी उसका ऐसा प्रभाव है कि गोरखे उससे भय खाते हैं।"

दिसम्बर १४, सन् १८१४ को कुमाऊँ के निवासियों के नाम ब्रिटिश सरकार की ओर से एक घोषणा पत्र जारी किया गया। वह इस प्रकार था—"ब्रिटिश सरकार ने कुमाऊँ के निवासियों पर गोरखा शासन के द्वारा किए गए अत्याचारों और दुखों को बड़े खेद के साथ देखा है। अब तक गोरखा लोगों के ब्रिटिश शासन के साथ मैत्री सम्बन्ध थे। अतः वह कुमाऊँ की सहायता करने में असमर्थ था। ब्रिटिश सरकार कुमाऊँ पर हुए अत्याचारों को चुपचाप देखते रहने के अतिरिक्त और कुछ न कर पाई थी। अब गोरखों द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अनेक अनधिकार चेष्टाओं के किए जाने के कारण वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए गोरखा शासन के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए विवश हुई है। अतः वह इस अवसर का लाभ उठाकर कुमाऊँ के निवासियों को भी उनके दुखों और बन्धनों से मुक्त करने के लिए तथा गोरखों को कुमाऊँ से निकाल भगाने के लिए एक सेना भेजना चाहती है। कुमाऊँ के निवासियों को आमंत्रित किया जाता है कि वे इस महान् उद्देश्य में ब्रिटिश में सरकार को सहायता दें। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत उनके साथ न्याय पूर्ण व्यवहार किया जायेगा। उनके जीवन और उनकी सम्पत्ति की पूरी रक्षा की जायेगी। उन्हें अपने अधिकारों का उपयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी।" (हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स-पृष्ठ ६४६)

मिस्टर फ्रेजर को कैप्टन हेयरसे ने जो कुमाऊँ पर आक्रमण करने वाली सेना की एक टुकड़ी का सेनानायक था हरखदेव का यह परिचय दिया—"यह व्यक्ति हमारे लिए वह पूर्ण उपकरण है जिससे गोरखा भय खाते हैं। उसका कुमाऊँ के छः हजार से भी अधिक लोगों से सम्बन्ध है। वह अब ६८ वर्ष से भी अधिक आयु का है किन्तु बड़ा ही कर्मण्य और साहसी है। उसकी सभी इन्द्रियाँ सचेत और जागरूक हैं। सभी पहाड़ी राजाओं पर यहाँ तक कि सतलज के पार भी उसका बड़ा प्रभाव है।······यद्यपि अपनी विपत्ति और दरिद्रता से वह बहुत पीड़ित है किन्तु वह बड़ा ही निर्भीक उत्साही और महत्वाकांक्षी है। यद्यपि उसे यह भली-भाँति बता दिया गया है कि ब्रिटिश शासन कुमाऊँ को अपने अधिकार में ले लेगा किन्तु फिर भी वह ब्रिटिश सेना की सहायता करने के लिए तैयार है।" (पृष्ठ ६४७—)

कुमाऊनियों के नाम जारी की गई घोषणा का परिणाम यह हुआ कि १९ फरवरी सन् १८१५ तक फर्त्याल, महर, तड़ागी लोगों का एक दल जिनमें से सौ व्यक्तियों के पास बन्दूकें भी थीं कैप्टन हेयरसे के दल में सम्मिलित हो गया। हरखदेव उस सेना का मार्ग प्रदर्शक बना जो अल्मोड़ा पर आक्रमण करने के लिए तैयार की गई थी।

अपने जीवन के अन्तिम ३० वर्षों में लगभग दस विभिन्न शासकों को

अल्मोड़े की राजगद्दी पर बिठाकर फिर उनको निकालकर एक-एक करके दूसरे शासक को विठाने वाले हरखदेव के लिए ही यह उक्ति लागू होती है—

बादशाह हैं दुनिया के मोहरें मेरी शतरंज के।
बस दिल्लगी की चाल हैं सब शर्त सुलहो जंग के ।।

राजनीति की शतरंज में ब्रिटिश सरकार हरखदेव की अन्तिम गोटी थी।

गोरखा युद्ध—अंग्रेजों द्वारा गोरखों पर चारों ओर से किए गए आक्रमणों में से कुमाऊँ का आक्रमण सबसे कठिन सिद्ध हो सकता था सन् १८१४ में गोरखा शासन नैपाल से लेकर सतलज के किनारे तक फैल चुका था। सिरमौर नाहन, विलासपुर आदि सभी पंजाब की पहाड़ी रियासतें गोरखों के आधीन हो गई थीं। श्रीनगर (गढ़वाल) में अमरसिंह थापा किलेबन्दी किए हुए था। नाहन में उसी का भतीजा रणजोरसिंह था। देहरादून में विभिन्न किलों में से कलंगा किले पर बलभद्र थापा नामक बहादुर सेनापति था। गोरखों द्वारा सभी स्थानों पर बड़ी मजबूत किलेबन्दी की गई थी। कुमाऊँ की प्रतिरक्षा के गोरखों के प्रबन्ध इन सबसे अधिक थे।

अंग्रेजों के उस दल को जिसने काठमांडू पर सीधे प्रहार किया था करारी हार उठानी पड़ी थी। मेर वुड और मेजर मार्ली की सेनाएँ जो विहार और गोरखपुर से नैपाल पर आक्रमण करने गई थीं, इस भाँति बुरी तरह पराजित हुई थीं कि ब्रिटिश सेना के इतिहास में मेजर वुड और मार्ली की कायरता को एक काला धब्बा माना जाता है। कलंगा के किले पर देहरादून में जनरल जिलैप्सी मारा गया था। नाहन के आक्रमण पर यद्यपि आरम्भिक सफलता मिली थी किन्तु जब गोरखा जैथक के किले में पहुँच गए थे तो ब्रिटिश सेना को उस किले को लेने के लिए इतना कठोर संघर्ष करना पड़ा था कि एक ही आक्रमण में उनके ४०० और ५०० के बीच सैनिक खेत रहे थे। यह हरखदेव की ही सूझ-बूझ का परिणाम था कि कुमाऊँ के युद्ध में विशेषतः उस सेना को जिसका नेतृत्व उसके हाथ में था अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। कैप्टन हेयरसे के नेतृत्व में जो सेना काली कुमाऊँ की ओर से आगे बढ़ी थी उसे गोरखों ने पराजित कर दिया था डोटी की ओर से जो सेना बढ़ी थी वह लैं० कर्नल गार्डनर के अधीन थी। उसे भी उतनी अधिक सफलता नहीं मिली। हरखदेव के नेतृत्व वाली सेना कोसी नदी के मार्ग से कुमखेत, ताड़खेत, (ताड़ीखेत) होती हुई स्याही देवी के पहाड़ तक पहुँच गई। एटकिंसन लिखता है—"३१ मार्च १८१५ को गोरखा सेनापति हस्तिदल कुसमघाट के पास चम्पावत से तीस मील दूर काली नदी को पार करने में सफल हो गया। अंग्रेज सेनापति कैप्टन हेयरसे हस्तिदल के मार्ग को रोकने में असफल रहा। दोनों दलों में चम्पावत से लगभग ५ मील दूर खिलपति नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में कैप्टन हेयरसे घायल

हुआ और गोरखों द्वारा बन्दी बना लिया गया। ब्रिटिस सेना भाग कर दान मैंकी ओर चली गई। कैप्टन हेयर से के अनुसार इस पराजय का एक कारण फर्त्याल लोगों की कुटिलता थी। महर लोग यह कहते हैं कि ब्रिटिश सेना की हार फर्त्यालों द्वारा हस्तिदल को दी गई सहायता थी। निःसंदेह फर्त्याल लोग हमारे निश्चय के विषय में शंकित थे और अपने प्रतिपक्षी दल पर हरखदेव जोशी के प्रभाव से जलते थे। किन्तु हार का वास्तविक कारण गोरखा लोगों की हमारी सेना से अधिक वीरता थी। चाहे कितना भी जोश हमारे पक्ष के लोगों में होता गोरखों की उस साहस और वीरता की समानता नहीं कर पाता।" (हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स-एटकिंसन पृष्ठ ६५७)

अप्रैल ७, १८१५ को लै० कर्नल गार्डनर को कैप्टन हेयरसे की पराजय का समाचार मिला। समाचार में कहा गया था कि उस समय उसके पास केवल ३०० सैनिक थे। वह चम्पावत की ओर जाने की सोच रहा था कि हस्तिदल की सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया और इसी से उसकी पराजय हुई। पश्चिम की ओर कर्नल निकौल्स ८ अप्रैल को कटारमल पहुँच गया। हस्तिदल तब तक अल्मोड़ा की गोरखा सेना में आ चुका था। चौंतरा बाम शाह गणानाथ की ओर काँठमाँडू से आई हुई सेना के नेतृत्व में था। २२ अप्रैल १८१५ को अल्मोड़ा पर आक्रमण किया गया। गोरखों की सेना का मुख्य भाग अंगद सरदार नामक सेना नायक के आधीन पांडेखोला के ऊपर सिठोली की धार में था। शेष सैनिक चौंतरा बाम शाह के आधीन अलमोड़ा में थे। ब्रिटिश सेना ने कोसी में उतर कर कलमटिया की ओर से गणानाथ-अल्मोड़ा के मध्यवर्ती मार्ग पर अधिकार करके अल्मोड़ा की सेना के रसद को रोक दिया। कर्नल निकौल्स ने रात के समय अल्मोड़े के निकट पोखरखाली नामक स्थान पर पड़ाव डाल लिया। कलमटिया की ओर से चामू भंडारी नामक गोरखा सेनापति ने रात के समय इस पोखरखाली में स्थित ब्रिटिश ठिकानों पर आक्रमण कर दिया। पोखरखाली के युद्ध में दोनों ओर बहुत से सैनिक हताहत हुए। गोरखों ने ब्रिटिश सेना की किले बन्दी को रात में तीन चार बार तोड़ दिया। इस युद्ध में ब्रिटिश लैफ्टिनेंट टापली मारा गया। एटकिन्सन के अनुसार-"२५ तारीख की रात को हमारे २११ सैनिक मारे गए। (हिमा० डि० पृष्ठ ६६:) रात भर युद्ध होता रहा। दूसरे दिन सवेरे ब्रिटिश सेना अल्मोड़े (लालमंडी) किले के निकट पहुँच गई। सिटोली की ओर से किले पर ब्रिटिश सेना की गोले वारी ६ बजे प्रातः काल तक होती रही। इसी दिन बाम शाह ने अपनी पराजय स्वीकार की और किले को खाली कर देने का बचन दिया।"

अप्रैल २७, १८१५ को कुमाऊँ की पराजय तथा गोरखों द्वारा कुमाऊँ के खाली किए जाने के सन्धि पत्र पर गार्डनर, बाम शाह, चामू भंडारी तथा यश मदन थापा के हस्ताक्षर हो गए। कैप्टन हेयरसे को जो तब तक गोरखों का बन्दी था मुक्त

कर दिया गया। गोरखों ने काली नदी के पार तक अपने राज्य की सीमा रखना स्वीकार किया। वास्तविक सन्धि पर दो दिसम्बर सन् १८१५ को हस्ताक्षर हुए। हरखदेव जोशी जुलाई १८१५ को ही परलोक सिधार गया था।

गोरखा युद्ध का कुमाऊँनी मोर्चा

सन् १८१५ के गोरखा ब्रिटिश युद्ध से कुमाऊँ में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। उस काल तक अपने हजारों वर्ष के इतिहास में कभी भी कुमाऊँ किसी इतर पर्वतीय राजा के अधिकार में नहीं रहा। इस युद्ध में भी यदि वह एक पर्वतीय द्वारा किए गए विश्वासघात का पात्र न बनता तो अंग्रेज कुमाऊँ में प्रवेश न कर पाते। न उनमें वह वीरता थी और न युद्ध कौशल जो गोरखों में था। इस युद्ध की रूपरेखा और तत्कालीन कुमाऊँ की स्थिति को समझने के लिए इस युद्ध का कुछ विस्तार से वर्णन देना आवश्यक है।

जैसा पहले कहा जा चुका है युद्ध से पूर्व फ्रैजर से मिलकर एक घोषणा पत्र कुमाऊँनी जनता के नाम पर हरखदेव द्वारा प्रसारित किया गया था। उसके उपरान्त युद्ध की प्रगति का कालक्रमानुसार वर्णन नीचे दिया जाता है :

जनवरी १, १८१५—काशीपुर में ब्रिटिश सेना का जमाव। मि० ई० गार्डनर मुरादाबाद से अपना मुख्यालय काशीपुर लाया।

१०-२-१५ हरखदेव जोशी के नेतृत्व में ले० कर्नल गार्डनर तथा मि० ई० गार्डनर का हाथियों पर गोला बारूद तथा रसद आदि सहित पहाड़ों की ओर प्रस्थान। पूर्व में पीलीभीत से कैप्टन हेयरसे के नेतृत्व में काली कुमाऊँ की ओर प्रस्थान सैनिक सामान ऊटों पर।

पहाड़ों में हिमपात के कारण सेना का आगे बढ़ना स्थगित।

फरवरी ९, १८१५—रुदपुर से बाराखेड़ी, बमोरी (काठगोदाम) से प्यूड़ा की ओर जाने के लिए ५०० का सैन्य दल टोह लेने भेजा गया।

फरवरी १२—अग्रगामी दल चिलकिया ढिकुली की ओर, १२ को कनियासी, १३ को चिलकिया, १४ को आमसोत तथा १५ की शाम ढिकुली।

फरवरी १६—लै० गार्डनर की सेना चिलिकया आम सोत होती हुई ढिकुली पहुँची। गोलाबरूद के हाथी न पहुँचने से दो दिन विश्राम। गोरखा सेना कोटागढ़ी (दाबका नदी के बायें तट पर) ढिकुली से १५ मील दूर थी। ढिकुली में भी गोरखा रक्षा चौकी थी। ब्रिटिश सेना के आने पर बिना विरोध के गोरखा चौकी खाली कर दी गई।

फरवरी १६—ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी ने कोशी घाटी में चुकम में पड़ाव डाला। दूसरी ने कोटागढ़ी की ओर आक्रमण किया और १८ फरवरी को गोरखों को वहाँ से भगा दिया। कोसी नदी पर तंगूराघाट पर अधिकार किया।

फरवरी १६—काठ-की-नौ घाट पर ५०० ब्रिटिश सैनिकों का आक्रमण। गोरखे भाग कर गागर की ओर चले गए। गागर पर गोरखों की किले बन्दी। ओखलढूंगा पर लै० कर्नल गार्डनर की मुख्य सेना की गोरखों के साथ मुठभेड़। तंगूरा और लोहगलिया से गोरखे विस्थापित।

फरवरी २१—अग्रगामी ७०० ब्रिटिश सैनिक सेथी गाँव में एकत्र। गोरखा सेना के ८०० सिपाही काकड़ी घाट और खैरना के पास भुजाण में मुख्य अल्मोड़ा जाने वाले मार्ग में। गार्डनर कोसी नदी के मार्ग से भुजाण की ओर। वहाँ पहुँचने पर कोसी घाटी के मार्ग को छोड़कर बाँई ओर बिनकोट की ओर गोरखों को बचा कर ब्रिटिश सेना का मुड़ जाना।

काली कुमाऊँ की ओर

१३ फरवरी १८१५—कप्तान हेयरसे का पीलीभीत से बिलहरी पहुचकर हरखदेव के घोषणा पत्र का काली कुमाऊँ के निवासियों में जो तब तक तराई भाबर में थे वितरण।

१८ फरवरी—कप्तान हेयरसे का ब्रह्मदेव से आगे बढ़कर कैलाघाटी के दर्रे और दो किलों पर अधिकार। गोरखा सैनिकों का तिमला से पलायन।

१६ फरवरी---कप्तान हेयरसे का लधिया घाटी में उतरकर पहले भेजी गई ब्रिटिश सैनिकों की टुकड़ी से मिलन। काली नदी के दोनों ओर नाके बन्दी।

२६ फरवरी—बरौली बड़ा-पीपल के पास गोरखा सूबेदार और ब्रिटिश सैनिकों के बीच पहली मुठभेड़। साधारण संघर्ष के उपरान्त गोरखों का अपनी कुछ बकरियाँ और सैनिक सामान छोड़ कर भागना।

मार्च २ से १४, १८१५—नैपाल की ओर से काली कुमाऊँ की ओर आने के काली नदी पर बने झूलों का कप्तान हेयरसे के सैनिकों द्वारा तोड़ा जाना। नैपाल की ओर से गोरखा सेनापति हस्तिदल के काली कुमाऊँ में प्रवेश करने के सभी सम्भावित मार्गों पर अवरोध खड़ा करना।

अल्मोड़े की ओर

२२ फरवरी—लै० क० गार्डनर की सेना कोसी घाटी में अमेल पहुँची। रामगंगा और कोसी नदी के जलक्षेत्र के मध्य की पहाड़ी कथाल-लेख (अब कटा लेख) पर सेना का चढ़ना। पहले दिन केवल ५० सैनिक चौमुआ (चौमुण्डा) चोटी पर जो समुद्रतल से ६३५४ फीट ऊँची थी चढ़ पाए। चोटी बर्फ से ढकी थी अतः शेष सेना को वहाँ पहुँचने में कठिनाई हुई।

२५ फरवरी—पूरी ब्रिटिश सेना हाथियों सहित चौमुआ चोटी पर पहुँच गई।

गोरखा सेना यह देख कर कि ब्रिटिश सेना कथाल लेख पर्वतमाला की ओर बढ़ी है स्वयं भुजाण की ओर से चौमुआ देवी चोटी पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ी किन्तु वहाँ ब्रिटिश सेना को पहले ही अधिकार जमाए देख कर कुमपुर (अब रानीखेत) के एक मंदिर के निकट गोरखा सैनिकों की व्यूह रचना।

काली कुमाऊँ की ओर

२८ फरवरी—कप्तान हेयरसे द्वारा कानदेव चोटी होकर चम्पावत पहुँचना। गोरखों के विरोधी गढ़वाली और कुमाऊँनी लोगों का कप्तान हेयरसे के दल में सम्मिलित होना।

अल्मोड़ा की ओर

गोरखा व्यूह रचना कुमपुर (रानीखेत) के निकट कपिना का डांडा पर ब्रिटिश सेना का अधिकार। अगले तीन सप्ताह तक दोनों ओर से किले बन्दी और छोटी-मोटी झड़पें। ताड़खेत (वर्तमान ताड़ीखेत) पर गोरखों का आक्रमण ब्रिटिश सैनिकों द्वारा विफल कर दिया गया। अगले तीन चार सप्ताह तक दोनों ओर कुमुक की प्रतीक्षा में युद्ध में कोई प्रगति नहीं हुई।

२२ मार्च—ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा हापुड़ में भर्ती किए गए ८५० रोहिला सैनिक चिलकिया की ओर से चोमुआ पहुँचे। ब्रिटिश सेना के १२०० सिपाहियों का पनोर घाटी की ओर से होते हुए स्याही देवी (७१८६ फीट) पर्वत की ओर बढ़ना। इस बीच सेना के दूसरे भाग द्वारा कुमपुर में स्थिति गोरखा किलेबन्दी पर उन्हें उलझाये रखने और स्याही देवी की ओर बढ़ती सेना के प्रयाण को गुप्त रखने के लिए उन पर साधारण आक्रमण।

२४ मार्च—गोरखा सेना का यह जानकर कि ब्रिटिश सेना अल्मोड़े के सामने कोसी नदी के पार स्याही देवी पहाड़ पर चढ़ गई है अपने कुमपुर पड़ाव को छोड़ कर सड़क से अल्मोड़ा की ओर प्रस्थान। कुमपुर में गोरखा पड़ाव को उसे छोड़ते समय गोरखों द्वारा ही आग लगाकर भस्म कर देना।

२५ मार्च—लै० क० गार्डनर की कपिना का डांडा के निकट शेष सेना द्वारा गोरखों का पीछा करना। गोरखे बहुत तेजी से अल्मोड़े की ओर बढ़ गए अतः लै०क० गार्डनर की सेना का २६ मार्च को रियूणी में पड़ाव। स्याही देवी में भेजे गए सैनिकों में से ४०० सैनिकों की रियूणी में वापसी। गोला बारूद के न पहुँच पाने से २७ मार्च तक रियूणी में पड़ाव।

२८ मार्च—ब्रिटिश सेना का रियूणी से अल्मोड़े की ओर बढ़ कर कटारमल में सूर्य मंदिर के निकट पड़ाव। कटारमल में नियुक्ति गोरखा रक्षकों का पलायन।

काली कुमाऊँ की ओर

३१ मार्च—गोरखा सेनापति हस्तिदल का काली नदी पार करके ब्रिटिश अवरोधों को भेद कर काली कुमाऊँ में प्रवेश। हस्तिदल की सेना से ब्रिटिश सेना की खिलपती के निकट मुठभेड़।

२ अप्रैल—खिलपती में कप्तान हेयरसे का युद्ध में घायल हो जाना। ब्रिटिश सेना में भगदड़। हस्तिदल ने कप्तान हेयरसे को बन्दी बनाया।

अल्मोड़ा की ओर

६ अप्रैल—हस्तिदल का अल्मोड़ा के गोरखा किले लालमण्डी में पहुँचना। कप्तान हेयरसे के बन्दी बनाए जाने के सम्बन्ध में लै० क० गार्डनर को सूचना देना। यह भी बताना कि वह सकुशल हैं तथा उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जा रहा है।

८ अप्रैल—चिलकिया कोसी नदी घाटी मार्ग से ब्रिटिश महारानी की भारत स्थित सेनाओं के क्वार्टर मास्टर जनरल कर्नल निकौल्स का कटारमल में पहुँचना। पूरी सेना की कमान हाथ में लेना। दोनों ओर छोटी-मोटी झड़पें। ब्रिटिश सेना का कोसी नदी पार कर हवालबाग की ओर चौकी स्थापित करना।

२२ अप्रैल—गोरखा सेनापति हस्तिदल का उत्तर की घाटी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अल्मोड़ा से कलमटिया होते हुए गणानाथ के लिए प्रस्थान।

२३ अप्रैल—ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी का कोसी नदी के मार्ग से गणानाथ की ओर प्रस्थान। गणानाथ चोटी के निकट हस्तिदल की सेना के साथ युद्ध। युद्ध में गोरखा सेनापति हस्तिदल की मृत्यु। गोरखा सरदार जैथौरा तथा अन्य ३२ गोरखा सैनिकों का गणानाथ के जंगल में खेत रहना। बची-खुची घायल गोरखा सेना का अपने सेनापतियों के खो देने पर पलायन तथा मार्ग में कुछ अन्य की मृत्यु। ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी का गणानाथ में उसकी रक्षा के लिए रहना तथा शेष का कटारमल वापस होना। हस्तिदल के सम्बन्ध में मि० जे० बी० फ्रेजर की श्रद्धांजलि—"हस्तिदल चौंतरा के मरने से शत्रु ने अपने एक अति मूल्यवान कर्मठ और उत्साही अफसर को खो दिया है। इस व्यक्ति का चरित्र बड़ा ही उदात्त था। वह वर्तमान नैपाल के राजा का चाचा था। उसके गुण और उसकी विशेषताएँ उसी राज परिवार के उच्च कुल की विशेषताएँ थीं। स्वभाव से अपने योग्य और श्रेष्ठ शत्रुओं के प्रति उसी प्रकार उसकी भावनाएँ थीं जैसी किसी सम्भ्रान्त वीर की होनी चाहिए। कर्नल निकौल्स ने अपने सरकारी संदेश में उसकी स्मृति में उसके प्रति बड़े सुन्दर उद्गार व्यक्त किए।"

२५ अप्रैल—कर्नल निकौल्स द्वारा अल्मोड़े पर आक्रमण। गोरखों की प्रमुख

सेना की अंगद सरदार के नेतृत्व में पाण्डे खोला के ऊपर सिटौली की धार में कोसी की ओर से आने वाले मार्ग पर व्यूह रचना। दूसरी गोरखा सेना की चामू भण्डारी के नेतृत्व में कलमटिया पहाड़ पर किले बन्दी। शेष सेना का चौंतरा बाम शाह के नेतृत्व में अल्मोड़ा की रक्षा पर नियुक्त रहना।

ब्रिटिश सेना के कप्तान फेथफुल का चौथी नेटिव इंफैण्ट्री को लेकर गोरखों की किलेबन्दी पर आक्रमण। दूसरी ब्रिटिश टुकड़ी का लै०क० गार्डनर के नेतृत्व में सिटोली की पहाड़ी की ओर कप्तान फेथफुल के समानान्तर आगे बढ़ना। चौथी रेजीमेंट के ५० सैनिकों का आगे बढ़कर गोरखा सैनिकों को सिटोली से विस्थापित करना और एक अन्य ब्रिटिश सेना नायक कप्तान लीज द्वारा भागती गोरखा सेना का पीछा करना। अल्मोड़े की ओर जाने के पाँच भिन्न मार्गों पर ब्रिटिश सैनिकों का अधिकार। कलमटिया की चोटी पर नियुक्त गोरखा सैनिकों को अल्मोड़ा की गोरखा सेना से पृथक् करने के ब्रिटिश प्रयास में सफलता। कर्नल निकौलस का आगे बढ़कर पोखरखाली में अपना मुख्यालय रात तक स्थापित कर लेना। हीराडुंगरी पर ब्रिटिश सेना का जमाव। रात ११ बजे गोरखा सेना का चामू भण्डारी के नेतृत्व में कलमटिया से उतर कर ब्रिटिश सेना के ठिकाने पर आक्रमण। गोलियों की आवाज सुनने पर गोरखों का लालमंडी की ओर से भी ब्रिटिश सेना पर आक्रमण। हीराडुंगरी पर गोरखा सेना की विजय। निकोल्स द्वारा लै० ब्राउन तथा विनफील्ड को हीराडुंगरी की ओर उस पर फिर अधिकार करने के लिए भेजना। कर्नल निकौलस द्वारा लै० कर्नल गार्डनर को भी उसी ओर भेजना। तीन बार गोरखों द्वारा ब्रिटिश सेना को पछाड़ना अंत में पराजित हो कर पीछे हट जाना। भीषण लड़ाई में दोनों ओर अनेक सैनिकों का मारा जाना। गोरखों का कर्नल निकौलस के मुख्यालय की किलेबन्दी पर आक्रमण। दो व्यक्तियों का ६ फीट ऊँची किलेबन्दी को तोड़ कर अन्दर घुसना किन्तु मारा जाना। रात भर भयंकर लड़ाई। लै० टापली तथा २११ ब्रिटिश सैनिकों का मारा जाना। कहा जाता है कि गोरखों के निकट आने के कारण कुछ सैनिक गोरखों के ऊपर किए गए गोली बौछार के कारण अपने ही सैनिकों द्वारा मारे गए।

२६ अप्रैल—ब्रिटिश सेना अल्मोड़ा किले के निकट की ओर बढ़ती केवल १७ गज दूरी पर रह गई। लालमंडी किले पर ब्रिटिश गोला बारी। लालमंडी से गोरखा सैनिकों का पीछे की ओर से पलायन। ९ बजे तक गोलाबारी होती रही। उस समय चौंतरा बाम शाह ने समर्पण का झंडा फहराया और एक पत्र भेजा। पत्र के साथ ही किले में बन्द कप्तान हेयरसे का भी एक पत्र था जिसमें लड़ाई बन्द करने का अनुरोध था। लड़ाई बन्द करने के सम्बन्ध में उन शर्तों के पालन का अश्वासन दिया गया था जिनको मिस्टर ई० गार्डनर ने कुछ दिन पूर्व चौंतरा बाम शाह को

लिख कर भेजा था। लै० कर्नल गार्डनर को बाम शाह से बात करने के लिए भेजा गया। गोरखों ने अगले दिन समर्पण पत्र पर हस्ताक्षर करने तथा प्रान्त को छोड़ने और सभी अन्य स्थानों की किला बन्दी को भी भंग करने का आश्वासन दिया। यह निश्चय हुआ कि उन्हें अपनी तोपों, बन्दूकों, सैनिक सामग्री तथा अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ काली पार करने की अनुमति दे दी जाय। ब्रिटिश सेना उनको उस पार जाने के लिए सुविधाएँ तथा वाहनों का प्रबन्ध भी यदि यह आवश्यक हुआ तो कर देगी।

२७ अप्रैल—आत्म समर्पण और निष्क्रमण के संधि पत्र पर मि० ई० गार्डनर, चौंतरा बाम शाह, चामू भंडारी, जमशदन थापा के हस्ताक्षर। लालमंडी किले पर ब्रिटिश झंडे का फहराया जाना। कैप्टन हेयरसे का मुक्त किया जाना। बाम शाह तथा उसके सरदारों का पोखरखाली में कर्नल निकौल्स के मुख्यालय में पहुँचना तथा कर्नल निकौल्स के तम्बू में १६ तोपों की सलामी से उनका अभिवादन और स्वागत। उनके द्वारा नाहन, श्री नगर तथा पश्चिम के अन्य मोर्चों के गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा, रणजोर सिंह आदि को पत्र भिजवाया कि वे भी लड़ाई बन्द करें तथा उसी प्रकार की सुविधाएँ ब्रिटिश सेना से प्राप्त करें जैसी उन्होंने अल्मोड़ा में प्राप्त कर ली हैं।

युद्ध का वर्णन गोरखों के शब्दों में– पत्र इस प्रकार था "२२ तारीख को गणानाथ के डांडे पर युद्ध हुआ। हस्तिदल और जैरोखा काजी ६ सिपाहियों सहित मारे गए। अन्य घायल हो यए। शत्रु के भी एक कप्तान सहित ७ व्यक्ति मारे गए। शत्रु की सेना कटारमल में थी और कुछ लोग स्याही देवी और धामस में थे। २५०० आदमी फतेपुर पहाड़ी पर थे। बागेश्वर से हमारा सम्बन्ध टूटा जा रहा था। इसलिए मैंने अपने भाई हस्तिदल को गणानाथ भेजा। उसके तथा जैरोखा के युद्ध में मारे जाने से शत्रु का उत्साह बढ़ गया फिर भी मैंने अपनी सेनाओं का यथाशक्ति उपयोग किया। मंगलवार २५ तारीख की रात को शत्रु ने योरोपियन अफसरों को आगे करके अपनी बटालियनों तथा ८ हाथियों पर रखे गए तोपों से सिटोली पर आक्रमण किया। इसकी सूचना कप्तान अंगद को दी गई। मैंने भवानी वख्श की देखरेख में अपनी पूरी सेना, केवल एक पट्टी अपनी रक्षा के लिए छोड़कर, भेज दी। मैं और कुमुक नहीं भेज सकता था क्योंकि इससे लाल मंडी और चारुलेख में रंगेलू की चौकी बहुत कमजोर पड़ जाती। हमारे लोग शत्रु के एक हजार बन्दूकधारियों की गोलियों की बौछार का सामना नहीं कर पाए और अपने स्थानों को त्यागने के लिए विवश हो गए। नर शाह चौंतरा, कुछ बारूद लेकर दूसरी दिशा की ओर गया उसने भी यथाशक्ति प्रयत्न किया। किन्तु जहाँ हमारे पास एक बन्दूक से गोली चलती थी वहाँ उनके पास से जवाब में २० बन्दूकों की गोली बौछार हो

जाती थी। उनकी इस निशाने बाजी को हमारा सह सकना कठिन था।

"शत्रु ने शहर में भी हमारा पीछा किया तब मैंने लाल मंडी और नन्दा देवी के किलों की रक्षा करने का निश्चय किया। तदनन्तर कप्तान अंगद एक पालकी में और उसके सैनिक नीचे की सड़क से आ पहुँचे। मैंने ३० आदमियों को हाथों में खुकरी लेकर शत्रु का सामना करने के लिए कहा। इस बीच शत्रु ने दीप चन्द के मन्दिर के पास की चौकी पर अधिकार कर लिया और हमारे किले की ओर तोपों की गोला बौछार करनी आरम्भ कर दी। मैंने भण्डारी काजी से कलमटिया की ओर के सिपाहियों को रात में पातालदेवी के ऊपर हीराडुंगरी की ओर से शत्रु पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इस आक्रमण में शत्रु का एक लेफ्टिनेंट तथा ९८ सिपाही मारे गए और हमने हीराडुंगरी पर अधिकार पा लिया। यद्यपि इस हमले में सूबेदार जबर अधिकारी तथा मस्त राम थापा खेत रहे। २० मिनट के उपरान्त लै० कर्नल गार्डनर के नेतृत्व में कुछ यौरोपियनों के साथ हमारे ऊपर दुबारा आक्रमण हुआ। सरदार रणसूर कार्की अपने जमादारों तथा ४५ वीरों के साथ इस युद्ध में मारे गए। कोई भी हमारा आदमी ऐसा नहीं रहा जिसे चोट न लगी हो तब मैंने जस मदन थापा के नेतृत्व में कुछ और कुमुक भेजी किन्तु इनमें से कुछ आदमी भाग गए और कुछ ने भागने की कोशिश की। इस लिए जस मदन थापा आगे न बढ़ सका रात भर गोलियों की बौछार होती रही। प्रातः कालू भण्डारी की सेना सिटोली की ओर वापस चली गई और शत्रु की सेना किले की ओर आ गई। शत्रु ने किले की खाइयों की ओर गोलाबारी की जिसका हमने लगातार ६ घंटे तक गोलियों और पत्थरों से जबाव दिया। हथगोलों का आक्रमण दिन रात चलता रहा। आदमियों के अतिरिक्त स्त्रियाँ और पशु भी इस गोलाबारी से नहीं बच पाए। कप्तान हेयरसे ने राय दी कि हम को राजा की सम्पत्ति तथा अपनी तोपें हटा लेनी चाहिए। मैंने उनको उत्तर दिया कि जितना बच सके उतना ही अच्छा हैं तथा अब उनको युद्ध की समाप्ति के लिए अनुरोध करना चाहिए। मैंने चामू भण्डारी को बुला भेजा और हम चारों ने विचार विमर्ष किया कि अब आगे क्या कार्यवाही की जाय। हमारे पास गोला बारूद तो बहुत अधिक था किन्तु हमारे सिपाही और नये रंगरूट बिल्कुल बेकार थे। जब वे लोग जिन पर आपकी सारी आशाएँ निर्भर हों आपके साथ विश्वासघात कर दें तथा केवल बड़ादार (मुखिया) ही विश्वास के योग्य रह जायें तो किया क्या जाय? असल गोरखाली ही उपयोगी सिद्ध हुए। इस पर विचार करके हम इसी निर्णय पर पहुँचे कि हमें अपने स्वामी की सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिए और उसे व्यर्थ ही नष्ट नहीं करना चाहिए। अतः हमने मिस्टर गार्डनर को बातचीत के लिए बुलाने का निश्चय किया। मिस्टर गार्डनर से पूछने पर कि इस लड़ाई का कारण क्या है उन्होंने जवाब दिया कि बुटवल के तहसीलदार की हत्या से गवर्नर-जनरल बड़े कुपित

हैं इसीलिए उन्होंने युद्ध की इस बड़े पैमाने पर तैयारी की है। पहले तो उन्होंने हमारे साथ संधि करने में कोई लाभ नहीं समझा किन्तु यदि हम दोनों का मतभेद कुछ शर्तों पर दूर हो सके तो कहा कि यह अच्छा है कि "काली के पार चले जाओ और अपनी सरकार को लिखो कि वह अपने किसी अधिकृत प्रतिनिधि को जिसे संधि वार्ता करने का पूरा अधिकार हो गवर्नर जनरल से बात करने के लिए भेजें।" उनके इस उत्तर पर मैंने इसी भाँति लिख दिया है। अब गोरखाली और अंग्रेजों के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने की दशा में प्रगति हो रही है। इसलिए आप सब लोग पश्चिम में भी अपनी अपनी सेनाओं को मोर्चों से वापस बुला लें। हम काली नदी के पूर्व की ओर जा रहे हैं। आपको लड़ाई समाप्त कर देनी चाहिए। जनरल औक्टरलोनी से सन्धि की वार्ता करनी चाहिए। अपनी सेना और अपने सैनिक सामान तथा भंण्डार को अपने साथ लेते आओ। तब हम आपसे मिलकर सरकार को लिखेंगे कि गवर्नर जनरल के पास सभी मामले तय करने के लिए एक वकील भेजा जाए।"

पश्चिम की ओर के युद्ध मोर्चे

पश्चिम की ओर किसी गोरखाली सेना ने अंग्रेजों का कोई विरोध नहीं किया। उक्त पत्र के मिलने पर वे सब गोरखा सेनानायक अपनी अपनी सेनाओं सहित बाम शाह से मिलने के लिए डोटी की ओर कूच करते गए। मुख्यतः पाली पछाऊँ में रामगंगा के बाँये तट पर पाली का किला था और उससे १२ मील उत्तर की ओर गढ़वाल सीमा पर लोहबा का किला था जहाँ गोरखा सेना थी। इन दोनों स्थानों पर १५०-१५० गोरखा सिपाही थे। लोहबा में हरखदेव जोशी के प्रभाव में आकर स्थानीय जनता ने २२ अप्रैल १८१५ को ही, अल्मोड़े के पतन के चार दिन पहले, इस किले पर आक्रमण करके गोरखाली सेना की रसद और वहाँ के पानी को बन्द कर दिया था। गोरखा लोहबा छोड़ने को विवश हो गए थे। (हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स पृष्ठ ६६७) गढ़वाल में किसी भी स्थान पर किंचित भी विरोध ब्रिटिश सेनाओं का नहीं किया गया। गवर्नर जनरल ने मि० ई० गार्डनर को कुमाऊँ का नागरिक प्रशासक अपना एजंट तथा कमिश्नर नियुक्त किया। यह आदेश ३ मई सन् १८१५ को प्राप्त हुआ तदनन्तर कर्नल निकौल्स के साथ मिस्टर गार्डनर चम्पावत की ओर चले गये।

सिरमौर और नाहन की ओर गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा ने १५ मई सन् १८१५ को आत्मसमर्पण किया। उसकी सेनाएँ सिरमौर की ओर मालौन और देवथल में किलेबन्दी किए हुए थीं। जिन दिनों अल्मोड़े का युद्ध हो रहा था उन्हीं दिनों जनरल औक्टरलोनी ने देवथल पर आक्रमण किया था। इस युद्ध में ७ ब्रिटिश अधिकारी और ३४७ ब्रिटिश सैनिक मारे गए थे। कहा जाता है कि इस दिन गोरखाली

सैनिकों की मरने वालों को संख्या ५०० से अधिक थी तथा उनका वीर सेनानायक भक्ति थापा भी मारा गया था। कुमाऊँ पर हुए आक्रमण के कारण पश्चिम की पहाड़ियों की ओर से गोरखों का सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया था। गोरखाली सरदार चाहते थे कि युद्ध समाप्त किया जाय किन्तु अमरसिंह थापा उनकी बातों पर ध्यान नहीं देता था। गोरखा सैनिकों में इसी कारण कुछ मतभेद उत्पन्न हो गए थे। अमर सिंह थापा के पास केवल २०० सैनिक रह गये थे। अतः वह १५ मई को बाम शाह के पत्र मिलने पर मालौन तथा जैथक के किलों सहित कुमाऊँ और सतलज के बीच के भू-भाग को जनरल औक्टरलोनी को समर्पित करने के लिए विवश हुआ। इस ओर गोरखा सेना को अपने हथियार अपने साथ वापस ले जाने की आज्ञा नहीं दी गई केवल इस प्रतिवाद के कि अमरसिंह थापा को उसकी वीरता और उच्च पद के कारण अपने ध्वज तथा दो तोपों के साथ चलने की अनुमति दी गई। इसी प्रकार जैथक की रक्षा करने वाले रणजोर सिंह को भी अनुमति मिली। प्रिंसेप लिखता है-" इस प्रकार वह अभियान जो जनवरी मास में एक निरी विपदा लगता था मई के अंत तक इतना सफल हुआ कि ब्रिटिश सत्ता के अधिकार में घाघरा से लेकर सतलज तक का पूरा पहाड़ी प्रदेश आ गया।" (हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स-एट० पृष्ठ ६७२)

————

कुमाऊँ में आरंभिक ब्रिटिश शासन

नैपाल से कुमाऊँ गढ़वाल सम्बन्धी उक्त संधि का पुष्टीकरण ४ मार्च १८१६ को हो पाया। यदि हरखदेव जीवित रहता तो इस संधि का क्या रूप होता यह तो कल्पना का ही विषय है। जिस व्यक्ति ने कई बार अपनी आसन्न मृत्यु को टालने में चमत्कारिक सफलता प्राप्त की, जो गोरखा शासन के विरुद्ध, उस समय जब वह सिक्कम से सतलुज तक फैले समूचे पहाड़ी प्रदेश में सबसे अधिक शक्तिशाली शासन था हथियार उठाने में भी न झिझका, क्या वह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की अधीनता को सहज ही स्वीकार कर डालता ? यह प्रश्न भी हरखदेव की असामयिक मृत्यु से अनुत्तरित रह जाता है। श्री बद्री दत्त पाण्डे हरखदेव जोशी को देशद्रोही, बंगाल के अमीचन्द अथवा दिल्ली के जय चन्द की भाँति विदेशी सत्ता का साथ देने वाला कपटी और धोखेबाज कहने में नहीं चूकते। (पृष्ठ ४३८-कुमाऊँ का इतिहास)

यह कहा जाता है कि हरखदेव जोशी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुमाऊँ को अपने अधिकार क्षेत्र में लेने से पहले मिस्टर फ्रेजर के साथ कनखल में एक समझौता किया था। इस समझौते में १८ शर्तें थीं। इस शर्तनामें की एक प्रति गणानाथ के मंदिर में रखी हुई बताई जाती है। यह प्रति फारसी शब्दों से बोझिल है और आषाढ़ सम्वत् १८७२ की लिखी ज्ञात होती है। इसके अनुसार हरखदेव ने सरकार कम्पनी बहादुर के "करने फतेह मुल्क कोहिस्तान" से पूर्व लाला भारामल खत्री के मकान मुकाम कनखल में 'कुमाऊँ की प्रजा, उसके राजा तथा दीवान और स्वयं अपनी सन्तति के लिए' १८ शर्तें रखी थीं। इन शर्तों में अन्तिम शर्त थी—"कम्पनी को मेरे लड़के को जो नैपाल में गोरखों द्वारा बन्दी बना दिया गया है छुड़ाने की कोशिश करनी चाहिए" तथा अपने और अपनी सन्तति के राजभक्त बने रहने का वचन भी दिया गया था। इस शर्तनामे की पुष्टि किसी भी अन्य अभिलेख से नहीं होती है। न किसी अंग्रेज पदाधिकारी अथवा इतिहासकार ने ही इस समझौते का उल्लेख किया है। पंडित बद्री दत्त पाण्डे के अनुसार यह जाली दस्तावेज है तथा हरखदेव ने अथवा उनके किसी वंशज ने उसके देशद्रोह का पाप धोने के लिए इसे बाद में गढ़ डाला है।

नैपाल से फिर युद्ध

यद्यपि कुमाऊँ गढ़वाल से हुई संधि में हस्ताक्षर कर्ताओं में बामशाह भी था। किन्तु नैपाल की तराई तथा उनके समूचे पूर्वी प्रदेश की सीमाओं के सम्बन्ध में जो

संधि नैपाल से होने जा रही थी उसमें बाम शाह को नैपाल दरबार ने कुछ काल तक अपना प्रतिनिधि नहीं बनाया। अंग्रेज शासकों ने बाम शाह को आश्वासन दिया कि यदि वह डोटी में अपना पृथक् राज्य स्थापित करना चाहे तो उसे अंग्रेजों की सहायता पर पूरा भरोसा करना चाहिए। बाम शाह का दल गोरखा थापा दल का प्रतिद्वन्द्वी था। दोनों में नैपाल में सत्ता सम्भालने में संघर्ष चल रहा था। यही कारण था कि नैपाल से सन्धि होने में विलम्ब हो रहा था। लॉर्ड हैस्टिंग्स ने कुमाऊँ के प्रशासक ई० गार्डनर के माध्यम से नैपाल दरबार से यह पूछा कि "यदि कुमाऊँ में पुराने राजाओं की सत्ता फिर स्थापित कर दी जाय तो क्या उन राज्यों में शान्ति और व्यवस्था रखने के लिए काली नदी ही पूर्वी सीमा बनी रहेगी या इसमें कुछ हेर-फेर आवश्यक होगा।" (हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स—पृष्ठ ६०८) बाम शाह उस समय डोटी में ही था। उससे अनुरोध किया गया कि वह नैपाल दरबार से यह बात पूछ कर गार्डनर को उत्तर भिजवा दे।

बाम शाह ने थापा दल से अपनी अनबन का उल्लेख करते हुए गार्डनर को बताया कि "यदि संधि वार्ता खसियों (थापा दल) के हाथ पड़ गई तो वह (बाम शाह) न केवल संधि में भाग लेने ही बुलाया नहीं जायेगा वरन् वह और उसके साथी राजा के दल के लोग भी निर्वासित कर दिए जायेंगे।" अन्ततः बाम शाह ने अपने को डोटी का शासक घोषित करने में अरक्षित और असमर्थ पाकर अपने दल को भंग कर दिया। इस पर नैपाल दरबार की ओर से उसे लॉर्ड हेस्टिंग्स से संधि वार्ता करने का अधिकार मिल गया। संधि का मसविदा आ गया उसमें अंग्रेजों द्वारा काठमांडू में अपना प्रतिनिधि रखने और नैपाल की तराई के अधिकांश भाग को ब्रिटिश शासन में मिलाने की शर्त थी।

बाम शाह ने इस संधि पत्र का प्रबल विरोध किया। उसका तर्क था कि तराई के क्षेत्र के बिना नैपाल अस्तित्व में ही नहीं रह सकता। अंग्रेज तराई पर यदि अपना अधिकार रखें तो संधि उनके साथ नहीं हो सकती यह तो नई लड़ाई का एक कारण हो जायेगा तथा अब तक तो नैपाल का एक ही दल अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहा था। इस शर्त को देख कर जो लड़ाई होगी उसमें नैपाल का एक एक नागरिक रणक्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए उतर आएगा। बाम शाह ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊँचे उठकर देश भक्ति का जो यह अनूठा परिचय दिया उसकी तुलना पाण्डे जी हरखदेव की कपट नीति से करते हैं। उनके अनुसार जबकि अंग्रेज बाम शाह को डोटी का पृथक राजा बनाने में भी सहायता दे रहे थे उसने उनके इस समर्थन को ठुकरा कर अपने निजी स्वार्थ को तिलांजलि देकर अपने राष्ट्र को अखंड रखने का पूरा प्रयत्न किया। इसके विपरीत हरखदेव ने अपने स्वार्थ के लिए देश के साथ विश्वास-

घात किया और विदेशी सत्ता को कुमाऊँ सौंप दिया। (कुमाऊँ का इतिहास—पृष्ठ ४३८)

अंग्रेजों ने संधि पत्र में अन्ततः कुछ संशोधन कर दिया। यह संशोधन था कि नैपाल की तराई में नैपाली सरदारों तथा ज़मीदारों को दो ढाई लाख रुपये वार्षिक मूल्य की जागीरें दी जा सकती हैं। केवल मकवानपुर, विजयपुर, महोत्तरी, सवोत्तरी और मोरंग का तराई क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप दिया जाय। इस नये संधि पत्र पर नैपाल दरबार की ओर से गिरि राज मिश्र नामक नैपाल के राजगुरु ने वार्ता की। यह तय हुआ कि इस संधि पत्र पर १५ दिन के भीतर राजा के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए जायेंगे। यह संधि पत्र दिसम्बर के आरम्भ में लिखा गया था। फरवरी मध्य तक भी राजा के हस्ताक्षर प्राप्त नहीं हुए और गोरखों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

जनरल औक्टरलोनी के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना काठमांडू की ओर बढ़ी। एक दूसरी सेना सीतापुर से डोटी की ओर आक्रमण करने आगे बढ़ी। कुमाऊँ में काली नदी के पश्चिमी तट पर स्थान-स्थान पर सैनिक छावनियाँ स्थापित कर दी गईं। कुमाऊँ से जो सेना नैपाल की ओर बढ़ी उसका राजनैतिक एजेंट गार्डनर नियुक्त किया गया। गोरखों की किलेबन्दी को तोड़ कर औक्टरलोनी की सेना काठमांडू घाटी में पहुँच गई। फरवरी के अन्त में गोरखों ने अंग्रेजी सेना पर धावा बोल दिया। काठमांडू की इस लड़ाई में एक ही दिन में ८०० गोरखा सैनिक मारे गए। अंग्रेजी सेना में भी २ अधिकारी और २०० अंग्रेज मरे। औक्टरलोनी का पलड़ा भारी देख कर गोरखा शासकों का उत्साह ठंडा पड़ गया। उसी संधि पत्र पर, जो दिसम्बर मास में लिखा गया था राजा ने हस्ताक्षर कर दिए। कुछ समय बाद तराई का कुछ और इलाका नैपाल को दे दिया गया तथापि पूर्व में तिस्ता नदी के पास का तराई क्षेत्र सिक्किम के राजा को और बहराइच गोंडा के पास अवध के नवाब को दे दिया गया।

आरम्भिक ब्रिटिश शासन

कुमाऊँ में सन् १८५६ ईस्वी तक शेष भारत के जिलों के नियम और कानून लागू नहीं किए गए। प्रथम अंग्रेज कमिश्नर ट्रेल ने सन् १८३५ तक इसे अपनी जागीर की भाँति अपने ही मौखिक आदेश से शासित किया। लगान की वसूली के लिए गोरखों द्वारा किया गया भूमापन और बन्दोबस्त आधार मान लिया गया। तथापि इस अवधि के तीन महत्वपूर्ण सुधार उल्लेखनीय हैं। तब तक कोई पति अपनी पत्नी के अपहरण कर्ता की हत्या सरकार को सूचना भर देकर कर सकता था। यह रामराज्य की हिन्दू परम्परा मानी जाती थी। पत्नी से वंचित पति अपहरण कर्ता के प्रति न्याय कर्ता और जल्लाद दोनों का काम स्वयं कर लेता था। 'अनेक निर्दोष व्यक्ति ईर्ष्यालु

पति द्वारा मौत के घाट उतार दिये जाते थे। ट्रेल ने इस प्रकार की हत्या को एक अपराध घोषित कर दिया और हत्यारे को मृत्यु दंड देने के आदेश जारी कर दिये। दूसरी कुत्सित परम्परा तब तक पति द्वारा अपनी पत्नी के विक्रय तथा विधवा को उसके पति के परिवार के लोगों के द्वारा बेचने के अधिकार की थी। बच्चों का भी विक्रय होता था। ऐसे बाल विक्रय पर गोरखा सरकार परिवहन कर लेती थी। ट्रेल ने इन दोनों प्रथाओं को समाप्त कर दिया। तीसरा सुधार पत्नी को वापस पाने, कैनी और छ्यौड़े (क्रीत दास) की अदला-बदली विक्रय और उनकी मुक्ति के दावों का न्यायालयों में दायर किया जाना था। ऐसे मुकदमों की सुनवाई के लिए ट्रेल ने नई स्थापित अदालतों के द्वारा बन्द कर दिये। यह घोषित कर दिया कि ऐसे मुकदमों की सुनवाई किसी भी अदालत में नहीं होनी चाहिए। लोग इनका समझौता स्वयं ही कर लें। यद्यपि यह सुधार पूर्ण रूपेण स्त्रियों की दशा सुधारने तथा दास प्रथा के समाप्त करने में सहायक नहीं था तथापि इससे दासों के विक्रय और विनिमय के अधिकार को राज्य की मान्यता से वंचित कर दिया गया।

सन् १८२० में गढ़वाल के राजा को गोरखों के बन्दीग्रह से छुड़वा कर उसको अलखनन्दा-मन्दाकिनी के पश्चिम का भूभाग सौंप दिया गया। इस कार्यवाही से कुमाऊँ में भी असंतोष की एक लहर उठी। कुछ लोग यह अनुरोध करने लगे कि कुमाऊँ में भी राज सत्ता पुराने राजवंश के लोगों को सौंप देनी चाहिए थी। इस अनुरोध में अधिक बल नहीं था। ट्रेल ने इसको सुगमता से दबा दिया। सन् १८३५ में कुमाऊँ में कमिश्नर के पद पर बैटन नियुक्त हुआ। इसके सम्बन्ध में पहले अध्याय में लिखा जा चुका है। जहाँ ट्रेल का शासन स्वयं अंग्रेजों द्वारा अनिश्चितता तथा कुशासन के काल से अभिहित किया गया वहीं बैटन के शासन को नियमानुकूल बताया जाता है। इस शासन के आरम्भ में सन् १८३६ में दास प्रथा का अन्त कर दिया गया। भूमापन का कार्य नये सिरे से आरम्भ हुआ। नये कानून और नई न्याय संहिताएँ बनीं।

गोरखा शासन में कामदार झिजाड़, दन्या, दिगोली, कलौन, ओलियागाँव तथा गल्ली के जोशी थे (कुमाऊँ का इतिहास पाण्डे-पृष्ठ ३९९)। द्वाराहाट के चौधरी, गंगोली, उपराड़ा, स्यूनराकोट तथा खूँट के पंत भी राज्य कर्मचारी थे। अंग्रेजों के समय में भी राज कर्मचारी यही लोग रहे। जिन परिवारों ने कुमाऊँ में ब्रिटिश सत्ता को स्थापित करने में सहायता दी थी उनमें से कुछ को राजनीतिक पेंशने मिलीं तथा कुछ को सरकारी नौकरियाँ। मुन्सिफों के जो कालान्तर में कानूनगो कहलाए, कुछ स्थान इसी परिवारों के लोगों के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी को निर्धारित (मौरूसी) घोषित कर दिये गये। डॉक्टर हेमचन्द जोशी के शब्दों में "अल्मोड़ा के लोग

सरकारी नौकरी करना व पेंशन पाना ही अपना परम कर्तव्य समझते थे अतः अल्मोड़ा में स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव वहुत कम पड़ा।" (अल्मोड़ा जनपद-स्मारिका—२ पृष्ठ ५०) तात्कालीन अल्मोड़े की मनोवृत्ति का अनुमान गुमानी कवि की इस कविता से लग सकता है जो उन्होंने नैनीताल के असिस्टेंट कमिश्नर लुशिंगटन की पदोन्नति पर हवालबाग आने पर बनाई थी—

हुनर्गाह कीना, न बिसौ महीना, न दौलत मही़ना, तलपना न घरवर
लगी कर्जदारी, यही मर्ज भारी, हरो अर्ज सारी, सुनो बन्दि परवर
मुझे खूब रोजी, इनायत करो जी, खुशी से लुशिंगटन कमिश्नर बहादुर
वड़े आप दानी, करे दुआपानी, हमेशा गुमानी, खड़ा होय हाजिर ॥

(कुमाऊँ का इतिहास-पाण्डे-पृष्ठ ४३९)

वैटन के समय में सन् १८५२-५३ के लगभग कौसानी, बेनीनाग, मैंगड़ी, डुंगलोट आदि कई स्थानों में चाय के बगीचे स्थापित किये गए। इन बगीचों के स्वामी अंग्रेज थे।

रामजी साहब

सन् १८५६ ईस्वी में हेनरी रैमजे (कालान्तर में जनरल सर हेनरी रैमजे) कुमाऊँ के कमिश्नर नियुक्त हुए। पंडित बद्रीदत्त पाण्डे जी के अनुसार वे पूर्वोक्त लुशिंगटन नामक कुमाऊँ के कमिश्नर के दामाद थे तथा तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी के चचेरे भाई थे। कुमाऊँ में पिछली सदी के गाँव-गाँव के लोग रैमजे कमिश्नर को जानते थे। कहा जाता है वे कुमाऊँनी में बातचौत कर लेते थे तथा बड़े ही लोकप्रिय थे। उन्होंने कुमाऊँ में किसी बड़े नवाव की भाँति उसे अपनी ही रियासत समझकर उस पर उसी भाँति शासन किया। उन्होंने अपने रहने के लिए अल्मोड़ा, बिनसर, तराई तथा रामनगर में मकान बनाए। तराई के दलदलों को साफ कर वहाँ पहाड़ी नदी नालों से सिंचाई के लिए गूलें बनाने का कार्य उन्हीं के समय में हुआ। वे चार महीने पहाड़ पर, चार महीने अल्मोड़ा तथा शेष चार महीने तराई भावर में बिताते थे। रामनगर की स्थापना उन्होंने ही की थी। अंग्रेजों ने 'उन्हें कुमाऊँ का राजा' कहा है। पर्वतीयों के लिए वे सबका दुख-सुख सुनने वाले रामजी साहब थे।

सन् १८५७ का स्वतन्त्रता आन्दोलन

जिस समय मेरठ में स्वतन्त्रता आन्दोलन की चिनगारी सुलगी कुमाऊँ के कमिश्नर रैमजे गढ़वाल के हिम प्रदेश के दौरे पर थे। वे सूचना मिलते ही बमोरी की तराई में पहुँच गए। रामपुर की ओर से उपद्रवकारियों का एक दल कोटा भाबर पहुँच गया था। उसे आसानी से दवा दिया गया। कहा जाता है कि अवध के नवाब

का अंग्रेजों के विरुद्ध कटिबद्ध होने को एक पत्र काली कुमाऊँ के कालू महरा को मिला था। चम्पावत में आनन्द सिंह फर्त्याल और बिशन सिंह करायत भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हथियार उठाने के कारण इस अन्दोलन में शहीद हुए बताए जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि काली कुमाऊँ में अंग्रेजों के पक्ष में भी खुशाल सिंह जलाल तथा उनके कुछ साथी थे।

जैसा अन्यत्र दर्शाया गया है कुमाऊँ में इस समय सरकारी पदों पर चौथानी अथवा दीवान कहे गए तथा अंग्रेजों को कुमाऊँ में लाने वाले राजभक्त परिवारों के लोग ही थे। अतः कुमाऊँ के केन्द्र स्थल अल्मोड़ा पर आन्दोलन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। रामपुर की ओर से आए हुए विद्रोहियों के दल ने सितम्बर सन् १८५७ में बमौरी के आस-पास (वर्तमान हल्द्वानी काठगोदाम) लूट पाट मचाई। मेजर हेनरी रैमजे (तब वे मेजर थे) कमिश्नर ने इस विद्रोह को तत्काल ही शांत कर दिया। अक्टूबर के मध्य में दुबारा इसी स्थल पर विद्रोहियों का एक और दल पहुंचा। उसे भी शांत कर दिया गया। कुछ अन्य दल रामपुर से नैनीताल की ओर आते हुए बहेड़ी और किछा में ही रोक दिए गए। नैनीताल विप्लव के सताए और मैदान की लू से मारे अंग्रेजों और उनकी पत्नियों के लिए आश्रय स्थल बन गया। मुरादाबाद कालाढूंगी नैनीताल मार्ग जिसे मुरादाबाद के रोड सुपरिटेंडेंट श्री नन्द किशोर जोशी ने विद्रोहियों से बचाए रखा अंग्रेज शरणार्थियों के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। ईद के समय इस आशंका से कि सम्भवतः रामपुर के मुसलमान विद्रोही नैनीताल पर आक्रमण न कर दें एक दिन के लिए अंग्रेज महिलाएँ अल्मोड़ा भेज दी गईं। बरेली के कुछ विद्रोही रोहेला मुसलमानों को बन्दी बनाकर नैनीताल रखा गया। और बाद में फाँसी गधेरे (हौक्सडेल) में फाँसी दी गई।

रैमजे की सन् १८५७ सम्बन्धी रिपोर्ट—सन् १८५७ के स्वतन्त्रता आन्दोलन की समाप्ति पर उसके सम्बन्ध में कुमाऊँ के तत्कालीन कमिश्नर सर हेनरी रैमजे ने जुलाई १८५८ को सरकार को एक रिपोर्ट भेजी थी। उसका आशय इस प्रकार है—
"जब मैं गढ़वाल के हिम प्रदेश के दौरे पर था तो २२ मई १८५७ को मुझे 'गदर' की सूचना मिली। मैं तत्काल अल्मोड़ा वापस पहुँचा। वहाँ समुचित व्यवस्था करके नैनीताल आकर उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया। इस नगर में बाहर से प्रवेश करने के लिए दो ही तंग दर्रे हैं जिनकी सुरक्षा पुलिस के बरकंदाज आसानी से बिना हथियार के पत्थरों से ही कर सकते हैं। जून में बरेली और मुरादाबाद से अंग्रेज शरणार्थी नैनीताल पहुँचने आरम्भ हो गए। केवल सार्जेंट स्टेबल्स के अतिरिक्त सभी शरणार्थी सकुशल पहुँचे। मैंने सारे कुमाऊँ में मार्शल-लॉ लागू किया। जून मास में डाक व्यवस्था भंग हो गई। मैदानी जिलों से हमें कोई समाचार प्राप्त नहीं हुए। जुलाई

अन्त में मसूरी होकर पहाड़ी मार्ग से डाक की व्यवस्था स्थापित की गई। तराई के छोर पर कहीं कहीं उपद्रव हुए उपद्रवकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की गई। जिसका प्रभाव अच्छा पड़ा।

"प्रत्येक शरणार्थी को धन की कमी के बावजूद दैनिक भत्ता दिया गया। पहाड़ के लोगों की मैदान के विद्रोहियों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। रामपुर के नवाब ने अपनी रियासत में शान्ति और व्यवस्था रखने का भरसक प्रयत्न किया। न्यायाधीश (जज) क्रैक्रौफ्ट विल्सन को मुरादाबाद से नैनीताल पहुँचाने में भी नवाव ने ही सहायता की। बकरीद के दिन कहीं नैनीताल पर बलवाई आक्रमण न कर दें इस आशंका से २०० बालक और महिलाएँ अल्मोड़ा भेज दी गईं। किन्तु ऐसी आशंका निर्मूल निकली। बकरीद के बाद ही वे लोग वापस आ गए। यहाँ ६६ गोरखा और ८ अनियमित कुमाऊँनी सेना है। किन्तु उनकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। उन्हें वापस बुला कर अन्यत्र उपयोगी काम के लिए लगाया जा सकता है। सरकार का यह आदेश कि महिलाओं और बच्चों को मसूरी भेज दिया जाय व्यवहारिक नहीं है। नैनीताल से अधिक सुरक्षित मसूरी नहीं है। ऐसा करना सम्भव भी नहीं है क्योंकि जनता में आतंक है और सामान ढोने के लिए कुली जुटाना सम्भव नहीं है। स्थानीय लोगों को बोझ ढोने के काम पर लगाना उचित नहीं है।

"भार वाहक कुलियों की प्राप्ति न होने से बोझा ढोने का काम करने के लिए जेल से ४० बन्दियों को इस शर्त पर रिहा किया गया कि यदि उनका आचरण अच्छा रहा तो उन्हें क्षमा दान कर दिया जायेगा। यह योजना बड़ी सफल रही। इन बन्दियों ने काम भी बड़ा अच्छा किया और कालाढूँगी में कई उपद्रवियों को मौत के घाट उतार दिया।" (नैनीताल—जे०एम०क्ले—१९२७)।

पुलिस व्यवस्था—कमिश्नर रैमजे ने कुमाऊँ में नियमित पुलिस व्यवस्था को अपने कार्यकाल में लागू नहीं होने दिया। उसके अनुसार पहाड़ के निवासी इतने भोले और सीधे सादे होते हैं कि इस इलाके में नियमित पुलिस की नियुक्ति करना उनके हित में नहीं है तथा तराई के बोक्सा और थारू लोग तो पहाड़ी लोगों से भी अधिक सरल प्रकृति के होते हैं। इसीलिए कमिश्नर रैमजे ने पटवारी को ही पुलिस इंस्पेक्टर के अधिकार दे दिये थे। रैमजे पहाड़ों में अंग्रेज आप्रवासियों के स्थायी रूप से बसने के विरुद्ध था। तराई भावर में जो कम्पनी सरकार बहादुर की जमीदारी बन गई थी वह मैदान की ओर से आए काश्तकारों को खेती करने के लिए पट्टे देने के विरुद्ध था। वह कुमाऊँ के प्रशासन व्यय में अपने निज और सरकारी नियंत्रण अथवा प्रशासन में कोई भेद नहीं रखता था। कुमाऊँ में उसे उच्च न्यायालय के अधिकार प्राप्त थे। कमिश्नर कुमाऊँ को हाईकोर्ट के ये अधिकार रैमजे के चले जाने के ५०-६० वर्ष

वाद तक भी प्राप्त थे। कुमाऊँ की कोई अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय में नहीं जाती थी। कमिश्नर के निर्णय की अपील सीधे प्रिवी कौंसिल में होती थी। यही नहीं रैमजे अपने को कुमाऊँ, जिसे वह प्रॉविंस-ऑफ कुमाऊँ कहता था, का सर्वोच्च पुलिस अधिकारी, लेखा और राजस्व का सभी नियमों और कानूनों से परे नियंत्रक और महालेखाकार भी समझता था। इस प्रकार अपने को वह कुमाऊँ का सभी अधिकारों से सम्पन्न प्रशासक मानता था। मैदानी जिलों के किसी नियम को वह अल्मोड़ा की अदालतों में नहीं लागू होने देता था। अनेक बड़े विवादों में तो वह अपनी ही व्यक्तिगत जानकारी के ऊपर निर्भर रह कर मौखिक निर्णय दे देता था। सम्भवतः इसी कारण ब्रिटिश सरकार ने सन् १८८४ ईस्वी में उसे अनिवार्य रूप से सेवा निवृत कर दिया। इसके उपरान्त भी सन् १८९२ ईस्वी तक वह अल्मोड़ा के अपने मकान (वर्तमान सर्किट हाउस) में रहा। अन्ततः उसके सम्बन्धी उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध इंग्लैण्ड ले गये। कहा जाता है कि अल्मोड़ा छोड़ते हुए उसे बड़ा दुख हुआ।

कुमाऊँ में कमिश्नर रैमजे न केवल अनेक जनश्रुतियों और किम्वदन्तियों का विषय ही है उसके अनेक निर्णय अब भी मान्य हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी पुलिस विभाग नहीं है और पटवारी को ही पुलिस इंस्पेक्टर के अधिकार प्राप्त हैं। कुमाऊँ में केवल अस्कोट के अन्य कोई जमींदार या तालुकेदार नहीं था। ग्रामीण क्षेत्र के किसान अपनी भूमि के स्वयं स्वामी थे लगान बहुत ही कम था। ग्रामीण जनजीवन सुखी और समृद्ध था। कोई भी राजा हो यदि उसके दैनिक जीवन में वह हस्तक्षेप नहीं करता तो जनता सुखी रहती ही है। रैमजे कमिश्नर से पूर्ववर्ती काल में जनता पर भाँति-भाँति के कर लगे हुए थे। गोरखा शासन काल में नैपाल दरबार अपने अधिकारियों की प्रति वर्ष बदली कर दिया करता था। इसलिए ये अधिकारी अपने थोड़े से कार्यकाल में अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा से भाँति-भाँति के कर लगाते थे। गोरखों से पहले भी कुमाऊँ के राजाओं के समय में भी जनता पर करों का भार बहुत अधिक था। बाज बहादुर चन्द ने तो मौकर (मवासे पर कर) तथा मुण्डकर (पॉल टैक्स) लगाकर इस धन को मुगल बादशाह को अदा करने की परम्परा चलाई थी। परिणामतः कुमाऊँ की ग्रामीण जनता को कमिश्नर रैमजे का शासन काल वास्तव में राम राज्य लगा। इसीलिए वह कहलाता भी राम जी साहब था।

कुली उतार

जैसा अन्यत्र दर्शाया गया है अंग्रेजों को अपने शासन के आरम्भिक काल में अपना सामान ढोने के लिए कुलियों को प्राप्त करना कठिन सिद्ध हो रहा था। सन्

१८१५ में भी जब पहली बार ब्रिटिश सेना कुमाऊँ में आई थी तो सामान ढोने के लिए हाथियों का उपयोग किया गया था। ये हाथी भुजाण से आगे कथालेख पर्वत-माला पर चौमूवा देवी की चोटी के ऊपर (६३५४ फिट) चढ़ाए गए थे और उसके उपरान्त कटारमल और हवालबाग तक सेना का सामान ढोने के काम में लाए गए थे। पूर्व की ओर कैप्टन हेयरसे की सेना ने चम्पावत में सैनिक सामान ढोने के लिए ऊँटों का प्रयोग किया था। इसी कठिनाई के कारण कमिश्नर रैमजे ने सन् १८५७ में जेल में सजा पा रहे कैदियों को छोड़ कर उनसे कुलियों का काम लिया था। कालान्तर में अधिकारियों की संख्या बढ़ने से यह समस्या और भी विकट हो गई। फलतः अंग्रेज अधिकारियों ने 'कुली उतार' और 'बरदायश' की प्रथा को चालू किया। प्रत्येक गाँव के मुखिया के पास एक सरकारी रजिस्टर रखा गया जिसमें प्रत्येक भू-स्वामी को कुली की सूची में दर्ज किया गया। जब कोई सरकारी अधिकारी या अंग्रेज सैलानी किसी गाँव में पहुँचता तो उस गाँव के सभी भू-स्वामियों को अपने गाँव से उतर कर उस अधिकारी या पर्यटक का बोझ अपने गाँव के पड़ाव से अगले पड़ाव तक ले जाना होता था। मैनुअल ऑफ गवर्नमेंट आर्डर्स में यह निर्धारित कर दिया गया कि किसी सरकारी अधिकारी को अपने दौरे या सैर सपाटे के लिए कितने कुली मार्ग के गाँव से मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ कमिश्नर को १०० कुली, डिप्टी कमिश्नर को ५०, डिप्टी कलक्टर को २४, तहसीलदार को १० तथा नायब तहसीलदार को ६ कुली ग्राम प्रधानों से प्राप्त करने का अधिकार था।

पंडित बद्रीदत्त पाण्डे अपने संस्मरणों में इस प्रथा के विषय में लिखते हैं— "कुमाऊँ के प्रत्येक जमीदार हिस्सेदार व आसामी को सरकार ने कुली उपनाम से सम्मानित कर रखा था। जिसके पास जमीन हो वह कुली कहलाता था। भूमिहीन इस उपाधि से मुक्त था। इस प्रकार कुमाऊँ में जमीन का होना इज्जत की निशानी के स्थान पर कुली कलंक का द्योतक था। प्रत्येक गाँव में कुलियों की संख्या निर्धारित थी और सरकारी आज्ञा आने पर निर्धारित कुलियों को पड़ाव में हाजिर होना पड़ता था। जाड़ा-गर्मी, जीवन-मृत्यु, शादी-ब्याह, हर्ष-रोग कुछ भी हो वह बारी नहीं छूटती थी। बोझा न ढोने पर जुर्माना होता था......दुग पट्टी के एक प्रतिष्ठित थोकदार ने स्वयं मुझे यह घटना बतलाई कि एक बार तनिक देर होने पर दौरे में बोझ ढोते समय साहब के भंगी ने उसे पीटा और मुँह में थूक दिया। जनता सदियों से इस उत्पीड़न से कराह रही थी। यदि गोरखा शासन में गुलामी का रूप शारीरिक कष्ट की चरम सीमा को पहुँचा था तो ब्रिटिश काल में यह व्यवस्थित एवं नियम-बद्ध सलामी में परिवर्तित हो गया।" (कूर्मांचल केसरी—पृष्ठ—२३-२४)।

स्वतन्त्रता आन्दोलन—जहाँमैदानी जिलों में ग्रामीण कृषक का जीवन जमींदारी

प्रथा के कारण दूभर हो जाता था खेती की सारी उपज जमींदार के हवाले करनी पड़ती थी या बनिये का कर्ज चुकाने में वहीं कुमाऊँ में किसान अपने खेतों का स्वामी था। उसे कर नाम मात्र को देना पड़ता था। कोई कष्ट था तो यही कुली उतार का। सरकारी नौकर और भूमिहीन लोग कुली उतार से मुक्त थे। सरकारीं नौकरियों पर चन्द कालीन अथवा गोरखा शासन के ही चौथानी वर्ग के राजभक्त लोगों का अधिकार था अथवा कुछ उन परिवारों का अधिकार था जो अंग्रेजों को कुमाऊँ के आक्रमण के समय सहायता करने के लिए पुरस्कार स्वरूप मुसिफों (बाद में कानूनगो) के पदों पर नियुक्य किए जाते थे। ये पद उसी जाति विशेष के लिए सुरक्षित कर दिए गये थे। नगर निवासी या विशेषाधिकार प्राप्त राजभक्त वर्ग कुमाऊँ में ब्रिटिश अधिकारियों की वर्गभेद की नीति से शासन कराने में सहायक हुआ। स्वतंत्रता अन्दोलन में भी इसीलिए 'कुली उतार बन्द करो' ही अन्दोलन का मुख्य नारा बना। इसका विवरण अन्यत्र दिया गया है।

राज कर्मचारी और अधिकार सम्पन्न परिवार के लोगों द्वारा जो चन्द शासन के आरम्भ से ही चौथानी या ठुल जाति में गिने जाने लगे थे अपने ही वर्ण के ग्रामीण खसि जिमेदार परिवारों को छोटी जाति के समझने की प्रवृति ने कुली उतार जैसी प्रथा को और भी उग्र रूप दिया। इस अन्याय के प्रति प्रतिरोध करने के स्थान पर ग्रामीण वर्ग ने इसे ऐसा ही अनिवार्य कर्त्तव्य समझ लिया था जैसा कि मल विसर्जन। इसीलिए ग्रामीण कुमाऊँनी में मल विसर्सन के लिए 'पटवारी का बोझ ले जाना' लोकोक्ति का प्रचलन हुआ। ("संस्कृति संगम उत्तरांचल" पृष्ठ १११-११६)

———

ऐतिहासिक तालिका

मनुष्य के उत्कर्ष की धारा में पहाड़ी लोग

१,५०,००० वर्ष पूर्व	प्रथम हिम युग का आरम्भ। मानव को अपनी वर्तमान आकृति को पाए आठ-नौ लाख वर्ष हो चुके हैं। ढाई लाख वर्ष पूर्व वह फल बीनने वाले शाकाहारी आदिमानव से उन्नति करके मांसाहारी बन चुका था। काश्मीर घाटी में पाँच लाख से दस लाख वर्ष तक पहले के चार हिम युगों और तीन मध्यवर्ती कालों तथा अन्यत्र अतिवर्षण और अवर्षण कालों में आदिमानव गुहाओं में रह रहा था। पश्चिम एशिया में कार्नेल गुहा में हिम से बचने के लिए उस काल के मानव का आवास। प्रथम पाषाण युग के अवशेष। भारत में आने वाला वह आदि मानव पत्थर को एक ओर काट कर हथियार के रूप में उपयोग करने का ज्ञान रखता था। सम्भवत: वह अफ्रीका की ओर से आया था। वह बोलने लगा था और वाणी द्वारा एक मानव दूसरे से अपने विचार व्यक्त कर लेता था। बिजली गिरने अथवा घर्षण से उत्पन्न आग का उपयोग करने लगा था।
१,५०,००० वर्ष से १,२०,००० वर्ष पूर्व	मानव में कल्पना शक्ति का प्रादुर्भाव। गुफाओं में चित्रों की रचना। अपने अस्तित्व के संरक्षण के लिए समूह में विचरण। कबीलों की रचना।
१२,००० वर्ष से १०,००० वर्ष पूर्व	मौसम में नया मोड़। हिम युगों के उपरान्त पृथ्वी पर सूर्य की तपन। भूमि खुलने लगी। वसन्त ऋतु में नंगी धरती पर मानव का पदार्पण। पशुओं के मांस, हड्डी, खाल और उनके सींगों का उपयोग। मध्य पाषाण युग का आरम्भ। पत्थर के टुकड़ों को तेज करके काटने-छीलने के हथियार बनाना। जीव जन्तुओं से नया सम्बन्ध। कदाचित शिकार खेलकर लौटते समय एक निरीह अश्रुविगलित मृग शावक मार्ग में शिकारी को पड़ा मिला। उसकी माँ को किसी शिकारी ने मार दिया था। मानव को उस पर

दया उमड़ आई। वह मृग शावक (मृग का संस्कृत में अर्थ पशु है) वौंस (जंगली कुत्ता, कुमाऊँनी में) का था। शिकारी ने उसे उठा लिया। उसे वह अपनी गुफा में ले गया। अपने बच्चों के साथ पाला। कुछ ही महीनों का होने पर वह गुफा के द्वार पर पहरा देने लगा और अपरिचित व्यक्ति के उस ओर गुजरने पर उसकी उपस्थिति की सूचना भौंक कर अपने स्वामी को देने लगा। उसने उसे द्वार मृग (संस्कृत कुत्ता) नाम दिया। वह बड़ा स्वामी भक्त निकला। अन्य पशुओं को जंगल से लाकर उन्हें पालतू बनाने का क्रम। कुत्ते के साथ भेड़ और बकरी भी पालतू बनाई गईं।

कुछ मानव समुदायों का प्रगतिशील धारा से पृथक छिटक कर धुमन्तू बने रहना। तथा कुछ का अनाज बटोरने और संग्रह करने के लिए एक स्थान पर रहने का निश्चय। पश्चिम एशिया का प्रगति की मुख्य धारा से छिटका बख्तियारी कबीला तभी से चलते हुए आज भी अभी तक अपने पैर नहीं टिका सका है। इन कबीलों की परम्परागत उदासी अभी छटी नहीं है। न संगीत में कोई नई धुन आई है न जीवन में कोई परिवर्तन लाने की इच्छा ही उदय हुई है। नित्य चलना और नदी नाले पार करते समय बूढ़े और अशक्त लोगों को वहीं छोड़ कर आगे बढ़ जाना यही क्रम अभी चल रहा है। प्रत्येक बेटा बाप का अनुसरण करता है।

१०,००० वर्ष पूर्व
से
६,००० वर्ष पूर्व

वे जनसमुदाय जो घर बसा कर रहने लगे थे बीज उगाने लगे। मानव को जंगली घास और गेहूँ के बीजों से मिला एक नये गेहूँ का बीज मिला। यह बीज उड़ने वाला नहीं था। गिर कर वहीं उग आता था। इस बीज को बीन कर स्वयं धरती पर छोड़ना। गेहूँ की खेती का पश्चिम एशिया में आरम्भ। मृत सागर के उत्तरी किनारे, वर्तमान यरूसलेम के उत्तर पूर्व जेरिचो (टैल-अल-सुल्तान) में सामूहिक आवास की व्यवस्था। (७,००० वर्ष पूर्व)। खेतों की रक्षा के लिए जेरिचो में दस एकड़ के खेतों की परकोटा दीवाल और बीच का दुर्ग बना।

सींग के ऊपर तेज पत्थर का फलक लगाकर गेहूँ काटने की हँसिया का आविष्कार। ईटों का निर्माण। मिट्टी से बर्तन बनाना। बोझ ढोने वाले जंगली गधे का पालतू बनाया जाना। खेती के लिए समय पर वर्षा और धूप की अपेक्षा के लिए सूर्य और चन्द्र की स्तुति। जेरिचो में प्रथम चन्द्र मंदिर। पशु और अन्न के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए मंत्र-तंत्र का उर्वरता (फर्टिलिटी) कर्मकाण्ड। मटर, प्याज, लहसुन की खेती का आरम्भ। नोक पर जोर डालकर कम प्रयत्न से अधिक शक्ति के काम करने का आविष्कार। ईरान के पठार पर कारुन नदी क्षेत्र में कस्स, लुली, गुटी आदि जातियों का बसना जो क़ालान्तर में इलम्तु या पहाड़ी जातियाँ कहलाईं। सुसा नगरी का स्थापन।

कुल्ली सभ्यता का आरम्भ। खेतों को सींचने के लिए नहरें बनाने का आविष्कार। नहरों का पानी धूप में सूख न जाय इसलिए जमीन के नीचे सुरंगें बना कर नहरों का सुरंगों के भीतर होकर ले जाया जाना।

वे जनसमुदाय जो प्रगति की आवासीय धारा से पृथक हो गए थे पूर्ववत् अपने सर्वस्व अपने ही भीतर समेटे आखेट करते रहे। यायावरों का एक समुदाय आर्कटिक क्षेत्र में लैप कहलाया। वे बारासिंघों को पालतू न बना कर उन्हीं के झुंडों के पीछे भागते उनका अनुसरण करते जीवन यापन करते रहे।

६,००० वर्ष पूर्व
से
५,००० वर्ष पूर्व

उत्तर पाषाण युग। धुरी और पहिये का आविष्कार। इलम्तू के पहाड़ी लोग समुद्र मार्ग से दजला फरात घाटी में बसे। अति समृद्ध सुमेर सभ्यता वर्तमान फारस की खाड़ी के सिरे पर पल्लवित हुई।

पश्चिम एशिया में ताँबे का आविष्कार। सुमेर में ताँबे का प्रयोग। सुमेर और भारत में व्यापारिक सम्बन्ध। सीरिया फिलिस्तीन की ओर से भारत के सिंधु-बलूचिस्तान क्षेत्र में व्यापारिक सम्बन्ध।

तीसरे जन समुदाय में चोरी और बरजोरी की प्रवृत्ति का जन्म। इन जन समुदायों का किसानों को लूट कर आगे बढ़ते रहना।

नदी घाटी की सभ्यता का आरम्भ

मिस्र, पश्चिम एशिया तथा चीन में मानव की निरंतर प्रगति की ऐतिहासिक तालिका कालक्रमानुसार नीचे दी जाती है।

	मिस्र	पश्चिम एशिया	पूर्व एशिया
ई० पू० ३५००	प्रथम फराओ मनु (ग्रीक मिनीस) ने दक्षिण और उत्तर मिस्र को मिला कर संयुक्त करके प्रथम राजवंश की स्थापना की।	दजला-फुरात (हिद्दीकेल-पुराता) नदी घाटी में कारुन नदी की ओर के पर्वतीय लोगों (सुमेरी) का जल मार्ग से आगमन।	चीन में पहली प्राचीर वद्ध नगरी का निर्माण।
	३२००-२७८० ई० पू० प्रत्न (आर्केक) युग का प्रथम तथा द्वितीय राज वंश।	३०००-२५०० ई० पू० सुमेर के नगर राज्यों में निरंतर परस्पर युद्ध। कीलाक्षर (क्यूनीफोर्म) लिपि का आविष्कार।	२८०० ई० पू० चीन में चित्रलिपि का आविष्कार।
ई० पू० २९९९	२७८०-२२४० ई० पू० पुराना राज्य या पिरामिड काल। वंशावली ३ से वंशावली ११ तक का राज्य। मेंफिस के निकट सीढ़ीदार पिरामिड, खुफु (चियौप्स) द्वारा गिजे की पिरेमिड का निर्माण। मैनकोरा (चतुर्थ राजवंश) २२४०-२१६० ई० पू० निर्वल केन्द्रीय सत्ता। प्रादेशिक राजा लगभग	२५०० ई० पू० पश्चिम एशिया में वर्तमान फिलिस्तीन पर मिस्र की विजय। दजला फुरात घाटी में अक्कद के सारगौन द्वारा अपने को सुमेर का स्वामी घोषित करना। सारी फारस की खाड़ी से लेकर भूमध्य सागर के भूभाग को अपने अधिकार में करके सुमेर	२६०० ई० पू० चीन में पचांग का निर्माण। तारों की सूचि बनाई गई। २५००-१६०० ई० पू० भारत के पश्चिमी तट पर सिन्धु नदी घाटी में मोहन-जो-दाड़ो तथा उत्तर में

	स्वतंत्र। ग्यारहवें राजवंश ने फिर एकता स्थापित की। थीव्ज (दिव्या) के राजा का केन्द्रीय सत्ता सम्भालना। २१६०-१७३० ई० पू० मध्य राजवंश। बारहवें से लेकर चौदहवें वंश तक। नूबिया तथा दूसरे निर्झर तक मिस्र का अधिकार।	और अक्कद का राजा बनना। २२०० ई० पू० उर नगर तथा बाबेलु पर उसका अधिकार। २०५० ई० पू० इलाम के पर्वतीयों द्वारा उर पर आक्रमण। बाबेलु का विभाजन। क्रीट द्वीप पर मिस्र का प्रभाव। मेसोपोटामिया में निपपुर, इरिदु, बाबेलु, उर, सिप्पार, लारसा, ईरिच, इसिन, कुथह, बोरसिप्पा, दिल्पत, लगाश, मारी, अज्दे, अश्शुर, निनेवा आदि नगर राज्य।	हड़प्पा नगर बसे। २२०५-१५५७ ई० पू० चीन का पहला राजवंश। तिलमन, मेलुखा (बलूचिस्तान) से सुमेर के सम्बन्ध। ताड़मरु(पामीरा) तथा दमिस्क से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध।
ई० पू० १९९९		१८०० ई० पू० बाबेलु और असुर देश में अमरू राजाओं का शासन।	
	१७२०-१५८० ई० पू० एशियाई पशुपाल लुटेरे यक्ष (ग्रीक हिक्सौस) राजाओं ने मिस्र पर अधिकार कर लिया।	१७९० ई० पू० बाबेलु के छठे राजा हम्मुरवि का शासन चरम उत्कर्ष पर। न्याय संहिता का निर्माण तथा उसका एक पत्थर पर लिखा जाना (यह शिलालेख आजकल पेरिस के संग्रहालय में है।)	

१५८०-१०९० ई० पू० यक्ष एशियाई विजेताओं को थीब्ज के शासक द्वारा मिस्र से निकाल भगाना। नये राजवंश की स्थापना। ये राजवंश १८, १९ तथा २० कहलाते हैं।

१५००-१४५० ई० पू० अठारहवें राजवंश के फराओ थुथमोस तृतीय द्वारा पश्चिम एशिया तथा फुरात घाटी पर अधिकार।

१४०० ई०पू० एमैनहौटिप तृतीय द्वारा लक्सोर, कर्नाक में देव मंदिरों की तथा अमौन मंदिर की स्थापना।

१३७०-१३५२ ई० पू० एमेनहोटिप चतुर्थ का अपनी सीरियाई आर्य वंशीय पत्नी के प्रभाव से अपना नाम अख्नेतन (अग्निअत्न–सूर्य की अग्नि) रखना। मिस्रके परम्परागत देवता अमौन की उपासना को त्याग कर अत्न (सूर्य) की उपासना(ग्रीक एटन) आरम्भ करना। अहिंसावादी अखनतौन(अख्नेतन) की निष्क्रियता से पश्चिम

१७५० ई० पू० यहूदी पुरखा अब्राहम का उर से पश्चिम की ओर प्रस्थान।

१६५०-११७० ई० पू० कस्स (कस्साइट) जाति समूह का वावेलु पर अधिकार। वावेलु में कस्स जाति द्वारा घोड़े का प्रचलन।

१५९५ ई० पू० वावेलु पर आर्य जाति के हित्ती राजाओं का आक्रमण।

१५००-१३०० ई० पू० ट्रौय नगर की समृद्धि। क्रीट द्वीप में मिनोवन संस्कृति का आरम्भ। क्रीट द्वीप पर ग्रीक आक्रमण। थुथमोस तृतीय नामक मिस्र के शासक द्वारा बैबीलोन तथा फुरात घाटी पर अधिकार। इस्राइली लोगों का फिलिस्तीन पहुँचना।

१३८० ई० पू० असुर देश के राजा असुर-उ-बल्लित द्वारा असीरिया को स्वतंत्र कर लेना। प्रथम असीरियन (असुर)साम्राज्य की स्थापना। पश्चिम एशिया में असुर शासक शालमनेसर

पश्चिम एशिया से आई हुई आर्य जातियों द्वारा प्राचीन सिन्धु सभ्यता के नगरों का विध्वंस। हरियूपिया का युद्ध। चीन में संगोरयिन नामक अर्ध पौराणिक राजवंश।

पश्चिम एशिया में असुरों द्वारा विजित देशों के नागरिको का जल और थल मार्गों से निष्कासन। कस्स जाति समूह का कश्यप सागर

एशिया में मिस्र के प्रभाव की समाप्ति।	(शाल्व) का प्रभुत्व। अपनी प्राचीन राजधानी अस्सुर नगर को छोड़कर काला नगर में स्थापित। करना	(बहर-इ-कस्सर) से एशिया की ओर आकर बसना।
१३५२ ई० पू० तूतनखामन के द्वारा अत्न (एटन) के स्थान पर फिर अमौन की उपासना का प्रचलन।		
१३१८ ई० पू० फराओ सेती प्रथम द्वारा लाल सागर और भूमध्य सागर के मध्य नहर बनाकर दो समुद्रों को जोड़ना। आर्य जाति के हित्ती राजाओं का एशिया की ओर से मिस्र पर आक्रमण।		
१३००-१२३५ ई० पू० मिस्र में राम नामक फराओ। राम द्वितीय (ग्रीक रैमेसेस) का हित्ती आक्रमणकारियों को रोकने का विफल प्रयत्न। अबुसिम्बैल में राम द्वारा शिलाओं से बने हुए प्रसिद्ध मंदिर का निर्माण।		
१३०० ई०पू० मिस्र में प्रथम बार कर्नाक में सूर्य के घोड़े की आकृति की मूर्तिकला।	१२००-११०० ई० पू० फिलिस्तीनमें फिलिस्तीनी कहे गए लोगों का आक्रमण तथा इस भू-भाग को यह	

१२२५-१२०० ई०पू०
राम (रैमेसेस) के पुत्र मेरप्ता के राज्यकाल में सम्भवतः यहूदी नेता मूसा द्वारा इस्राइलियों को मिस्र से बाहर ले आना।

१२००-११७० ई०पू०
राम तृतीय (रैमेसेस) द्वारा बीसवें राजवंश की स्थापना और समुद्र मार्ग से आने वाले एशियाई और ग्रीकों से मिस्र की रक्षा करना। मेडिनेथ हाबू मंदिर का निर्माण।

१०९०-६६३ ई०पू०
मिस्र की इक्कीस से पच्चीस तक की निर्बल
ई० पू० ९९९ राज वंशावलियों का राज्य।

नाम देना।

११४६ ई०पू०
बाबेलु में नबुचदनेजर प्रथम का शासन।

११२० ई० पू०
असुर शासक तिग्लाथ पिलेसर प्रथम द्वारा पश्चिमोत्तर भू-भाग में भूमध्य सागर तक राज्य का विस्तार। राजधानी असुर का पुनर्निर्माण। ईरान के पहाड़ों तक के प्रदेश पर अधिकार।

१०५०-१०१० ई० पू०
इस्राइल में राजा सॉल।

१०१०-९९० ई० पू०
राजा दाऊद (डेविड)। दाऊद द्वारा यरुसलेम पर विजय और उसे राजधानी बनाना। क्रीट सभ्यता का अन्त। ग्रीक प्रायद्वीप पर हैलनीज जाति का अधिकार।

९६०-९३७ ई० पू०
सुलेमान नामक राजा इस्राइल में। इस्राइल का विभाजन।

८८७-८५९ ई०पू०
असुर नासिरपाल के शासन काल में असुर साम्राज्य की सीमा एशिया माइनर तक,

आर्य जाति का भारत में आगमन ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना।

१०५०-७७०
ई० पू०
चीन में चाऊ वंश।

रोमुलस के नेतृत्व में आप्रवासी मध्य एशियाई लोगों द्वारा रोम नगर की स्थापना। वर्णव्यवस्था का भारत में प्रचलन। ब्राह्मण धर्म।

	महशक (महाशक) तथा पणि (ग्रीक फीनीसियन्स) से अधीनता स्वीकार कराना।	
७३० ई० पू० इथियोपिया द्वारा मिस्र में पच्चीसवें राज वंश की स्थापना।	७४५-७२७ ई० पू० तिग्लात पिलेसर तृतीय द्वारा यहूदियों से आधीनता स्वीकार कराना।	यहूदियों का सामूहिक निर्वासन उनमें कुछ का पश्चिमोत्तर भारत में आप्रवास।
६७१ ई० पू० असुर देश के शासक इसरहद्दौन की मिस्र पर विजय, मिस्र देश असुर देश का प्रान्त बना। मैंफिस तथा सईस में प्रादेशिक शासकद्वारा छब्बीसवें और सत्ताइसवें राजवंश।	आरामदिमस्क के आर्मीनी राज्यों का अपहरण। वाबेलु पर अधिकार। पश्चिम एशिया में असुर साम्राज्य का सबसे बड़ा शासन बन जाना। पुल नाम का धारण करना।	
	७२२-७०५ ई० पू० सारगौन द्वितीय नामक असुर शासक द्वारा २७००० यहूदियों को उनके देश से निर्वासित करना, निनेवा के उत्तर में खोर्सावाद की नई राजधानी।	कुछ यहूदी (संभवतः यदु) कबीलों का जल और स्थल मार्ग से भारत में आगमन।

७६५-६८१ ई० पू०

असुर शासक सेनाचरिब द्वारा वाबेलु नगर को ध्बस्त करना। (६८९ ई० पू०) निनेवा नगर का पुनार्निमाण।

६८०-६६९ ई० पू०

ईसरहद्दौन द्वारा बाबेलु नगर का पुर्ननिर्माण। द्वारका से असुर

मिस्र देश पर आक्रमण और उस पर अधिकार। ईसरहद्दौन द्वारा ६७२ ई० पू० निनेवा में विशाल सभा का आयोजन तथा अपने पुत्र असुर बाण (असुर-बाण-इ-पाल) को अपने मरने के उपरान्त असुर साम्राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करके देवताओं तथा परिवार के सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त करना। इसी सभा में दूसरे पुत्र शम्श-शुम-उकिन को बावेलु का उत्तराधिकारी घोषित करना। यह अभिलेख अभी तक सुरक्षित है।

६६८-६२६ ई० पू०

असुर बाण-इपालि का शासन। निनेवा में मृद फलकों के पुस्तकालय का निर्माण।

बाण की पुत्री ऊषा द्वारा श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का अपहरण कराकर उसे निनेवा (शोणितपुर) ले जाना। हरिवंश पुराण की इस अपहरण की अर्द्ध पौराणिक कथा का समय, असुर-बाण तथा श्री कृष्ण के मध्य हुए युद्ध की घटना।

६७० ई० पू०

आर्यजातीय मेद (मीड्स) लोगों का असुर शासकों के विरुद्ध उठ खड़ा होना तथा अपने पृथक मेद (मीडियन) साम्राज्य की स्थापना। वही राज्य वर्तमान ईरान या फारस है।

भारत में वैदिक (ऋग्वेदिक) सभ्यता का अन्त।

६२६-५३९ ई०पू०

काल्दू या खल्दी (चाल्डियन) साम्राज्य।

६१२ ई० पू०

खाल्दी साम्राज्य का असुर साम्राज्य पर दक्षिण पूर्व की ओर से

नव बावेलु काल्दू या खाल्दी (अंग्रेजी में चाल्डियन) कहे गए असुर भारत की ओर आए।

तथा मेद लोगों द्वारा पूर्व की ओर से आक्रमण। असुर राजधानी निनेवा का अन्त। असुर साम्राज्य का अन्त।	अथर्व वेद की मूर्ति पूजक, मंत्र तंत्र संस्कृति का प्रभाव उपनिषद काल।
६०९-५९४ ई० पू० मिस्र का फराओ नैको मिस्र की स्वतंत्रता के लिए विफल प्रयत्न करता है और ६०५ ई० पू० में नबुचदनेजर द्वारा पराजित किया जाता है।	६०५ ई० पू० नबुपुलेसर के पुत्र नबुचदनेजर द्वितीय द्वारा कर्चेमिश के युद्ध में मिस्र के फराओ नेको (नैचो) को हराना। जूडाह (यहूदा) को बाबेलु के अधीन करना।
६०५-५६२ ई० पू० नबुचदनेजर द्वितीय द्वारा ५८६ ई० पू० में टायर पर अधिकार। यहूदियों का बड़ी संख्या में यरूसलेम से बन्दी बनाकर लाया जाना। बाबेलु का पुर्ननिमाण। संसार के आश्चर्य बाबेलु के झूलते (हेंगिग गार्डन) उद्यान का निर्माण।	६२३ ई०पू० बुद्ध का जन्म (अनुमानित)। ५६६ ई०पू० महाबीर का जन्म (अनुमानित)
५८६-५३९ ई०पु० यहूदियों का बावेलु में दास और बन्दी बने रहना। कुरु महान (साइरस-द-ग्रेट) नामक पारसिक द्वारा मेद साम्राज्य	५६३ ई० पू० गौतम बुद्ध का जन्म ५५१ ई.पू. (मतान्तर), चीन में कन्फूसस नामक दार्शनिक का जन्म ५५० ई० पू०

की अधिसत्ता समाप्त, स्वयं मेद साम्राज्य पर अधिकार करके हखमनीश वंश की राजसत्ता की स्थापना। भारत को पूर्व में तथा पश्चिम में मिस्र कोअपने अधिकार में ले लेना।

५३९ ई०पू०
कुरु (साइरस) द्वारा बावेलु पर अधिकार। बन्दी यहूदियों की मुक्ति, उन्हें स्वदेश जाने की अनुमति। बावेलु हखमनीश शासन के अन्तर्गत।

५३०-५२२ ई०पू०
हखमनीश शासक कम्बुज मिस्र पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में लेता है।

चीन की महान नहर के पहले भाग का निर्माण, ह्वांगहो और यांग टिसीक्यांग नदियों का मिलाया जाना, उत्तर भारत के विजय नामक राजा काश्रीलंका पहुँचकर उस पर शासन करना। इलाम, ईरान, मेद (मीडिया) और असुर देश (अफ्रीरिका) के सम्मिलित प्रदेश में आर्य जाति का शासन।

५२५-४०४ ई० पू०
५२२-४८५ ई० पू०

दारयवहुश (डेरियस) महान द्वारा मिस्र पर अधिकार तथा ५१८ ई०पू० उत्तर पंजाब पर आक्रमण करके मिस्र से लेकर उत्तर पंजाब तक हखमनीश शासन की स्थापना।

६०० ई० पू०

योरोप तथा पश्चिम एशिया
दारयबहुश (डेरियस) के बहिस्तुन शिलालेख

५२० ई० पू०
दारयवहुश की गांधार विजय

५१८ ई० पू०
दारयवहुश का पर्सिपोलिस का

भारत यवन बस्तियाँ।
पश्चिम एशिया के हखमनीश शासकों द्वारा विजित देशों के निवासियों का उत्तर पश्चिम भारत में आकर बसाना, जौर्डन नदी के पश्चिम के मगिद्दो राज्य से

	शिलालेख। ५१५ ई० पू० नक्स-ए-रुस्तम का अभिलेख	निर्वासित निवासियों का मगध नाम से बसाया हुआ उपनिवेश। पार्थियनों द्वारा समुद्र मार्ग से आकर दक्षिण में उपनिवेश स्थापना। ये काँची के पह्लव कहलाए। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित अनेक छोटे छोटे तथाकथित असुर राज्यों की समस्त उत्तर भारत में स्थापना।
५०० ई० पू०	४९६ ई० पू० रेगीलस के युद्ध में रोम द्वारा सभी लैटिन राज्यों पर अधिकार।	४९८-४६३ ई० पू० मगध की ओर अजातशत्रु का शासन।
	४९२ ई० पू० ह्खमनीश शासकों द्वारा यूनान पर आक्रमण। मैसीडोनिया में उनकी पराजय। ४९० ई० पू० माराथौन में ईरानियों और ग्रीकों का भीषण युद्ध।	४८६-४६५ ई० पू० पश्चिमोत्तर भारत ह्खमनीश शासक क्षयार्ष के आधीन। कस्स तथा अन्य पर्वतीय जातियों के सैनिकों का ईरानी सेना में योरोप महाद्वीप में ग्रीक पारसिक युद्ध में भाग लेना। सुवर्ण गोत्र (सम्भवतः जोहार दारमा) से ईरानी शासकों को स्वर्णधूलि की भेंट।
	४८५-४६५ ई० पू० क्षयार्ष (जरक्सीज) ह्खमनीश शासक द्वारा ग्रीक देश पर आक्रमण। सलामिस तथा प्लेटिया के युद्ध। थर्मोपाली का भीषण संग्राम। ग्रीकों द्वारा पारसिकों की पराजय। ४०४ ई० पू०	४०४-४६८ ई० पू० अजातशत्रु और लिच्छवी युद्ध। ४३० ई० पू० भारत में अनेक राज्य और संघ, शिशुनाक वंश का आरम्भ। सम्भवतः ये ईलाम से आए हुए वहाँ के इसी नाम के लोग थे। हर्रान से विस्थापित लोगों का उप-

	मिस्र अर्ध स्वतन्त्र। अठाईसवें, उनतीसवें तथा तीसवें राजवंश। ४५० ई० पू० रोमन विधि संहिता को वारह कांस्य पट्टिकाओं में उत्कीर्ण किया जाता है।	निवेश हरियाणा, कुमु के विस्थापित पर्वतीयों का (काली कुमाऊँ में) कुमू। जमुवा के लोगों का जम्मू में बसकर इस उपनिवेशों को वही नाम देना। पाणिनि का जन्म, साधारण (प्राकृत) जनों की भाषा अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत भाषा वनी।
४०० ई० पू०	रोम द्वारा ईट्रुसीन पर अधिकार (३९६ ई० पू०)	३६४-३२४ ई० पू० नन्द वंश का शासन।
	३३६-३२३ ई० पू० मैसीडोन के फिलिप के पुत्र सिकन्दर महान का शासन। सिकन्दर महान द्वारा ईरान पर आक्रमण। इस्सस का युद्ध (३३३ ई० पू०) ३३२ ई० पू० सिकन्दर द्वारा मिस्र पर आक्रमण और उस पर निर्विरोध अधिकार।	३३० ई० पू० ईरान का शासक दारयवहुश द्वितीय भारत से सिकन्दर के विरुद्ध लड़ने के लिए पंजाव तथा सिन्ध से सैनिक मंगाता है। भारतीय सैनिकों का ईरान जाकर सिकन्दर की ग्रीक सेनाओं से युद्ध। दारयवहुश तृतीय की सिकन्दर द्वारा पराजय। पर्सिपोलिस सिकन्दर द्वारा भस्मीभूत।
	३३२-३२३ ई० पू० ईरान पर सिकन्दर का शासन। वावेलु में सिकन्दर की मृत्यु। ३२३-३२१ ई० पू० सिकन्दर के सम्राज्य का उसके सेनापतियों में बँटवारा। सिकन्दर के सेनापति टॉलमी द्वारा मिस्र पर अपना स्वतन्त्र शासन। फिलिस्तीन भी मिस्र के टॉलमी वंश के अधीन।	३२७ ई० पू०-३२५ ई० पू० सिकन्दर का भारत पर आक्रमण। पोरस की पराजय। सिकन्दर का व्यास नदी से लौटना। सिकन्दर का भारत से लौटना। सिन्ध का यूनानी क्षत्रप फिलिप्पस मार डाला गया।

	३१२ ई० पू० प्रथम रोमन सैनिक मार्ग का निर्माण	३२१ ई० पू० चन्द्रगुप्त द्वारा मौर्य वंश की स्थापना। सीरिया के क्षत्रप सेल्यूकस पर विजय। उसकी कन्या से चन्द्रगुप्त का विवाह।
	३१२ ई० पू० से ६५ ईस्वी तक पश्चिम एशिया, सीरिया आदि में सैल्यूकस वंशियों का राज्य। तथा ३२३ ई० पू० से ३१ ईस्वी तक मिस्र में टालमी वंशियों का राज्य।	३०७ ई० पू० लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार। ३०५ ई० पू० सेल्यूकस का सिन्धु देश में आगमन।
३०० ई० पू०	२८५-२४६ ई० पू० मिस्र में टालमी द्वितीय सीरिया और फीनीसिया पर अधिकार करके भारत के शासक अशोक से राजनयिक सम्पर्क स्थापित करता है। सिकन्दरिया में दीपस्तम्भ का निर्माण। रोम द्वारा सिसली पर अधिकार। कार्थेज द्वारा स्पेन पर अधिकार। प्यूनिक युद्ध। २५० ई० पू० पार्थिया में अर्षक (अर्ससीज) प्रथम द्वारा स्वतन्त्र शासन।	३००-२७३ ई० पू० बिन्दुसार का शासन। २६४-२२८ ई० पू० अशोक के राज्य का विस्तार। भारतीय प्रायद्वीप का अधिकांश भाग मौर्य सम्राट अशोक के आधीन। २२१ ई० पू० चीनी सम्राट च-इन अशोक की भाँति सारे चीन को संगठित करता है। प्राचीन दुर्गों को मिलाकर चीन में १४०० मील लम्बी महान दीवाल का निर्माण। चीन में पुस्तकों का जलाया जाना।
	२४६-२२१ ई० पू० टॉलमी तृतीय का सीरिया के सैल्यूकस द्वितीय (२४६-२२६-ई० पू०) के राज्य पर आक्रमण तथा हख्मनीश शासक कम्बुज द्वारा मिस्र से ले जाई गई देव	२७८-२३९ ई० पू० मैसीडोनिया के अन्तिगोनस का अशोक से सम्पर्क। २६९ ई० पू० अशोक का राज्याभिषेक। अन्तिओक द्वितीय और अशोक

	मूर्तियों को फिर वापस मिस्र ले जाना ।	का राजनयिक सम्पर्क ।
		२५० ई० पू० अफगानिस्तान में प्राप्त अशोक का ग्रीक-आर्मीनी द्विभाषी शिलालेख ।
	२०५-१८० ई० पू० टॉलमी पंचम, एशियाई प्रदेश का मिस्र के शासन से सम्बन्ध विच्छेद ।	पार्थिया तथा बैक्ट्रिया जो अन्तिओक द्वितीय के शासन के अन्तर्गत थे उसके विरूद्ध विद्रोह करते हैं ।
	२२६-२२३ ई० पू० सेल्यूकस तृतीय	२१७ ई० पू० बौद्ध प्रचारकों का चीन गमन ।
		२०८ ई० पू० अन्तिओकस तृतीय का गान्धार देश में आगमन ।
		२०६ ई० पू० डिमिट्रियस की अन्तिओक तृतीय के साथ सन्धि, यवन राज्य मगध तक ।
२०० ई० पू०	१९७ ई० पू० रोम द्वारा मैसीडोनिया पर अधिकार तीसरा प्यूनिक युद्ध । कार्थेज ध्वस्त किया गया । रोमन शासक द्वारा दक्षिण गौल पर अधिकार ।	२०० ई० पू० मौर्य राजा शालिशूक का शासन । १९० ई० पू० इयूथिडस की मृत्यु ।
	१७०-१३८ ई० पू० पार्थिया के सम्राट मित्रदत्त (मिथ्रडेटीज) प्रथम द्वारा कैस्पियन सागर से गांधार तक के देश पर अपना अधिकार ।	१९०-१६५ ई० पू० हिन्द यवन शासन डिमिट्रियस के अधीन पश्चिमोत्तर भारत । १८७ ई० पू० बृहद्रथ द्वारा अन्तिम मौर्य शासक की हत्या, मौर्य वंश का अन्त । शुंग वंश की स्थापना ।

	१६५ ई० पू० यूची चीनी तुर्किस्तान में। १६२ ई० पू० बावेलु के क्षत्रप तिमार्कस का सैल्यूकस के विरुद्ध विद्रोह करना।	१८७-१५१ ई० पू० पुष्य मित्र। युक्रिडिटस गांधार में बलख के सिंहासन पर। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह घटना १३९ ई० पू० की है।
	१२३ ई० पू० पार्थिया के मित्रदत्त द्वितीय का सिन्ध और सौबीर (गुजरात) पर अधिकार।	१३८-१२८ ई० पू० पार्थिया में फ्रातीज द्वितीय का शासन। भारत में उसके क्षत्रप। कुमाऊँ-गढ़वाल के यवन राजा। भगदत्त (अपोलोडोटस) वंश। १२८-१२३ ई० पू० पार्थियन शासक अर्तवन (अर्जुन) प्रथम का शासन पश्चिमोत्तर भारत तक। १२५ ई० पू० यूची राजधानी में चीनी राजदूत। ११५-९० ई० पू० कुमाऊँ-गढ़वाल तक मिनेंडर (मिलिन्द) का शासन।
१०० ई० पू०	८७-६३ ई० पू० पौण्ट्स देश के राजा मित्रदत्त षष्टम के विरुद्ध विद्रोह। यूनान में सल्ला द्वारा उसकी पराजय। पौम्पिआई द्वारा उसे पौण्ट्स से निष्कासित किया जाना। पौम्पी सीरिया को रोम साम्राज्य का प्रदेश बनाता है।	७५-३० ई० पू० काण्व वंश। ७३-४८ ई० पू० चीन में सम्राट हसुन्ती (आसन्ती ?) ५८ ई० पू० विक्रम सम्वत का आरम्भ। वानोनेस उप सम्राट बना।
	५८-६० ई० पू० जूलियस सीजर द्वारा गौल पर	५७ ई० पू०-३८ ई० पू० पार्थिया में ओरोडोस प्रथम

अधिकार।

४५ ई० पू०

जूलियस सीजर आजीवन अधिनायक बनाया गया।

४४ ई० पू०

जूलियस सीजर की हत्या।

२७ ई० पू०

जूलियस सीजर के स्थान पर उसका भतीजा ऑगस्टस।

५१-३० ई० पू०

टालमी वंश की अन्तिम शासिका क्लियोपैट्रा (६९-३० ई० पू०)।

४०-३८ ई० पू०

पार्थिया की सीरिया पर विजय।

३१ ई० पू०

अन्तौनी और क्लियोपेट्रा की पराजय।

३१ ई० पू० से ३९५ ईसवी तक मिस्र रोम साम्राज्य का अंग।

४ ई० पू०

नजारथ के यीसू (जीजस) या ईसा का जन्म।

१-१०० ईस्वी

४३ ईस्वी

रोम की दक्षिण ब्रिटेन पर विजय।

१० से ४० ईस्वी

पार्थिया में अर्तवनुस (अर्जुन) तृतीय।

१४-३७ ईस्वी

टिबेरियस का पश्चिम एशियाई शासन।

का शासन।

५४-२४ ई० पू०

ग्रीक इतिहासकार स्ट्रैबो। पंजाब में ग्रीक भाषा को ढाई सौ वर्ष।

४०-३३ ई० पू०

चीन में सम्राट युवान्ती (वासन्ती ?)

३१ ई० पू० से ६८ ईस्वी तक

ऑगस्टस से लेकर नीरो तक के रोमन सम्राटों का पश्चिमोत्तर भारत से व्यापार सम्बन्ध।

२० ई० पू० से २२ ईसवी तक

हिन्द यवन शासक मेउस (मोग)। वानोनेस की मृत्यु। ऑगस्टस को हिन्द यवन राजकों का ग्रीक भाषा में चर्म पर लिखा पत्र।

१८ ई०पू० - स्यालिरिसिस हिन्द यवन

५ ई० पू० से ३० ईस्वी

अज या अय (अजेज) शक शासक। कुमाऊँ-गढ़वाल ग्रीको-रोमन क्षत्रपों के प्रभाव में।

१-६ ईस्वी

चीनी सम्राट साँची के लिए उपहार भेजता है।

१५ ईस्वी

महाक्षत्रप शोणदास।

१५ से ६५ ई०

हिमाकेडफिस (येन-कियोशाँग) कैडफिसस का शासन करनेकी सिक्के।

	३७-४१ ईस्वी	२९-५० ईस्वी	गोंडोफर्नीज
	रोम में कैलीगुला सम्राट।	२ ईस्वी	मेऊस का वायसराय लइयक कुशुंलुक
	५४-६८ ईस्वी रोम का सम्राट नीरो।	२८-४० ईस्वी	अजिलिसिस
	७९ ईस्वी	३५-७६ ईस्वी	अजेस द्वितीय शासन, पार्थव शासक, वरदनीज।
	विसुपियस ज्वालामुखी का विस्फोट, पौम्पियायी तथा हरकुलियन नगरों का विनाश।	४१-५४ ईस्वी	क्लोडियस
	८१-९६ ईस्वी रोम में डोमीटियन सम्राट।	४३-४४ ईस्वी	तक्षशिला में ओपोलोनियस का आगमन। फ्राओत पार्थियन का तक्षशिला पर अधिकार, पार्थव शासन उत्तर भारत में।
	९८-११७ ईस्वी रोम में ट्राजन सम्राट।		
	रोम अपनी उन्नति की चरम सीमा पर।	४५ ईस्वी	हिप्पलस का मानसून, हवाओं की खोज, भोट-चीन से कुमाऊँ होते हुए रोम के सम्बन्ध।
		४६ ईस्वी	तख्ते वाही का अभिलेख
		६७ ईस्वी	काश्यप मातंग चीन में प्रचारक।
		६५-६७ ईस्वी	कैडफिस द्वितीय।
		६८ ईस्वी	नीरो की मृत्यु।
		७०-८० ईस्वी	प्लिनी का ग्रन्थ नेचुरल हिस्ट्री, शक सम्वत का आरम्भ (७८ ई०)
		७८-१०१ ईस्वी	ग्रीकोरोमन राजाओं पर कनिष्क की अधिसत्ता
१०० से २०० ईस्वी	११७-१३८	१०३-१०६	कुषाण राजा वशिष्क
	रोम में सम्राट हैड्रियन।	१०५	पेट्रा द्वारा नवातियन राज्य का अंत
	१२८		
	हैड्रियन द्वारा फुरात नदी	१०६-१०८	हुविष्क
	के पूर्व के प्रदेश पर	१०६-१३०	गौत्तमीपुत्र शातकर्णी
	अधिकार त्याग।	११९	कनिष्क द्वितीय

१३८-१६१	११९-१२५	नहपाण
अंटोनियस प्लस रोम सम्राट।	१२५	नहपाण की गौत्तमीपुत्र द्वारा हत्या
१६१-१८०	१२६-१३०	महाराज भीमसेन।
मार्कुस ओरिलस रोम	१३०-१३१	रुद्रदामन
सम्राट।	१३०-१५९	वशिष्ट पुत्र पुलुयानी
१९७-२११	१३०-१६१	अंटोनियस पायस। टाल्मी का भूगोल लिखा गया।
रोम में सैप्टिमियस सेवरस द्वारा नये वंश की	१४५-१७६	वासुदेव कुषाण शासक।
स्थापना तथा पूर्व के प्रदेश मैसोपोटामिया पर	१५०-१५१	जूनागढ़ का रुद्रदामन का लेख
अधिकार।	१५९-१६६	शिव श्री शातकर्णी। कौशाम्बी में भद्रमघ राजा
	१६७-१७६	शिवस्कन्द शातकर्णी
	१७८	महाक्षत्रप जीवदामन
	१८०-१८१	क्षत्रप रुद्र सिंह
	१८१-१८९	महाखत्रप रुद्रसिंह प्रथम
	१८५	कौशाम्बी में वैश्रवण
	१८८-१९१	ईश्वरदत्त के सिक्के। कौशाम्बी में महाराज भीमवर्मन।
२००-३०० ईस्वी	२२२-२२२	महाखत्रप सिंह दामन
अंतिम पार्थिया के राजा की उसके मांडलिक अर्दशिर द्वारा हत्या। २२६ ई० पार्थियन साम्राज्य पर अधिकार तथा सशान वंश की स्थापना।	२२३-२३७	महाखत्रप रामसेन
	२२७-२३९	चीन में मिंग सम्राट। वासुदेव द्वारा चीन को राजदूत भेजा गया।
२६०	२३९-२५२	महाक्षत्रप यशोदामन
रोमन सम्राट विलेरियन	२५१	महाक्षत्रप विजयसेन
(२५३-२६०) को ईरान	२४७	सैंग हुई (संगभद्र) ने

	के शासक शाहपुर द्वारा बन्दी बनाना		नांकिंग में बौद्ध मठ और विद्यालय स्थापित किया ।
	२७३ ताड़मरु (पामीरा) का विध्वंस		
	(२९३-३०२) आर्मीनिया ईरान के शासक नरशेष के अधिकार से निकला। वह रोम के अधिकार में चला गया ।	२५५-२५७	महाजीवक द्वारा बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद
	२८४-३०५ रोम सम्राट द्वारा अपने पूर्वी प्रान्तों के लिए उप सम्राट की नियुक्ति ।	२५५-२७७	महाक्षत्रप रुद्रसेन द्वितीय
		२६५-२९०	सम्राट वु चीन में
		२७५-२७९	क्षत्रप विश्व सिंह
	२६२ ई० ताड़मरु का उदयनाथ नामक श्रेष्ठि (व्यापारी) रोमन सम्राट गेलियनस द्वारा उप सम्राट (डक्स इम्परर) नियुक्त ।	२७९-२८२	क्षत्रप मातृदामन
		२८२-२९५	महाक्षत्रप भ्रातृदामन
		२९३-३०५	क्षत्रप विश्वसेन
३०० से ४०० ईस्वी	फारस का शासक शाहपुर प्रथम रोमन साम्राज्य के विरुद्ध तीन युद्ध कर के अपने देश परसिस (फारस) को नई प्रतिष्ठा प्रदान करता है ।	३०८	कालीकुमू घाटी में सम्भवतः घटोत्कच गुप्त नामक आप्रवासी कस्स शासक का लिच्छवी राज्य से विवाह सम्बन्ध । घटोत्कच का पुत्र चन्द्रगुप्त मगध तक के भू-भाग का का शासक ।
		३५०	समुद्रगुप्त की दिग्विजय समाप्त ।
		३७५	चन्द्रगुप्त द्वितीय
		४१३	चन्द्रगुप्त द्वितीय का देहान्त

४००-५०० ईस्वी	४०७—रोम की सेनाएँ ब्रिटेन से वापस ४०९ एलरिस का रोम पर आक्रमण ४६१ हूण अट्टिला की पराजय ४५५ रोम पर वण्डालों का आक्रमण । इटली पर ग्रीक अधिकार ।	४५५ कुमारगुप्त प्रथम का देहान्त ४६५ पंजाब पर हूणों का आक्रमण ४६७ गुप्त शासक स्कन्दगुप्त का देहान्त गुप्त साम्राज्य का छिन्न-भिन्न होना । ४७० बालादित्य और हूणों का युद्ध ४७३ कुमारगुप्त द्वितीय ५०० तोरमाण हूण का मालवा तक अधिकार
५००-६०० ईस्वी	५०० जापान में बुद्ध धर्म का प्रवेश ४३५-५५४ गोथिक युद्ध ५६८ लोम्बार्ड (ट्यूटन) इटली में ५९० रोम में ग्रिगरी प्रथम का पोप साम्राज्य की स्थापना । स्काटलैंड में इसाई धर्म का प्रवेश	५०२ मिहिरगुल, शाकल राजधानी ५२८ मिहिरगुल की पराजय ५४२ गांधार और काश्मीर के शासक मिहिरगुल का देहान्त ५५० हूण जाति का हिन्दुओं में विलयन ।
६००-७०० ईस्वी	६०५-६१७ चीन की बड़ी नहर का सिगक्यांग से ह्वाँगहो तक विस्तार ६१८-९०६ चीन में तअंग (तंग) राजवंश की सत्ता ६१२ हजरत मुहम्मद का मक्का से मदीना	६०४ थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्धन का हूणों को खदेड़ने के लिए अपने पुत्र राज्य वर्धन को भेजना । ६०५ राज्यवर्धन थानेश्वर का राजा ६०६ शशांक द्वारा राज्यवर्धन की हत्या और हर्ष का

		पलायन		शासन,
	६३४-७०८	अरब जाति का मैसोपोटामिया, फारस, सीरिया, उत्तर अफ्रीका, ट्यूनिस तथा कार्थेज पर अधिकार। उत्तर अफ्रीका में बैजंटायन शासन का अंत	६४१	हर्ष के चीन से राजनयिक सम्बन्ध
			६४३	ह्वेनसाँग हर्ष के दरबार में
			६४७	हर्ष का देहान्त। नैपाली तिब्बती सेना का तिरहुत पर अधिकार
	६७७	कुस्तुन्तुनिया पर अरबों का अधिकार	६४८	मगध के मंत्री अर्जुन को पकड़ कर बन्दी बनाकर तावोत (तिब्बत) लाया जाना।
	६८७	यरुसलेम पर अरब अधिकार		
	६६६-६६०	ग्रीक पादरी केंटरबरी में नियुक्त		
७००-८०० ईस्वी	७११	स्पेन पर अरब अधिकार	७११	सिन्ध पर अरब आक्रमण
	७१८	कुस्तुन्तुनिया में अरबों की हार	७४०	काश्मीर के राजा ललितदित्य मुक्तापीढ़ और कन्नौज के मध्य संघर्ष
	७५०	बगदाद में खलीफा अब्बासिद		
	७८५-८०६	बगदाद में हारूँ-अल-रसीद खलीफा	७५०	काश्मीर के ललितादित्य की विजय यात्रा सम्भवतः कुमाऊँ गढ़वाल नैपाल मार्ग से मगध तक।
८००-६०० ईस्वी	८००	चार्लेमग्नी पश्चिम रोम का सम्राट	८३४-८४०	गुर्जर और प्रतिहार
			८४०-८६०	कन्नौज में मिहिर भोज
	८२६	इंग्लैण्ड में एग्बर्ट	८६०-६०८	महेन्द्रपाल
	८७१-६०१	इंग्लैण्ड में	८५५	गोपाल आदि मगध के

	अल्फ्रेड महान		पाल वंशी, जनश्रुतियों के अनुसार कालीकुमू में सोमचन्द का कत्यूरी राजा से दहेज में प्राप्त राज्य की स्थापना ।
९००-१०००	९०१-९२५ इंग्लैण्ड में एडवर्ड एल्डर	९१८	कन्नौज पर राष्ट्रकूटों का अधिकार ।
	९८८ रूस में इसाई धर्म का प्रवेश	९२६-११२२	काली कुमाऊँ में खस राज्य

कुमाऊँ और शेष विश्व की ऐतिहासिक तालिका

१०००	१०१९ कन्नौज पर महमूद गजनी का आक्रमण । सातों किलों पर अधिकार ।	१०५०	बंगाल के सेन तथा पाल राजाओं की जागेश्वर यात्रा । जनश्रुतियों के अनुसार आत्माचन्द तथा उनके ८ वंशजों का राज्य डोमकोट (चम्पावत) में बीजड़, जीजड़, जाजड़, जाड़, कालू, आदि १५ खस राजाओं का शासन ।
१०२३	१०२३ मगध के महिपाल का चीन से राजनयिक सम्बन्ध । बंगाल में सेन वंश ।		
	१०३०-९० कन्नौज पर पुनः गहरवार (राठौर) शासन	११२२-१२३४	जनश्रुतियों के अनुसार चन्दवंश पुनः स्थापित तथा चम्पावत में दीप चन्द, नानकी चन्द तक के आठ राजाओं का शासन ।
	११०० इंग्लैण्ड में हेनरी प्रथम । स्वतंत्रता का चार्टर ।	११९१	अनेक मल्ल बाराहाट (उत्तर काशी) में ।
	११७१ सीरिया के सलादीन द्वारा मिस्र देश पर अधिकार	१२१३	अनेकमल्ल दुवारा बाराहाट में
	११८७ यरुसलेम का अधिकार मुसल-	१२२३	दुलू का ताम्रपत्र । दुलू के शासक का कुमाऊँ,

		मानों के हाथ में
	११७६-	मुहम्मद गौरी का
१२००	१२०६	पंजाब और गंगा यमुना के उत्तरी दोआब पर अधिकार।
	१२०६	कुतुबुद्दीन भारत का प्रथम मुस्लिम शासक।
	१२०६-२३	तातार मंगोल चंगेजखाँ के नेतृत्व में मध्य एशिया से बुखारा-१२१६, समरकन्द १२२० तथा मास्को- १२२१ लूटते है। सिन्ध घाटी में छाङ छुन से संजीवनी बूटी के विषय में पृच्छा, वापसी और १२२७ई० में मंगोलिया में मृत्यु
१३००	१३७९	कटेहर (रुहेलखंड) में खड़गू द्वारा सैयद मुहम्मद-वदायूँ के सूबेदार की हत्या।
	१३८०	सुल्तान फिरोज तुगलकद्वारा कटेहर पर आक्रमण। खड़गू कुमाऊँ में शरणागत।

	गढ़वाल तथा उत्तर काशी तक अधिकार। चम्पावत के राजा दुलू के आधीन।
१२२०-१२९०	कत्यूर में आसन्ती देव
१२५२-१३३२	चम्पावत में रामचन्द तथा अन्य पाँच राजा।

		१३९८ तैमूर लंग का हरद्वार पर आक्रमण, चाँडी की ओर प्रवेश । हरद्वार और मायापुरी में लूटपाट
		१३७४-१४०९ गरुड़ ज्ञान चन्द चम्पावत में नालू का विद्रोह
१४००	१४१३-२२ हेनरी पंचम इंग्लैण्ड में	१४१९ गरुड़ ज्ञान चन्द की मृत्यु
	१४५३ तुर्कों का कुस्तुन्तुनियापर अधिकार	१४२०-२१ उद्यान चन्द
	१४९८ वास्कोडीगामा कालीकट में उतरा	१४२३-३७ विक्रम चन्द
	१४१८ खिज्र खां ने गंगा पर कटेहर पर आक्रमण किया।	१४२३ बालेश्वर मंदिर पर विक्रम का ताम्रपत्र पर लेख
	१४२४ सैयदमुबारक शाह कटेहर में ।	१४२४ कुलोमणि पाण्डे के पक्ष में ताम्रपत्र
		१४३० खस विद्रोह
		१४३७-५० भारती चन्द
		१४५०-८८ रतन चन्द
		१४८८-१५०३ किराती चन्द
१५००	१५१७ लूथर द्वारा सुधारवादी आन्दोलन।	१५०३ फल्दाकोट पर किरातीचन्द की विजय खाती राजाओं की पराजय
	१५०२ स्काटलेंड के जेम्स चतुर्थ का इंग्लैण्ड के हेनरी सातवें की कन्या से विवाह	१५०३-१७ प्रताप चन्द
	१५४१ हेनरी अष्टम आयरलैंड का शासक।	१५१८-३३ तारा चन्द तथा मानिक चन्द (१५३३ में)
	१५२६ बाबर द्वारा उत्तर भारत की विजय	१५४१ खबास खां का चम्पावत के कुमाऊँनी राजा के दरबार में शरण लेना।
	१५८७ मेरी-स्कौट रानी को फाँसी।	१५५५-६० भीष्म चन्द की पश्चिम की ओर विजय यात्रा। खम-मरा किले पर अधिकार।
	१५८८ स्पेन के आर्माडा पर इंग्लैण्ड की	१५६० रामगढ़ में खस राजा का विद्रोह गागर और राम-

विजय।
१५५६-१६०५ मुगल सम्राट अकबर

गढ़ पर लूटपाट के उपरान्त अधिकार।
१५६० बालो कल्याण चन्द खगमरा के निकट। श्रीचन्द कत्यूरी राजा से आधीनता स्वीकार कराना।
१५६३ आलमनगर (अल्मोड़ा) की स्थापना, मनकोटी (गंगोली) के राजा के राज्य पर अधिकार।
सोर पर अधिकार।

१५६५-९७ रुद्र चन्द। हुसैन खाँ टुकड़िया द्वारा तराई में लूटपाट।
१५७५ पूर्वी दून में बसन्तपुर नगर पर हुसैन खां टुकड़िया का अधिकार।
१५८८ रुद्रचन्द का मुगल सम्राट अकबर के दरबार में लाहौर पहुँचना। भावर पर मुगल सम्राट के आश्वासन के उपरान्त फिर अधिकार करना। बीरबल को पुरोहित नियुक्त करना। परखू पंत की सेनापति पद पर नियुक्ति सीरा कोट पर आक्रमण। गढ़वाल पर बिफल आक्रमण।

सीराकोट पर परखू पंत की सहायता से अधिकार। गढ़वाल के आक्रमण में कत्यूरी राजा सुखलदेव का विश्वास

१६००–१६१२ सूरत में जहाँगीर का अंग्रेजों को व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने की अनुमति देना।

१६१८-३८ तीस वर्षीय युद्ध योरोप में।

१६२७-५८ शाहजहाँ मुगल सम्राट

१६५८-१७०७ औरंगजेब का शासन दक्षिण भारत पर अधिकार

१६६२ वम्बई चार्ल्स द्वितीय को दहेज में मिला।

१६६० जौन कार्नाक द्वारा कलकत्ता नगर की स्थापना।

१६६० सुलेमान शिकोह का वापस भेजा जाना और ग्वालियर किले में उस का औरंगजेब द्वारा वध किया जाना।

१६८६-६७ ब्रिटेन का फ्रांस से युद्ध

घात। परखू की रणक्षेत्र में मृत्यु। रुद्रचन्द का कत्यूर घाटी पर आक्रमण। अंतिम कत्यूरी राजा सुखल देव का निर्वासन। डोटी में हरिमल्ल शरण लेता है।

१५६७ राजा रुद्र चन्द की मृत्यु

१५६७-१६२१ अल्मोड़ा में राजा लक्ष्मी चन्द द्वारा वाड़ियों (उद्यानों) की स्थापना। ह्युँपाल (बर्फ दानपुर की ओर से लाने वाले) की नियुक्ति। राजा के भाई अंधे शक्ति गोसाईं द्वारा भूमि व्यवस्था। गढ़वाल पर सात विफल आक्रमण।

सियार राजा की उपाधि। गढ़वाल से गंदे कपड़ों की टोकरी में छिप कर पलायन।

१६२१-२४ दिलीप चन्द। पंतों का उत्पीड़न।

१६२५ विजय चन्द। अनूपशहर के गूजर वंश से विवाह सम्वन्ध

१६२५-३८ त्रिमल चन्द

१६३८-७८ बाजबहादुर चन्द। बाजपुर नगर की स्थापना। दिल्ली दरबार में वाज वहादुर चन्द का जाना। गढ़वाल के विरुद्ध मुगल सेना का साथ देना। सुलेमान शिकोह का पहाड़ों में शरण लेना।

१६७२ वाज वहादुर चन्द द्वारा मुंड कर (पौल टैक्स), दिल्ली दरबार को जजिया देने के लिये यह कर प्रत्येक वयस्क पर लगाया गया। जोहार दारमा के हिम दर्रों पर अधिकार। गढ़वाल पर आक्रमण। नगीना में

लूट पाट, उस पर अधिकार। पश्चिम की ओर पाली पछाऊँ पर अधिकार. मानिला में निर्वासित कत्यूरी वंशजों का वहाँ से भी निष्कासन।

१६७८-९८ उद्योत चन्द। काली नदी के पार डोटी पर आक्रमण। खैरागढ़ पर विजय। त्रिपुरा सुन्दरी (अल्मोड़ा) मंदिर का निर्माण। डोटी से जुरैल का युद्ध, उसमें पराजय।

१६९८-१७०८ ज्ञान चन्द। पिंडर घाटी पर आक्रमण। चौकोट और पाली पर गढ़वाल का आक्रमण।

१७०० १७०२-१३ स्पेन में उत्तराधिकार युद्ध।

१७५१ क्लाइव द्वारा आर्कट पर अधिकार।

१७५६-६३ योरोप में सप्तवर्षीय युद्ध

१७५७ प्लासी का युद्ध

१७६५ बिहार वंगाल और उड़ीसा ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में।

१७६७-८४ हैदरअली और टीपू सुल्तान पर मैसूर में ब्रिटिश सेना का आक्रमण

१७७३ रेगूलेटिंग एक्ट

१७०३ गढ़वाल सेना को मेहलचौरी के निकट पराजित किया गया। जुनियागढ़ (चौकोट) पर अधिकार।

१७०८-२० जगत चन्द। गढ़वाल पर आक्रमण, चेचक से मृत्यु (१७२०)। लोहाबा गढ़, पनुवा खाल पर कुमाऊँ का अधिकार। इसके पहले श्रीनगर का राजा जगत चन्द द्वारा पराजित होकर देहरादून की ओर भाग गया। उसका राज्य एक ब्राह्मण को दान में दे दिया गया तथा लूट पाट से प्राप्त धन का कुछ भाग दिल्ली दरबार में नजर भेज दिया गया।

१७२०-२६ देवीचन्द का गढ़वाल पर आक्रमण, लोहबा बधाण और बैजनाथ पर अधिकार।

१७२६-२९ देवी चन्द की हत्या। अजीतचन्द

१७३०-४७ कल्याण चन्द के अत्याचार। विद्रोहियों की हत्या। उनकी निकाली गई आँखों से सात भदेले (डेगचे) भरे गए।

	१७४२-४४	रोहिला आक्रमण। अल्मोड़ा पर रोहिलों का अधिकार। कैड़ारो द्वाराहाट पर भी रोहिला अधिकार, कुमाऊँ की मंदिरों की मूर्तियों का नष्ट किया जाना।
	१७४५	शिवदेव जोशी और रोहिलों के मध्य युद्ध। रोहिला दल की वापसी। कल्याण चन्द का जागेश्वर मंदिर से ऋण लेकर मुगल बादशाह से भेंट करने जाना। सम्भल में बादशाह के शिविर में अवध के नवाब का कुपित होना।
	१७४७	कल्याण चन्द की आँखें फूटीं। शिवदेव को प्रशासन के सभी अधिकार और राजकुमार का संरक्षक नियुक्त किया गया।
	१७४८	कल्याण चन्द की मृत्यु। मुहम्मद शाह मुगल बादशाह तथा रोहिला मुहम्मद खां की मृत्यु। दीप चन्द अल्मोड़ा सिंहासन पर।
	१७६१	पानीपत का युद्ध। शिवदेव और उसके चचेरे भाई हरीराम जोशी के मध्य युद्ध। बाँसुली सेरा में शिवदेव विजयी।
१७७४ वारेन हेस्टिंग्ज गवर्नर जनरल	१७६४	शिवदेव की काशीपुर में उसी की सेना द्वारा हत्या। बड़े पुत्र जय किशन का शिवदेव के स्थान पर उप प्रशासक नियुक्त होना।
	१७७७-७९	मोहन सिंह (चन्द) द्वारा अल्मोड़े पर अधिकार। दीपचन्द और उसके दोनों राजकुमार बन्दी, सीराकोट के जेल में भूखप्यास से तीनों की मृत्यु। जय किशन की

			हत्या। हरखदेव किसी भाँति भाग निकला पर मोहन सिंह द्वारा पकड़ कर बन्दी बना दिया गया, मृत्यु दण्ड की प्रतीक्षा में। गढ़वाल का कुमाऊँ पर आक्रमण। मोहन सिंह का हरख देव को इस शर्त पर छोड़ना कि वह गढ़वाल के विरुद्ध सेना का नेतृत्व करेगा। वह तटस्थ रहा। मोहनसिंह की हार। हरखदेव द्वारा गढ़वाल के राज कुमार प्रद्युम्न शाह का कुमाऊँ में राज्याभिषेक।
१७९२	लार्ड कार्नवालिस को कलकत्ता में चीन के सेनापति का पत्र, नैपाल के विरुद्ध सहायता याचना के लिए। दलाई लामा का पत्र लार्ड कार्नवालिस के नाम तिब्बती में तथा पंचेन लामा का फारसी में था।	१७७९-८६	प्रद्युम्न शाह गढ़वाल के राजकुमार का कुमाऊँ में राज्य। प्रयाग से १४०० नागा साधुओं सहित मोहन सिंह का अल्मोड़े पर आक्रमण। सुवाल कोसी के संगम पर हरखदेव से युद्ध में ७०० नागा मारे गये। हरखदेव की गढ़वाल यात्रा। गढ़वाल के राजा से अपने दरबार में आमंत्रित करने का अनुरोध। राजा के अस्वीकार करने पर उस पर आक्रमण। राजा की मृत्यु।
१८०३	कुमाऊँ गढ़वाल तिब्बत में भयंकर भूकम्प। बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) के मंदिर ध्वस्त।	१७८६	नैथानगढ़ में हरखदेव और गढ़वाली सेना के मध्य युद्ध। हरखदेव की पराजय और पलायन। अल्मोड़ा पर फिर मोहन सिंह का अधिकार।
१८११	दलाई लामा के पोटाला ल्हासा दरबार में प्रथम अंग्रेज प्रतिनिधि। टामस मान्निग की नियुक्ति।	१७८६-८८	मोहन सिंह (चन्द)। हखरदेव का बाढेपुर जाकर रोहिलों की सहायता से अल्मोड़े पर आक्रमण रैलकोट हबालबाग युद्ध। मोहन सिंह मारा गया।

१८०७ ब्रिटिश साम्राज्य में दास प्रथा का अन्त।

१८१४ मई, बुटवल तथा निकट के तीन थानों पर नैपाल का अधिकार। बुटवल के दरोगा की हत्या। ब्रिटिश गोरखा युद्ध। नवम्बर-कलंगा (देहरादून) के आक्रमण के समय गोरखों द्वारा ब्रिटिश सेनापति जिलैप्सी पर आक्रमण। जिलैप्सी की मृत्यु।

१७८६ हरखदेव का अल्मोड़ा में शिव सिंह नाम के कठपुतली राजा को गद्दी सौंपना। जोश्याल शासन। लालसिंह का फजीउल्लाखाँ सहित अल्मोड़ा पर आक्रमण पराजित शिवसिंह की गढ़वाल की यात्रा, हरखदेव का गढ़वाल के राजा को कुमाऊँ की गद्दी पर बिठाने का प्रयत्न। उल्कागढ़ में लाल सिंह से युद्ध। हरखदेव की विजय। अल्मोड़ा में फिर विद्रोह। महेन्द्र सिंह सफल।

१७८८-९० महेन्द्र सिंह (चन्द)। हरखदेव अवध के नवाब के पास। गढ़वाल का प्रतिनिधि बनकर बनारस में ब्रिटिश एजेन्ट चेरी के पास। हरखदेव का गोरखों को आमंत्रण। गोरखों द्वारा महेन्द्रसिंह की पराजय।

१७९०-१८१५ कुमाऊँ-गढ़वाल तथा पश्चिम में सतलज नदी के पूर्वी तट तक के पर्वतीय क्षेत्र पर गोरखा शासन।

१८१४ दिसम्बर हरखदेव द्वारा कुमाऊँ के निवासियों को सम्बोधित ब्रिटिश सेना के पक्ष में गोरखों के विरुद्ध युद्ध के लिए आह्वान।

१८१५ जनवरी मुरादाबाद और पीलीभीत की ओर से ब्रिटिश सेना का कुमाऊँ पर आक्रमण।

१८१५ अप्रेल-२७ अल्मोड़ा (लालमंडी किले) पर ब्रिटिश ध्वजा। गोरखों का काली पार प्रस्थान।

परिशिष्ट

कत्यूरी राजकर्मचारियों तथा अठारह विभागों के मुख्य अधिकारियों के पद नाम जो उनके ताम्र-पत्र चित्र (पृष्ठ १५५) में आये हैं उनकी सूची नीचे दी जाती है—

ताम्रपत्र में उल्लिखित अधिकारी	जिस अर्थ में उपयुक्त हुए हैं
१. नियोगस्थान	राजकर्मचारी
२. राजामात्य	राजा के मंत्रीगण
३. राजनायक	छोटे राजा
४. सामन्त	अधीनस्थ राजा
५. महासामन्त	अधीनस्थ राजाओं के प्रधान
६. महाकर्त्तृकृतिक	राजभवन निर्माता
७. महादण्ड अधिनायक	प्रधान न्यायाधीश
८. महाप्रतीहार	प्रधान पुलिस अधिकारी
९. महासामन्ताधिपति	सामन्तों के विभागों का प्रमुख
१०. प्रमातार	मापक तथा लेख आदि का प्रधान अधिकारी
११. कुमारामात्य	राजकुमारों के शिक्षक मंत्री
१२. उदाधिक	महानिरीक्षक
१३. दुसाध्य साधनिक	पुरोहित
१४. दोषापराधिक	अपराधों की छानबीन करने वाले
१५. चौरोद्धरणिक	चोरों को पकड़ने वाले
१६. शौल्किक	चुंगी अधिकारी
१७. शौल्मिक (गौल्मिक)	हेड कानिस्टेबल
१८. तदायुक्तक	सेवा निवृत कर्मचारी
१९. विनियुक्तक	रिजर्व
२०. पट्टाक	ताम्रपत्रों के लेखक
पट्टाकपचारिक	ताम्रपत्रों के रक्षक
अपचारिक	राजवस्त्रों के रक्षक
२१. शेष मंगाधिकृत	सिंचाई विभाग के अधिकारी
२२. हस्त्याश्वोष्ट्रावल	हाथी, ऊँट, घोड़े आदि के अधिकारी
२३. व्यापृतक	राजदूत

२४. दूत (भूत) प्रेषणिक	संवादवाहक
२५. दण्डिक	राजगदा धारण करने वाले
२६. दण्ड पाशिक	बेड़ीखाने के अधिकारी
२७. विषय वापृतिक	जिलाधिकारी
२८. गमागमिह	हरकारे, डाकिए
२९. खंगिक	तलवार धारी
३०. अभित्वरमाणक	तुरन्त मापन करने वाले
३१. राजस्थानीय	राजा के व्यक्तिगत सेवक
३२. विषयपति	जिला न्यायाधीश
३३. भोगपति	गवर्नर
३४. तरपति	नदी घाटों के अधिकारी
३५. अश्वपति	घुड़सवारों के सेनापति
३६. खण्ड रक्षास्थानाधिपति	सीमाप्रान्त के रक्षाधिकारी
३७. वर्त्मपाल	राजमार्ग रक्षक
३८. घट्टपाल	हिमदर्रों के रक्षक
३९. कोट्टपाल	दुर्ग के रक्षक
४०. क्षेत्रपाल	खेतों के रक्षक
४१. प्रान्त पाल	सीमा के रक्षक
४२. महामनुष्य	ग्राम प्रधान
४३. किशोरवर	किशोरों के प्रतिनिधि (?)
४४. गोमहिष्याधिकृत	पशु विभाग के प्रधान
४५. भट्ट महोत्तम	सर्वोच्च विद्वान
४६. महात्तम-अभीर	अहीरों के सरदार
४७. वणिक	वनिया (व्यापारी)
४८. श्रेष्ठिपुरोग	म्युनिसिपल चेयरमैन
४९. अष्टादश प्रकृति अधिष्ठानीय.	अठारह विभागों के अधिष्ठाता

भाग २

सांस्कृतिक इतिहास

৮ ভাগ

জাতুলীর কলীকুসাদ

त्यौहारों में लोक धर्म का स्वरूप

हिमालय की द्रोणियों के ग्रामीण अंचल में त्यौहारों और लोक गीतों का लोक-संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। पहाड़ी ग्रामीण के लिए अपनी जीविका के उपार्जन के आर्थिक कार्यक्रम जितने महत्व के हैं उतने ही लोकधर्म या लोकसंस्कृति सम्बन्धी कर्मकाण्ड। त्यौहारों के अवसर पर परिवार के बड़े और बूढ़े लोग अपने से छोटों को हरियाला (हरे तिनके) चढ़ाते हैं। पिठावा (रोली) तथा अक्षत (चावल) का तिलक लगाते हैं और यह आशीर्वाद देते हैं:—

'लाग हरेला लाग दसें, लाग बगवाल, जी रये, जागि रये. धरती जस आगव, अकाश जस चाकव है जये। सिंहूँ जस तराण, स्यावे जसि बुद्धि हो। दूब जस पनपिये, सिल पिसि भात खये, जांठि टेकि झाड़ जये।'

अर्थात् हरियाला तुझे लब्ध हो। जीते रहो, जागरूक रहो, पृथ्वी के समान आकल (धृतिशील), आकाश के समान चाकल (प्रशस्त) हो, तुम में सिंह के समान बल, सियार के समान बुद्धि हो। तुम दूर्वा के तृणों की भाँति पनपो। इतने दीघार्यु होओ कि (दन्त हीन हो) भात तुम्हें सिल में पिसा हुआ खाना पड़े और (निर्बल) तुम्हें जांठि (यष्टिका) ले कर शौच जाना पड़े।

हरियाला

उक्त आशीर्वचन में तीन ही प्रमुख त्यौहार माने गए हैं। वे हैं—हरियाला, दशमी, और बगवाल। हरियाला प्रतिवर्ष आषाढ़ सौरमांस के प्रथम दिन (कर्क संक्रान्ति) मनाया जाता है नवविवाहिता बहू और मोर्चे पर गए सैनिक को भी हरियाले के पर्व पर अपने घर पर रहना चाहिए। तू हरियाल झन भेटै, यह एक भयंकर गाली है। पर्व से दस दिन पहिले पाँच प्रकार के अन्न किसी पटरे या टोकरी में पूजा स्थल के पास मिट्टी बिछा कर बो दिए जाते हैं। पर्व तक ये दस दिन के पौधे पीले रंग के पन्द्रह-बीस सेन्टीमीटर ऊँचे हो जाते हैं। इनकी पूजा की जाती है फिर इन तिनकों को शुभ शकुन के लिए शिर पर धारण किया जाता है।

हरियाला ग्रीष्म ऋतु में सूखे और मरे वनस्पति संसार के पुनर्जीवन का प्रतीक है। पहाड़ी प्रदेश में जब नया मकान बन कर तैयार हो जाता है तो गृह प्रवेश के दिन हरे पत्तों के बन्दनवार मकान के चतुर्दिक लटका दिए जाते हैं। एक ऊँचा हरा पेड़ जंगल से काट कर लाया जाता है और उसे मकान के मुख्य द्वार के सामने गाड़ दिया जाता है। बहुधा यह चीड़ का पेड़ होता है जिसका शीर्ष मकान से ऊँचा उठा

होता है। इस शीर्ष भाग में हरे बुनी (पर्ण) का होना अनिवार्य है। केदारनाथ अथवा अन्य प्राचीन शिव मंदिरों में कोई मूर्ति नहीं है। केवल मन्दिर के भीतर रह गई चट्टान की ही शिव के रूप में उपासना होती है। ऐसी उपास्य शिला को अहिछत्रा के प्राचीन खंडहरों की मीनार के ऊपर भी देखा जा सकता है।

मानव जीवन के उदयकाल में संतति और पशुओं का बड़ा महत्व था। अधिक से अधिक संख्या में संतानोत्पत्ति करना और गाय, भेड़, बकरी आदि पशुओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि करने के लिए मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ आदि का आयोजन किया जाता था। बेबीलोन के राजा का प्रतिवर्ष ईश्वरीय विवाह होता था तथा पुंसत्वहीन राजा का वध कर दिया जाता था। हरियाला और शिलाखंड की उपासना में पश्चिम एशियाई प्रजनन कर्म काण्ड या फर्टिलिटी कल्ट बीज रूप में विद्यमान है।

खस

नैपाल और कुमाऊँ के अन्तराल में आर्यों की जो शाखा इन पर्वत प्रदेशों में आई वह पश्चिम एशियायी कस्सी (कस्साइट) कबीलों की थी। यही कस्सी भारत में वैदिक काल में काशि कहलाए जिन्हें ब्राह्मणों को पुरोहित न मानने के कारण वैदिक साहित्य में धर्महीन कह कर तिरस्कृत किया गया है। ईसा के लगभग १५०० वर्ष पूर्व हिमालय की उपत्यका में आए ये लोग खसिय या खस कहलाए। आज नैपाल में खस और क्षत्रिय में कोई भेद नहीं है। कुमाऊँ, गढ़वाल में खस शब्द उजड्ड ग्रमीण के लिए प्रयुक्त अपभानजनक शब्द माना जाने लगा है। तथापि आज से सौ वर्ष पूर्व हुई कुमाऊँ गढ़वाल की जनगणना में आधे से अधिक निवासी खस परिगणित हैं।

कस्साइट कही गई जातियाँ मूलत: कैस्पियन सागर के समीपवर्ती पर्वतों की रहने वाली आर्य वर्ग की थीं। कस्स आर्मीनियाई भाषा का शब्द है। प उस भाषा में वहुवचन का वोधक है। इसी जाति समूह के नाम पर रूस और ईरान के मध्यवर्ती सागर का नाम कस्स-पीयन या कैस्पियन सागर पड़ा। सीमान्त कुमाऊँ का प्रमुख देवता सैं-थान है। उसका मन्दिर गाँव के बाहर बना होता है। यह मात्र एक बड़ा पत्थर किसी शाखा विहीन हरे पेड़ के तले रखा होता है। पेड़ के तले पर की सभी निचली शाखाएँ काट कर केवल बीच की हरी शाख रहने दी जाती है। प्राचीन कनानी और हिब्रू लोग भी हरी शाख और शिलाखण्ड की उपासना करते थे। हरियाला या हरी शाख खस जाति के प्राचीन पश्चिम एशियायी सम्बन्धों का द्योतक है।

बगवाल दीपावली

दीपावली का बगवाल नाम बाघ पर पड़ा है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस पर्व तक जाड़ा इतना बढ़ जाता है कि बाघ आदि हिंस्र पशु जंगल छोड़ कर

गाँव की ओर आने लगते हैं। नैपाल में यह त्यौहार यमपंचक कहलाता है। पूरे पर्वत प्रदेश में दीपावली त्रियोदशी से लेकर द्वितीया तक पाँच दिन मनाई जाती है। पाँचों दिन प्रत्येक गहस्थ संध्या होते ही अपने घर, आँगन, पटांगन (चौक), पनाण (बर्तन साफ करने का स्थल), खल, ओखल (खलिहान और ओखली कूटने का स्थल) तथा धारे-नौले (जल का सोता और बावड़ी) में दीपक जलाते हैं। उन दिनों पहाड़ी घरों की शोभा देखते ही बनती है।

काकपूजन

नैपाल में त्रयोदशी के दिन कौओं की पूजा होती है। उन्हें चावल और दही खिलाया जाता है। बालक कौए के ऊपर हजारी (गेंदा) के फूलों को ताक-ताक कर अपने लक्ष्य की साधना करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिसका निशाना कौए पर लग जाय वह आने वाले वर्ष में सुख और समृद्धि का उपभोग करता है। कुमाऊँ में काक त्यौहार या काकपूजन दीपावली को नहीं वरन मकर संक्रान्ति के अगले दिन मनाया जाता है। संक्रान्ति के दिन विशेष प्रकार के व्यंजन बनते हैं जो घुघुते कहलाते हैं। आटे की बनी तलवार, ढाल भी शक्करपारों की भाँति बना कर तल दी जाती हैं। यह पक्वान्न मालाओं में गूंथ दिए जाते हैं। बच्चे इन मालाओं को पहिन कर कौओं को बुलाते हैं। कौओं का आह्वान करते समय बालक यह गीत गाते हैं :—

काले कौआ काले लगड़-वाड़ा खा ले।
लि जा कौआ यो ढाल, मि कँ दे सुने थाल।
लि जा कौआ नारंगी, मि कँ दे सारंगी।
लै कौआ बड़, मैं कें दे सुनों घड़॥

अर्थात् ए काले कौए, आकर पूड़ी और बड़े खा ले। यह ढाल ले जा और इसके बदले में मुझे सोने की थाल दे जा। यह नारंगी ले जा और मुझे सारंगी दे जा। यह वड़ा ले जा और मुझे सोने का घड़ा दे दे।

श्वान पूजा

नैपाल में चतुर्दशी के दिन श्वान पूजा होती है और यह त्यौहार कुकूर त्यौहार कहलाता है। कुकूर शब्द संस्कृत कुक्कुर का पहाड़ी बोली का रूप है। विश्वास किया जाता है कि धर्मराज युधिष्ठर के साथ जो कुत्ता हिमालय यात्रा में सदेह स्वर्ग गया था वह यम का कुत्ता था। इसी मान्यता के कारण आवारा कुत्तों की भी बन आती है। जितने कुत्ते मिल जांय सबके गले में हजारी (गेंदा) के फूलों की माला पहना दी जाती है। कहीं-कहीं उनको स्नान भी कराया जाता है। कहीं-कहीं कुत्तों की दौड़ें कराई जाती हैं। अंग्रेजी की लोकोक्ति 'एवरी डॉग हैज हिज डे' इस पर्व

पर सार्थक हो जाती है।

इस पर्व पर गाय की स्तुति इस गीत द्वारा की जाती है—

गाई को नाऊँ तो गाजू, लक्ष्मी पूजा आजू।
सुने क्या रे द्वार, रूपे क्या श्रृंगार।
घुरु को देलो उद्धार।
हरयो गोबर ली लीपै को, लक्ष्मी पूजा पूजै को।
बलि राजा लै पठायो को।
तिऊन मा हालने हरदी, हमिलाई लाग्यो सर्दी।।

अर्थात् गाय का नाम गाय जू है, आज लक्ष्मी पूजा है। द्वार (देहली) का स्वर्ण से रूप श्रृंगार किया गया है। जरा दरवाजा तो खोलिए। हरे गोबर से लीप कर लक्ष्मी की पूजा की गई है। हमें बलि राजा ने भेजा है। साग में डालने की हल्दी। हमको लगी है सर्दी।

नैपाल में दीपावली का चौथा दिन गोरु पर्व कहलाता है। गोरु का अर्थ नैपाल में बैल और कुमाऊँ में गाय है। नैपाल में यह विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी बैल के सींगों पर टिकी हुई है। नैपाल में नेवार जाति के लोग गोरु पर्व को महपूजी कहते हैं। वे इस त्यौहार के दिन देवसी नामक विशेष गीत गाते हैं। ताल, मजीरे, ढोलक और हारमोनियम के साथ पुरुषों की टोलियाँ देवसी गीत गाती हुई घर-घर घूमती हैं। देवसी गीत बड़ा मधुर और सुरीला होता है—

झिल-मिल झिल-मिल देवसी रे,
कें को झिल-मिल देवसी रे।
फूल को झिल-मिल, लड़दे फड़दे आयो हो हामी।
हामी आफी आयो को होइना बलि राजा लै पठायो को।
यो घर को लक्ष्मी लै पाणी छू दा ते ले हुने।
जस को बारी मातो री उसै को काँख मा छोरी।
जस को बारी मा केला उसै को काँख में छोरा।

देवसी के दिन गीतों की झिल-मिल है। किस चीज की झिल-मिल है ? फूलों की झिल-मिल है। हम लड़ते-पड़ते यहाँ पहुँचे हैं। इस घर की लक्ष्मी पानी छुए तो तेल हो। इस घर की लक्ष्मी पत्थर छुए तो धन हो। जिसकी बाटिका में तोरई उगी है उसकी कोख में लड़की होगी। जिसकी बाटिका में केला फला है उसकी कोख में लड़का होगा।

यह गीत भी उसी उर्वरा कर्मकाण्ड अथवा सन्तत्ति लाभ के लिए दिया जाने

वाला आशीर्वचन है। उसी फर्टिलिटी कल्ट की छाप इसमें भी है जो खस जाति के पूर्वजों के साथ पश्चिम एशिया से इन पर्वतों पर आई है।

टीका

दीपावली का पाँचवां दिन टीका त्यौहार कहलाता है। यह भारत में मनाया जाने वाला रक्षाबन्धन का ही रूप है। अन्य पहाड़ी त्यौहारों तथा इसमें अन्तर इतना ही है कि इस दिन हरियाले के बजाय च्यूड़ा शिर पर धारण किया जाता है। यह च्यूड़ा नई फसल के धानों से बनाया जाता है। कहीं-कहीं नये धान खीरे के पानी में भिगोए जाते हैं। साधारण पानी में भिगोए च्यूड़े ओखली में कूटने से पूर्व कढ़ाई में गर्म किए जाते हैं तो वे जूठे माने जाते हैं। ऐसे च्यूड़े भात की रसोई की भाँति कच्ची रसोई में परिगणित होते हैं। इसलिए पुरातनपन्थी धानों को खीरे के पानी में भिगो कर तब च्यूड़ा बनाते हैं। खीरे से बड़ी बनाई जाती है। इसलिए दीपावली से कुछ दिन पहिले बड़ी बनाने के लिए जो खीरे काटे जाते हैं उनसे पर्याप्त पानी एकत्र हो जाता है। इस दिन भाई बहिन के घर जाते हैं तो अखरोट भी साथ ले जाते हैं। नैपाल में अखरोट राम-रावण युद्ध में शत्रु की हड्डियों का प्रतीक माना जाता है। अखरोट का एक चोट से टूट जाना शुभ माना जाता है। यदि अखरोट एक चोट से न फूटे तो इस अपशकुन से बहिन आशंका करने लगती है कि आगामी वर्ष मेरे भाई को न जाने कैसी विपत्तियों का सामना करना पड़े।

———

पहाड़ी संस्कृति में मातृदेवी–नना या नैना

कुमाऊँ की इष्ट देवी नैना न केवल अल्मोड़ा नैनीताल में ही उपास्य है वरन् जम्मू कश्मीर, हिमाचल और नैपाल में भी पूजी जाती है। भारत से बाहर बलूचिस्तान में यह नैना स्वाबा या नना बीबी कही जाती थी। सर्व प्रथम कुषाण सिक्कों में देवी नैना की प्रतिमा अंकित मिलती है। कनिष्क ने मैसोपोटामिया की इस नना देवी की उपासना को अन्य देवी देवताओं के साथ अपने साम्राज्य में प्रवर्तित किया जैसा कि उसके सिक्कों से प्रमाणित होता है। नना मूलतः इनना नाम से ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में सुमेर (दक्षिण मैसोपोटामिया) में उपास्य देवी थी। इतिहासकार सैग्स के अनुसार सुमेरी भाषा में 'इन्नना' शब्द का अर्थ स्वर्ग की महिला था तथा उरुक नगर राज्य की प्रधान इष्ट देव नना या इनिन थी।

एरिच नामक नगर राज्य प्राचीन बावेलु के प्रतिद्वन्द्वी नगर राज्यों में प्रमुख राज्य था। वैसे पश्चिम एशिया का सबसे प्राचीन नगर सुषा माना जाता है। सुषा के खण्डहर आज भी सुष नाम से प्रसिद्ध हैं और पुराइतिहास में रुचि रखने वाले पर्यटकों के आकर्षण केन्द्र हैं। भारतीय पुराणों में सुषा को पश्चिम के दिक्पाल वरुण की राजधानी कहा जाता है। प्राचीन सुषा ईसा के ६००० वर्ष पूर्व इलाम देश की राजधानी था। इलाम शब्द का अर्थ सुमेर की भाषा में पहाड़ या ऊँचा स्थल था। इलाम और प्राचीन बावेलु के नगर राज्यों के मध्य अति प्राचीन काल से ही अनबन रहती थी। संघर्ष में कभी इलाम जीतता और कभी पश्चिम के नगर राज्यों के लारसा, असुर, सुमेर, किश या निपपुर के शासक। इलाम में मातृमूलक उत्तराधिकार की की परम्परा थी। भाई बहन का विवाह वैध था। राजगद्दी का अधिकार माँ के सम्बन्ध से ही प्राप्त होता था। एक भाई के मरने पर उसी मा से उत्पन्न दूसरा भाई राज सिंहासन पर बैठता था (रिचर्ड एन० फ्राई-द हेरिटेज आफ परसिया- पृष्ठ ६०)

मातृदेवी की कल्पना

इलाम में सुषा और फिलिस्तीन में जैरिको (जैरिचो) मध्य पाषाण युगीन मातृ मूलक कबीलों के आदिस्थल माने जाते हैं। दोनों स्थलों के उत्खनन से मातृदेवी की छोटी-छोटी मिट्टी की मूर्तियाँ मिलती हैं। यह विश्वास किया जाता है कि जैरिकों में ही आहार की खोज में भटकने वाले मानव ने पहले पहल घर बनाकर रहना आरम्भ किया होगा। खेतों और पशुओं की रक्षा के लिए अपने को सताने वाले प्राकृतिक भयों अथवा जन्तुओं की मुक्ति के लिए आदि मानव ने उनकी उपासना के लिए जादू

मंत्र की कल्पना की होगी। इसी काल में पत्थर, हड्डी या काठ के मणि (तावीज या तिलस्म) बनाने की प्रथा चली होगी। उसने अपने परिवेश की हितकारी और अहितकारी घटनाओं और वस्तुओं में आत्मा के आवास की कल्पना कर के उन्हें किसी भाँति संतुष्ट करने की बात सोची होगी। इलाम तथा फिलिस्तीन के उन निचली गर्म घाटियों में सूर्य और चन्द्र इसी काल में खेती की उर्बरता के लिए उपास्य बने होंगे। जैरिको का चन्द्र देव का मंदिर ६००० ईसा पूर्व का माना जाता है। पुरुष स्वभावत: उस काल में भी खेती करने की अपेक्षा आखेट से ही जीविकोपार्जन करना पसन्द करते होंगे। खेती की रक्षिका इसी कारण देवी ही मानी गई और सूर्य और चन्द्र की आरम्भिक उपासना भी देवी के ही रूप में प्रचलित हुई। पृथ्वी देवी की उपासना का आरम्भ मातृदेवी के रूप में इसी काल में हुआ माना जाता है। (द) स्टोरी आफ जैरिचो—लंदन १९४० जे० वी० ई० गस्टांग)।

उर नगर की इष्ट देवो नन्ना

प्राचीन सुमेर की सभ्यता पर इलाम के प्रभाव को सभी पुराविद् स्वीकार करते हैं। सुमेर की सभ्यता उर के तृतीय राजवंश (२११३-२००६ ई०पू०) के समय अपने चरम उत्कर्ष पर थी। इस काल की लगभग १५००० अभिलिखित मृद्पट्टिकाएँ अब तक पढ़ी और सम्पादित की जा चुकी हैं। लगभग डेढ़ लाख मृद्फलक क्लिष्ट सूत्रों में लिखे होने के कारण अभी तक नहीं पढ़े जा सके हैं। इस वंश के संस्थापक उर नम्मू ने एरिच, लगास, निपपुर, इरुदु आदि नगरों में पुराने भवनों का पुर्ननिमाण किया। उर नामक स्थल पर उसने देवी नन्ना के लिए पचास हाथ ऊँचा तीन मंजिला जिग्गुरात (सुमेरी मंदिर) बनाया। इस जिग्गुरात का उत्खनन सन् १९२३ में प्रसिद्ध पुराविद् सर लियोनार्ड वूल्ली ने किया था। उर-नम्मू का नीति शास्त्र विश्व के सबसे प्राचीन नीति शास्त्रों (कोड) में गिना जाता है। इस नीति शास्त्र का अमेरिकन पुराविदों द्वारा सन् १९५२ में सम्पादन हो चुका है। इसके आरम्भ में उर नगर की स्थापना का सृष्टि के आरम्भ से सम्बंध दर्शाया गया है और इष्ट देवी नन्ना के प्रतिनिधि के रूप में उर-नम्मू की नियुक्ति का उल्लेख किया गया है।

उर-नम्मू का उत्तराधिकारी शुल्गी था। उसके पुत्र अमर-स्वेन (२०४७-२०३९ ई० पू०) तथा शु-स्वेन (२०३८-२०३० ई० पू०) के समय की भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। इन शासकों के राज्य काल के प्रत्येक वर्ष को उस वर्ष की प्रसिद्ध घटना से जाना जाता था। वर्ष के नामकरण के उदाहरण हैं—सिमरु के नष्ट किए जाने का वर्ष, इनन्ना देवी के लिए दमामा निर्माण करने का वर्ष। नन्ना इस राज्य के लिए कितनी महत्वपूर्ण थी इसका अनुमान एक राजा के वर्ष के इस नामकरण से लगता है-—नन्ना के लिए स्वर्ग-सिंहासन बनाने का वर्ष।

उर के तृतीय राजवंश की समाप्ति के उपरांत देवी नन्ना को इलाम के लोग अपने यहाँ उड़ा ले गए। नन्ना के मंदिर की मुख्य पुजारिन उस काल में राजमाता अथवा राजकुमारियाँ ही होती थीं। नन्ना को असुर शासक नवोनिदस (बुन-न-इद) ने अपने मेद, यहूदी और वावेलु के विजित प्रदेशों से बने संयुक्त साम्राज्य की प्रमुख इष्ट देवी बनाने का प्रयत्न किया। उस काल में नन्ना असीरियन भाषा में सिन कही जाने लगी। वैदिक संस्कृत में सिनी बाली (बाल चन्द्र) शब्द नना के सुमेरी उपनाम सिन का ही रूप लगता है। कुमाऊँनी बोली में सिर के चन्द्राकर ईडुल (हैड-पैड) के लिए सिन शब्द का प्रयोग सुमेरी प्रभाव का द्योतक है।

वैदिक देवी नना

मातृदेवी के लिए नना शब्द इण्डो आर्यन हिक्सोस या कस्स (कस्साइट) जातियों ने सुमेरी लोगों को दिया अथवा सुमेरी लोगों से इसे आर्य जातियों ने ग्रहण किया यह कहना कठिन है। वैसे नना शब्द ऋग्वेद के नवे मण्डल के इस स्लोक में आया है—

कारुरहं ततो भिषगुपल प्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवो नुगा इव तस्थिमेन्द्रयन्दो परिस्रव। (९-११२-३)

शब्दार्थ है—मैं कारू (स्तोता) हूँ, तत (पिता) वैद्य हैं और नना (माँ) उपल (सिल) पीसने का कार्य करती है। हम सब पृथक कार्य करते हैं। गायें जैसे गोष्ठ में घूमती हैं वैसे ही वसु (धन) की कामना करते हुए हम भी हे इन्दु (चन्द्रमा), तुम्हारी परिचर्या करते हैं। हे चाँद तुम परिस्रव (वर्षा) करो।

नना देवी को मूर्ति का अपहरण

इलाम देश के शासक जिस राज्य पर अधिकार करते थे उसके इष्ट देव या देवी की मूर्ति को भी अपने देश को उठा ले जाते थे। बैबीलोन के मार्दुक और एरिच (उरुक) की नना की मूर्तियाँ ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में सुषा में पहुँच गई थीं। कई शताब्दियों के उपरांत असुर शासक असुर-वाणपाल ने ६३६ ई०पू० इलाम पर आक्रमण करके सुषा नगर को ध्वस्त कर दिया, मार्दुक और नना की मूर्तियों को उनके मूल स्थान बाबेलु और एरिच वापस भेज दिया। कालान्तर में नना की ईरान में अनाहिता (अनादिता) नाम से तथा अवेस्ता में आर्द्वी नाम से पूजा की जाने लगी। रिचर्ड फ्राई ग्रीक देवी अफ्रोदिति या अर्तमिस और ईरानी अनाहिता को सुमेरी नना का ही रूपान्तर मानते हैं। इतिहासकार सैग्स के अनुसार यहूदी बाइबिल में वर्णित तम्मुज या दुमुजी की पत्नी नना प्राचीन प्रजनन कर्मकांड (र्फाटलिटी कल्ट) में खेती और पशुधन की उर्वरता के लिए पूजी जाती थी। वह सुमेरी देवता एनकी की पुत्री मानी जाती थी।

नैनी और ननै

ईरान के हखमनीश शासकों के समय में नना देवी के लिए अनाहिता-नैनी या अनाहिता ननै इन संयुक्त नामों का प्रयोग मिलता है। इस साम्राज्य के पूर्वोत्तर प्रदेश गान्धार के लोगों को चीनी भाषा में ननई (नैनी) के दास कहा जाता था। (दृष्टव्य—नैना, ननई, नैनी–पार्थियन स्कल्पचर्स ऑफ हट्रा–एच० इंगहोल्ट-न्यू हैवन १९५४) आर्मीक भाषा के एक शिलालेख में भी "देवी ननै-राजा" शब्दों का उल्लेख हुआ है। निसा (ईरान) में एक प्राचीन स्थल के लिए पहलवी भाषा के—'यजन-नैनी-सतपन आपदन' (नैनी देवी का मंदिर) शब्दों का उपयोग हुआ है। यह अभिलेख ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी का है। कुषाण शासकों ने इसी काल में ईरानी और बावेलु के प्राचीन देवी देवताओं को अपने सिक्कों में स्थान दिया। उन्होंने मित्र, आतर, हेराक्लीज आदि ईरानी-ग्रीक देवी देवताओं के साथ नना (नैनी), शिव (ओइशो). महासेन और बुद्ध की आकृतियों को भी अपने सिक्कों में उत्कीर्ण करने की प्रथा चलाई। कनिष्क ने तो ईरानी भाषा को ग्रीक लिपि में लिखने की पद्धति चलाई। कुषाण शासक हुविष्क और वासुदेव के भी कुमाऊँ, कश्मीर, काशगर तथा मथुरा से मध्य एशिया तक फैले भू-भाग में अनेक स्थलों पर सिक्के मिले हैं। शेष भारत में गुप्त-वंश के राज्यकाल में कुषाण आधिपत्य समाप्त हो गया किन्तु ईरान और पर्वतीय प्रदेशों में उस राजवंश के छोटे-छोटे अनेक सामन्त और मांडलिक राजा राज्य करते रहे। ईरान के ससान वंशी राजा शाहपुर प्रथम को कुषाण वंशज कहा गया है।

कुषाण शासक अपने में ईश्वरीय अंश मानते थे। हिन्द-यवन शासकों की भाँति उनके समय में भी राजा देव तुल्य वन्दनीय माना जाता था। महाभारत का वह श्लोक "महती देवताहि एषा नर रूपेण तिष्ठति" (महा० १२-६८-४) इसी भावना का द्योतक है। कुषाण कालीन मूर्तियों में जिन्हें अब श्री कृष्ण और बलराम की मूर्ति कहा जाता है देवी नना की मूर्ति दोनों पुरुष मूर्तियों के मध्य में बनी है। इस मूर्ति के सिर पर छत्र है। कुछ पुराविदों ने इस मूर्ति को देवी एकनंशा कहा है। नैना या नना महाशक जाति की पर्णी या अपर्णी कही गई शाखा के लोगों की उपास्य देवी थी। पर्णी अथवा अपर्णी रिचर्ड एन० फ्राई के अनुसार पहाड़ी (पर्वतीय) का द्योतक है। स्ट्रैबो के अनुसार (९-५०८-५१५) पर्णी लोग उस जाति के थे जिन्हें पुरानी पहलवी में दाह (संस्कृत दास) कहा गया है।

किरात संस्कार

पूर्व काल में सम्पूर्ण दक्षिण एशिया तक विस्तृत हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र किरात मण्डल या किरातवर्ष कहा जाता था। चन्द राजा किराती चन्द ने बोहरों (बोरा) और खेड़ों (कैड़ा) की सहायता से इन घाटियों पर अधिकार किया और अनेक

किराती लोग विस्थापित होकर पहाड़ों के अन्तराल में चले गए। किरातियों की सभ्यता इन्हीं घाटियों में नव आगन्तुकों ने अपना ली। बचे-खुचे किराती लोगों को बोरों और कैड़ों ने अपना दास बना लिया। वे शूद्र माने जाने लगे। यद्यपि किरात नव आगन्तुकों से कहीं अधिक सभ्य और संस्कृति सम्पन्न थे। आज भी कुमाऊँनी बोली में च्यल (पुत्र), बैग (पुरुष), बाव (छूत की बीमारी के बाद शुद्धि), द्यर (मरे हुए पशु का मांस) आदि सैकड़ों शब्द उसी मूल किराती अथवा खस कही गई जाति की भाषा के हैं।

दैनिक जीवन के सभी कार्य कलापों में नव आगन्तुक पुरानी किराती जाति के शिल्पकारों पर निर्भर रहने को बाध्य थे। जब घाटी में खेती की उपज कम होने लगती पशु किसी महामारी से मरने लगते या वर्षा न होती तो किरात देवी देवताओं की उपासना की आवश्यकता पड़ जाती। कुमाऊँनी बोली में वर्षा के लिए द्यौ शब्द है। द्यौ को सन्तुष्ट करने के लिए गाँव के बादी को बुलाया जाता। वह किरातियों में भी सबसे निकृष्ट जाति का माना जाता था। वर्षा लाने के लिए बादी को अपने प्राणों की बाजी लगाकर पुरानी किरात उपासना प्रथा के अनुसार घाटी की सबसे ऊँची चोटी से नदी की पैंदी तक तने हुए एक रस्से पर फिसलना होता था। यह पूजाविधि पिछली सदी के अन्त तक भी प्रचलित रही।

एटकिन्सन ने अपने गजेटियर में इस पूजाविधि का वर्णन इन शब्दों में किया है, "सूखे या अवर्षण से जब खेती चौपट होने लगती और पशु मरने लगते हैं, चतुर्दिक दुर्भिक्ष के लक्षण दिखाई देने लगते हैं तो कुपित द्यौ को प्रसन्न करने के लिए एक समारोह किया जाता है। गाँव के बादी को बुलाकर पूजा पाठ के उपरान्त एक बकरे की बलि दी जाती है। एक रस्सा पहाड़ की चोटी पर से नीचे घाटी तक तान दिया जाता है। बादी को चोटी की ओर के रस्से के छोर पर काठ की जीन पर बिठाया जाता है। रस्से के दोनों छोर खूँटों से बँधे रहते हैं। ये खूँटे जमीन में मजबूती से गाड़ दिये जाते हैं। काठ की जीन रस्सी पर सुगमता से खिसक सके इसके लिए उसके नीचे बीच में रस्सी को अटकाये रखने के लिए एक गहरी नाली बनी होती है। खिसकते समय बादी का संतुलन बना रहे इसके लिए बालू भरे थैले दोनों ओर पैरों में बाँध दिये जाते हैं। बादी जब रस्सी पर नीचे की ओर फिसलने लगता है तो काठ की जीन से, चाहे रस्से पर कितनी ही चिकनाई लगी क्यों न हो, धुंए का अम्बार उठने लगता है।

'रस्से का ढलवान चोटी की ऊँचाई और रस्से की लम्बाई पर निर्भर रहता है। बादी को रस्से की प्रति सौ हाथ लम्बाई तय करने पर एक रुपया दक्षिणा मिलती है। यह दक्षिणा तोल कही जाती है। तोल ठीक हो इसके लिए रस्सी

की लम्बाई बिलकुल ठीक-ठीक नापी जाती है। ऐसे पूजा समारोह के अवसर पर सबसे लम्बी रस्सी जो मुझे दिखलाई दी वह २१ तोल अर्थात् २१०० हाथ लम्बी थी। सभी ऊपर कही गई सावधानियों के बरतने के बाद बादी के लिए एकमात्र खतरा रस्से के टूट जाने का रहता है। इसके निवारण के लिए बादी अपने हाथ की ही बटी रस्सी का उपयोग करता है। यह रस्सी बहुधा डेढ़ या दो इंच मोटाई (व्यास) की होती है। यह बाबड़ (बाबिल) नामक घास की बनी होती है।

"पहले जमाने में ऐसे समारोहों के समय यदि बादी खिसकते समय रस्सी से नीचे गिर पड़ता था तो दर्शक समुदाय उसके गिरते ही अपनी तलबारों से उसका काम तमाम कर देते थे। अब ऐसा करना वर्जित कर दिया गया है। सन् १८१५ से अब तक (६७ वर्ष) ऐसी किसी दुर्घटना की सूचना मुझे नहीं मिली है। यद्यपि ऐसा पूजा समारोह कम से कम ५० गाँवों में मनाया गया था। बादी के सफलता पूर्वक अपना कर्तव्य पूरा करने पर उसके द्वारा उपयुक्त रस्से को काट कर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर दिए जाते हैं। एक एक टुकड़ा प्रत्येक गृहस्थ अपने घर के दरवाजे के ऊपर टाँकने के लिए अपने साथ ले जाता है। बादी के बाल मुडा दिए जाते हैं। उन बालों को भी किसान शुभ शकुन के लिए अपने पास रखते हैं। बादी का जीवन खेतों की उर्वरता का साधन माना जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि भूमि के बाँझपन (अन उर्वरता) को बादी स्वयं ग्रहण कर लेता है। यह विश्वास इतना दृढ़ है कि उसके हाथ का छुआ हुआ बीज खेतों में नहीं बोया जाता। यह मान लिया जाता है कि उसका छुआ हुआ बीज अंकुरित नहीं होगा।" (हिमालयन डिस्ट्रक्ट्स- एटकिंसन १८८२ संस्करण पृष्ठ ८३४)।

रस्सी पर इसी प्रकार फिसलने का करतब ल्हासा में भी किया जाता था। वहाँ यह प्रथा राहुल सांकृत्यायन के अनुसार इस सदी के तीसरे दशक तक ही प्रचलित थी। द्रविड़ निषाद और किरात जातियों के अभिचार के ऐसे संस्कार बौन या पौन धर्म के अनुयायियों में नेपाल और तिब्बत के अभ्यन्तर में आज भी जीवित हैं।

— — — —

कुमाऊँ में जाति और उप जातियों की रूढ़िवादिता

कुमाऊँ में आने वाली आर्य जाति ही सम्भवतः वैदिक साहित्य में वर्णित काशि जाति है। इस जाति का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता है। अथर्ववेद में काशि (५-२२-१४) एक जाति वाचक संज्ञा है। इस काशि जाति का वर्तमान काशी या वाराणसी से निश्चय ही कोई सम्बन्ध नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में काशि एक राज्य का नाम है। इस राज्य के राजा धृतराष्ट्र ने शतानीक सत्राजित द्वारा पराजित होने पर पवित्र अग्नि को प्रज्वलित करना छोड़ दिया था। गार्हपत्य अग्नि के त्याग का उल्लेख बड़ा महत्वपूर्ण है और सिद्ध करता है कि वैदिक काशि लोग ही जो वृषल या व्रात्य थे कालान्तर में खस कहलाए क्योंकि पुराणों में खसों के संस्कार विहीन होकर भ्रष्ट हो जाने का उल्लेख है। उपनिषद काल में काशियों और विदेहों के घनिष्ठ सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है गोपथ ब्राह्मण (१-२-९) में काशिकौशल नाम मिलता है। मैकडोनल और कीथ का विचार है कि काशि नाम भी आर्यों की ईरानी भाषा से सम्बन्धित रहा होगा।

काशि कौशल और विदेहों के कुरु पांचालों से हुए राजनीतिक संघर्ष का शतपथ ब्राह्मण में संकेत मिलता है। ब्राह्मण संस्कृति के मूल केन्द्र कुरु पांचाल से काशि लोग प्रभावित नहीं थे। बौद्ध काल में इसीलिए इस पूर्वी भूखण्ड में क्षत्रिय ब्राह्मणों से श्रेष्ठ माने गए। मगध में बसे काशियों के विषय में मैकडौनल और कीथ रचित वैदिक इंडैक्स का यह अंश उद्धरणीय है- "मगध के निवासियों के प्रति अरुचि का भाव व्यक्त करते हैं। जिसके कारण की व्याख्या स्वरूप यह कहा जा सकता है कि यहाँ के निवासियों में धार्मिकता कम थी। यह निःसंदेह सम्भव है कि कौशल विदेह और काशि वास्तव में बाद की प्रचलित कुरु पांचलों की जाति की ही शाखा के रहे हों जिन्होंने दूरी तथा आदिवासियों पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव के कारण ब्राह्मण प्रभाव को प्रायः खो दिया था"। उन्होंने ब्राह्मण संस्कृति को छोड़ कर स्थानीय आदिवासियों के धर्म को अपना लिया था।

कुमाऊँ में जाति व्यवस्था की नीव आप्रवासी शासकों और उनके द्वारा बुलाए गए ब्राह्मणों द्वारा ही डाली गई है। कुमाऊँ के गाँव बहुधा बहुत छोटे-छोटे हैं। सामान्यतया गाँव की जनसंख्या १०० के लगभग और मकानों की संख्या २०-२५ के लगभग है। कुछ गाँवों में एक ही जाति के लोग रहते हैं। पुराने सभी गाँव पहाड़ की आधी ऊँचाई पर स्थित हुआ करते थे। उनके नीचे नदी घाटी की ओर खेत और ऊपर की ओर सूखी खेती के योग्य भूमि के बाद जंगल होते थे। पूर्व

काल से ही प्रायः सभी गाँवों में जल के दो सोते या दो बावड़ियाँ (नौले) हुआ करती थीं। एक डोम जाति के लोगों के लिए, दूसरा बीठों (द्विज) के लिए।

कुछ बड़े गाँवों में एक प्रमुख जाति के अतिरिक्त छोटी अन्य जातियों के लोग भी रहते हैं। ऐसे गाँव यात्रा मार्गों पर अथवा किसी चौड़ी घाटी में किसी प्राचीन प्रमुख राजमार्ग पर स्थित हैं। ऐसे बड़े गाँव अन्तराल में बसे दूरस्थ गाँवों के लिए व्यवसायिक स्थल या बाजार का काम देते हैं। इन बड़े गाँवों में एक जाति एक पृथक बाखली (घरों की सीधी पंक्ति) या बाखलियों में एक साथ रहती है। डोमों के गाँव पहाड़ की सबसे निचली ओर होते हैं। डोम अपने को इस नाम से सम्बोन्धित करना पसन्द नहीं करते और पूर्वकाल में तल्ली जाति के लोग और अब शिल्पकार कहलाना पसन्द करते हैं। कुमाऊँ के सामाजिक इतिहास में ठुलजात अथवा आभि-जात्यवर्ग और खसी-जिमदार ग्रामीण छोटी जाति के ब्राह्मण ठाकुर का पारस्परिक मनमुटाव पर्याप्त महत्वपूर्ण रहा है। इस विषय पर स्वर्गीय डा० रामी सनबाल ने बंगलौर स्थित इंस्टिट्यूट आफ सोशल स्टडीज के तत्वावधान में बहुमूल्य शोध कार्य किया है। उसी के आधार पर ब्राह्मण समुदाय के भल बामण और पितली बामण जैसे उच्च और नीच विभेद के मूल कारणों का इस अध्याय में विवेचन किया जा रहा है।

"प्रत्येक समाज में शक्ति के विभाजन के अनुसार उसकी विशेषताएँ होती हैं। ग्रामीण कुमाऊँ में शक्ति और अधिकारों के अनुसार ही जातियों का स्तरीयकरण (स्ट्रैटिफिकेशन) हुआ है। आमतौर पर ऊँची जाति के लोगों के पास छोटी जातियों की अपेक्षा अधिक शक्ति और अधिक अधिकार रहे हैं। कुमाऊँनी समाज के इतिहास में जाति और उसकी शक्ति के वितरण के महत्व को प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक पहलू में देखा जा सकता है। शक्ति और अधिकार की परिभाषा करना तो कठिन है किन्तु इसका एक स्पष्ट रूप एक जाति द्वारा दूसरी जाति से कभी-कभी उसकी इच्छा के विरुद्ध भी अपनी आज्ञा या इच्छा को मनवाना है। दूसरी जाति भय से, पीड़ा से अथवा इस भावना से कि अन्य जाति को उसे ऐसा उपदेश देने का धर्म सम्मत या विधि सम्मत अधिकार है उसकी आज्ञा का पालन करती है।

"कुमाऊँ में जाति प्रथा स्पष्टतः धर्म सम्मत और विधि सम्मत अधिकारों की उपज है। शोषित अथवा शासित वर्ग और शासक वर्ग यही मूलतः कुमाऊँ की प्रमुख दो जातियाँ रही हैं। कुमाऊँ तथा गढ़वाल ही पूरे देश में ऐसा क्षेत्र है जहाँ जाति समूह की उत्पत्ति राजनैतिक तथा विधि सम्मत विभेद से उपजी है। (गैरौला-१९२२) यह कहा जा सकता है इस भूखण्ड के मूल निवासी कोल और गौंड लोग थे जिन्हें डोम, राम या शिल्पकार भी कहा जाता है (क्रुक १८९६-३३२-३ ओकली

१९०५-४२, जोशी १९२९-११-१२, एटकिंसन १८८६–४४३-८, टर्नर १९३५-१७) डोमों को कालान्तर में खस या खसिय लोगों ने अपने अधिकार में कर लिया। खसों के नाम से ही यह भूभाग खस देश कहलाया। जोशी के कथानानुसार ईस्वी सदी से बहुत पहले ही खसों द्वारा इस भूभाग पर अधिकार कर लिया गया था। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में खसों को हीन, धर्मच्युत, वेद और ब्राह्मणों से अनभिज्ञ नास्तिक लोग माना गया था। (एटकिंसन १८८४-३७५-४४१) मौखिक लोकसाहित्य से भी यही ज्ञात होता है कि खसों में कोई जाति नहीं थी तथा उन्हें जाति व्यवस्था में उन ब्राह्मणों तथा राजपूतों के पहाड़ों में आने पर लिया गया जो मैदान भूभाग से आते ही रहे और मुस्लिम आक्रमणकारियों के गंगा यमुना के मैदान पर अधिकार करने पर अधिकाधिक संख्या में आने लगे।

"पूर्व ब्रिटिश काल में कुमाऊँ में जाति प्रथा सम्पत्ति, राजनैतिक शक्ति और उच्च पद के केन्द्रीयकरण की विशेषता से व्याप्त रही है। जैसे भूस्वामी ऊँची जाति के लोग थे। उन्हें ठुल जाति या बीठ कहा जाता था। भूमि का स्वामित्व उन्हें काश्तकारों, नौकरों और दासों पर अधिकार प्रदान करता था। यह अधिकार ठुल जाति के नौकरशाही पर एकाधिपत्य होने से और भी प्रवल हो जाता था। कुछ व्यवसाय उन जातियों के लिए वर्जित थे जो ठुल जाति के अथवा भल बामन नहीं थे। उच्च प्रशासनिक पद चौथानी कहे गए ब्राह्मणों ने अपने ही लिए सुरक्षित रख लिए थे। भल बामन या चौथानी बामण अपने से छोटे सजातीय पंचबीड़ी ब्राह्मणों को भी उन पदों पर नियुक्त नहीं होने देते थे।" (एम०एन० श्रीविवास की भूमिका से)

खसों को एक केन्द्रीय शासन में लाने का श्रेय कत्यूरी राजवंश को है। चौथी शताब्दी ईस्वी में कत्यूरी राजा गुप्त साम्राज्य के मांडलिक थे। (स्मिथ १९२४-३०२) स्थानीय परम्पराएँ तो यह बताती हैं कि कत्यूरी बुद्ध के समय से ही कुमाऊँ में थे। कत्यूरी शासकों ने कुमाऊँ में यहाँ के निवासी खसों और डोमों के अतिरिक्त अनेक राजनैतिक संस्थाओं का प्रवेश कराया। कत्यूरियों ने अपने राज्य के छोटे-छोटे मंडल बनाए। प्रत्येक मंडल में एक मंडलार या मांडलिक की नियुक्ति की। ये मांडलिक तत्कालीन कुमाऊँनी खस या डोम नहीं थे। चार मांडलिकों को मिलाकर एक राजवटी बनाई और इस राजवटी का अधिकारी रजवार कहलाया। मंडलारों के अन्तर्गत सैनिक कार्य के लिए थोकदार (जाति का मुखिया) तथा पधान (गाँव का मुखिया) नियुक्त किया गया। ये दोनो मंडलारों के अधीन अपने-अपने इलाके में शांति और व्यवस्था के लिए उत्तरदायी थे। (ठुलघरिया-२३)

शंकराचार्य के आगमन के उपरान्त कत्यूरी शासकों ने दक्षिण तथा मैदान भूक्षेत्र से ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें जागीरें दीं। आज भी बहुत से तथाकथित भल बामण

अपने को कत्यूरी राजाओं के समय में आए पूर्वजों की सन्तान मानते हैं। इन आप्रवासी ब्राह्मणों से एक नए वर्ग की स्थापना हुई। कत्यूरी शिलालेखों और ताम्रपत्रों से तत्कालीन चार विभिन्न जातीय भेदों का पता चलता है। ये हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, खस और चांडाल। इस काल में खस शूद्र माने गए थे। खसों को क्षत्रिय वर्ग में चन्द राजाओं के शासन में ही स्थान मिला। कत्यूर से मिले हुए गढ़वाल में तो खस चन्द शासन के उपरान्त भी शूद्र ही माने जाते रहे। ब्रिटिश शासन के कुमाऊँ गढ़वाल में स्थापित होने के उपरान्त गढ़वाल के खस क्षत्रियों की श्रेणी में आ सके। (प्लाउडन १९३७-३७८-९ तथा बद्री दत्त पाण्डे १९३७-५५१)

दसवीं सदी ईसवी में कत्यूरी शासन बिखरने लगा। अनेक छोटे-छोटे मांडलिक राजाओं ने जिनमें अधिकांश कत्यूरियों के ही वंशज और सम्बन्धी थे अपने स्वतंत्र छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिए। इसी समय खस जातियों की सहायता से काली कुमु नामक स्थान पर चन्द वंशीय राजाओं ने अपनी सत्ता संभाली। चन्द शासक अपनी राजधानी को १५६३ ईस्वी में अल्मोड़ा ले आए। चन्द शासकों का कुमाऊँ की वर्तमान जाति व्यवस्था को ढालने में बड़ा योगदान रहा। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि कुमाऊँ में सामाजिक स्तरीयकरण (सोशल स्ट्रेटिफिकेशन) का मुख्य आधार चन्द शासकों द्वारा थोपी गई शासन प्रणाली थी। चन्द वंश के संस्थापक सोमचन्द को अपने केवल २१ सहायकों के साथ इलाहाबाद अथवा झूंसी से आया हुआ बताया जाता है। उस विदेशी को राजकाज चलाने के लिए कुमाऊँ के निवासियों के ऊपर निर्भर रहना पड़ा। उसने तत्कालीन कुमाऊँनी समाज को आठ वर्गों में बाँटा। इन आठों में प्रत्येक को दी गई शासन शक्ति के अनुसार ऊँच-नीच का विभेद किया गया। ये आठ प्रकार के विभाजन थे। (१) चार चौथानी (२) चार बूड़ा (३) पाँच थोक (४) छः धरी (५) बार अधिकारी (६) पंच बीड़ी (७) कटकमान या खटकवाल तथा (८) पौंड़ पंडार बैरसु (बिसु)।

वर्णों के अनुसार प्रथम तीन वर्गों के लोगों के अतिरिक्त सातवें खठकवाल भी ब्राह्मण वर्ग में रखे गए। चार बुड़ा, पाँच थोक और बार अधिकारी क्षत्रिय वर्ग में। अन्तिम पौंड़ पंडार बिसु लोग जो पृथक एकजातीय (ऐथनिक) समुदाय था चाण्डाल वर्ग में माना जाने लगा। इन अन्तिम लोगों को छोड़ कर अन्य सबको यज्ञोपवीत धारण करने की अनुमति मिल गई। बार अधिकारी, खसिये तथा पंच थोक लोगों को भी क्षत्रिय वर्ण में मान लेने का एक कारण उनका सेना में लिया जाना था।

कुमु के राजा त्रिलोकीचन्द के समय में गंगा यमुना के मैदानों से आए और भी अनेक लोग राज्य के कर्मचारी हो गए। छः धरी लोग कुछ तो चौथानी लोगों में अपने अधिकार और राजसत्ता के बल पर जा मिले। कुछ सत्ता के वंचित होने के कारण

अपने व्यवसायों के अनुरूप पंच बीड़ी लोगों में सम्मिलित होने को विवश हुए। पंच बीड़ी और खटकवाल भी अस्तित्व में रहे। इनमें से जिन पंच बीड़ियों को राजा के कर्मचारियों में नियुक्ति मिली वे असल बामन या भल बामण गिने जाने लगे। शेष खटकवाल पितली, हुई (हल चलाने वाले) और खसि बामन वर्ग में गिने जाने लगे। चौथानी अपने हाथ लगी शासन सत्ता और उसके एकाधिपत्य के कारण उच्चतम बने। पितली सत्ताहीन थे। अतः नीचतम ब्राह्मण कहे जाने लगे। पंच बीड़ी वह अवशेष आप्रवासी वर्ग था जिसको सरकारी कार्य नहीं मिल पाया। वह पूजा-पाठ का काम करने लगा। उसे कहीं कहीं धन, कहीं भूमि आदि अग्रहार में मिली। चौथानी ब्राह्मण इस प्रकार समाज का एक पृथक उच्चतम ब्राह्मण जाति का स्तर बन गया।

चार बुड़ा राजनीतिक प्रभाव के कारण कुमाऊँ में क्षत्रिय बने। पंच थोक और बार अधिकारी जो चन्द शासकों की सेना के लिए सिपाही देते थे अपनी पैतृकता और व्यवसाय के कारण खस या खसि जिमदार वर्ग में गिने जाने लगे। चन्द लोग सामन्ती सेना रखते थे। राज्य के कुछ भाग इन सामन्तों को दे दिए गए थे जो आवश्यकता पड़ने पर पूर्व निर्धारित संख्या में सैनिक प्रस्तुत करते थे। सामन्त, सयाना, सरदार या फौजदार था जो खेतों में काम कराने वाले मजदूर, सैनिक, और छ्यौड़े (बंधित मजदूर) से काम लेने का विधि सम्मत अधिकारी था। खेती का काम स्थानीय खस या बाहर से बुलाए गए काश्तकार से लिया जाता था। सोलहवीं सदी तक इस भाँति कुमाऊँ में तीन मुख्य जाति वर्ग थे। (१) असल या ठुल जाति चौथानी या पंच बीड़ी (२) खसिय, पितली, हली या खसि बामण, खसि जिमदार तथा (३) डोम। प्रथम दो में ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों वर्णों के लोग थे। आप्रवासी लोग खसियों से अच्छे माने जाते थे। ये आप्रवासी मूलतः जिस वर्ण के थे उसी वर्ण में सम्मिलित किए जा सकते थे। किन्तु उनका असल या भल बामन वर्ग में आना राज्य के अधिकारी के रूप में नियुक्ति पाने पर ही सम्भव था।

जातीय स्तर को स्थायित्व देने के लिए धर्माधिकारी की नियुक्ति की गई थी। वह जाति व्यवस्था के नियमों को कड़ाई से लागू करता था। सोने के आभूषण भल बामण या ठुल जाति के ही लोग धारण कर सकते थे। इसी प्रकार लम्बी या टखने तक की धोती पहनने तक का अधिकार भी उन्हीं को था। खसिय या छोटे बामण चाँदी और पीतल के आभूषण धारण करने के अधिकारी थे। उन्हें गाँता-पूरा कम्बल या चादर जो कन्धों से दोनों ओर लटक कर उत्तरीय की भाँति पहनी जाती थी, पहनना होता था। डोम खपरिया के ही आभूषण धारण कर सकते थे। उन्हें कौपीन ही धारण करके रहना होता था। भल बामण सभी करों से मुक्त थे। उन्हें दण्ड

नहीं दिया जा सकता था। नरहत्या जैसे अपराध के लिए भी उनके लिए अधिकतम दण्ड निर्वासन था। ठुल जाति के लोग बोझा ढोने या और कोई हाथ का काम करने से भी मुक्त थे। खस को दास बनाया जा सकता था। डोम बेचे जा सकते थे। आप्रवासी ब्राह्मण को ही विद्योपार्जन का अधिकार था। (फिशर-१८६६-२७)

राज दरबार या फौजदार के दरबार में दीवान का पद आप्रवासी ब्राह्मणों को ही मिल सकता था। खस और डोम राज कर्मचारी पद के लिए अयोग्य थे। चन्द शासन के अन्तिम वर्षों में ही खस लोगों की कुछ अधिकार के पदों पर नियुक्ति हुई। ऐसी नियुक्तियों के लिए धर्माधिकारी की अनुमति लेना आवश्यक था। धर्माधिकारी की अनुमति की आवश्यकता तब पड़ती थी जब (१) समाज में निम्न स्तर के किसी व्यक्ति या समुदाय को राजनीति में उसके परिवर्तित कर्तव्य के लिए उसे ऊँचे स्तर में लाना आवश्यक हो, (२) जब उन लोगों को जो हिन्दू नहीं हैं या हिन्दू जाति के किसी वर्ण के नहीं हैं ऐसी नियुक्ति दी जाती जो तब तक किसी हिन्दू वर्ण के व्यक्ति को दी जाती रही है या वह पद उस वर्ण के समकक्ष है तथा (३) जब कोई व्यक्ति अपने मूल स्तर से च्युत किया हुआ है तथा फिर अपने जाति स्तर को प्राप्त करने की प्रार्थना करता है।

आप्रवासी लोग कुमाऊँ जैसे सुदूर अंचल में आकर स्वदेश से सम्बन्ध बनाए रखने में असमर्थ रहते थे। इसीलिए उनको स्थानीय जनता से अधिक सुविधाएँ दी गई थीं। वह अपने से उच्च वर्ग में या वर्ण में विवाह यह 'व्यावरी' करके उस वर्ग में आ सकता था। आप्रवासी व्यक्ति स्वदेश में जिस वर्ण का हो उसी वर्ण में ठुल जाति या नीची जाति में व्यावरी के ही आधार पर प्रवेश पा सकता था। स्वदेश से ही मैदान भू-भाग के लिए देश शब्द का प्रचलन हुआ। सभी आप्रवासियों के लिए अपना मूल स्थान स्वदेश या देश था और कुमाऊँ पहाड़। बाहर स आया शिक्षित कान्यकुब्ज ब्राह्मण भाल बामण समुदाय में व्यावरी (उससे कन्या देकर या लाकर) उस समुदाय में सम्मिलित हो सकता था। या फिर राजा की नौकरी मिलने पर अथवा अपनी विद्वता से राजा को प्रभावित कर कोई जागीर प्राप्त करने पर ही यह सम्भव था। यदि वह कुमाऊँ में आकर पूजा पाठ या कर्म काण्य करता तो उसके भल बामण वर्ग से सम्बन्ध स्थापित करने के अवसर नहीं के बराबर थे। फलतः राजनीतिक प्रभाव के अभाव में वह पंच बीड़ी वर्ग में आ जाता था। धर्माधिकारी की आज्ञा से ही छखाता के सौन आगरी अपनी सम्पन्नता के कारण खसी जिमदार वर्ग में आ गए थे। (पाण्डे १९३७-पृष्ठ ६१६)।

डोम वर्ग में भी छोटी-बड़ी जाति के लोग थे। केवल इसी वर्ग को छोड़कर अन्य जातीय स्तर बिल्कुल ही अभेद्य नहीं थे। जन्म से नहीं राजनीतिक विशेषाधिकार से

भी जाति की उच्चता में प्रवेश हो जाता था। आप्रवासी पंत और उप्रेती जो मणिकोटी के राजा के दरवार में ऊँचे पदों पर नियुक्त थे अस्कोट के रजवार के धर्माधिकारी द्वारा चौथानी वर्ग में सम्मिलित कर लिए गए थे। जातियों और उप—जातियों की पृथकता विशेषत: ब्राह्मणों की भाल वामण और खसी वामण विभेदों की रक्षा की शासन द्वारा व्यवस्था की गई थी। शासन में अधिकारी प्रमुख रूप से आप्रवासी ब्राह्माणों से ही नियुक्त किए जाते थे। राजधानी के निकट के क्षेत्र के अपराध अथवा किसी बड़े महत्व के अपराध के अतिरिक्त छोटे बड़े विवाद और अपराध फौजदार लोग अपने-अपने इलाकों में सुना करते थे। राजधानी में ऐसी सुनवाई राज-दरबार में दीवान की देख-रेख में होती थी। फौजदार राजपूत क्षत्रिय वर्ग का या चौथानी ब्राह्मण होता था। किन्तु दीवान नित्य ही चौथानी ब्राह्मण ही होता था। धर्माधिकारी भी चौथानी ही होता था। जाति व्यवस्था की नीति संहिता को राजा रुद्र चन्द के समय में लिखित रूप दिया गया था। यह ग्रन्थ 'त्रैवर्णिक धर्म निर्णय' राजा रुद्र चन्द द्वारा ही रचा हुआ माना गया है।

इस नीति संहिता के कुछ नियम हैं—यदि कोई खस वर्ग का व्यक्ति ठुल जाति कन्या से यौन सम्बन्ध स्थापित कर ले तो उसे इस अपराध के लिए मृत्यु दण्ड मिलेगा। यह अपराध राजद्रोह के समान समझा जायेगा। अन्तर्जातीय या अन्तरुपजातीय सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान को, यदि माँ छोटी जाति की हो तो माँ की ही जाति का माना जायेगा, यदि माँ की जाति और सन्तान को जन्म देने वाले की जाति स्तर में बहुत अधिक अन्तर हो तो जन्मदाता को दण्डित किया जायेगा, भल बामण वर्ग का व्यक्ति डोम कन्या से सम्बन्ध स्थापित कर ले तो उसे इस डुमटाव नामक अपराध के लिए जाति च्युत करके उसकी धन सम्मत्ति से बंचित किया जायेगा और उसे निर्वासित कर दिया जायेगा। भल वामण का खस जाति की कन्या से सम्बन्ध होने के खष्टाव नामक अपराध के लिए उसे जातिच्युत किया जाएगा। उसकी सन्तान खस मानी जायेगी। यह नियम खसछ्योड़ी (क्रीत दासी) से प्रेम सम्बन्ध के लिए लागू नहीं था। ठुल जाति के वस्त्र, आभूषण, आदि की अनाधिकार चेष्टा करने के अपराध के लिए खस जाति के अपराधी व्यक्ति को दास बनाकर दण्ड स्वरूप बेचा जा सकता था। डोम द्वारा गोहत्या, बीठ के बर्तन, पानी या भोजन को अपवित्र कर देने पर उसे मृत्यु दण्ड मिल सकता था। (पांडे-१९३७-४०३)

गोरखा प्रथम विदेशी शासक थे जिन्होंने सदियों से चली आ रही कुमाऊँ में प्रचलित जाति रचना के लिए बने त्रैवर्ण धर्म निर्णय में अभिलिखित नीति संहिता के अनुसार अपने को नहीं ढाला। उनके समय में अनेक भल बामण तथा अन्य विशेषा-धिकार प्राप्त लोग कुमाऊँ छोड़कर भाग गए। इन कुमाऊँ को छोड़कर जाने वाले

लोगों ने ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के पक्ष में गोरखा शासन के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। गोरखों ने चन्द शासन के समय की सामन्ती प्रथा को जीवित रखा था। ब्राह्मण वर्ग का वे भी आदर करते थे और उन्हें मृत्यु-दण्ड नहीं देते थे। किन्तु उन्होंने अपने शासन काल में तब तक भूमि कर से मुक्त भल बामणों पर भी कर लगा दिया। (पाण्डे १९३७-३६३-३६६) कर न चुकाने पर गोरखों द्वारा अनेक व्यक्ति दास बना कर बड़ी संख्या में बेच दिए गए। एटकिंसन ने ऐसे बेचे गए लोगों की संख्या दो लाख बताई है। (एटकिंसन १८८६-५७३) जातियों का निर्धारण गोरखा शासन के अधिकार में नहीं रहा किन्तु जातियाँ पूर्ववत् बनी रहीं। बन्दी न बनाए गए भूस्वामियों के पास उनकी जागीरें बनी रही। वे अपने खस काश्तकारों और डोम दासों पर पहले जैसे अत्याचार करते रहे।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन ने भी जाति प्रथा को नष्ट करने के लिए कोई नियम नहीं बनाए तथापि जाति निर्धारण और जाति बहिष्कार की 'त्रैवर्ण धर्म निर्णय' की वैधता को ब्रिटिश अधिकारियों ने न स्वीकार किया न उन नियमों के उल्लंघनों की सुनवाइयाँ ही जारी रखीं। धर्माधिकारी के वे अधिकार नहीं रहे। उसके स्थान पर अंग्रेज कमिश्नर को परामर्श देने के लिए सदर अमीन नामक अधिकारी की नियुक्ति की गई। वह शासन को सम्पत्ति के वाद-विवाद में परामर्श देता था। धर्माधिकारी की भाँति फतवा देने का अधिकारी नहीं था। झिजाड़ के हर्षदेव जोशी के नेतृत्व में ही ब्रिटिश सेना ने कुमाऊँ पर अधिकार किया। हर्षदेव का साथ कुमाऊँ से भागे हुए भल बामन और चौथानी वर्ग के लोगों ने दिया। स्वाभाविक था कि ब्रिटिश अधिकारियों ने इसी वर्ग को अपना सबसे अधिक स्वामिभक्त मान कर राजकर्मचारियों में इसी वर्ग से नियुक्तियाँ कीं। चन्द शासकों के समय के दीवान परिवारों के दनिया के जोशी, झिजाड़ के जोशी, चौधरी तथा लेखवार परिवारों से उनकी जागीरें लेकर प्रत्येक परिवार को पैत्रिक अधिकारी पद दे दिया गया जो उस समय कानूनगो कहलाया। कानूनगो का वेतन २५ रुपये मासिक रखा गया। हर्षदेव जोशी को १०००/- रुपया मासिक पेंशन दी गई और उनके बजेल, गंगोला, कोटली, झिजाड़, पिथराड़, किराड़ा, खड़ाउँ आदि गांवों की जागीरें पूर्ववत जारी रहीं।

—— ——

चन्दों के शासन में राजकर्मचारी

जाति और उपजाति

कुमाऊँ की वर्तमान जातियों और उप जातियों के आस्पद चन्द राजाओं द्वारा दिए गए कर्मचारियों के पदनाम हैं। चन्द राजा किसी अन्य को राजा अथवा पाण्डे लिखने का अथवा कहने की अनुमति नहीं देते थे। क्षत्रिय लोगों को तीन पल्ले का यज्ञोपवीत पहिनने का विधान भी उन्होंने ही बनाया था। वे केवल अपने राजगुरु को पाण्डे कहते थे। राजगुरु के दरबार में आने पर राजा भी उसके सम्मान में उठ खड़ा होता था। शिविरों में प्रवास में जाने पर भी राजगुरु और राजा की सवारी में कोई अन्तर नहीं होता था। विष्ट, नेगी, अधिकारी, भण्डारी आदि कर्मचारियों के पद थे जो पहले केवल ब्राह्मणों के लिए ही निर्धारित थे। अन्तिम चन्द शासकों के समय में ये पद क्षत्रियों को भी प्राप्त हो गये थे। राजकर्मचारियों की नामावली तथा उनके लिए निर्धारित काम का उल्लेख नीचे दिया जाता है:—

पद नाम	कार्य	सन्दर्भ
रस्यारा पाण्डे	रणिवास में रसोई बनाने वाले ब्राह्मण	(कुमाऊँ का इतिहास पांडे-१९३७)
सिमल्टिया पाण्डे	राजगुरु कालान्तर में रसोई बनाने वाले	वही
पाठक	देवताओं के मंदिरों में पाठ करने वाले	वही
पाटणी	राजदूत अथवा सन्देशवाहक ब्राह्मण	वही
विष्ट	विष् अथवा विषय (जिला) अधिकारी	आप्टे संस्कृत कोष
डंड्या विष्ट	कुमाऊंनी न्यायाधीश-दण्ड देने वाला	(कुमाऊँ का इतिहास पांडे-१९३७)
सोज्याल विष्ट	कुमाऊंनी राजा के सैनिक अधिकारी	वही
विष्टालिया	कुमाऊँ राज के छोटे कर्मचारियों के ऊपर नियुक्त अधिकारी	वही
	पंचायतों में लेखन कार्य करने वाले लिपिक	वही
नेगी	निश्चित कर वसूल करने वाले अधिकारी	वहां
नेगी (महरिया और हरन्वाल)	हवलदार या जमादार जैसा सेना अधिकारी	वही
बहादुर नेगी	सेना में प्रशस्ति प्राप्त बहादुर नाम से ख्यात सैनिक	वही

अधिकारी रँतगली	कत्यूरी शासन के भट्टारक (भट्ट) ब्राह्मण जिनको कालान्तर में रेंतगल गाँव जागीर में मिला	वही
अधिकारी	राजा से विशेष अधिकार प्राप्त व्यक्ति	वही
पतड़िया	शुभ तिथि, शुभ मुहूर्त आदि की गणना करने वाला ब्राह्मण, गणक	वही
डागी जोशी (जागी)	घ'टिका (जलयन्त्र) को देखकर रात दिन क्या समय हुआ है यह दरबार में सूचना देने वाले	वही
घड्याली	घटिका यंत्र, जो एक निश्चित परिमाण का काँसे या लोहे का पात्र होता था, जल के ऊपर तैराया जाता था और चौबीस मिनट में जल से भरकर फिर पैंदी पर जा लगता था । यह चौबीस मिनट का समय एक घटिका या एक घड़ी कहलाता था इस यन्त्र दृष्टि पर जमाए हुए इसके पैंदी पर पहुँचते ही उसे फिर खाली करके तैराने का कार्य करने वाला डागी जोशी का सहायक	वही
हरबोला	राज दरबार में एक पहर रात शेष रहने पर 'हरिबोल हरिबोल' कहकर कर्मचारियों को जगाने वाला	वही
गंगाविष्णु	प्रातः राजा को जगाकर गंगास्तोत्र वाचन करने वाला	वही
फुलारा (फुलोरिया)	राज दरवार के लिये फूल, फल, बेलपत्र, कुश, पंच पल्लव आदि लाकर जुटाने वाले ब्राह्मण	वही
सेज्याली	राजा के तोपखाने में वेशभूषा आदि का रक्षक	वही
कोठपाली	कोठ अथवा अन्न प्रकोष्ठ का रक्षक	वही
भण्डारी	राज दरबार में उत्सवों का सामान अथवा बाहर से प्राप्त रसद आदि के भण्डार का रक्षक	वही
ठटोला	गाय-भैंस आदि पशुओं का निरीक्षक	वही

रोड़ा (छपिया)	राजा की मुहर का रक्षक मुहर का ठप्पा लगाने के कारण उसे छपिया भी कहा जाता था। राजा की मुहर से अंकित लकड़ी का माप भी छपिया कहलाता था।	वही
उलग (ओल-गिया)	शाक फल आदि को राजा के सम्मुख प्रस्तुत करने वाला। वह विशेष पर्व जब राजा के पास अथवा बड़े अधिकारी के पास इस प्रकार की डाली या भेंट दी जाती थी काला-न्तर में ओलगिया संक्रान्त कहलाई जो अगस्त मास में १७ तारीख के लगभग पड़ती है।	वही
अक्ष्यी सुतारा	राजा के शिविर के लिए स्थान चुनकर उस पर डोरी के माप जोख करने वाला बेलदार	वही
वलाल	शिविरों को लगाने वाला ओवरसियर	वही
फड़कुडिया	सैनिक शिविरों (फड़ों) का निर्माता	वही
सेलखाणियाँ	सेना के गोला बारूद का रक्षक। सेलखाण शब्द सिंहल खाना या शस्त्रागार (वासुदेव-शरण अग्रवाल)। सम्भवतः इसी से बना है सिलवाल या सानवाल। "अलमोड़ा अखबार" के प्रथम सम्पादक मुँशी सदानन्द सनवाल को कहीं कहीं मुंशी सेलवाल भी लिखा गया है। अतः सेलवाल और सनवाल मूलतः एक ही शब्द रहे होंगे।	वही
पटौलिया	पट्टरानी अथवा रणिवास के कर्मचारी सम्भवतः वर्तमान पडालिया। (उपर्युक्त पांडे)	
सांका	गडेरिया-बकरियों का रक्षक	वही
सारणा	गंज (कोष) को लेजाने वाले और उनके रक्षक, सारण का अर्थ कुमाऊँनी में ले जाना है।	वही
तबेलिया	तबेला (अस्तबल) या घुड़साल का प्रबन्धक	वही
चकुवा (चाब-कुवा)	छोटा जल्लाद अथवा चाबुक मारने वाला अधिकारी	वही

पतारा	रसोई के लिए पात अथवा पत्ते, पत्तल लाने वाला	वही
कुड़िया-कुण्ड्-याला	हाथियों का प्रबन्धक	
ततरिया	ततार (गर्म किया हुआ लोहा या सूजा) लगाने वाला उपचारक या जर्राह	
कंडवाल	राजा के स्कन्ध (कांड) के सोने चाँदी के भोजन के वर्तनों का रक्षक	वही
कमठना	काष्ठोपकरण तथा जलाने की लकड़ी का रक्षक	वही
पनवाल	आवदार अथवा पान सुपारी, इत्र, इलायची का रक्षक	वही
चरसिया चलसिया	राज दरवार में मारे गये पशुओं की चर्बी आदि का रक्षक	वही
धूतिया-ढरोजी बुलैल	कचहरी में पुकार करने वाला कर्मचारी	वही
पिरसूजिया	मशालची (दीप दण्ड धारक)	वही
वरदारी	प्रहरियों को उनका समय बताने वाले	वही
चौड़ा	भोजन की समाप्ति पर बर्तनों के साफ होने तक उनकी रखवाली करने वाला	वही
चोर मंडलिया	सेलखाने (बारूद, गोला आदि) का वह गुप्तचर जो सेलखाने के अधिकारियों पर निगरानी रखता था।	वही
चालोसिया	चाल शब्द कुमाऊँनी में षढ़यन्त्र का है। दृष्टव्य है कत्यूरी चाल अर्थात् कत्यूरियों का षढ़यन्त्र। अधिकांशतया ऐसे षड़यन्त्र सहभोज के समय हुआ करते थे। अतः वह गुप्तचर अथवा निरीक्षक जो सहभोज में प्रत्येक दरवारी को उनके स्थान पर बिठाता था वह।	

रसोई के तैयार करने का काम सिमल्टिया पाण्डे करते थे और पाटणी पुनेठा ब्राह्मण उसे चखकर बताते थे कि वह ठीक बनी है। उसके उपरान्त

	ये लोग राजा को ठाउ (रसोई के अन्दर बनी हुई ऑटलियाँ) में भोजन के लिए बुलाते थे। राजा राजगुरु, पुरोहित, मंत्री, वख्शी, दीवान, तथा अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, साहू, चौधरी आदि अपने पदों के अनुसार पूर्व निर्धारित ऑटलियों में बिठाए जाते थे। यदि इसमें कहीं गलती हो जाय या चालोसिया चाल (धोखा) कर दे तो उसकी आँखें निकाल दी जाती थीं। ऑटलियाँ इस प्रकार निर्धारित था कि राजा के दाहिनी ओर गुरु, राजपुरोहित, मंत्री आदि बैठते थे और बायीं ओर राजा के अतिथि राजा, कुंवर, रौतेले आदि। सहभोज इतने विशाल होते थे कि एक राजकुमार के यज्ञोपवीत संस्कार में कठेर और कांठ (बरेली, शाहजहाँपुर, गोला गोकरन नाथ) के आसपास के लगभग २५ राजाओं ने भाग लिया था।	
मट्याणी	राजदरवार में लीपने पोतने और मिट्टी लाने वाला कर्मचारी।	(कुमाऊँ का इतिहास)
डोगरा (डंगरा)	राजा के तराई भावर प्रयाण से पहले उसके मार्ग को घास फूस दबाकर प्रशस्त करने वाला सैनिक	वही
बड़िया	वाड़ी (वाटिका) का निरीक्षक	वही
द्योचेली (देवचरी)	देवदासियाँ (मंदिरों की नर्तकियाँ)	वही
कठक्वाली (खटक्वाली)	कटक (छावनी) की वैश्याएँ	एटकिन्सन
राजचेली (राचेली)	रणिवास में गृह कार्य संगीत आदि का प्रबन्ध करने वाली सेविकाएँ। कुछ राजाओं के बनाए हुए वे नियम आज भी उपलब्ध हैं जिनका पालन राजचेली को करना चाहिए था। एक राजचेली सरुली की कुमंत्रणा से राजा विजयचन्द मारा गया था। राजा त्रिमलचन्द ने आज्ञा जारी की थी कि राजचेलियाँ गढ़वाल की हों जिससे वे कुमंत्रणा न करने पावें तथा उन्हें दरबार से	वही

	वाहर जाने की अनुमति नहीं थी। राज चेलियाँ छ्योड़ियाँ या ह्र्नवालियाँ भी कहलाती थीं। राजचेली की सन्तान चकानो कहलाती थी।	
चौधरी-साऊ	लिपिकार अथवा सैनिक लेखाधिकारी	कुमाऊँ का इतिहास
चौथानी चौवदार नक्कारची	राजा वाज बहादुर चन्द के समय में मुरादाबाद से लाकर बसाए गए नगाड़े आदि बजाने का कार्य करने वाले कर्मचारी। इसमें राजा के मुसलमान अतिथियों के सेवक भी थे।	वही
फौजदार	वेतन पाने वाले सैनिक	वही
ह्यूँपाल	राजा लक्ष्मीचन्द के समय में पिडारी ग्लेशियर से अल्मोड़ा तक गर्मी के दिनों में बर्फ मंगाई जाती थी जो हाथों हाथ पिंडारी से अल्मोड़ा तक जाती थी इसका प्रबन्धक ह्यूँपाल कहलाता था।	वही एटकिंसन
कटकवाली	वह सेना जो कटकवालों (रिर्जातिस्ट्स) से युद्ध के समय तैयार की जाती थी।	एटकिंसन
विसी बन्दूक	बीस बन्दूकों वाली सेना अथवा उसका सरदार	एटकिंसन
कामदार	कर्मचारी	वही
बुतकार	श्रमिक	वही
न्यौवाली	न्याय पालिका। वे कचहरियाँ जहाँ नागरिक मुकदमे होते थे।	वही
विष्टाली	वे कचहरियाँ जहाँ सैनिक अपराधों का निर्णय होता था।	(कुमाऊँ का इतिहास)

—— —

कुमाऊँ में बौद्ध धर्म का स्वरूप

कुमाऊँ में रुहेला आक्रमणकारियों ने लगभग सभी मन्दिरों को लूटा और उनमें रखी हुई मूर्तियों को तोड़ा। जागेश्वर ही अपनी स्थिति के कारण एक ऐसा प्राचीन स्थल है जहाँ वे नहीं पहुँच पाये। कुमाऊँ में समय-समय पर प्रचलित धर्मों का जागेश्वर एक प्राकृतिक संग्रहालय है। यहाँ प्राप्त मूर्तियों में पौन मूर्ति, जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, मंगोल धर्म की है। शक्तिपीठ का श्रीयन्त्र आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित किया बताया जाता है। इस प्रकार दक्षिण भारत के केरल प्रदेश की द्राविड संस्कृति से लेकर मंगोलिया की बौद्ध या लामा संस्कृति तक के भू-भाग की मूर्तियाँ इस देवदारु वनी में सुरक्षित हैं। विभिन्न कालों की कुल मिलाकर लगभग पाँच सौ मूर्तियाँ यहाँ हैं जो लगभग एक सौ पच्चीस मन्दिरों में या उनके बाहर स्थापित हैं। इन मन्दिरों और मूर्तियों से भी प्राचीन है पर्वत की हिरियाटोप नामक चोटी पर स्थित एक शिला और उसके निकट की अनेक अभिलिखित गुफाएँ। यह शिला उस महा-पाषाणी स्टोन हैंज सभ्यता से सम्बन्धित है जिसके अवशेष देवीधुरा, भटकोट, मिर्जा-पुर, दक्षिण भारत में ही नहीं भारत से बाहर इटली, फ्रांस और ब्रिटेन में भी हैं। (देखिए-संकृति संगम उत्तरांचल पृष्ठ-२) न स्थानीय जनता को ओर न विदेशी विद्वानों को इन दुर्लभ ऐतिहासिक वस्तुओं का ज्ञान है जो इस नन्हीं घाटी में ईश्वर की कृपा और मात्र धार्मिक भावना के बल पर सुरक्षित रही हैं।

पौन और श्री

पौन नामक मूर्ति जो अक्तूबर १९७४ को मन्दिर के गोदाम से चुराई गई थी और डेढ़ वर्ष बाद अमेरिका जाते जाते दिल्ली में केन्द्रीय गुप्तचर विभाग की पुरातत्व शाखा द्वारा एक होटल के कमरे से बरामद की गई थी, अष्टधातु की बनी है। यह वज्रयान के उस बौद्ध अथवा शैव पौन या बौन धर्म की है जो कभी हिमालय के दोनों ओर बसी किरात जाति का लोक धर्म था। यह मूर्ति सातवीं-आठवीं सदी ई० की है। इसी काल की कांस्य मूर्तियाँ भारत के समूचे तिब्बती सीमान्त में पायी जाती हैं। हिमांचल प्रदेश में तारा की एक मूर्ति चत्रारी में मिली है और ब्रह्मौर में दूसरी तारा की मूर्ति है। आजकल ये मूर्तियाँ क्रमशः शक्ति देवी तथा लक्ष्मी देवी की कही जाती हैं तथापि मूलतः इनमें लामा या पौन प्रभाव स्पष्ट है। पौन शब्द किराती और तमिल भाषा में वही अर्थ रखता है जो संस्कृत में श्री। मकर संक्रान्ति का दक्षिण भारत का पर्व पोंगल कदाचित् उसी पौन मूल का है। इस पोंगल शब्द का एक अर्थ पकाना या उबालना है और दूसरा अर्थ प्राचुर्य या समृद्धि। स्वस्ति पौन धर्म की प्रमुख देवी है और

उसका तांत्रिक प्रतीक स्वस्तिक चिह्न है। श्री या श्रीयन्त्र पौन धर्म में योनि के गत्यात्मक सिद्धान्त या 'डायनेमिक प्रिंसिपल' का प्रतीक है।

वज्रयान

शक्ति अथवा श्री शक्ति (श्री यन्त्र-अथवा योनि) की उपासना प्रजनन कर्मकाण्ड के रूप में प्राचीन सुमेर और मैसोपोटामिया में भी होती थी। सिन्धु सभ्यता में भी देवी उपास्य थी। कुछ विद्वान ऋग्वेद में भी प्रजनन कर्मकाण्ड की झलक सीता नाम के साथ देखते हैं। बौद्ध काल में तो वज्रयान तन्त्रयान ही का नाम था। बोधिसत्व वह व्यक्ति माना गया है जो केवल अपने निर्वाण या मोक्षकी इच्छा नहीं करता वरन् प्राणिमात्र की कल्याण के मार्ग पर लाना चाहता है। बौद्ध लोग बोधिसत्व के गुणों को पारमिता कहते थे। (देखिए संस्कृति संगम उत्तरांचल पृष्ठ २९४)। बोधिसत्व मूलतः पुरुष थे किन्तु कालान्तर में उनकी स्त्रियाँ भी पारमिता के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हुई। जब स्वयं बोधिसत्व अलभ्य हो गया तो उस तक पहुँचने के लिए उसकी पत्नी की उपासना आवश्यक मानी जाने लगी क्योंकि बोधिसत्व अथवा देवता की (प्रजनन) शक्ति उसकी पत्नी पर निर्भर थी। अतः इस प्रजनन शक्ति का प्रतीक मैथुन महायान धर्म में मान्य बना। शैव और बौद्ध दोनों में श्री यन्त्र एक जादुई रहस्यवाद का प्रतीक बना। हीनयान मत की शिक्षा थी कि ध्यान और तप से व्यक्तितत्व की भावना नष्ट हो जाने पर मोक्ष या निर्वाण मिलता है जबकि महायान की शिक्षा थी कि बोधिसत्वों अथवा दैवी बुद्धों की सहायता से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

तारा

बंगाल के पाल राजाओं के समय में ऐसे अनेक बौद्ध स्थविर प्रतिष्ठित हुए जो बुद्ध की भाँति चमत्कार दिखाने के लिए जादू-टोने और तन्त्र-मन्त्र का अनुसरण करते थे। ये अपने तन्त्र-मन्त्र को बज्रयान कहने लगे। बज्रयानी बौद्ध स्थविरों ने संसार से तारण करने वाली छोटी देवी शक्तियों को प्रतिष्ठित किया। ये शक्तियाँ थीं मातंगी (शूद्रा), पिशाची (भूत प्रेतनी), योगिनी (जोगिनी भिक्षु) तथा डाकिनी (रौद्री)। वे बोधिसत्व या दैवी बुद्ध जो इन चारों स्त्री शक्तियों के पति थे, अनेक हाथ वाले भयंकर रूप के देवता माने जाने लगे। अपने हित की साधना के लिए इन देवी देवताओं की पूजा नहीं की जाती थी। उन्हें फुसलाना, बहकाना या वश में करना आवश्यक था। यह प्रक्रिया साधना (माध्यम) कही जाती थी। मातंगी, पिशाची, योगिनी तथा डाकिनी को साध कर ही बोधिसत्व तक पहुँचा जाता था। साधना के लिए श्मशान, शव, चिता की भस्म आदि का भी उपयोग होता था। बज्रयान की प्रमुख मोक्षदायिनी शक्ति तारा, तारण करने वाली, कहलाई जो बुद्ध या बोधिसत्व की पत्नी

के रूप में प्रतिष्ठित हुई। वे ग्रन्थ जिनमें इन स्त्री शक्तियों की साधना का कर्मकाण्ड दिया जाता था, तन्त्र कहलाए।

किसी मन्त्र का उचित रूप से उच्चारण करके अथवा किसी जादुई आकृति (यन्त्र) को अंकित करके देवता की चमत्कारी शक्ति को उसका उपासक प्राप्त करके अपार सुख प्राप्त कर सकता है। यह विश्वास बौद्धों और हिन्दुओं दोनों में समान रूप से प्रचलित हो गया। बौद्धों का षट्अक्षर मन्त्र--'ॐ-मणि पद्मेहुम' आज भी लामाओं का उपास्य मन्त्र है। तिब्बत में छः अक्षरों का यह मंत्र प्रतिदिन लाखों बार लिखा, दुहराया या मणि चक्रों पर लिखित घुमाया जाता है। ए० एल० बैशाम के अनुसार वज्रयान में ध्यान का मन्त्र ध्यान कर्ता द्वारा देवी तारा के साथ सहवास का ही चिन्तन है। बौद्ध ध्यानी अपने को मन्त्र जपता हुआ 'हिप्टोनाइज' करके अनुभव करता है कि वह देवी तारा के साथ सहवास करके पुनर्जन्म ले कर बुद्ध की हत्या करके स्वयं उसके आसन पर विराजमान होगा। ("द वण्डर दैट वॉज इण्डिया" पृष्ठ २८३) मगध के शासकों के समय में वज्रयान का पश्चिम हिमालय में प्रचलन हुआ।

दारुण

आदि शंकराचार्य के जागेश्वर में आने से पूर्व इस क्षेत्र में वही भूत-प्रेत जादू टोने का तान्त्रिक भोट भाषा में पौन धर्म, प्रचलित था जिसके अवशेष आज भी तिब्बत और मंगोलिया में यत्र-तत्र पाए जाते हैं। बोधिसत्व और पाशुपत शिव तब एक ही हो गए थे। यह वन जिस पल्लिका या पट्टी में है, वह जिले के सरकारी अभिलेखों में आज कल भी दारुण पट्टी कही जाती है। पट्टी गढ़वाल-कुमाऊँ में माल विभाग के पटवारी (दारोगा) के इलाके का नाम है। दारुण शब्द संस्कृत दारुकावन का स्थानीयकरण है। जो मूर्ति पौन राजा की कही जाती है तथा जिसे अक्तूबर ८, १९७४ को चुरा लिया गया था, वह उसी तांत्रिक या पौन धर्म के उपास्य बौधिसत्व की मूर्ति है जो कभी कुमाऊँ और इससे मिले भोट देश (तिब्बत) का लोक धर्म था। मूर्ति के खो जाने के बाद ही पता चला कि वह लाखों डालर मूल्य की नवीं-दसवीं शताब्दी की एक अत्यन्त दुर्लभ और उत्कृष्ट कलानिधि थी। अप्रैल २, १९७६ को मूर्ति के मिलने पर उसके सम्बन्ध में कुछ नए तथ्य प्रकाश में आए।

पौन

समाचार पत्रों में छपे विवरण में कहा गया कि मूर्ति कुमाऊँ के किसी प्राचीन पौन राजा की शिव उपासनारत प्रतिमा है। ऐसा अनुमान करना स्वाभाविक ही था क्योंकि मन्दिर में कुमाऊँ के राजा दीप चन्द और त्रिमल चन्द की दो और मूर्तियाँ स्थापित हैं। किन्तु न तो कुमाऊँ में कभी पौन नाम का कोई राजा हुआ न यह किसी

राजा की मूर्ति है। कार्तिक पूर्णिमा को कुमाऊँ गढ़वाल में शिव की उपासना पुत्र की कामना करने वाली स्त्रियाँ ही करती हैं। कोई भी पुरुष इस प्रकार हाथ में दीया लेकर उपासना नहीं करता। वास्तव में कुछ वर्ष पूर्व तक स्थानीय लोग जागेश्वर से लगभग ६० किलोमीटर पश्चिम में स्थित कटारमल के मंदिर की कांस्य मूर्ति को पौन राजा की मूर्ति कहा करते थे। पिछले दशक में पुराविद डा०के०पी० नौटियाल ने दण्डेश्वर की इस मूर्ति को भी पौन राजा की मूर्ति बताया। इससे पहले न तो जिले के गजेटियरों में इसका उल्लेख था और न कोई स्थानीय व्यक्ति ही यह जानता था कि मूर्ति किस की है। जिन दो राजाओं की मूर्तियाँ जागेश्वर मन्दिर में मिलती हैं, उनमें त्रिमल चन्द ने १६२५ से १६३८ ई० तक कुमाऊँ में शासन किया। उसका पूर्वज दीप चन्द या दलीप चन्द था। इस प्रकार राजाओं की ये मूर्तियाँ सत्रहवीं शताब्दी की हैं जबकि पौन राजा की वह मूर्ति इनसे लगभग आठ सौ वर्ष पुरानी है। राजाओं की मूर्तियाँ ऐसी भव्य और कलात्मक नहीं हैं जैसी यह पौन राजा की मूर्ति है।

श्मशान साधक

जागेश्वर कुमाऊँ के चन्द राजाओं का श्मशान था और वहाँ तंत्रवादी कापालिक तथा अघोरपन्थी शव साधना करते थे। जागेश्वर के जगन्नाथ मन्दिर के द्वार पर शिव की जो मूर्ति है, उसके हाथ में एक लकुट के सिरे पर नर कपाल बना हुआ है। जागेश्वर लकुलीश सम्प्रदाय के लोगों का शैव मंदिर है। लकुलीश शिव को समस्त सृष्टि का कारण मानते हैं। उनके अनुसार मनुष्य रूपी पशु २३ पाशों (बन्धनों) में जकड़ा है। बन्धन मुक्ति के लिए उसे व्रतों का पालन करना पड़ता है और द्वारों से गुजरना पड़ता है। व्रत हैं- राख पर सोना, देह पर राख मलना, हंसना, गाना, नाचना हुड्डुकार ध्वनि करना, मंत्र जपना तथा पूजा करना। द्वार हैं—समाधि लगाना, स्पन्दन, मंडन, शृंगरण (कामुकता), अवित्करण (पागलपन), अविदत् (ऊटपटांग बकना)। इन अशिष्ट चर्याओं के पीछे समाजिक विद्रोह की भावना छिपी हुई है। पाशुपत सूत्र के व्याख्याकार कोण्डिल्य ने स्पष्ट किया है कि इस आचार का उद्देश्य ब्राह्मणों का विरोध करके लोगों को प्रभावित करना था। स्वयं को बुद्ध और भिक्षुणी को तारा मानने की मैथुनी साधना या मुद्रा में सभी सामाजिक परंपराएँ त्याग दी जाती थीं।

भोट देश में पौन

भोट भाषा में पौन और बौन दोनों शब्द लगभग समान रूप से लिखे जाते हैं। प और ब ध्वनि और अक्षर दोनों में अन्तर नहीं है। पौन धर्म को समस्त उत्तर एशिया का बौद्ध धर्म का पूर्ववर्ती शमानी धर्म, अंग्रेजी में शमैनिज्म कहा जाता है।

भोट अभिधान (तिब्बती अंग्रेजी डिक्शनरी) में पौन धर्म का जो विवरण दिया गया है, उसका हिन्दी रूपान्तर है-"बौन या पौन तिब्बत का प्राचीन धर्म जो फैटिश निष्ठा (फेटिसिज्म) का भूत प्रेतों का मंत्रों द्वारा आराधन और पूजन हैं, अब अधर्म या विधर्म शब्द का पर्यायवाची बन गया है। अब पौन का तात्पर्य उस शमानी (शेमैनिज्म) धर्म से है जिसका तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार से पहले अनुसरण किया जाता था। तिब्बत के कुछ भागों में आज भी इस धर्म के अनुयायी हैं। यह धर्म कई शताब्दियों तक तिब्बत का मुख्य धर्म रहा।"

जनश्रुतियों के अनुसार इस धर्म को तिब्बत में ले जाने वाला एक भारतीय राजा था जो महाभारत के युद्ध में भाग न लेकर उससे बचने के लिए तिब्बत चला गया था। हूण और कुषाण राजाओं द्वारा प्रचलित परम्पराओं के अनुसार राजा को शिव या बुद्ध का अवतार मान कर भोट देश में पूजा जाता था। सबसे पहले पौन राजा का नाम रूपति कहा जाता है। भोट देश का दूसरा पौन राजा भी वैशाली के लिच्छवि वंश का राजकुमार बताया जाता है। पौन धर्म की यह पहली स्थिति द्सोल बौन (जौल बौन) कहलाती है। कई वर्ष तक लिच्छवि राजकुमार के वंशजों की पौन राजा के रूप में भोट देश में उपासना होती रही। उसके निसंतान मरने पर तीसरा पौन राजा कौशल के राजा प्रसेनजित का पाँचवां पुत्र अभिषिक्त हुआ। इस वंश का आठवां उत्तराधिकारी पौन राजा दिग्म त्सांपो था। उसके समय में प्रचलित पौन धर्म को ख्यरबौन कहते हैं। दिग्म त्सांपों की हत्या कर दी गई थी और प्रजा को यह ज्ञात नहीं था कि हत्या के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए पौन राजा की अन्त्येष्टि कैसे की जाय। अतः अन्त्येष्टि के लिए तीन पुरोहित बाहर से बुलाये गये।

एक पुरोहित कश्मीर से आया, दूसरा दुश प्रान्त से और तीसरा शनशुन प्रान्त से। ये तीन पौन तीर्थक कहे जाते है। जनश्रुतियों के अनुसार इनमें से एक आकाश में उड़ सकता था, दूसरा भविष्य वक्ता था और तीसरा अन्त्येष्टि संस्कार में निपुण था। इन तीनों ने राजा की अन्त्येष्टि करके बौन धर्म को जो नया रूप दिया वह ग्युरबौन कहलाता है। पौन धर्म में तीन मुख्य सम्प्रदाय हैं। श्रुति, स्मृति और पुराणों की ही भाँति उसके धर्म शास्त्रों का भी प्रचुर साहित्य तिब्बत में उपलब्ध है। तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार ग्यारहवीं सदी ईस्वी में दीपंकर श्रीज्ञान ने किया। उस समय तक वहाँ पौन धर्म का ही प्रचलन था। जागेश्वर में भी आठवी-नवीं शताब्दी ईस्वी में बौद्ध धर्म का तन्त्रवादी पौन रूप ही राज धर्म था। इसका प्रमाण है जागेश्वर को वर्तमान नव दुर्गा कहे गए मन्दिर की छत। यह छत बेलनाकार है। इसी प्रकार की छतें गुजरात और दक्षिण के चैत्यों में भी पाई जाती हैं। छत के दोनों सिरों पर पौन धर्म की पशु आकृतियाँ बनी हुई हैं।

गिउसेप टुच्ची की खोज

इतालवी प्राच्य विद्या विशारद गिउसेप टुच्ची ने अपनी पुस्तक "नैपाल" में तिब्वत के उक्त बौन या पौन धर्म के विषय में लिखा है–'गाँव के एक छोटे से मन्दिर के लामा ने मुझे विश्वास दिलाया कि उन गाँवों में बौन धर्म अब भी जीवित है। यह धर्म तिब्वत में बुद्ध धर्म के प्रचार से पहले यहाँ के निवासियों का प्रमुख धर्म था किन्तु अब केवल चीन के सुदूर अभ्यन्तर के अतिरिक्त अन्य स्थानों से लोप हो गया है। लामा के अनुसार चर्का और तरप पूर्णतः बौनपो गाँव हैं। वहाँ वह धर्म अब भी जीवित है। उसी धर्म के देवता पौन के मन्दिर और मठ वहाँ पर हैं। ऐसी जानकारी का मूल्य नित्य ही सापेक्ष है और अनेक बार मुझे इस की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के पर्याप्त कारण नहीं मिले किन्तु इस समय लामा ने मुझे एक बौनपो अभिलेख दिखलाया। बड़ी लम्बी सौदेबाजी के बाद उसने इस प्राचीन अभिलेख को मेरे हाथ बेच दिया। इससे मुझे उक्त कथन का प्रमाण मिला।" चर्का और तरप गाँव नैपाल-तिब्बत सीमा पर मुस्तांग दर्रे के निकट स्थित हैं।

गिउसेप टुच्ची की उपर्युक्त पुस्तक में एक मन्दिर से प्राप्त पौन धर्म के देवताओं के चित्र दिये गये हैं। इस चित्रावली में पच्चीस चित्र देवी-देवताओं के हैं तथा लगभग इतने ही विचित्र आकृति के अर्द्ध पशु, मानव और अर्द्ध पक्षियों के भी हैं। पुस्तक में बौन मन्दिर की तीन आदम कद खड़ी मूर्तियों के चित्र भी दिए गए हैं जिनमें से अन्तिम मूर्ति ठीक उसी प्रकार की है जैसी कि जागेश्वर में प्राप्त उक्त पौन की मूर्ति है। नैपाल के इसी सीमान्त में पौन धर्म के मन्त्रों से अभिलिखित पत्थर भी मिलते हैं। ये मन्त्र बौद्ध धर्म के मन्त्रों के ही समान हैं किन्तु शब्दों में अन्तर रहता है। पौन धर्म का स्वस्तिक भारतीय स्वस्तिक से उल्टा होता है।

कुमाऊँ में तन्त्रवाद

वज्रयान का प्रचार कुमाऊँ में मगध के पाल और सेन राजाओं द्वारा हुआ था जिनका वर्णन पहले जागेश्वर के संदर्भ में हो चुका है। बर्मा में भी पौन धर्म की कुछ बातों को बौद्ध धर्म को आत्मसात करना पड़ा था। बर्मी लोग भी पौन धर्मावलम्बी भूत-प्रेत के उपासक थे। ग्यारहवीं सदी तक भी वे छत्तीस भूतों की पूजा करते थे। इनमें गौतम बुद्ध को सैंतीसवें भूत के रूप में सम्मिलित किया गया। मंगोलिया और चीन से सम्पर्क होने के कारण पौन धर्म में निषेधवाद की भावना प्रबल रही। मृत्यु के बाद सब कुछ शून्य है, यही ताओ धर्म का सिद्धान्त तन्त्रवादी शैवों, बौद्धों और बज्रयानियों का परम आदर्श है। जागेश्वर के महामृत्युंजय मन्दिर के सम्मुख तन्त्रवादी अपने शरीर का त्याग करते थे। कुमाऊँ के इतिहास में चन्द काल में ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जब राज गुरु इसी प्रकार शरीर त्याग करते थे।

कुमाऊँ के राजा लक्ष्मी चन्द द्वारा गढ़वाल के अभियान में पराजित हो जाने पर अपने तांत्रिक गुरु को नादिया (बंगाल) भेज कर वहाँ से कोई नया तन्त्र सीख कर आने का उल्लेख पहले हो चुका है। जन साधारण तन्त्रवाद के जिस रूप को अपना चुके थे वह बौद्ध, शैव और पौन लामावाद का अद्भुत सम्मिश्रण था। उसमें वज्रयान तंत्रवाद और हठयोग का भी पुट था। उपासक को यह पता ही नहीं रहता था कि वह किस धर्म या किस मत या देवता का उपासक है। 'सिद्धि श्री' या स्वस्ति श्री' ये दो शब्द तो लिखे जाने वाले पत्र के आरंभ के अनिवार्य शब्द थे। जैसा पहले कहा जा चुका है ये दोनों तन्त्रवाद में उपास्य देवियों के नाम हैं। देवी की उपासना का कुमाऊँ में प्रचलित कर्मकाण्ड भी शामानी या लामा प्रभाव से मुक्त नहीं था। नन्दा देवी की जो केले के खंभो और पत्तों से विसर्जन के लिए प्रतिमा बनती है वह डिकर या डिकरा कहलाती है यह शब्द भी शक्ति सम्प्रदाय का है। अल्मोड़ा नगर का प्राचीन मन्दिरों की परम्परा में नवीनतम मन्दिर त्रिपुरा सुन्दरी भी शाक्त धर्म की इसी तन्त्रवादी परंपरा का है।

———

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

१—रिपोर्ट आन द सैटिलमेंट आफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ कुमाऊँ-जे०एच० बैटन १८४३-द-गवर्नमेंट आफ नौ०वै० प्रोविंसेज

२—मैमोरंडम ऑन गढ़वालीज-कैप्टन जे०टी० इ बाट-१८६४

३—रिपोर्ट ऑन द टेंथ सैटिलमेंट आफ द गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट-ई० के० पाव १८९६

४—हिमालियन डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ द नार्थ वैस्टर्न प्रौविंसेज-ई० टी० एटकिंसन इलाहाबाद १८८२

५—इंडियन इक्सप्लोरर्स ऑफ द नाइंटीन्थ सैंचुअरी-इन्द्र सिंह रावत-१९७३

६—पिलिग्रिम्स वांडरिंग्स इन द हिममाला-आगरा अखबार प्रेस १८४४

७—उत्तराखंड का इतिहास-शिव प्रसाद डबराल-सम्वत २०२२

८—वैस्टर्न तिब्बत एण्ड द ब्रिटिश बोर्डरलेण्ड-सी०ए० सैरिंग-लंदन-१९०६

९—अशोक के धर्म लेख-जनार्दन भट्ट-१९५७

१०—वैदिक इंडेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जैक्ट्स-आर्थर ए० मैकडोनेल एण्ड आर्थर बी० कीथ-हिन्दी संस्करण बनारस—१९६२

११—द ग्रेटनैस देट वॉज बैबीलोन-एच० डब्ल्यू० सैग्स-लंदन-१९६२

१२—हिस्ट्री ऑफ सीरिया-फिलिप के हिट्टी-लंदन १९५७

१३—हेरिटेज ऑफ पर्सिया-रिचर्ड एन० फ्राई-लंदन १९६२

१४—भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

१५—उर के उत्खनन के बारह वर्ष-सर लियोनार्ड वूली

१६—अल्मोड़ा, गढ़वाल, मुरादाबाद, पीलीभीत और नैनीताल जिलों के गजेटियर

१७—भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण—जॉर्ज ग्रियर्सन

१८—एश्येंट हिस्ट्री ऑफ नियर ईस्ट-एच०आर० हौल

१९—कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया-रेप्सन

२० धर्म शास्त्र (ओल्ड टैस्टामेंट) का हिन्दी रूपान्तर

२१—प्राचीन भारतीय व्यापार-कृष्ण प्रसाद वाजपेयी

२२—अहिछत्रा-कृष्ण प्रसाद वाजपेयी

२३—मथुरा-कृष्ण प्रसाद वाजपेयी

२४—महाभारत-हिन्दी संस्करण-गीता प्रेस गोरखपुर

२५—नैपाल का इतिहास-बी०डी० सनवाल

२६—कुमाऊँ का इतिहास-पं० बद्रीदत्त पाण्डे-१९३७
२७—पाणिनि कालीन भारत-वासुदेव शरण अग्रवाल
२८—नैपाल का भूगोल-दिव्यमान जोशी तथा नेत्र बहादुर थापा-काठमांडू सम्वत् २०२४
२९—प्राचीन भारत का इतिहास-डा० वेणी प्रसाद अग्रवाल
३०—हिस्ट्री ऑफ पर्सिया-सर पर्सी साइक्स
३१—हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल-खण्ड २-भारतीय विद्या भवन
३२—आर्कयोलोजी ऑफ कुमाऊँ - के० पी० नौटियाल, बनारस
३३—ग्रेट एज ऑफ मैन-टाइम लाइफ सिरीज-इम्पीरियल रोम, एश्यैंट ग्रीस, एश्यैंट इजिप्ट, एज आफ एनलाइटनमेंट, क्लैसिकल ग्रीस, नेडरलैण्ड १९६६
३४—मोहन जोदाड़ो एण्ड द इंड्स वैली सिविलिजेशन - सर जौन मार्शल
३५—अथर्व वेद-गंगा बुक डिपो मथुरा-१९६२
३६—मत्स्य पुराण-संस्कृत संस्थान, बरेली
३७—वृहत्तर भारत-चन्द्रगुप्त वेदालंकार-दिल्ली १९३९
३८—हरिवंश पुराण-गीता प्रेस गोरखपुर
३९—संस्कृत हिन्दी कोश-वामन शिवराव आप्टे
४०—जरथुस्त्र एण्ड हिज टीचिंग्स-दस्तूर खुर्शीद एस० दावू-बम्बई १९६६
४१ तिब्बतियन मार्चेज-आन्द्रे मिगॉट
४२—राज तरंगिणी-आर० एस० पंडित
४३—द सोशल स्ट्रेटिफिकेशन इन रूरल कुमाऊँ -डा० आर० सनवाल दिल्ली
४४—द वैदिक एज सस-आर० सी० मजूमदार तथा पुशलकर
४५—सैंसस ऑफ इंडिया -१९६१ तथा १९७१
४६—कुमाऊँ, गढ़वाल-राहुल सांकृत्यायन
४७—ऋग्वैदिक भारत -राहुल सांकृत्यायन
४८—किन्नर प्रदेश में-राहुल सांकृत्यायन
४९—रेसेज एण्ड कल्चर्स डी० एन० मजूमदार
५०—प्राचीन भारत की वेशभूषा-डा० मोती चन्द
५१—मध्य एशिया का इतिहास—राहुल सांकृत्यायन
५२—द एनल्स ऑफ असुर वाणपाल—ए० लाउ
५३—ईरानी, ईराकी तथा रूसी दूतावास दिल्ली से प्राप्त मानचित्र, चित्र तथा पर्यटन सम्बन्धी सामग्री
५४—शतपथ ब्राह्मण-भाण्डारकर इंस्टीट्यूट पूना

५५—वर्णमालाओं का इतिहास—गौर्डन स्टौवेल
५६ – मुद्रा राक्षस—विशाख दत्त
५७—एश्यंट ज्योग्रफी—कनिघम
५८—क्वायंस ऑफ एश्यंट इंण्डिया—कनिघम
५९—कुमार सम्भव, मेघदूत -कालिदास, इंडियन प्रेस इलाहाबाद
६० द ग्रेट मंगोल, बर्नियर की भारत यात्रा
६१—जर्नल ऑफ यू० पी० हिस्टोरीकल सोसायटी - लेख एन० एन० मिश्रा, पावेल प्राइस सम नोट्स आन अर्ली हिस्ट्री ऑफ कुमाऊँ, कुनिन्दाज इन कुमाऊँ
६२—फोरेन इन्फ्लुएंश आन एश्यंट इण्डिया-ए० आर० जयराज भाय
६३—आक्यॉलौजिकल हिस्ट्री ऑफ ईरान-ई० हर्त्स फील्ड-लंदन १९३५
६४ द लाइट ऑफ इक्सपीरियेंस-फ्रांसिस यंगहसबैंड-लंदन १९२७
६५—कामेट कनक्वर्ड—स्माइथ
६६—चुंगकिंग डायरी-डी० एफ० कराका बम्बई १९४४
६७—वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा– डा० सत्य प्रकाश-पटना १९५४
६८—अग्निपुराण, गर्गसंहिता, नरसिंह पुराण अंक गीता प्रेस गोरखपुर
६९—श्रीविष्णुपुराण-गीता प्रेस गोरखपुर
७०—उपनिषद् भाष्य-छान्दोग्योपनिषद्-गीता प्रेस गोरखपुर
७१—द जिप्सीज-जीन पौल क्लेबर्ट- १९६८
७२—यजुर्वेदभाष्यम्—प्रयाग संवत् १९४६
७३—कादम्बरी-काशीनाथ पाण्डुरंग परव बम्बई संवत् १८५४
४७—उत्तराखण्ड भारती-पत्रिका-डा० गिरीश चन्द्र पाण्डे पर्वतीय अर्थव्यवस्था में वृत्ति हीनता-
७५—गणिका नाटक—मौला राम
७६—गढ़वाल का इतिहास—हरिकृष्ण रतूड़ी गढ़वाली प्रेस देहरादून
७७—एशिया का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास—डा० बुद्धप्रकाश
७८—नैपाल की कहानी—काशीप्रसाद श्रीवास्तव
७९—भोट अभिधान–तिब्बती अंग्रेजी डिक्शनरी—शरतचन्द्रदास
८०—ट्रीटीज, एलाएन्सेज एण्ड इंगेजमेंट्स–सी०यू० एटचिसन (कलकत्ता-१९२९)
८१—द वंडर दैट वॉज इंडिया—ए०एल० बैशम
८२—द स्टोरी ऑफ जैरिको—जे० बी गस्टांग लंदन—१९४०
८३—पोलिएँड्री इन द हिमालयाज—डा० वाई० एस० परमार
८४—ग्रीक हिस्टोरियन्स–रेंडम हाउस न्यूयार्क १९४२
८५—पार्थिया—जॉर्ज रौलिन्सन, लंदन।

वर्णानुक्रमिका

अक्कद ४८ से ५०, ५२, ७७, २६२

अकवर १, ६, १७०, १८८, २१०, २१५, २८५

अकेमीनियन-अकमीड—देखिये हखमनीश

अगस्टस ३१, १००, २७६

अथर्ववेद ३०, ४७, ५१, १७०, ३०६

अन्तिओक ३. १२३

अपोलोडोटस ११८, १२३

अब्राहम ८४, २६४

अमरसिंह थापा १९०, २३०, २३१ २३६, २४५, २४६

अमोघभूति १२६

अल-बरूनी ३८, ३९, ४१, १६२, १६६

अल्मोड़ा १, ९, ११, १२, १७, प्राचीन मार्ग, २१-जनसंख्या, २५ पा०, १२४-१२५, २०१ पा०, २१२, २१५, २१९, २२४, २२९, २३०, २३७, २४० से २४६, २५१, २८५, २८८ से २९०, अखबार ३१६

अरब ७०, २८१, अरबया ११६

अशोक ३२, ४३, ५८, १०८, ११२, से ११७, १३३, १४१, १४२, १५०, १६७, १८३, १८५, १८६, २७३, २७४

असुर (अस्सुर) २, २९, ४०, ४९, ७४, ७६, ८६, ८७, ९१, १०४, १०६, १९८, २६३ से २७६, ३००: ३०२

असुर-बाण-इ-पाल ५१, १८७, २६७-६८, ३०२

अस्कोट १, ५, २२, १४१, १९८, २५४

अहिच्छत्रा ३५, ९८, १००, से १०३, १२४, १२७, १४१

ऑगस्टस देखिए अगस्टस

आलमनगर २०१ पा०, २०४, २१०, २१५

आर्कोसिया ६४, ७१, ७५, १५०

आर्मीना } आर्मीनिया } ६८, ७०, २७४, २७९, २९६ आर्मीक ३०३

आर्य ५०, ५६, ५९, ७४, ७६, ७७, ८२, १०९, २६४, २६६, २६८, २७०, ३०६

आर्या १०९, ११०

इंडोग्रीक — देखिए हिन्दयवन

इच्छट देव १५९, १६८

इलाम (एलाम) ४९, ५०, ५१, ९३, ९६, ९६, पा०, ९७, १८२, २६१, २६३, २७१, ३०० से ३०३

ईरान ४० पा०, ८८, १३७, १५०, १७२, २६१, २६८, ७२२, ३०३

ईस्ट इंडिया कम्पनी ३५, ६५, २४७, ३१३

उज्जैन } उजैनी } १४१, १५१, १८८ ४० पा०, ९४, १०२, १०३

उत्तरकाशी १, १५०, १७४, २८२, २८३, २८६
उत्तरपथ (उत्तरापथ) ३१, ११२ से ११७, १२२, १२३
उर ५३, ५५, ६०, ७६, ८०, ८४, २६०, २६३, २६४, ३०१ से ३०३
औरंगजेब ४४, १६७, २०७, २१८
कटेहर (कठेर) १५, २२४, २८३
कठफिस (कैडफिसस) १२१, २७७
कत्यूर १, ४, ३२, ४६, १३० पा०, १३३, १३५, १५२, १७२, २०१, २१४
कत्यूरी ४६, १२४, १३४, १५८, १६०, १६३, १९३, १९७, २०४, २८२, राजकर्मचारी २९१, ३०८ से ३१०
कनिष्क ३३, ८३, १४९, १५०, १६५, १६९, २७७, ३००, ३०३
कन्नौज ४४, ४५, १३७, १३८, १६८, १७६, १९३, २८१, २८२
कम्बुज (कम्बैसिस) ८२, ८८, १०४, २७०
कराचल कराचल्ल ३३, १७१, १७७
कराचल्ल देव } क्राचल्ल देव } १७८, १७९, १९३
कर्णप्रयाग १२९, १५८
कलूत १२६, १६२, १६७
कल्याणचन्द २०६, २१२, २१९, २२०, २२१, बालो २८५, २८७, २८८
कल्हण ३१, ४४, १६९, २०१ पा०
कस्स-कस्सी-कस्साइट २, २१ पा०, ५३ से ६१, ६५, ६६, ७६, ८२, ८५, १०४, १४५, १९८, २६४, २६५, २६६, ३०२
काठमांडू १८७, २३४, २३७, २४९
कालिदास ३०, ४०, ८५
कालाढूंगी ११, १५, २५२
काली २, १६, २३६ से २३९, २४५, २९०
काली कुमाऊँ ७, २४ पा०, १३३, १३५, १७१, १७४, १७९, १९६, २१५, २१९, २२३, २३०, २३४, २३८ से २४१, २७२, २८२, २८४
कार्तिकेय ३२, ४४, ४६,
कार्तिकेयपुर १३० पा०, १३३, १४९, १५६ से १६१, १६३, १७२, १९३
काल्दू ४८, ५३, ५७, २६८
काशगर ४७, १४५
काशि २, ५६, ६१, ७७, ८२, ८४पा०, ९३, २९६, ३०६
काशीपुर २, १०, १६, ३४, ४०, १०१, १०३, ११८, २१९, २२३, २२४, २२५, २३८, २८८
काश्मीर ४३, ४५, १३० पा०, १४९, १६३, से १७०, १८२, २८०, २८१, ३००, ३०३, ३२४
कांगड़ा २१२, २२४

किरात, किराती — २८, ४५, ४७, ६२, ८२, ८३, ८५, १८१, से १८३, १८६ से १६१, ३०३, ३०५, ३२२
किरातीचन्द १६८, १६६, २०२, २०३, २०४, २८४
कीर्तिपुर १७८, १८३
कीलाक्षर (क्यूनीफार्म) — ६६, २६२, ३०१
कुमाऊँ-कुमायूँ १-सरकार, २, १२, से १४, १४०, १५१, १८२, २४७, ब्रिटिश २४६ से २५६, ग्रीको-रोमन २७६, २८१
कुमु, कुमू — १, २१ पा०, ३४, ४२, ४६, ६८, १७३, १७४, १६६, १६८, १६६, २०२, २०३, २०४, २०६, २७२, २८२, ३०६
कुनिन्द-कुलिन्द ३३, ११८, १२५, १२६, १६८
कुरुष (साइरस) ५८, ५६, ६१, ६२, १०४, २६६, २७०
कुलू कांगड़ा १२६, १५०
कुषाण ३३, १०३, १२१, १२२, १२३, १२४, १३१, १६५, २७७, ३०३, ३२४
कैड़ारो १२, १६६, २८८
कोटा १, ६, १०, २०४, २३०
कोसिला-कोसी ६, १०, १५, २४१
कोंकण २१५
कौशाम्बी १२२
कौसानी १६३, २५१
क्यूनीफार्म देखिए कीलाक्षर
क्रकोटक १६७, १६८
क्षत्रप १०५, १३१, २७६, २७८ से २८०
क्षयार्ष ५६, २७०, २७१
खगमरा १६८, २०१ पा०, २८५
खड़गू १७१, २८३
खरोष्ठी ३३, ११६
खवासखाँ २०२, २०४, २०५, २०६, २८४
खस २७ पा०, २६, ४७, ५३, ५६, १२४, १२५, १३० पा०, १३५, १५०, १६४, १६६, १७२, १७४, १८३ से १८७, १६४, २०१ पा०, २८२ से २८५, २६६, २६६, ३०४, ३०७ से ३१३
खसिय, खसिया — २००, २०४, २६६, ३०८
खल्दी (खाल्दी) देखिए काल्दू
गढ़वाल ५, १३, २२ पा०, ३०, ४२, ४४, ४५, १४७, १४८, १५१, १८६, १६०, २१४, २१६, २१८, २२०, २२६ से २३२, २४५, २५० से २५३, २८६ से २६०
गणानाथ २१०, २३७, २४१, २४३
गरुड़ ५, १२४ से १३०, गरुड़ ज्ञानचन्द १५, १६३, २८४
गहड़वाल ४५
गान्धार ८६, ११२, १४१, १५०, १६८, २७१, २७४
गुप्तवंश १३१, १३३, १३७, ३०३
गूंठ ११, २६ पा०, १२८, १३६, २११, २१५

गोनन्द १३६ पा०, १६७, १६८
गोपालवंश १६१, २८१, २८२
गोपेश्वर ३२, १७४
गोरखनाथ ३४, ३५
गोरखा १, १२, १३, १६, २०, २५पा, ४२, १८२, १८८, १६१ पा०, २१५, २३०, २३२, २३४, २३६, गोरखा युद्ध, २३८ से २४६, २५४, २५६, २६०, ३१२
गोला-गोकर्णनाथ १, १५, २१०, ३१८
गोविषाण १०१ से १०३, १४०, १५१, १५२
गौड़वाहो ३१, ४०, ४४, १६८
गंगोली ५, ११
ग्रीक ३३, ७०, ग्रीकोरोमन-१५०
घटोत्कच ३४, १३१, १३३, २०४, २७६
चन्द्रगुप्त १३६, १३४, २७३ मौर्य, २७० गुप्त
चम्पावत १, ७, १५, ३५, ३६, ४२, १६३, १६४, १६६, से १६६, २०८, २११, २१४, २३६, २४५, २५५, २८२ से २८८
चमोली १, २, १६३
चरस ६५
चांडी-चंडी २६ पा०, ३१, १६५
चिलकिया ६, ११
चीन १६, १२३, १२५ पा०, १३४, १४०, १४७, १४६, १६५, १७१, २६६, २७७, २८०
चीनार ११, चीना-२५ पा०, २०४ चीनाखान
चौगर्खा ७, ११, १२
चिलकिया १५, २४१
चौभैंसी ८, १४
चोरगलिया १४
चौरासीमाल १५
छखाता १, ८, १०, १५
जम्मू २२४, २७२
जुमला १८५
जागेश्वर ११, १२, २६ पा०, २७ पा०, ३५, १०२, १७२ से १७७, १६१ पा०, २२२, २८८, ३२०, ३२३
जातक २६-बावेरु, दशरथ-३०, ३६, ५०, ५७,
जीना १७६
जोइसी २२५, २२६
जोरावरसिंह १६
जौनसार बावर ३४
जोशीमठ ६१ १६२
जोहार ३, ५, ६, २२-पा०, ७१, २३०, २३१
झिजाड़ ११, ३१३
झिराटोली १२
झूलादेवी ६, १२
टंगणपुर (तंगणपुर) १०३, १५७, १६२
टिहरी १, ३२, १५०
डिकर ५, ३२
डिमिट्रियस २७४
डेरियस १०४
डोम ६६, १३२ - डोमकोट, १६४, १६४, ३०७ से ३१३

डोटी २३ पा०, १७१, १८१, १८६, १६७, २००, २०२, २१०, २११, २१५, २१६, २४५, २४८
ढिकुली १५२, १६७, २३८
तक्षशिला १४१, २७७
तंगवंश १६५, २८०
तंगणपुर १६१, तंगण-१६२, १६३
तराई १, १५, १७, १६, ३१ २१८ से २२०, २४६
ताड़्मरु (पामीरा) २७६
ताड़ीखेत २४०
तांबा ६, ६, १२, १३
तामाढौन १४, २०० पा०, २२३, २२६
तालेश्वर १५३, १५४
तिब्बत २२ पा०, १२६, १४२, १५१, १६१, १८४, २१७, २८१, २८६, ३२३ से ३२५
तिमाशा २०
त्रिशूल ३
तुगलक १६६
तैमूरलंग १५२, १७०, १६४, १६५, २८४
तोरमाण १६७
थल ५
थारू १६, १८४, १६०
थोकदार ५, ६
दम १८४
दमाई १८३
दमिश्क ३, १५०
दाड़िम १३
दानपुर ३, ४, ५, ३५
दारमा ३, ५, ६, २२ पा०, ७१, १४८
दारयवहुश (डेरियस) ४१, ५६, १०४, १६५, १८० २७०, २७२
दारुण २६ पा. २७ पा०
दारुकावन १७५, १८०
दास ६४
दासमंडी २३२
दीनेश्वर ११, १२
दीप २३४
दीपचन्द २२२ से २२६
दुलू ३२, १३२, १७६, १८२, १८५, १६३, २८३
देवदार २६, ३३, ४४, ६६, ३२०
देवनागरी ४५, ७०
देवीधुरा ७, १८, ३२०
देहरादून १, २, ३२, ८६, २२०, २३२, २३६, २८७, २६०
दैपट देव १६१, १६८
द्वाराहाट ३५, ४७, १८०, १६७, २२०, २२८
नना १०६, ३०० से ३०३
नमक १२६, १३२-नमकमार्ग
नबुचदनेजर ५७, ८७, २६६, २६६
नन्दाकोट ३, ४
नन्दादेवी १, ३, ४, २३ पा०, १५६
नवीस १६५
नागनाथ २०३
नागा साधु २३८
नाथसिद्ध २०३, २१०
निशा ११६
निम्बर देव १६८
नैपाल २, ७, १३५, १३६, १३७, १४०, १४५, १४६, १६८,

१७४, १८१, १८५, १८७, २३०, २३२, २३६, २४७ से २४६, २८१, २६०, २६५ से २६६, ३०५
नैनीताल १, ६, १०, ११, १७, १६, २१-जनसंख्या, २५प०, १३६, १४६, २५० से २५२, ३००
नैनी देवी ३०० से ३०३
पणि ३५, ६३, ६४, ६६ से ७२, ८६, १६२
पंचाल ४७, ७६, ६४, ६५, ६८ से १०३, १२७, ३०६
पन्त १७२, १७३, १८४, २१७, २२१, २५०, पौण्ट्स-२७५, २८६, ३१२
पन्तक १७३, १८१
परतंगण
परतंगणपुर } ६०, १०३, १६२, १६३
पांचाल—देखिए पंचाल
पाणिनि २०, ३७ से ३६, ८५ से ६७, ११३, १४१, १५०, २७२
पाण्डुकेसर १५७, १५६, १६०
पाताल भुवनेश्वर १२४, १२८
पार्थव (पार्थियन) २४ प०, ६३, ११६ से १२३, २७१, २७३ से २७६
पानीपत २१५, २२१, २८८
पाल १५६, १८२, १८६, २८१, २८२, ३२१
पाली-पछाऊँ १३ से १५, २८७
पारसी १७२, १७३
पिण्डर ४, ५, १२६
पिंगलों ३४ (सिक्के-गरुड़-अल्मोड़ा), १२६
पिथौरागढ़ १, २, ११, २१-जनसंख्या, २३ प०, ३६, ८५, ६६, २१५
पी० वैरन १७, १८, १६, २७ प०
पुण्टदेश १७२, १८०
पुरखू (परखू पंत) २१२, २१३, २१४, २८५, २८६
पुरानी बाइबिल देखिए-यहूदी
पुष्यमित्र १३४
पैशाची १५०
पैंच ७१
पौण्ट्स १७२
प्रद्युम्नशाह २२६, २३०, २३२, २८६
प्रभाकरवर्द्धन १३८, १३६
फराजल १७१
फल्दाकोट १, ६, १३
फर्त्याल ६, २१६, २२२, २२३, २२४, २२७, २३७
फर्रुखाबाद ४
फाहियान ३८ १३४
फीनीसियन
फोनीसियन } ३६, ६५, ६६, ६६, ७०, १०५, २६७
बगवाली पोखर २२८
बद्रिकाश्रम १५७
बद्रीनाथ १५४, १८२
बदायूँ १, २८३,
बधाण-बहुधान्यक १२६
बधान २१४
बधानगढ़ २१३
बमराजा
ब्रह्म राजा } १५२, १६५, १६८, १६७, १६८, २०२
ब्रह्मदेव २, ४, ८, बरमदेव-८ १८, २६प, १६३

ब्रह्मपुर १३२, १४५, १४८, १५१, १५३, १५४
बर्नियर ३९, ४१, ४४, १६६, २०७
बागेश्वर ४, २३ पा०, ३२. १५८, २२३, २४३
बाज बहादुरचन्द १५१, २०७, २१७, २१८, २८६, ३२९
बाड़ाखेड़ा (बाराखेड़ी) २०८, २३८
बाबर १६४, १७०, २१५, २८४
बाबेलु (बैबीलोन) २६, ३९, ४८, ५०, ५१, ५५, १०६, १०९, २६४, २६८, २६९, २७२, २७५, २९६
बारामंडल १२, १३, २०३, २३१
बाराहाट १५१ देखिए उत्तरकाशी
बालेश्वर ३२, २०४, २१०, २८४
बिजनौर १
बिनसर ११, १२, १४७, २५१
बिरमदेव १६३, १७९ पा
बुखारा ३
बुधलाकोट ९
बुद्ध १८३, २६९. ३२२ से ३२५
बैजनाथ ४, ५, १६३,
बोधिसत्व ४०, १४३ १४४, १५९, ३२१, ३२२
बौरारो १२, १३, १९९
बौद्ध १५०, १५१, १८६, २७३, २७४, २७९, ३०६, ३२० से ३२४
भटकोट १२
भंग-भांग ८, ११, २५पा, ३५, ६५
भाबर १, ११, १३ से १५, १७, १९, ५१. १००, १०१, १९७, १९९. २१२, २१५, २१७, २२०, २२२, २२७
भिक्यासैण १४, ३५, ३६, ३८, १५२
भीमताल १०, २३०
भुवनेश्वर २७ पा
भोट ४, २२ पा०, ११३, १५१, १६१, १८३, ३२३ पौन धर्म, ३२४
भोटविष्ट-भोटदेश ३८, १३८
मगध ९३, १३२, १४०, १४६ १७४, १८४, २७१, २७४, २८१, २८२, ३०६
मणकोट ९६, १९७, मणकोटी-२१७, ३१२
मत्स्येन्द्रनाथ १८४
मतिराम २१९, २२१
मथुरा ३८
मरहट्टे-मराठा २२०, २२१
मल्ल २, १८४, १८५, से १८७, १८९, १९०, २०२, २८२
महर ६, २१९, २३७
महाशक ७५, ८४,
महमूद लोदी २०५
महाक्षत्रप १३१
महापाषाणी ३५, ३६, ३२०
मानसरोवर ३
माना १९
मायापुर १४४, १५२
माल १५, ३१
मालवा १०२
मित्रदत्त (मिथ्रडेटिज) २७४, २७५
मिलम ३

मिनिण्डर १०७, मिलिन्द-११६, २७५
मिस्र ८०, ८१, ९०, १६६, १८०, २६२ से २७५
मिहिरकुल (गुल) १३४, १६७, २८०
मुक्तापीढ़ १६८
मुगल २०८, २११, २१६ २२०, २८८
मुहम्मद तुगलक १७१
मुहमद गोरी २०२, २८३
मृत्-फलक देखिए क्यूनीफार्म, ३०१
मेद-मीडियन ६०, ८९
मैगस्थनीज ३८
मैसोपोटामिया ५३, ५५, ५६, ६०, ६६, ७४, ८३प०, ९७, १२७, २७८, २८१, ३००
मोखरी १३७, १३८
मौर्य ३८, ५६, ११५, १८६, २७३, २७४
यक्ष ७४, ७५, ११३, २६३
यवन ३२, ६९, ११६, १५०
यहूदी २९, ८४, ८८, ११९, १६६, २६४, २६६, २६७, २६९, ३०२ बाइबिल-२९, ४८, ५१, ५२, ७३, ७६, ८०, ८७, ९४, ९८
यूथिडिमस १२३
यूनान ११९, १२३ यूनानी-१३५
योरोपा ६९
यौधेय-यौद्धेय ३२, ३३, १२५, १२८, १२९, १३७, १६९
रजवार १९८
राजतरंगिणी ४४, ४५, १२५, १३०प,
रानीखेत २५, २४० से २४५
रांकव ९२ देखिए रैनका
राजापुर २२६
रामगढ़ १, १०, ९५, ९६, २०१ प, २२०, २८४, रामगाड़ ९६
रामगंगा २, १५१, २४५ पूर्वी-४ से ६, १२, १३, ९६,
रामनगर १५, ३६, १४१, १५१, १५२, १९७, २५१
रामपुर २, २३०, २५२
रामेश्वर ५
रीठागाड़ १२
रुद्रचन्द १६, १५१, २११ से २१३, २१६, २८५
रुद्रपुर १६, १७, २३८
रुहेला २१९, २२०, २३१ रोहेला-२२५, २२६, २२८, २८८
रैमजे-हैनरी २५१ से २५४
रैनका ४५, ९२, १९६, २११, २१९
रोम ३३, ४६, १०९, १२२, २६६, २७१, २७२, २७६ से २८१
ललितशाह २२८, २२९
ललितशूर देव १५४ से १५६, १६०, १६३, १६६, १७१
ललितादित्य १६६, १६८, २८१
लामावाद १५१, ३२०
लाल ढांग २००
लासा (ल्हासा) २, ३१, १४९, २८९
लिच्छवि १३२, १३३
लिपि ३२, ३३, १०१, १०५, २६२
लिपूलेख ३, ४
लीबिया ६८, ६९
लेबनान ६७
लैंसडाउन ९१, १२६, २३२

लोहा ६, १२
लोहाघाट (लोहूघाट) ७, ६, २४ प०, १८, १६, ८७, ८८, १३५
लोहावती ८८, १३१, १३५
लोहावा २२८, २८७
वाल्मीकि ४०
विल्हण १३० प
व्यास नदी २७२
व्यास-घाटी ४, ५, ६५, ७१
शंकराचार्य ६१, १७४, ३०८, ३२०
शक २, ३४, ४७, ११६, १२६, १३५
शकारि १३० प, १३६
शतपथ ब्राह्मण २६, ७६, ८४, ६७, ६८, १००, १०३ प, २७१, ३०६
शशांक १३७, १३८
शारदा २, ४३, १०१, १७१
शाहजहाँ २१८
शिवदेव जोशी १६, २१६, २२०, से २२५, २२७, २८८
शेरशाह २०५, २०६
शौक २३ प
श्री गुप्त १३१
श्रीनगर ३६ से ४५, १५१, १६७, २०७, २१४, २२२, २२३, २२८ से २३१, २३६
समरकन्द २
समुद्रगुप्त ४३, १२६, १३३, १३४ से १३७, १४६
संभल १, १५, २०५, २०६
ससान, सशान १३७
सरयू ४, ११, १२
सयाना १४, ७५
सिकन्दर महान् ३८, ५५, ८८, १०२, १०४ से १०७, १११, १३३, २७२
सिडौन ६७, ६८, ६६, ८६
सीरा १, ६, २३ प, ६४ २०२, २१०, २११
सीराकोट-सीरागढ़ २१२, २१३, २२८, २८५, २८८
सुवर्ण गोत्र १४८, २७१
सुमेर ३०, ४८, ४६, ५२, ५४, ८०, ८१, २६१ से २७६, ३००, ३०१
सूलेमान शिकोह ३६, ४१, ४४, २०७, २१८
सेमिटिक ४६, ५०, ६७, ८२
सेन १७४, १८७
सेल्युकस १०६, १२२प
सोमचन्द १७६, १६३, १६६, २१५, २८२
सोमेश्वर १६८ से २००
सोर १, २४, ३०, ४०, ४६, ५२, २३१
हखमनीश-अकेमीनियन २७ प, ३१, ३२, ३८, ४१, ५८, ८८, १०५, १०६, ११३, ११५, १५०, २७०, २७१
हरखदेव (हर्षदेव) जोशी २२५ से २३०, २३४, २३६, २३८, २४५, २४७, २८६, २६०

हर्ष १३७, १३९, १४०, १६७, १६६, १८०, २८०, २८१
हर्षचरित १३८, १३९
हरद्वार, हरिद्वार २, ४, १७, २३, १४४, १९५, २३२, २८४
हल्द्वानी ९, १५, २५२
हवालबाग २१७, २३०, २५१, २५५, २८९
हिक्सौस ६८, ७४, ७५, ८४, २६३
हित्ती ७५, ८४, २६४
हिन्दयवन २, २९, ३१, १०४ से १०९, १११, १२६, १५०, १६९, २७४, ३०३
हिब्रू ४८, ५७, १६६
हिमाचल प्रदेश १८२, १९१, ३२०
हिमालय १९, ६२, ७५, ७७, ९९, १६२, १६३, २९५
हीरोडोटस ६८, ७५, ८० ८६, ८९
हुमायूँ १७०, २०५
हूणदेश, हूण ३, १६, २२ प, ४३, ८३, १३४, १४७, १६७, २८०
ह्वेनसांग १०२, १०४, १४०, १४४ से १५०, १६५, २८१

प० का तात्पर्य पाद टीका से है।

28151

"Bookshop of Distinction"

MODERN

OFFERS YOU

The Best Selection of Books

SPECIALITY :

BOOKS ON UTTARAKHAND

(KUMAON AND GARHWAL)

Culture, Literature, Art,
History, Folk-lore, etc.

Please visit or write :

MODERN BOOK STORE
THE MALL, NAINITAL-263001
Phone : 59